M.M. GOPĪNĀTHAKAVIRĀJA-GRANTHAMĀLĀ

[ Vol. 3 ]

# ŚIKṢĀSAṂGRAHAḤ

OF

**YĀJÑAVALKYA & OTHERS**

Collected & Edited
BY
Ācārya Śrī Rāma Prasāda Tripāthī
Ex. Professor & Head of Department
OF
Vyākaraṇa-Yoga-Tantra & Āgama
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi

VARANASI

**PDF Creation and Uploading done by:
Hari Parshad Das (HPD) on 20 January 2014.**

Research Publication Supervisor :—
**Director, Research Institute,**
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

●

Published by—
**Dr. Harish Chandra Mani Tripathi**
Publication Officer,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.

●

Available at—
**Sales Department,**
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002.

●

First Edition—1100 Copies
Price Rs. 100.00

●

**Printed by—**
DR. RĀMAMANOHARA MIŚRA
O. S. D.
Sampurnanand Sanskrit University Press
Varanasi.

म० म० गोपीनाथकविराज-ग्रन्थमाला
[ तृतीयं पुष्पम् ]

महर्षियाज्ञवल्क्यादिविरचितः

# शिक्षासंग्रहः

सङ्कलयिता सम्पादकश्च
**आचार्यश्रीरामप्रसादत्रिपाठी**
व्याकरण-योग-तन्त्रागमविभागाध्यक्षचरः,
वेद-वेदाङ्गसंकायाध्यक्षचरश्च
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य
वाराणसी

**वाराणस्याम्**
२०४६ तमे वैक्रमाब्दे १९११ तमे शकाब्दे १९८९ तमे खैस्ताब्दे

अनुसन्धानप्रकाशनपर्यवेक्षकः —
निदेशकः, अनुसन्धानसंस्थानस्य
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये
वाराणसी ।

●

प्रकाशकः —
डॉ० हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी
प्रकाशनाधिकारी,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य
वाराणसी–२२१ ००२.

●

प्राप्तिस्थानम्—
विक्रयविभागः,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य
वाराणसी–२२१ ००२.

●

प्रथमं संस्करणम्, ११०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम्—१००-०० रूप्यकाणि

●

मुद्रकः—
डॉ० राममनोहरमिश्रः
विशेषाधिकारी,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयीयमुद्रणालयस्य
वाराणसी ।

# पुरोवाक्

## "शिक्षाणां संग्रहो महान्"

अस्मिन् सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये पूर्वं व्याकरणविभागाध्यक्षपदं वेद-वेदाङ्गसङ्कायाध्यक्षपदं चालङ्कृत्य सम्प्रतितत्रैव सम्मानिताध्यापकपदमधितिष्ठद्भिः वाचस्पतिनामोपाधिना विभूषितैराचार्यश्रीरामप्रसादत्रिपाठिमहोदयैर्विहितः शिक्षा-संग्रहग्रन्थस्य महासागरात् मौक्तिकोद्धार इव पुनरुद्धारो मयाऽवालोकि।

**दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।**
**स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥**

इत्यादिना ये ये स्वराणां वर्णानां वा दोषा निषिद्धाः सन्ति, तेभ्यो दोषेभ्यो वैदिकं वाङ्मयं शिक्षाशास्त्राण्येव त्रायन्ते। यतो हि 'अयं वर्णः स्वरो वा' इत्थ-मुच्चारणीय इति नियमान् शिक्षाशास्त्राण्येव बोधयन्ति।

षट्सु वेदाङ्गेषु शिक्षायाः प्रमुखं स्थानं वर्तते। सहस्रेभ्योऽपि वर्षेभ्यः पूर्वं यत्र यत्र वैदिकपरम्परासु यया पद्धत्या वेदमन्त्राणां पाठः क्रियते स्म, अधुनाऽपि तत्र तत्र परम्परासु तादृशमेव मन्त्रोच्चारणं कुर्वन्तो वेदज्ञा दृश्यन्ते।

वर्णोच्चारणविषयेऽनेकेषामृषीणां मतान्यत्र ग्रन्थे प्रदर्शितानि। अतश्च स्थान-प्रयत्न-दृष्टान्तादिनिरूपणेनैष ग्रन्थः पूर्णतां भजते। द्रुत मध्यम-विलम्बितवृत्तीना-मप्यत्र विचारो विहितोऽस्ति। 'सप्तस्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः' इत्या-दिना सामवेदीयशिक्षायां सप्त स्वराः षड्जादयः सलक्षणं निरूपिताः सन्ति।

पाणिनीयादिशिक्षासु वर्णानां संख्याविषये समीचीनो विचारोऽवलोकितः। तत्रैकविंशतिः स्वरा उक्ताः। 'अ इ उ ऋ' एते वर्णाः ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदेन प्रत्येकं त्रिधा इति द्वादश। लृकारस्तु ह्रस्व एवैकः। 'ए-ऐ, ओ-औ' एते दीर्घप्लुतभेदेन प्रत्येकं द्विधा इत्यष्टौ, इति मिलित्वा एकविंशतिः स्वराः सञ्जाताः। स्वस्मिन् रमन्ते इति रमेरौणादिके डप्रत्यये सति स्वरशब्दो निष्पद्यते। एषामुच्चारणे वर्णा-न्तरसाहाय्यं नापेक्ष्यते।

व्यज्यते स्वरसाहाय्यमादायोच्चार्यते इति व्यञ्जनम्। एते च कादिहान्ताः त्रयस्त्रिंशत्संख्याका लोके प्रसिद्धा एव। तत्र कादयो मावसानाः पञ्चविंशतिः स्पर्शाः, ततश्चत्वारोऽन्तस्थाः 'यरलवाः' इति, ततश्चत्वार ऊष्माणः 'शषसहाः' इति। यम-संज्ञकाश्चत्वारो वर्णा वेद एव प्रसिद्धाः। अनुस्वार-विसर्ग-जिह्वामूलीय-उपध्मानी-याश्चत्वारः। महाभाष्येऽयोगवाहपदेनाप्येते कीर्तिताः सन्ति। दुःस्पृष्टनामक एको

वर्णौ वेद एव प्रसिद्धः। डकारस्थानीयो ळकारः। एतेषां संकलने त्रिषष्टिर्वर्णा भवन्ति। प्लुतऌकारस्यापि योगे चतुःषष्टिः।

याज्ञवल्क्यशिक्षायामष्टषष्टिर्वर्णा निर्दिष्टाः सन्ति। तत्र दीर्घऌकारस्यापि संग्रहोऽस्ति। एवं च त्रयोविंशतिः स्वराः, स्पर्शान्तःस्थोष्माणस्त्रयस्त्रिंशत्, जिह्वामूलीयोपध्मानीयविसर्ग-नासिक्यानुनासिक्यरङ्गा इति षट्। ह्रस्वो दीर्घश्च द्वावनुस्वारौ, यमाश्चत्वार इति संकलनयाऽष्टषष्टिः। रङ्गादिवर्णानां लक्षणोदाहरणे च ग्रन्थे द्रष्टव्ये।

वर्णानां स्वरूपसंख्यादिविषये योऽयं विरोधोऽवलोक्यते, तत्रेदं रहस्यं ज्ञातव्यं यत् स्थानादिभेदेन स्थानादीनामन्यान्यरूपेण साङ्कर्येण, देश-कालादिभेदेन च विद्यमाना अनन्ता वर्णाः, तान् कश्चिदपि सामस्त्येन निर्णेतुं न क्षमते। इमे शिक्षाग्रन्था अपि भाषाविशेषं शाखाविशेषं चाधिकृत्य प्रवृत्ताः सन्ति।

अत्रेदमपि विचारणीयं यद् ये वर्णाः शिक्षाग्रन्थेषु निर्दिष्टाः, तेषामेवोच्चारणे साधुत्वम्, तत्प्रयुक्ता पुण्यावाप्तिश्च। उक्तञ्च महाभाष्ये—'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'। अत्र सम्यक्त्वेन साधुत्वेन च ज्ञातः, व्याकरणशास्त्रेण। सुप्रयुक्तः = शिक्षोक्तविधिनोच्चारितः इति बोध्यम्। एवं चासाधुशब्देभ्योऽर्थबोधो भवति, तर्हि भवतु नाम, न वार्यतेऽर्थबोधः; किन्तु पुण्यावाप्तिर्न भवतीति विशेषः। तदुक्तं भूषणसारकृता—

**भेद्यभेदकसम्बन्धोपाधिभेदनिबन्धनम्।**
**साधुत्वं तदभावेऽपि बोधो नेह निवार्यते॥इति॥**

क्वचन शिक्षायामनुस्वारस्य गुँकाररूपेणोच्चारणम्, षकारस्य खकारात्मना, ऋकारस्य रेकारात्मनोच्चारणम्। कस्मिन् वर्णे कुत्र ह्रस्वः, क्व च दीर्घः, क्व च द्विर्वचनम्? विसर्गोच्चारणेऽङ्गुलिसंकेतः कीदृशो भवतु? एतत्सर्वमत्र ग्रन्थे यदुक्तम्, तत् संक्षिप्याचार्यत्रिपाठिना शिक्षासंग्रहप्रस्तावनायाम्, भूमिकायाञ्च सम्यक् प्रत्यपादि। गहनस्थलेषु सरलीकरणाय टिप्पण्यः संयोजिताः। दुरूहो दुर्लभश्चायं 'शिक्षासंग्रहः' श्रीमता त्रिपाठिमहानुभावेन महान्तमनुग्रहं कृत्वा महता परिश्रमेण पाण्डुलिप्यादिपरिष्कारेण सम्पादितः तदर्थं ते धन्यवादभाजः।

भगवन्तौ भवानीविश्वनाथौ आचार्यप्रवराय चिरायुष्यमेतादृशकार्यसम्पादने सामर्थ्यं च सम्प्रदद्यातामिति प्रार्थयमानो विरमामि।

काश्याम्,
गान्धीजयन्त्याम्,
२०४६ तमे वैक्रमाब्दे
(२-१०-१९८९ दिनाङ्क)

**डॉ० राजदेवमिश्रः**
कुलपतिः,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य,
वाराणसी

# अनुक्रमणिका


| क्रमसंख्या | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| १. शिक्षासंग्रह-प्रस्तावना | क—ज |
| २. भूमिका | झ—श |
| ३. याज्ञवल्क्य शिक्षा | १—३० |
| ४. वाशिष्ठी शिक्षा | ३१—३९ |
| ५. कात्यायनी शिक्षा | ४०—४५ |
| ६. पाराशरी शिक्षा | ४६—६१ |
| ७. माण्डव्यमहर्षिप्रणीता शिक्षा | ६२—७३ |
| ८. अमोघानन्दिनी शिक्षा | ७४—८५ |
| ९. लघ्वमोघानन्दिनी शिक्षा | ८६—८७ |
| १०. माध्यन्दिनीय शिक्षा | ८८—९२ |
| ११. लघुमाध्यन्दिनीय-शिक्षा | ९३—९५ |
| १२. वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा | ९६—११५ |
| १३. केशवी शिक्षा | ११६—१२१ |
| १४. पद्यात्मिका केशवी शिक्षा | १२२—१२४ |
| १५. मल्लशर्मकृता शिक्षा | १२५—१३२ |
| १६. स्वराङ्कुश-शिक्षा | १३३—१३५ |
| १७. षोडशश्लोकी शिक्षा | १३६—१३७ |
| १८. अवसाननिर्णय-शिक्षा | १३८—१४२ |
| १९. स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्ट-शिक्षा | १४३—१४६ |
| २०. क्रमसन्धान-शिक्षा | १४७—१५० |
| २१. गलदृक्-शिक्षा | १५१—१५३ |
| २२. मनःस्वार-शिक्षा | १५४—१७५ |
| २३. प्रातिशाख्यप्रदीप-शिक्षा | १७६—१९८ |

| क्रमसंख्या | पृष्ठाङ्का |
|---|---|
| २४. विसर्गाङ्कुलिप्रदर्शनप्रकारः | १९९—२८५ |
| २५. यजुर्विधान-शिक्षा | २८६—३०१ |
| २६. स्वराष्टक-शिक्षा | ३०२—३०७ |
| २७. क्रमकारिका शिक्षा | ३०८—३१६ |
| २८. पाणिनीय-शिक्षा | ३१७—३२२ |
| २९. शिक्षाप्रकाशः | ३२३—३२९ |
| ३०. नारदी शिक्षा | ३३०—३७१ |
| ३१. सामवेदीया गौतमी शिक्षा | ३७२—३७४ |
| ३२. सामवेदीया लोमशी शिक्षा | ३७५—३८१ |
| ३३. अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा | ३८२—३९६ |
| ३४. अथर्वपरिशिष्टम् | ३९७—३९८ |


—: ० :—

## शिक्षासंग्रहप्रस्तावनायामशुद्धशोधनपत्रम्

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|---|
| १—क | ४ | व्यवहृयते | व्यवह्रियते |
| ,, ,, | ४ | रूढ्र्यर्थस्य | रूढ्यर्थस्य |
| ,, ,, | ८ | वेदागेषु | वेदाङ्गेषु |
| ,, ,, | ८ | शिक्षा ग्रन्थानाम् | शिक्षाग्रन्थानाम् |
| ,, ,, | १८ | मादित्वे | मनादित्वे |
| ,, ,, | १९ | अन्येषामु | अन्येषाम् |
| ,, ,, | २३ | आरम्भ काल | आरम्भकाल |
| २—ख | ६ | अन्येषां | अन्येषाम् |
| ,, ,, | ११ | वर्णं समूहं | वर्णसमूहं |
| ,, ,, | १२ | विशिष्टा अनु | विशिष्टा अनु······ |
| ,, ,, | १४ | निर्दिष्टा | निर्दिष्टा, |
| ,, ,, | १७ | द्वाविंशति | द्वाविंशतिः |
| ,, ,, | १८ | निषेधात् | निषेधात्, |
| ,, ,, | २३ | अनुनासिक्य | आनुनासिक्य |
| ,, ,, | २४ | विवेचितम | विवेचितः |
| ३—ग | ४ | मित्यम् | मित्थम् |
| ,, ,, | २५ | केचद् | केचिद् |
| ६—च | १ | क्षरणम | सरणम् |
| ,, ,, | ५ | मकरोत्पत्तिः | मकारोत्पत्तिः |
| ,, ,, | ९ | मेघ | मेव |
| ,, ,, | ११ | स्वराङ्कुश शिक्षा | स्वराङ्कुशशिक्षा |
| ,, ,, | १९ | एतनुसारम | एतदनुसारम् |
| ,, ,, | २१ | छदोबद्धे | छन्दोबद्धे |
| ,, ,, | २१ | अर्धर्धादौ | अर्धर्चादौ |
| ७—छ | १ | अथ श्लोकः | अयं श्लोकः |
| ,, ,, | ४ | एतनुसारम | एतदनुसारम् |
| ,, ,, | १० | दशाधिक शत | दशाधिकं शतं |
| ,, ,, | १४ | ऋचा | ऋचां |
| ,, ,, | १५ | परिगणन | परिगणनम् |

| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|---|
| ७ छ | १५ | अत्रमर्थो | अयमर्थो |
| ,, ,, | १५ | वार वार | वारं वारं |
| ,, ,, | १६ | एवं विधाश्च | एवंविधाश्च |
| ,, ,, | १७ | केवल तस्या | केवलं तस्यां |
| ,, ,, | १७ | ऋचा | ऋचायां |
| ,, ,, | १८ | प्रारम्यते | प्रारभ्यते |
| ,, ,, | १८ | सहितायाम् | संहितायाम् |
| ,, ,, | १९ | वर्वने संक्रमः | वर्तने संक्रमः |
| ,, ,, | २४ | गलिता, | गलिताः, |
| ८—ज | १ | स्वारः रंप्रवक्ष्यामि | स्वारं प्रवक्ष्यामि |
| ,, ,, | १ | पुरः | पुरा |
| ,, ,, | २ | भगवद् यज्ञ | भगवद्याज्ञ |
| ,, ,, | ३ | यसु | यासु |
| ,, ,, | ३ | कित्ययो अन्तो | कियत्योऽन्तो |
| ,, ,, | ३ | कित्यमध्योदात्ताः | कियत्यो मध्योदात्ताः |
| ,, ,, | ३ | कियन्यो काश्च | कियत्यो याश्च |
| ,, ,, | ५ | कियत्यो कीदृशः | कियत्यः कीदृशः |
| ९ झ | ६ | घोषयता | घोषयतां |
| ,, ,, | ७ | वृष्ट | दृष्ट |
| ,, ,, | १० | आयति | आयाति |

# शिक्षासंग्रहप्रस्तावना

"शिक्षयति या सा शिक्षा" "शक्तुं शक्तो भवितुमिच्छा शिक्षा" इति द्वे व्युत्पत्ती शिक्षा शब्दस्य प्रदर्शिते। शब्दोऽयं योगरूढः। शिक्षयति या सा शिक्षा इति योगशक्तेरेव आश्रयणे यस्य कस्यापि विषयस्य शिक्षको ग्रन्थः शिक्षा शब्देन व्यवह्रियते। अत्र तु योगार्थापेक्षया रूढ्यर्थस्य बलवत्तया रूढिशक्त्या यादृशानां ग्रन्थानां शिक्षात्वं बोध्यते त एव मुख्यतया शिक्षाग्रन्थत्वेन संग्रहीतव्याः।

## शिक्षाणां वेदाङ्गत्वम्

वैदिकवाङ्मयोपकारका एव शिक्षाग्रन्थाः अत्र शिक्षासंग्रहे उपनिबद्धाः। अत एवैतेषां षट्सु वेदांगेषु अङ्गत्वेन गणना वरीवर्ति। एतेषां शिक्षा ग्रन्थानां वैदिकवाङ्मयोपकारायातिशयेन योगोऽस्ति। सहस्रेभ्योऽपि वर्षेभ्यः पूर्वं यत्र यत्र वैदिकपरम्परासु येन प्रकारेण वेदानां पाठः क्रियते स्म, अद्यत्वेऽपि तत्र तत्र परम्परासु तादृशमेव वेदमन्त्राणां उच्चारणम्भवति। स एषां ग्रन्थानामेव प्रभावः।

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।

इत्यादिना ये स्वरदोषा वर्णदोषाश्च निषिद्धाः, तेभ्यः स्वरवर्णदोषेभ्यः वैदिकवाङ्मयं शिक्षाशास्त्राण्येव त्रायन्ते। यतोऽयं वर्णः स्वरो वा अनेन प्रकारेण उच्चारयितव्य इति इमान्येव शिक्षाशास्त्राणि बोधयन्ति।

## शिक्षाणां प्राचीनता

आर्षसिद्धान्तानुसारं वेदानामादित्वे तदङ्गभूतानां शिक्षादीनामपि प्राचीनतमत्वं सुनिश्चितमेव। यद्यपि उपलभ्यमानानां शिक्षाणाम् व्याकरणानाम्, अन्येषामु केषाञ्चिद्वेदाङ्गानां निर्माणकालस्य पूर्वावधिः प्रमाणैर्निश्चेतुं शक्यः निर्णीतश्च इतिहासविशेषज्ञैः, तथापि नैतावता शिक्षादिशास्त्राणां प्राचीनतमत्वं व्याहन्यते। न हि उपलभ्यमानानां शिक्षाव्याकरणादीनां निर्माणकालस्य यः पूर्वावधिः स एव शिक्षादिशास्त्राणामारम्भ काल इति वक्तुं शक्यम्। उपलभ्यते च उपलभ्यमानशिक्षादितोऽपि प्राग्वर्तिनि साहित्ये बहुत्र शिक्षाशास्त्राणामुल्लेखः तस्मादिदमत्र मन्तव्यम्, यत् शिक्षाव्याकरणादीनां प्रवृत्तिः अति प्राचीना एव।

## प्रातिशाख्यानां शिक्षास्वरूपता

वेदानां स्वरूपरक्षायां शिक्षाव्याकरणदीनां यावन्महत्त्वमस्ति, न ततः ईषदपि अल्पं प्रातिशाख्यानां महत्त्वम्, प्रत्युत अस्मिन्नंशे प्रातिशाख्यानि शिक्षाव्याकरणादिभ्यो विशेष्यन्ते एव, यद् व्याकरणादीनि प्रायो वेदसामान्यविषयकाणि, प्रातिशाख्यानि तु शाखाविशेषमवलम्ब्यैव प्रवृत्तानि। तत्तत्प्रातिशाख्येषु तत्तच्छाखीयानां स्वरविषयकाणां, सन्धिविषयकाणां अन्येषाञ्च उच्चारणविषयकाणां सर्वेषामेव नियमानां यथा निबन्धनम्, न तथा विशेषरूपेण व्याकरणादिषु इति व्याकरणादितोऽपि वेदानामत्यन्तमन्तरङ्गाणि प्रातिशाख्यानि। एवं स्थिते वेदोपकारित्वरूपं वेदाङ्गत्वं प्रातिशाख्यानामपि अवश्यम् एषितव्यम्।

## याज्ञवल्क्यशिक्षा

अस्यां शिक्षायां वर्णसमूहं चतुर्धा विभज्य स्वराः, स्पर्शाः, अन्तःस्थाः, ऊष्माणः इत्येवं रीत्या वर्णाः प्रतिपादिताः। अतोऽविशिष्टाअनुस्वारजिह्वामूलीयोपध्मानीयनासिक्यानुनासिक्यरङ्गाः यमाश्च अत्र उक्ताः। यद्यप्यत्र एषां वर्णानां सङ्कलिता संख्या न निर्दिष्टा. नापि क. ख. इत्येवंरीत्या विशिष्य वर्णाः प्रतिपादिताः, तथापि एतद्ग्रन्थानुशीलनायाम् अप्रतिषिद्धं परमतम् अनुमतं भवति इति न्यायं पुरोधाय अष्टषष्टिर्वर्णाः शिक्षाकाराभिमता इति निष्कर्षः आसादितोऽस्माभिः।

त्रयोविंशतिः स्वराः। द्वाविंशति स्वरास्तु पाणिनिशिक्षायाम्। अत्र विशिष्यवाजसनेयशाखायां दीर्घऌकारस्य निषेधात् अन्यत्र तस्य सूचनात्, तेन सह त्रयोविंशतिस्तु संख्या स्वराणाम्। अपि च वर्णस्थाननिरूपणावसरे स्फुटमेवात्र दीर्घऌकारो निर्दिष्टः। त्रयस्त्रिंशत् स्पर्शान्तःस्थोष्माणः, विसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीयनासिक्यानुनासिक्यरङ्गाः इति षट्। चत्वारो यमाः, ह्रस्वः, दीर्घश्चेति द्वावनुस्वारौ एते संकलिताः अष्टषष्टिः भवन्ति। इदमत्र अवधेयम्, यदिह नासिक्यानुनासिक्यरङ्गाः इति अनुनासिक्यवर्णः गणितः, परं तस्य स्वरूपं न विवेचितं कोऽयं वर्ण इति। यद्यपि नासिक्योऽपि नात्र स्फुटं विवेचितम्, तथापि वाजसनेयप्रातिशाख्ये तत्रत्योब्बटभाष्ये च लक्ष्यतेऽस्य संकेतः।

## वासिष्ठी शिक्षा

अस्यां शिक्षायां शुक्लयजुर्वेदसंहितायां प्रत्यध्यायं कति यजूंषि कति च ऋचः इत्येव संख्यातम्। यजुः शब्देन गद्यात्मको मन्त्रः, ऋक्शब्देन छन्दोबद्धो मन्त्रः

उच्यते। एतत्संख्यानस्य अयमेवोपयोगो भवितुमर्हति, यत् यथा काव्येषु पुराणेषु च बहवः श्लोकाः प्रक्षिप्ताः भवन्ति, येन काव्यादीनां मूलं स्वरूपं विदारितमेव भवति। अयमेव प्रक्षेपजनितविक्षेपो वेदे मा भवतु, अतः ऋचां यजुषां च परिगणनमेव कृतम्। इयन्त्येव यजूंषि, इयत्यएव च ऋचः इति, तच्च संख्यानमित्यम्–

| अध्यायः | ऋक् | यजुः | अध्यायः | ऋक् | यजुः |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | १ | ११७ | १३ | ५२ | ८३ |
| २ | १२ | ७६ | १४ | १७ | १५४ |
| ३ | ६२ वा ६३ वा | ३६ | १५ | ४६ | ९० |
| ४ | २० वा २१ | ६४ | १६ | ३३ | १२९ |
| ५ | १७ | १९५ | १७ | ९५ | ११ |
| ६ | १७ | ८३ | १८ | ३६ | ३६८ |
| ७ | ३० | १११ | १९ | ९४ | ३० |
| ८ | ४३ | १०४ | २० | ८४ | १४ |
| ९ | २२ | ८४ | २१ | २८ | ३३ |
| १० | १२ | १०२ | २२ | १३ | ११३ |
| ११ | ६७ | २६ | २३ | ५८ | २४ |
| १२ | ११४ | १२ | २४ | २५ | १५ |
| २५ | ४२ | ० | ३१ | २१ | ० |
| २७ | ४४ | १ | ३३ | ११० | ० |
| २८ | ० | ४६ | ३४ | ६२ | ० |
| २९ | ५७ | ३२ | ३५ | २१ | ६ |
| ३० | ३ | १७ | ३६ | २० | २१ वा २ |
| ३७ | ५ | ३१ | ३८ | १३ वा १४ | ५२ |
| ३९ | २ | १०७ | ४० | १७ | ७ |
| | | | सम्पूर्णयोगः। | १४६७ | २८२३ |

## माण्डवीशिक्षा

अस्यां शिक्षायां यजुःसंहितायां प्रत्यध्यायं कानि-कानि बकारघटितानि पदानि, तानि च अध्याये कतिवारं प्रयुक्तानि इति प्रतिपादितम्। यदिदंवकारबका-

रयोः सांकर्यं भाषायां बहुशो दृश्यते। बहवो जनाः वकारे उच्चारणीये बकारमेवोच्चारयन्ति। आलङ्कारिका अपि यमकादौ धनयोः ऐक्यम् उद्घोषयन्ति। तदिदं सांकर्यं वेदे मा भवतु, इत्येवमर्थम् एतत् परिगणनम्। अयम्भावः भाषायां बहुषु शब्देषु अनयोः साङ्कर्यं दृश्यते, परन्तु तत्र शब्दस्वरूपज्ञैः निर्णयः कर्तुं शक्यते, ये केचन ईदृशाः शब्दाः ये वकारघटिता अपि सन्ति, यथा वाह्लीकशब्दः बाह्लीकशब्दश्च ईदृशस्थले वकारस्थाने बकारोच्चारणे यद्यपि अत्र वकारो बकारो वेति सन्देहो भवति, तथापि सन्देहमात्रमेतत् तत्रापि प्रकरणादिपर्यालोचनया निर्णयः कर्तुं शक्यते एव, परन्तु वेदे नैतादृशी स्थितिः। वेदे हि कुत्रचिद् व्यत्ययेन अन्यवर्णस्थाने अन्यवर्णोऽपि साधुर्भवति यथा तमसो गा अदुक्षत् इत्त्र धकारस्थाने दकार एव साधुः, अतः अत्र यदि केनचिद् वकारस्थाने अशक्त्यैव वकारः उच्चरितः, तथापि तस्य असाधुत्वं निश्चेतुं न शक्यते। यथा भाषायां निश्चीयते। सम्भाव्यत एतत् यद् अदुक्षत् इत्यादिवत्व तत्रापि स्याद् वर्णव्यत्ययः, अतस्तन्निर्णयार्थम् इमे एव च इयन्त एव च वकारघटिताः शब्दाः, अतोऽयत्र शब्दे यदि वकारोच्चारणं कैश्चित् क्रियेत, तत्तु असाध्वेव—इत्येव शिक्षायास्तात्पर्यम्।

अथ एतदनुसारमेव प्रत्यध्यायं बकारघटितशब्दानां संख्यामात्रं निर्दिश्यते।

| अध्यायः | बकारघटितपदानि | अध्यायः | बकारघटितपदानि | अध्यायः | बकारघटितपदानि |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | ८ | १५ | ३ | २९ | १८ |
| २ | ९ | १६ | १५ | ३० | १० |
| ३ | २ | १७ | ११ | ३१ | ६ |
| ४ | १२ | १८ | ९ | ३२ | ४ |
| ५ | ७ | १९ | १५ | ३३ | २३ |
| ६ | ८ | २० | १० | ३४ | ११ |
| ७ | ९ | २१ | ११ | ३५ | ३ |
| ८ | ७ | २२ | ११ | ३६ | ३ |
| ९ | ७ | २३ | १० | ३७ | ५ |
| १० | १२ | २४ | ११ | ३८ | ९ |
| ११ | १३ | २५ | १४ | ३९ | ३ |
| १२ | १९ | २६ | ६ | ४० | १ |
| १३ | ७ | २७ | ५ | | |
| १४ | ११ | २८ | ७ | | |

एवंविध एव अथर्ववेदीयदन्त्योष्ठ्यविधिरिति नाम्ना प्रसिद्ध एको ग्रन्थो-वर्त्तते, यत्र अथर्ववेदसंहितायाम् आगतानां वकारघटितानां, बकारघटितानां पदानां परिगणनं कृतमस्ति ।

## अमोघनन्दिनो शिक्षा

अस्यां शिक्षायां च ओष्ठ्या दन्त्या लघुश्चैव पुनरेव लघुतटः ।
नादनासिक्यसहितानां लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥

इति प्रतिज्ञानुसारं संहितायाम् ओष्ठ्यादीनां परिगणनं प्रथमं कृतम् । तत्र पञ्चविंशतिकारिकापर्यन्तं वकारघटिताः वकारघटिताश्च शब्दाः परिगणिताः, तत्र लघुलघुतरादीनां विवेचनं वर्त्तते ।

## लघुमाध्यन्दिनीयशिक्षा

अस्यां शिक्षायां वैदिकसन्धिविचारो विसर्गोच्चारणविधिः उदात्तादीना-मङ्गुल्या निर्देशप्रकारश्चेति विषयत्रयम् प्राधान्ये निरूपितम् ।

## वर्णरत्नप्रदीपिका

अत्र पाणिनीयशिक्षावदेव त्रिषष्टिवर्णाः प्रतिपादिताः । एतावान् विशेषो-यत् पाणिनीयशिक्षायां प्लुतऌकारमङ्गीकृत्य चतुःषष्टिवर्णाः इत्यपि पक्षः उपस्था पितः । इह प्लुतऌकारो न निर्दिष्टः

## केशवी शिक्षा—तत्कृता पद्यात्मिका शिक्षा च

अत्र शिक्षायां केवलं वेदमात्रविषयकः सन्धिविचारः आदितः अन्तं यावत् कृतः । एतत्कृता एव पद्यात्मिका अपि शिक्षा वर्त्तते, तस्यां यत्रोक्त एव विषयः कारिकासु निबद्धः ।

## मल्लशर्मकृताशिक्षा

अत्र वेदे वाजसनेयके त्वधिकृता विप्राश्च ये सत्तमास्तेषामेव कृते कृता, न कुधियां कृते हस्तस्वरप्रक्रिया इति प्रतिज्ञानुसारं हस्तस्वरप्रक्रिया प्राधान्येन प्रदर्शिता ।

अन्येऽपि केचद् विषयाः प्रतिपादिताः । त एव संक्षेपेण अत्र निर्दिश्यन्ते (१) साधारण नियमः (२) हस्तस्वरगतिप्रमाणम् (३) विसर्गोच्चारणप्रमाणम्

(४) अङ्गुलिनिःक्षरणम् (५) ठ̐ (गूँ)कार संज्ञा (६) क्षिप्रविचारः (७) रेखाभिः उदात्तानुदात्तादिसंज्ञा (८) तकारादिमात्रेषु तर्जन्यङ्गुष्ठयोगादिमुष्टयन्ताः क्रियाः (९) विचित्रगतिः (१०) रेफविशेषोक्तिः (११) ब्राह्मणस्वरसंक्षेपः (१२) रङ्गमहारङ्गातिरङ्गस्वराः (१३) रङ्गादीनामुच्चारणे प्रमाणम् (१४) द्विस्वरक्रमः (१५) ओष्ठ्यमकरोत्पत्तिः (१६) ठकारस्थानानि । इति ।

## स्वराङ्कुशशिक्षा

'सरस्वतीं कविवरान् वक्ष्येऽहं स्वरनिर्णयम्' इति अस्याः आदितः प्रतिज्ञावाक्यं वर्त्तते एतदनुसारम् अस्यां शिक्षायां प्रारम्भतः समाप्तिपर्यन्तम् उदात्तादिस्वराणामेघ विवेचनं कृतमस्ति । जात्यादयः स्वरितभेदा अपि तत्र निरूपिताः । अस्याः शिक्षायाः रचयिता जयन्तस्वामी वर्त्तते । अन्ते लिखितमपि "इति श्रीजयन्तस्वामिप्रोक्ता स्वराङ्कुश शिक्षा समाप्ता इति" ।

## षट्श्लोकी शिक्षा

एतच्छिक्षायां त्रिषष्टिवर्णाः परिगणिताः । ते च द्वाविंशतिः स्वराः, त्रयस्त्रिंशद् व्यञ्जनानि, चत्वारो यमाः, अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीयाश्च । द्वाविंशतिस्वरसंख्याप्रतिपादनेन न दीर्घऌकारः एतच्छिक्षाकर्तुरभिमत इति प्रतिभाति ।

## अवसाननिर्णयशिक्षा

अवसानं तु पश्यामि यथावदनुपूर्वशः इति प्रतिज्ञावाक्यभूतः अस्याः शिक्षाया द्वितीयः श्लोकः, प्रथमश्लोके मङ्गलाचरणम् । एतनुसारम् इह यजुःस्वरूपेषु मन्त्रेषु कुत्र कुत्र कति वा विरामाः कर्त्तव्याः इति निर्णीतम् । इदं तात्पर्यं यत् छदोवद्धे ऋगात्मके मन्त्रे तु अर्धर्यादौ विरामः निश्चित एव, परन्तु गद्यात्मकाः यजुः स्वरूपा ये मन्त्राः तेषाम् उच्चारणे कुत्र कुत्र कति वा यतयः अर्थात् विरामाः कर्त्तव्या, इति अत्र विवेचितम् । अवसानशब्दस्य च विराम एव अर्थः । सर्वेषां विरामाणां सङ्कलिता संख्या अपि अत्र निर्दिष्टा । तद्यथा—सर्वाण्यवसानानि एकीकृत्यैकोनविंशतिः शतानि पञ्चसप्ततिः संख्या, कण्डिकायाश्चत्वारिंशत्तमेऽध्याये अस्याः शिक्षायाः कर्त्ता रचनाकालश्च अत्रैव उपसंहारे लिखितः । तद्यथा—"इत्यनन्तदेवविरचिताऽवसाननिर्णयशिक्षा समाप्ता । रसवेदांकेन्दुमिते १९४६ फाल्गुने शुक्लपक्षे पूर्णिमायां गुरोर्वासरेऽवसानान्यङ्कितानि वै" ।

## क्रमसन्धानशिक्षा

अस्याः शिक्षाया आदिमः प्रतिज्ञावाक्यभूतः अयं श्लोकः—

यथा समाम्नातङ्क्रमावसानं सङ्क्रमेषु ।
क्रमशास्त्रानुसारेण सन्धानं प्रोच्यतेऽधुना ॥

एतनुसारमेव अस्यां शिक्षायां संहितापाठे मन्त्रेषु यत्र यत्र अवसानं भवति, तत्र तत्र क्रमेऽपि अवसानं कार्यम् इति सामान्यतो नियमः, परन्तु केषुचित् स्थलेषु संहितापाठेऽवसानेऽपि क्रमपाठे परपदेन सन्धानं भवति। यथा संहितापाठे अर्धर्चे-ऽवसानं भवति। नहि तत्र ऋचः उत्तरार्धस्य आद्यपदेन पूर्वार्धान्त्यपदस्य योगो-भवति, एवं क्रमेऽपि। केषुचित्स्थलेषु तु क्रमपाठे ऋचः पूर्वार्धाऽन्त्यपदस्य उत्तराधा-दिपदेन योगो भवति। तान्येव स्थलानि अस्यां शिक्षायां परिगणितानि। ईदृशानि च स्थलानि पञ्चदशाधिकं शतं वर्त्तन्ते। एतदपि अत्रैव शिक्षायां उपसंहारे उक्तम्। तद्यथा— "इति पञ्चदशाधिकैकशतं क्रमसन्धानानि। एभ्योऽन्यत्र संहितानुसारेण निर्णयः" ॥

## गलदृक्शिक्षा

अथ अस्याः शिक्षाया यथा नाम अत्र संहितायां गलितान्तम् ऋचां परि-गणनं कृतमस्ति। अवमर्थो बहवः ईदृश्य ऋचो वर्त्तन्त, या वारं वारं संहितायां दृष्टाः। एवं विधाश्च ऋचः प्रथमवारं पूर्णतया पठ्यन्ते। द्वितीयादिवारन्तु केवलं तस्या ऋचा प्रतीकमात्रम् अर्थात् आदिभूतान् द्वित्रान् शब्दान् पठित्वा अग्रिममन्त्रः प्रारम्यते। अयमेव प्रकारो वाजसनेयप्रातिशाख्ये 'संहितायाम् इति सूत्रेण विहितः। अत्र सत्रे 'त्रिपदाद्यावर्त्तनेसंक्रमः, इति सूत्रात् सङ्क्रम इति अनुवर्त्तते संक्रमपदार्थश्च अतिक्रम इति तत्रैव उब्बटः। एवञ्च आर्षसंहितायां पुनरुक्तानाम् ऋचाम् अतिक्रमणम्, अर्थात् ताः अतिक्रम्य अग्रे पाठः इति सूत्रार्थः।

अत्र शिक्षायां च एतदेव परिगणितं यद् यजुर्वेदसंहितायां प्रत्यध्यायं कियत्यः काश्च ऋचो गलिता, अर्थात् अतिक्रमविषयभूता, केषु केषु च अध्यायेषु गलिताया-ऋचोऽभाव इति विवेचितम्।

## मनःस्वारशिक्षा

मनः स्वारः रंप्रवक्ष्यामि व्रह्मणा निर्मितं पुरः ।
भगवद् याज्ञवल्क्येन भाषितं लोकहेतवे ।।

इत्येष अस्या आदिमः श्लोकः । अस्यां हि यजुर्वेदसंहितायां याः त्रिषदा ऋचो वासु कित्ययो अन्तोदात्ताः, कित्यमध्योद्यात्ताः, कियत्यो काश्च आद्युदात्ताः एवं कियत्यो नकारान्ताः, तकारान्ता वा, नकारमध्यकारमध्या वा एवं याश्चतुष्पदा ऋचो, यानि वा यजूंषि तत्रापि कियत्यो कीदृशः कुत्र वा कति अवसानानि अर्थात् विरामा इत्यादिकमेव विवेचितम् ।

अस्याश्च शिक्षायाः अन्ते महर्षियाज्ञवल्क्यकृता मनःस्वारशिक्षा समाप्ता इति विलिखितमस्ति ।

# श्रीहरिः शरणम्

"शिक्षासंग्रहविषये किञ्चिन्निवेदनम्"

भारतीयसाहित्ये वेदानां प्राचीनतमत्वं सर्वसम्मतमस्ति। वैदिकविचारधारानुसारं वेदा अपौरुषेयाः समस्तभाषाणां व्यवहाराणां च स्रोतांसि सन्ति। परन्तु अस्मिन् विषये सर्वेषां दार्शनिकानां मतैक्यं नास्ति। मीमांसादर्शनम् वेदानामनादित्वमकर्तृत्वं स्वतः प्रमाणत्वमङ्गी करोति।

"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" अमुं सिद्धान्तमुद्घोषयतां नैयायिकानां मते वेदानामीश्वरप्रणीतत्वं स्वीक्रियते। महर्षिपाणिनिना कृत-प्रोक्त-दृष्ट-आम्नातभेदैः वर्णानां चतुर्विधत्वं प्रतिपादयता वैदिकं वाङ्मयं दृष्टवर्णेषु परिगणितम्, तथा चोक्तम्—'दृष्टं साम', इति।

वस्तुतो विचारे कृते सति इदमायाति यद् धार्मिक-सामाजिक-सांस्कृतिकधाराणामुद्गमस्थानं वेदा एव। उक्तं च—'यतः सर्वाः प्रवृत्तयः, इति।
ऐश्वरवादेऽपि ज्ञानविषये शाब्दिकसिद्धान्तस्य पृष्ठभूमौ वेदानामनादिता सुस्थिरी कर्तुं शक्यते।

अखिलस्य जगतः कर्ता व्यापकशक्तिरूप ईश्वरो वर्तते इति ईश्वरवादिनः समर्थयन्ते। कस्यापि कार्यस्य करणे तत्कार्यस्य सामग्रीज्ञानम्, तत्कार्यस्य निष्पादनेच्छा, तत्कार्यविषयकप्रयत्नश्चैते त्रयो गुणाः तत्कार्यकर्तुः कृते आवश्यकाः सन्ति। अत एव सकलकार्यकारणभूत ईश्वरः सर्वज्ञत्वेन स्वीकृतोऽस्ति। अतश्च ज्ञानम्, इच्छा कृतिश्चैते त्रयो गुणास्तत्र नित्यत्वेनाभ्युगताः। तथा च श्रुतिः-'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्। अतीतानागतवर्तमानकार्याणां निर्मातुरीश्वरस्य तेषां कार्याणां प्रत्यक्षात्मकं ज्ञानमपेक्षितमस्ति। एवं सति सर्वकर्तृतापक्षे ईश्वरस्य सर्वज्ञताऽपिस्पष्टाऽऽस्ति।

शाब्दिकसिद्धान्तानुसारं सर्वं ज्ञानं शब्दानुविद्धमेव भवति, ज्ञानाकारः सर्वदा शब्दाकारेण प्रतिबद्धोऽस्ति। उक्तं च—"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते" इति। फलतः ज्ञानमात्रे शब्दस्य भानमनिवार्यमस्ति। अत एव शब्दाकारेणैवान्तःस्थस्य ज्ञानस्य प्रकाशो भवति। ईश्वरीयज्ञानमपि एतत्सिद्धान्तमनुसरत्येव, तथा चोक्तम्—"स भूरिति व्याहरत् भूमिमसृजत्" इति।

एवं च 'भूमिनिर्माणात् पूर्वं भूमिविषयकं ज्ञानं भूमिशब्दश्चापेक्षितमस्ति, इति सुस्पष्टं प्रतिभाति।

अतश्च—'सकलकार्यकारणभूतस्येश्वरस्य यज्ज्ञानं, तदभिलापका वेदा एव सन्ति, अयं निष्कर्षः समागतः । उक्तं च—'सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे । इति । एतावता ईश्वरीयज्ञानेन सह वेदानामपि अनादित्वं सुस्पष्टमेव । अनेकशाखासु विभक्तानां वेदानां मुख्याश्चतस्रः शाखाः सन्ति । तथा चोक्तं महाभाष्ये—सहस्रवर्त्मा सामवेदः, एकशतमध्वर्युशाखाः, द्वाविंशतिधा बाह्वृच्यम्, नवधाऽऽथर्वणो वेदः इति ।

ईदृशस्य महतो निधेः परम्परागतसर्वाङ्गीणसुरक्षादृष्टया शिक्षा, व्याकरणमित्यादीनि अङ्गानि, मीमांसा-तर्कप्रभृतीनि उपाङ्गानि विरचितानि । उक्तेषु अङ्गेषु प्रथमस्य प्रधानस्य च शिक्षात्मकाङ्गस्य प्रतिपाद्यो विषय उच्चारणविधिरस्ति । पुनर्व्यक्तीं करिष्यामि वाच उच्चारणो विधिम् । एतत् शिक्षाशास्त्रम्-स्वर-काल-स्थान-करण-अनुप्रदान-सन्धिप्रभृत्युच्चारणविधिपरिज्ञानायावश्यकसामग्रीं प्रस्तौति ।

तत्तत्परिपाटीमनुरुध्य तत्तच्छाखानुसारमुच्चारणविधिपरिज्ञानायानेकैराचार्यैरनेके शिक्षाग्रन्था रचिताः । यद्यपि समेषां शिक्षाग्रन्थानां प्रतिपाद्य उच्चारणविधिरेवास्ति, तथापि एषु वर्णानां संख्या,-स्थान-करणादिविषये बहुतरं वैषम्यमपि उपलभ्यते । आसु शिक्षासु पाणिनीयशिक्षा यादृशीं प्रसिद्धिं प्राप्ता, तादृशीं प्रसिद्धिमन्या शिक्षा नाप्तवती ।

अस्तु—उच्चारणविषयका नियमाः प्रदर्श्यन्ते—

तत्रोच्चारणविधिर्द्विविधः, सामान्यतो विशेषतश्च । यो विधिर्वर्णसामान्यं विषयीकरोति स सामान्यतः, यथा—व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान्, इत्यादिः । यश्च वर्णविशेषं विषयीकरोति, स विशेषतः, यथा—अलाबुवीणानिर्घोषः, इत्यादिः ।

तत्र पाणिनीयशिक्षायां वर्णसामान्योच्चारणविधिः, अनुस्वारोच्चारणविधिः, रङ्गवर्णोच्चारणविधिः, उच्चारणे प्रातःसवनादिव्यवस्था च, इत्येतत् प्राधान्येन प्रतिपादितम् । तत्र वर्णसामान्योच्चारणविधिरित्थं प्रदर्शितः—

**व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान्, दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।**
**भीता पतनभेदाभ्यां, तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत् ।।**

**एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।**
**सम्यग् वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ।।**

व्याघ्री स्वशिशुं दन्तैर्गृहीत्वा स्थानात् स्थानान्तरं—नयन्ती शिशुमीषदपि पीडां नानुभावयति, तथैव वर्णाः तथा उच्चारणीयाः, यथा ते श्रोतृभिः श्रूयमाणा ईदृशरूपेण न प्रतिभासरेन्, यद् वक्त्रा बलपूर्वकमिमे उच्चारिताः, अतश्च दन्तादिनिपीडनमकृत्वा मार्दवेन उच्चारणीयाः । 'न च पीडिताः' इत्यनेनेदमेवोक्तमस्ति । अन्यच्च वर्णोच्चारणं स्पष्टतया कार्यम्, येन श्रोतॄणां सम्यक्तया प्रतीतिः स्यात्, अन्तर्दन्तकेन नोच्चारणीयम्, इदमेव 'नाव्यक्ताः, इत्यनेन सूचितम् ।

अयमेव सामान्यत उच्चारणविधिः, —

विशेषत उच्चारणविधिः—अनुस्वारोच्चारणविधिः, रङ्गोच्चारणविधिश्च । तद्यथा—

**अलाबुवीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्यस्वराननु ।**
**अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥**

तुम्बीफलवीणाया यादृशो ध्वनिर्भवति, तादृश एव ध्वनिरनुस्वारस्योच्चारणे भवतु ।

'नित्यं ह्रोः शषसेषु च' इत्यनेनानुस्वारसन्धिरपि सूचितः, एतेष्वेव नियमेनानु-मनुस्वारो भवति, व्यञ्जनान्तरेषु तु न ।

यतः अपदान्तस्थले व्यञ्जनान्तरेषु—

'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः, इति परसवर्ण एव भवति, इति अनुस्वारस्तत्र न प्रयुज्यते ।

पदान्तस्थलेऽपि वैकल्पिकपरसवर्णो भवति—'वा पदान्तस्य' इत्यनेन । अतस्तत्रापि अनुस्वारस्य न नियतत्वम् । रङ्गवर्णोच्चारणविषये पाणिनीयशिक्षायां पञ्च पद्यानि उक्तानि सन्ति । तथा हि—

**यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्राँ इत्यभिभाषते ।**
**एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः, खे अराँ इव खेदया ॥**

सुराष्ट्रदेशीया स्त्री तक्रविक्रयप्रसङ्गे तक्राँ इति सानुनासिकं शब्दं प्रयुङ्क्ते । एवं रङ्गाः सानुनासिकवर्णाः प्रयोक्तव्याः इति लौकिकदृष्टान्तेन रङ्गस्वरूपं प्रदर्श्य 'खे अराँ इव खेदया' इत्येवं रङ्गविशिष्टमन्त्रप्रदर्शनमपि वक्तृबुद्धिविकासाय बोध्यम् ।

**रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन् नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम् ।**
**दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्, पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥**

रङ्गवर्णप्रयोगकाले पूर्वमक्षरं नो ग्रसेत्, अनुस्वारस्येव पूर्वाक्षरस्य गुरुत्वकरणेन शीघ्रं नोच्चारयेत्, किन्तु पूर्वाक्षरं दीर्घं विलम्बितमुच्चारयेत् । पश्चान्नासिक्यमुच्चारणीयम् । तस्याक्षरस्य प्रान्तभागं नासिक्येन रञ्जयेत् ।

**हृदये चैकमात्रस्त्वर्धमात्रस्तु मूर्धनि ।**
**नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥**

रङ्गस्य मात्रिकमंशं हृदये मन्दमुच्चार्य ततोऽर्धमात्रां मूर्धनि तारस्वरेणानन्तरमवशिष्टमर्धमात्रिकं नासिकायामनुनासिकं कुर्यात्, एवं सर्वांशसङ्कलनया रङ्गस्य द्विमात्रता सम्पन्ना । एतेन रङ्गवर्णस्यान्तिमस्य चतुर्थांशस्यानुनासिक्यं करणीयम् । आद्यास्त्रयोंऽशा-

निरनुनासिका एवोच्चारणीया इति सूचितम्। 'प्रान्ते नासिक्यमाचरेत्, इत्यादिना याज्ञवल्क्यशिक्षास्वपि अयमर्थः प्रोक्तः।

**हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वन्।**
**मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम्॥**

हृदयदेशादुत्करे ऊर्ध्वदेशे उच्चारितः कांस्यपात्रमस्वरेण तुल्यस्वरं प्राप्नुवन् मार्दवं द्विमात्रं चोच्चार्यते। अत्र मार्दवमित्यस्य मार्दवयुक्तमित्यर्थः, क्रियाविशेषणत्वाद्द्वितीया। द्विमात्रमिति रङ्गस्यैव विशेषणम्। वाक्यभेदेन 'उच्चारयति' इति क्रियापदमध्याहृत्य तन्निरूपितं कर्मत्वंबोध्यम्। 'जघन्वाँ, इति तु दृष्टान्तरूपेणोक्तम्। रङ्गोच्चारणस्येदृशो-विषय इति भावः।

रङ्गस्य द्विमात्रत्वं शाखाविशेषानुरोधेन। अन्यत्र एकमात्रिकस्यापि उपलम्भात्। तथा हि—याज्ञवल्क्यशिक्षायाम्—'द्विमात्रो मात्रिको वापि नासामूलं समाश्रितः। इति।

**मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत्।**
**सरङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम्॥**

अस्यार्थः स्पष्ट एव।

इमाः कारिकाः शब्दतोऽर्थतो वा बहुषु शिक्षासु समानरूपेणोपलभ्यन्ते।

याज्ञवल्क्यशिक्षायाम्—रङ्गस्य पञ्चभेदा वर्णिताः सन्ति।

शौनकाचार्येण तु स्वरपरकत्वे रङ्गव्यवहारः, व्यञ्जनपरकत्वे तु उपधानिका-व्यवहार इति प्रोक्तम्, लोमशशिक्षायां तु व्यञ्जनपरकत्वेऽपि रङ्गस्यैव व्यवहार इत्युक्त-मस्ति।

एवमेव—माण्डूक्यशिक्षायाम्, नारदीयशिक्षायाम्, मल्लशर्मशिक्षायाम्, अमोघ-नन्दिनीशिक्षायाम्, शैशिरीयशिक्षायाम्, पारिशिक्षायाम्, शम्भुशिक्षायाम्, च रङ्ग-विषयको विशेषो द्रष्टव्यः। क्वचित् मात्राषट्कपर्यन्तो रङ्गोच्चारणकालः संकेतितोऽस्ति रङ्गोच्चारणविषये दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीत। शुद्धस्वरापेक्षया रङ्गस्वरस्य किंचिद् विलम्बित-मुच्चारणं कार्यम्।

कांस्येन समनुस्वरन्, इति पाणिनीयशिक्षोक्तदृष्टान्तेन इदमागतमस्ति, यथा कांस्यपात्रताडने नादानन्तरं किञ्चित्कालपर्यन्तमनुनादस्तिष्ठति, एवं रङ्गस्थलेऽपि किञ्चि-त्कालपर्यन्तमनुरणनात्मकः नासिक्ययुक्तो नादः कार्यः। वर्णरत्नप्रदीपिकायां यमसंज्ञका अपि वर्णाः संकेतिताः सन्ति। ते च शैशिरीयशिक्षायां शब्दान्तरैरभिहिताः। तथाहि—

"स्पर्शानां पञ्चमैर्योगे भवन्तीह यमाः स्मृताः, इत्यादि।

याज्ञवल्क्यशिक्षायां तु—अयः पिण्डः, दारुपिण्डः, ऊर्णापिण्डः, ज्वालापिण्डः,

मृत्पिण्डः, वायुपिण्डः, वज्रपिण्डश्चेति सप्तपिण्डान् प्रदर्श्य तदात्मकान् यमान् स्वीकरोति महर्षियाज्ञवल्क्यः।

तच्छिक्षायामेतेषां यमानामुच्चारणे महान्विशेषःप्रदर्शितोऽस्ति। एतावतेदं ज्ञायते, यत् प्राचीनाचार्या उच्चारणविषये कियत् सूक्ष्ममनुसंदधति स्म।

द्वयोः स्वरयोर्मध्ये सन्ध्यभावो-विवृतिशब्देनोच्यते।

एवमेव ऊष्मवर्णेन सह संयोगे सति रेफस्य विलक्षणमुच्चारणं कुर्वन्ति वैदिकाचार्याः, तदेव स्वरभक्तिशब्देन उच्यते। एषा च स्वरभक्तिः करिणी, कुर्विणी, करिणी हरिता, हंसपदा-चेति पञ्चविधा प्रकीर्तिता शिक्षाग्रन्थेषु। क्व करिणी स्वरभक्तिः, कुत्र च कुर्विणी, इत्यादिकं तु याज्ञवल्क्यशिक्षादौ द्रष्टव्यम्।—

केचन शिक्षापदेन व्यपदिश्यमाना ईदृशा अपि ग्रन्थाः उपलभ्यन्ते, येषु वस्तुतः शिक्षाशास्त्रीयत्वेन गृहीता-विषया वर्ण-स्थान-प्रयत्न-अनुप्रदान-काल-स्वर-सन्धिरूपा न प्रतिपादिताः। प्रसिद्धाश्च ते शिक्षाग्रन्थत्वेन। केषांचिद्ग्रन्थानामियं स्थितिरस्ति, यत् तत्र शिक्षाशास्त्रीयविषयस्य कस्यचिदेव निरूपणम्, न तु सर्वाङ्गीणत्वेन। यथा-कात्यायन-शिक्षायाम् स्वरविषयकमेव विवेचनम्। कालनिर्णयशिक्षायाम्-कालविषयक एव विचारः।

केषुचिद् शिक्षाग्रन्थेषु वेदमात्रविषयका वेदाध्यायोपयोगिनो विषया वर्णिताः सन्ति। यथा वासिष्ठशिक्षा। एषा शिक्षा शिक्षासंग्रहस्थवासिष्ठीशिक्षातः पृथगेवास्ति। अस्या हस्तलेखः सरस्वतीविहार-पुस्तकालये दिल्लीनगरे प्राप्तुं शक्यते।

काश्चन ईदृश्योऽपि शिक्षाःसन्ति। यासामुल्लेख-मात्रमुपलभ्यते। यथा शौनक-शिक्षा, एतद्विषये श्रूयतेयत् तञ्जोरनगरे सरस्वतीमहलाख्ये पुस्तकालये इदं-मुद्रितं पुस्तकं वर्तते।

**चारणीशिक्षा**—अस्या उल्लेखः कीलहार्न-महोदयेन 'इण्डियन् एण्टीक्वेरी, नामिकायां पत्रिकायां कृतोऽस्ति।

**गालवशिक्षा**—अस्या उल्लेखो युधिष्ठिरमीमांसक-महोदयेन 'व्याकरणशास्त्र का इतिहास' नामके ग्रन्थे कृतोऽस्ति।

**वाल्मीकिशिक्षा**—हारीतशिक्षा-बौधायनी शिक्षा वेदलक्षणानुक्रमणिकानामके हस्तलिखितते ग्रन्थे एतासां संकेतो वर्तते।—

## शिक्षाग्रंथेषु विशेषतः सुभाषितानि वचनानि निरूप्यन्ते

**याज्ञवल्क्यशिक्षायाम्**—

आम्रपलाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः।
वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद् दन्तधावनम्॥

खदिरश्च कदम्बश्च करबीरकरञ्जकौ ।
सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ॥

तेनास्यकरणे सौक्ष्म्यं माधुर्यं चैव जायते ।
त्रिफलां लवणयुक्तां वै भक्षयेत् शिष्यकः सदा ॥

क्षीणमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा ।
उपांशु त्वरितं चैव योऽधीते वित्रसन्नपि ॥

अपि रूपसहस्राणां सन्देहे स प्रवर्तते ।
पञ्च विद्या न गृह्णन्ति चण्डास्तब्धाश्च ये नराः ॥

अलसा रोगिणश्चैव येषां च विस्मृतं मनः ।
अहेरिव गणाद् भीतः सम्मानात् नरकादिव ॥

राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ।
न भोजनविलम्बी स्यान्न च नारीनिबन्धनः ॥

सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुडहंसवत् ।
सुखार्थी चेत्त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत् सुखम् ॥

सुखिनस्तु कुतो विद्या विद्यार्थिनि कुतः सुखम् ।
गुणिता शतशो विद्या सहस्रावर्तिता पुनः ॥

आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ।
शतेन गुणिता याति सहस्रेण च तिष्ठति ॥

शतानां च सहस्रेण प्रेत्य चेह च तिष्ठति ।
जलमभ्यासयोगेन शैलानां कुरुते क्षयम् ॥

कर्कशानां मृदुस्पर्शं किमभ्यासान्न साध्यते ।
यथा पिपीलिकाभिश्च क्रियते पांसुसंचयः ॥

न चात्र बलसामर्थ्यमुद्यमस्तत्र कारणम् ।
अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य च संचयम् ॥

अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाध्ययनकर्मसु ।
हयानामिव जात्यानामर्धरात्रार्धशायिनाम् ॥

नहि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति ।
अन्नव्यञ्जनयोर्भागौ तृतीयमुदकस्य च ॥

वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमुपकल्पयेत् ।
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ॥

तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ।
शुश्रूषारहिता विद्या अपि मेधागुणैर्युता ॥
वन्ध्येव युवती तस्य न विद्या फलिनी भवेत् ।
गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा ॥
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते ।
यत्किञ्चिद् वाङ्मयं लोके सर्वमत्र प्रतिष्ठितम् ॥
करोति तत्प्रदानं यत् तस्माद् ब्रह्ममयो गुरुः ।
विधिनाऽप्यविधिज्ञानमविधानान्न लभ्यते ॥
अविधानपरो नित्यं प्रायश्चित्तीयते नरः ।
युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं न ग्राह्यं गुरुगौरवात् ॥
सर्वशास्त्ररहस्यं तद् याज्ञवल्क्येन भाषितम् ।

माण्डूक्यशिक्षायाम्—

आगमैरधिकाः केचिद् विज्ञानैरपरेऽधिकाः ॥
प्रयोगसौष्ठवादन्ये नाहमस्मीति विस्मयः ।
पदेनैकेन मेधावी पदानां विन्दते शतम् ॥
मूर्खः पदसहस्रेण पदमेकं न विन्दति ।
पदं पादं तदार्धं च सेवितव्यं प्रयत्नतः ॥
अप्राज्ञः प्राज्ञतां याति सरिद्भिः सागरो यथा ।
न रूक्षवाक् स्यान्न च उत्स्वरं वदेत् ।
न चानिमेषो न च गर्वमाचरेत् ॥
गजव्ययेषी बलवानतन्द्रितो व्यपेतरोषश्रमशोकहर्षभीः ।
न चानुकूजेत् पदमादितो ब्रुवन् न नासिकानित्यमनुष्ठितं वदेत् ॥
न चापदान्ते श्रमपीडितः श्वसेत् ।
न चोच्छ्वसेदुक्तपदोऽप्यभीक्ष्णशः ॥
आचार्योपासमाद् योगात् तपसा प्राज्ञसेवनात् ।
विगृह्य कथनात् कालात् षड्भिर्विद्या प्रपद्यते ॥
आलस्यात् मूर्खसंयोगाद् भयाद्रोगनिपीडनात् ।
अत्याशक्त्याच्च मानाच्च षड्भिर्विद्या विनश्यति ॥

**पाराशरशिक्षायाम्**

यथाखरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
तथा हि विप्राः स्मृतिवेदपूर्णा ज्ञानेन हीनाः खरवद्वहन्ति ॥

पठित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्रमनेकधा।
यो हि ब्रह्म न जानाति मूर्खः पाठे शठो यथा ॥

प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपासया।
तृप्ताः कामेन वध्यन्ते जन्तवो निशि तद्वशाः ॥

अमोघनन्दिन्याम्—

पुस्तके प्रज्ञयाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
न भ्राजन्ते सभामध्ये जारगर्भा इव स्त्रियः ॥

एकः सर्वं न जानाति सर्वं एकं न विन्दति।
एवं मन्त्रा न गुह्यन्ति पण्डिताः शुद्धभाविनः ॥

लक्षणं न त्यजेद् धीमान् सम्प्रदायोऽन्यथा भवेत्।
लक्षणेन विना शिष्यः सम्प्रदायो विनाशवान् ॥

नासौ तत्फलमाप्नोति सम्यक् पाठमजानतः।
उत्तमो लक्षणज्ञानी लक्ष्यज्ञानी च मध्यमः ॥

लक्ष्यलक्षणयोर्ज्ञानी तद्धि पात्रं प्रचक्षते।
लक्षणेन विना वाणी निर्मलापि न शुध्यति ॥

प्रमदा रूपसम्पन्ना दरिद्रस्येव योषितः।
स्वरहीना यथा वाणी वस्त्रहीनास्तु योषितः ॥

एवं वर्णा न शोभन्ते प्राणहीनाः शरीरिणः।
वेदपाठी सदा सम्यग् विचार्यैव पुनः पठेत् ॥

नारदीयशिक्षायाम्—

कृत्वा चावश्यकान् धर्मान् जठरं पर्युपास्य च।
पीत्वा धूमं घृतं चैव शुचिर्भूत्वा ततो वदेत् ॥

प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चोपजायते।
स्वरव्यञ्जनमाधुर्यं लुप्यते नात्र संशयः ॥

शनैर्विद्यां शनैरर्थान् आरोहेत् पर्वतं शनैः।
शनैरध्वसु वर्तेत योजनानि परं व्रजेत् ॥

**योजनानां सहस्राणि शनैर्याति पिपीलिका ।**
**अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥**

**नहि पार्ष्णिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति ।**
**वधिरस्येव तल्पस्था विदग्धा वामलोचना ॥**

**न शठाः प्राप्नुवन्त्येवं न क्लीबा न च मानिनः ।**
**न च लोकरवाद् भीता न च श्वः श्वः प्रतीक्षकाः ॥**

**द्यूतं पुस्तकवाद्यं च नाटकेषु च सक्तिका ।**
**स्त्रियस्तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥**

शब्दोत्पत्तिप्रक्रिया यथा पाणिनीयशिक्षायां सुस्पष्टं प्रतिपादिता, न तथा अन्यस्मिन् शिक्षाग्रन्थे। तत्र शब्दस्य स्वरूपविषये न किञ्चिदप्युक्तम्, विचारे कृते तु प्राकृतध्वनिरूप एवायं शब्दो यस्योत्पत्तिप्रकारो विशदीकृतोऽस्ति । आपिशलशिक्षायामपि अयं प्रकारो दर्शितोऽस्ति । स चेत्थम्—

**आकाशवायुप्रभवः शरीरात् समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः ।**
**स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानः वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ॥**

एकेन पद्येन शब्दस्य ब्रह्मरूपताऽपि तत्रैव प्रतिपादिताऽस्ति-तथा हि—

**तमक्षरं ब्रह्मपरं पवित्रम् गुहाशयं सम्यगुशन्ति विप्राः ।**
**स श्रेयसा चाभ्युदयेन चैव सम्यक् प्रयुक्तः पुरुषं युनक्ति ॥**

एतावता अन्तःस्थितस्य मध्यमादिरूपस्फोटाख्यशब्दस्य कण्ठताल्वाद्यभिघातवशात् बाह्यशब्दरूपेण परिणाम इति शब्दस्य अक्षरत्वकथनेन नित्यत्वं स्पष्टमेवोक्तम् । उक्तं च श्रीहरिणा—

**अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।**
**विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥** इति ॥

## शिक्षासंग्रहे संगृहीतानां ग्रन्थानां नामानि प्रतिपाद्या विषयाश्च—

१-याज्ञवल्क्य शिक्षा, २-वासिष्ठी शिक्षा, ३-कात्यायनी शिक्षा, ४-पाराशरी शिक्षा, ५-माण्डवी शिक्षा, ६-अमोघानन्दिनी शिक्षा, ७-लघ्वमोघानन्दिनी शिक्षा, ८-माध्यन्दिनी शिक्षा, ९-लघुमाध्यन्दिनी शिक्षा, १०-वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा, ११-केशवी शिक्षा, १२-पद्यात्मिका केशवी शिक्षा, १३-मल्लशर्मकृता शिक्षा, १४-स्वराङ्कुशा शिक्षा, १५-षोडशश्लोकी शिक्षा, १६-अवसाननिर्णयशिक्षा, १७-स्वरभक्तिलक्षण-परिशिष्ट शिक्षा, १८-क्रमसन्धान-शिक्षा, १९-गलदृक्शिक्षा, २०-मनःस्वार शिक्षा, २१-प्रातिशाख्यप्रदीप शिक्षा, २२-विसर्गाङ्गुलिप्रदर्शनप्रकार-

शिक्षा, २३-यजुर्विधान शिक्षा, २४-स्वराष्टक शिक्षा, २५-क्रमकारिका शिक्षा, २६-पाणिनीय शिक्षा, २७-शिक्षाप्रकाशः, २८-नारादी शिक्षा, २९-सामवेदीया गौतमी शिक्षा, ३०-सामवेदीया लोमशी शिक्षा, ३१-अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा, अथर्वपरिशिष्टम् ।

माण्डूक्याः शिक्षायाः समाप्तौ एतेषां ग्रन्थानां गणना कृताऽऽस्ति-तथाहि–पञ्चविंशतिसंख्याकाः शिक्षाश्चात्र सुमुद्रिताः ।

**ऋग्वेदस्यैकशिक्षा, पाणिनीया सटीकता ।**
**त्रितयी सामवेदस्य नारादी गौतमी तथा ।**
**लोमशी चाथर्वणिका माण्डूकी लोकविश्रुता ।।**

पञ्चविंशतिसंख्याकशिक्षाभिः ऋग्वेदादिषट्संख्याक-शिक्षाणां संकलनया ३१ एकत्रिंशत् संख्याकाः शिक्षा-ग्रन्थाः सम्पन्नाः ।

## याज्ञवल्क्य-शिक्षा—

महर्षिवैशम्पायनशिष्येषु प्रमुखतमोऽयं महर्षियाज्ञवल्क्यः । एकदा महर्षि-वैशम्पायनः आतिदेशिकीं ब्रह्महत्यामपाकर्तुकामः स्वशिष्यान् आज्ञापयामास-यद् भोः मम ब्रह्महत्यां यूयं सर्वे स्व-स्वतपोबलेन व्यपोहध्वम् । श्रुत्वैतद् याज्ञवल्क्ये-नोक्तम्—भो गुरो ! अहमेकाकी एव तस्या व्यपोहने समर्थोऽस्मि, इमे वराकाः शिष्याः किमर्थमादिष्टाः, एते किं करिष्यन्ति ? गर्वोक्तिमिमामाकर्ण्य महर्षि-वैशम्पायनः कोपाविष्ट उक्तवान्–भो याज्ञवल्क्य ! त्वया एते तपस्विनः शिष्या अपमानिताः, अतः त्वया मत्तोऽधीतो वेदराशिः परावर्तनीयः । इत्थमाज्ञप्तेन याज्ञवल्क्येन यजुर्मन्त्राः प्रच्छर्दिताः । अथ वेदहीनो याज्ञवल्क्यः सूर्यं भगवन्तं सम्प्रार्थ्य ततो वेदराशिं साधु अधीतवान् । एनेनैव महातपसा महर्षिणा याज्ञवल्क्येन स्वकीयशुक्ल-यजुर्वेदस्याध्ययनविधौ शिक्षाग्रन्थोऽपि प्रणीतः । स एव शिक्षा-ग्रन्थः प्राथम्येन गृहीतोऽस्मिन् शिक्षासंग्रहे ।

## तत्रत्याः केचन विशेषा निरूप्यन्ते —

तत्र शिष्यः कीदृशोऽध्ययनसाफल्यमाप्नोति–इति जिज्ञासायामुक्तम्—

**स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीको वर्णानुच्चारयेद् बुधः ।**
**नाभ्या हन्यान्न निर्हन्यान्न गायेन्न च कम्पयेत् ।।**

**यथादावुच्चरेद् वर्णान्, तथैवैतान् समापयेत् ।**
**निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्तयेत् ।।**

**सममुच्चारयेद् वर्णान् हस्तेन च मुखेन च ।**
**स्वरश्चैवाथ हस्तश्च, द्वावेतौ युगपत् स्थितौ ।।**

**ह्रस्वाद् भ्रष्टः स्वराद् भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते ।**
**न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः ।। इत्यादि ।**

दन्त-जिह्वा-मुखशोधनार्थं दन्तधावनकाष्ठान्यपि निर्दिष्टानि ।

**आम्रपालाशविल्वानामपामार्गशिरीषयोः ।**
**वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ।।**

**त्रिफलां लवणाक्तेन भक्षयेच्छिष्यकः सदा ।**
**तेनास्य करणं सूक्ष्मं माधुर्यं चोपजायते ।।**

उदात्तानुदात्तस्वरितादिस्वरानुद्दिश्य तेषां लक्षण-दैवत-स्थान-गोत्रादीना-मुच्चारणप्रकारस्य च चर्चा सम्यक् कृताऽऽस्ति । तथा च— उदात्तस्वरस्य शुक्लो वर्णः, अग्निर्देवता, ब्राह्मणत्वं जातिः, भरद्वाजऋषिः, गायत्रं छन्द इत्यनया रीत्या अनुदात्तादीनामपि लक्षणादीनि वर्णितानि सन्ति ।

उच्चारणे हस्तादिस्थितिश्च चर्चिता । स्वरितस्य तु जात्यादिबहुभेदाः प्रदर्शिताः । तथा च जात्य-अभिनिहित-क्षैप्र-प्रश्लिष्ट-तैरोव्यञ्जन-तैरोविरामक-पादवृत्त-तथाभाव्य-भेदैरष्टविधाः स्वरा निर्दिष्टाः । एतेषां वैदिकान्युदाहरणानि अपि सलक्षणानि निरूपितानि सन्ति । यथा—

**एकपदे नीचपूर्वः सयवो जात्य इष्यते ।**
**अपूर्वोऽपि परस्तद्वद्धान्यं कन्या स्वरित्यपि ।।**

अत्र मनुष्यानिति सयकारोऽनुदात्तपूर्वो जात्यः, सुप्वा-इति सवकारो नीच-पूर्वो जात्य इति, एवं क्षैप्रादीनामपि सलक्षणोदाहरण-निरूपणं कृतमस्ति । व्यज्यन्तेऽनुविध्यन्ते इति व्यञ्जनानि । स्वेन रमन्ते रमयन्ति चेति स्वराः, इति सार्थकनामानि स्वरव्यञ्जनानि । तथा चोक्तम्—

मणिवद् व्यञ्जनान्याहुः सूत्रवत् स्वर इष्यते, इति । सदोषाः विद्यार्थिनः पञ्च सन्ति । तथा हि—

**पञ्च विद्यां न गृह्णन्ति जडाः स्तब्धाश्च ये नराः ।**
**अलसाश्चातिरोगाश्च येषां च विस्मृतं मनः ।। इति ।।**

एवमेव षट्संख्याकाः पुनः सदोषाश्छात्राः कथिताः । तथा हि—

**गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।**
**अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ।। इति ।।**

एवमेव—माधुर्यम्, अक्षरस्पष्टता, पदच्छेदः, धैर्यं, गुरुत्वस्य विमर्शः, लघुत्वस्य च, एतानि षट् समीचीनच्छात्रस्य लक्षणानि निर्दिष्टानि । अयस्पिण्डः,

दारुपिण्डः, ऊर्णापिण्डः, ज्वालापिण्डः, मृत्पिण्डः, वायुपिण्डः, वज्रपिण्डश्चेति सप्तविधाः संयोगपिण्डाः प्रदर्शिताः सलक्षणोदाहरणाः। अन्ते च—

**युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं न ग्राह्यं गुरुगौरवात्।**
**सर्वशास्त्ररहस्यं तद् याज्ञवल्क्येन भाषितम्॥**

अनेन पद्यात्मकेन वचनेन रहस्यमयो महीयानुपदेशः कृतो वर्तते। इति।

## वासिष्ठी शिक्षा

शिक्षायामस्यां महामुनिवसिष्ठेन ऋचां यजुषां च लक्षणं कृत्वा तेषां विभागः कृतो वर्तते। एषा च प्रक्रिया प्रथमाध्यायत आरभ्य चत्त्वारिंशाध्यायं यावत् यजुः-संहितायां कृताऽस्ति। अतश्चान्ते—

**एकीकृत्य ऋचः सर्वा मुनिषड्वेदभूमिताः।**
**अब्धिरामाथ वा ज्ञेया वसिष्ठेन च धीमता॥**

**एवं सर्वाणि यजूंषि रामाक्षिवसुयुग्मकाः।**
**अथवा पञ्चभिर्न्यूनाः संहितायां विभागतः॥**

इत्येवं संख्यापूर्वको विभागो दर्शितः।

## कात्यायनी शिक्षा

अस्यां शिक्षायामपि पूर्वशिक्षावद् वेदे समागतस्वराणां तत्रापि प्राधान्येन स्वरितस्य विशेषतो लक्षणमुदाहरणं च निरूपितमस्ति। अन्ते च स्वरितलक्षण-चतुष्टयस्य जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्टस्य पितृदानवद् हस्तं कृत्वा स्वरयितव्य-मिति पितृश्रवणमुक्तम्। पितृतर्पणकाले पिण्डदानकाले वा यादृशाकारं हस्तं कृत्वा अन्नं पिण्डो वा दीयते, तादृशाकारता एव हस्तस्य जात्यादिस्वरितोच्चारण-काले इति भावः।

## पाराशरी शिक्षा

अस्यां शिक्षायामपि त्रिमात्रस्य त्रिदैवतस्य त्रिरूपस्य त्रिस्थानस्य त्रिगुणस्य प्रणवस्य विचारं विधाय वेदान्तर्गतप्रथमकण्डिकासु अक्षरसंख्यादिविचारः, स्वराणां पौर्वापर्यविचारः, को लघुः, कश्च लघुतरः, को गुरुः, कश्च गुरुतर एवं वर्णानां विन्यासविचारः, वर्णोच्चारणे सर्वथा प्रमादाभावः कार्यः। उक्तं च--

**अशुद्धपठनाच्चैव नैव मोक्षं प्रपेदिरे।**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शुद्धपाठी भवेद् द्विजः॥ इति॥**

अन्ते च—

**पठित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्रमनेकधा ।**
**यो हि ब्रह्म न जानाति मूर्खः पाठे शठो यथा ॥**
**ज्ञात्वैव ब्रह्मसायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥**

इत्यादिना ब्रह्मज्ञानं सारतया प्रोक्तम्, वेदाध्ययनस्य तत्फलत्वं च निर्णीतम् ।

## माण्डवी शिक्षा

अस्यामपि शिक्षायां वैदिकमन्त्राणां भागा उदाहृताः। तेषां मन्त्राणामध्यायो मन्त्रसंख्या च टिप्पणीरूपेण अधस्तान्निरूपिताः सन्ति। केवलमस्योपयोगो वैदिकानां विशिष्टाध्यायिनां कृते बोध्यः ।

## अमोघानन्दिनी शिक्षा

अस्मिन्नपि शिक्षाग्रन्थे वेदमन्त्रस्यांशान् गृहीत्वा क्व-क्व दन्त्याः स्मृताः, क्व च नादसंज्ञकाः, क्व च नादाभावः, क्व ह्रस्वाः, क्व च रङ्गाः ? इत्यादिकं विचारितमस्ति ।

वर्णोच्चारणविधौ विलक्षणदृष्टान्तानां प्रदर्शनमत्र । यथा—

**शून्ये गृहे पिशाचोऽपि गर्जते न च दृश्यते ।**
**एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या उपज्ज्मन्निति निदर्शनम् ॥**

**स्फुरितं चिबुकोन्मूलं वायुना सम्प्रपूरितम् ।**
**मण्डूकस्फुरणं नाम अपास्फेने निदर्शनम् ॥**

**यथा बालस्य सर्पस्य निश्श्वासो लघुचेतसः ।**
**एवमूष्मा प्रयोक्तव्यो ह्कारपरिवर्जितः ॥**

**यथा कामातुरा नारी शब्दं करोति यादृशम् ।**
**तच्छब्दं कुरुते प्राज्ञः सिंह्यसि निदर्शनम् ॥**

पुनश्चान्ते वर्णोच्चारणे शिक्षोक्तपद्धतेरौचित्यम्, अन्यथोच्चारणस्य निन्दा च कृता । अन्ते च षकारणकारयोरुच्चारणे, बकारवकारयोरुच्चारणे च भेदप्रदर्शनपुरस्सरमुदाहरणं दर्शितम् ।

## लघ्वमोघानन्दिनी शिक्षा

अस्यां शिक्षायामपि वर्णोच्चारणे एव विशेषाः प्रदर्शिताः सन्ति । यथा—

**पादादौ च पदादौ च संयोगावग्रहेषु च ।**
**जः शब्द इति विज्ञेयो योऽन्त्यः स य इति स्मृतः ॥**

अनेन पद्येन यकारस्य पादादौ पदादौ वा जकारात्मना उच्चारणम्, अन्यत्र यकारात्मना। एवमेव- वो, वा, वा, वै, वि, वौ-इत्यादिशब्दानामुच्चारणे विशेष उक्तः।

व्यञ्जनवर्णस्य परत्वेऽनुस्वारस्य द्विमात्रता प्रोक्ता। यथा-'देवानाꣳ हृदयेभ्यः' इत्यत्र दीर्घाकारात् परस्यानुस्वारस्य द्विमात्रता।

'सꣳस्रष्टा' 'सिꣳहयसि' इत्यादौ संयोगपरत्वेऽनुस्वारस्य ह्रस्वत्वमेव इष्यते। अनया रीत्योच्चारणे प्रयत्नविशेषो दर्शितः।

## माध्यन्दिनी शिक्षा

**स्वरेण वर्णेन वा हीनो मन्त्रोऽभीष्टमर्थं न साधयति।**
**इत्येवं मन्त्रस्योच्चारणे सर्वथाऽवधातव्यमित्युक्तम्॥**

स्वरात्परस्य व्यञ्जनस्य द्विरुक्तिर्भवति व्यञ्जनस्य परत्वे सति-यथा 'इषेत्वोर्ज्जे त्वा' इत्यादौ।

ह्रस्वपूर्वयोर्नङयोः पदान्ते द्वित्वं भवति। यथा-'दध्यङ्ङ् ऋषिः', 'अश्मन्नूर्ज्जम्' इत्यादौ। गलितानामृचामपि संकेतो दत्तः। यथा-'इषे त्वा एदम्' इत्यादिकम्। अनया रीत्या बह्वीनामृचां लोपस्थलानि उदाहृतानि।

## लघुमाध्यन्दिनी शिक्षा

अस्यामपि शिक्षायां मन्त्रवर्णोच्चारणस्यैव शोधने विधिर्निर्दिष्टः। यथा-'इषे लक्ष्यं कृष्णऽउक्षा समुद्रः' अत्र इषे इत्यत्र मूर्धन्यः षकारः खकारात्मना उच्चारणीयो भवति।

'कृष्ण' इति शब्दे टवर्गीयणकारेण योगे तु न तादृशमुच्चारणम्। एवमेव 'उक्षा' इति शब्दे पूर्वस्य ककारस्य योगेऽपि न तादृशमुच्चारणम्। एवमेव शषहेषु वर्णेषु परेषु रेफो रेकारात्मना उच्चारयितव्यः। ऋकारोऽपि सर्वत्र रे इत्युच्चारणीयः। एवमेव विसर्गाद्युच्चारणविषये बहुविधा नियमा उक्ताः सन्ति।

## वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा

भारद्वाजगोत्रोत्पन्नेनामरेशनामकाचार्येण शिक्षेयं विरचिता। पाठशुद्धयर्थं वर्णज्ञानाद्यर्थं च। एतदध्ययनेन वर्णानां स्थानं-करणं-मात्रादिकं च साधु ज्ञायते। अत्र स्वराणां संख्या एकविंशतिरुक्ता, द्विगुणानि व्यञ्जनानि कथितानि। तत्र अ इ उ ऋ, एते चत्वारो ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदैर्द्वादश, ऌकारस्तु ह्रस्व एवैकः, ह्रस्ववर्जितानि चत्वारि सन्ध्यक्षराणि 'ए ओ ऐ औ' इति अष्टौ मिलित्वा एकविंशतिः स्वराः सम्पन्नाः। कादयो मावसानाः पञ्चविंशतिः स्पर्शाः, यरलवा

अन्तःस्थाश्चत्वारः, श-ष-स-हा ऊष्माणश्चत्वारः, स्पर्शानां पञ्चमवर्णैर्योगे चत्वारो यमाः, अनुस्वारो, विसर्गः, जिह्वामूलीयः, उपध्मानीयः, दुःस्पृष्टश्चेति संकलनया द्वाचत्वारिंशत्संख्याका इमे व्यञ्जनवर्णाः।

स्वरयोर्मध्ये डकारो ळकारात्मना, ढकारश्च ळ्हकारात्मना उच्चार्यते स एव ळकारो ळ्हकारश्च दुःस्पृष्ट-इति कथ्यते।

तदनन्तरमेतेषां वर्णानां कण्ठादिस्थानानि आभ्यन्तरप्रयत्नादिकं च साधु निरूपितम्। शश्छोऽटि, नृन्पे, मोऽनुस्वारः, तोर्लि इत्यादि-सूत्रविहितसन्धिकार्याणि च सोदाहरणानि साधु निरूपितानि। तच्छकेयम्, मदिन्तमानां च मधुन्तमानाम्, अस्मिँल्लोके, त्रीँल्लोकान् इत्यादीनि वैदिकोदाहरणानि द्रष्टव्यानि।

## केशवी शिक्षा

अस्यां शिक्षायां नवसूत्रद्वारा सर्वोऽभिप्राय आचार्यकेशवेन वर्णितः। यथा—"पदान्तमध्य ऋ ह रेफ युग्यस्य यश्च" इति द्वितीयं सूत्रमस्ति। तस्यार्थश्चास्ति–'पदान्तमध्ये ऋकार-हकार-रेफैश्च युक्तस्य यस्य य् इति ( ज इति ) रूपेणोच्चारणं कार्यम्, छन्दसि माध्यन्दिनीये' इति। यथा—'यम्परिधियृङ्मध्ये' इत्यत्र ऋकारयुक्तो यकारो जकाररूपेण उच्चार्यते। 'पणिभिर्गुह्यमानः' इत्यत्र हकारेण युक्तो यकारो ज इत्युच्चारणीयः। घृताचीर्यन्तु, हर्य्यत इत्यादौ रेफयुक्तो यकारो जकार इत्युच्चार्यते।

'षः खष्टुमृते च'

इदं चास्ति तृतीयसूत्रम्। तस्यार्थः—पदान्तमध्ये षकारस्य खकारोच्चारः, स्याट्टवर्गं विना छन्दसि माध्यन्दिनीये इति। यथा—'इषे त्वोर्ज्जे त्वा' इत्यत्र षकारस्य खकारात्मना उच्चारणं कार्यम्, न तु मूर्धस्थानत उच्चारणम्। टवर्गयोगे तु 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे' इत्यत्र ठकारयोगे मूर्धस्थानत एवोच्चारणं करणीयम्, न तु कण्ठस्थानतः खकारात्मना।

अनुस्वारस्य ꣳ शलि रेफे च परे।<br>
ह्रस्वाद् दीर्घो दीर्घाद् ह्रस्वः संयोगे गुरुश्च॥

पञ्चममिदमस्ति सूत्रम्। अस्यार्थः—पदान्तमध्ये शलि रेफे च परे अनुस्वारस्य ꣳ स्याद्, ह्रस्वाद् दीर्घो, दीर्घाद् ह्रस्वः, संयोगे च परे गुरुः स्यात्, छन्दसि माध्यन्दिनीये, इति। उदाहरणानि यथा—

'त्रिꣳ शद्धाम' इति। 'सम्प्रजया स ꣳ रायस्पोषेण, इति। 'इषा ꣳ रयीणाम्' इत्यादिकं साधु ससूत्रोदाहरणं निरूपितमस्ति।

## पद्यात्मिका केशवी शिक्षा

पद्यात्मिकायामस्यां शिक्षायां स्वरसञ्चारे हस्तचालनप्रक्रिया, जात्याद्यष्टविधस्य स्वरितस्य लक्षणानि, उदाहरणानि, उच्चारणप्रकाराः, अनुस्वारस्य ऽं०काररूपेणोच्चारणम्, षकारस्य खकाररूपेणोच्चारणम्, इत्यादिकं विवेचितमस्ति ।

## मल्लशर्मकृता शिक्षा

अस्यां शिक्षायामपि स्वरेण वर्णेन च हीनस्य मन्त्रस्य जपे हवनादिकार्ये च विनियोगो न कार्यः, तथा सति अन्यथाफलमवाप्यते । स्वरवर्णयोर्यथाविधि उच्चारणपूर्वकं मन्त्रा अनुष्ठाने विनियोक्तव्याः । मन्त्रोच्चारणे हस्ताङ्गुलीनां संयोजनवियोजने बहिर्निःसरणं संकोचनप्रसारणादिकं च कीदृशं भवतु ?

**एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः स्वरितः स्वरः ।**
**तस्योदात्ततरोदात्तादर्धमात्रार्धमेव वा ।।**

इत्यादिनियमाश्च साधु वर्णिता वर्तन्ते ।

## षोडशश्लोकी शिक्षा

अस्यां शिक्षायां स्वराणां व्यञ्जनानां च स्वरूपं ह्रस्व-दीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरितादिभेदाः साधु निरूपिताः । वर्णानां संख्याऽवधारणमपि कृतमस्ति ।

उच्चारणे गुणदोषयोर्विवेचनमपि कृतमस्ति ।

## अवसाननिर्णयशिक्षा

अत्र शिक्षायाम् अवसानस्य निर्णयः कृतोऽस्ति । तथा हि निरवसानानि मध्याऽवसानानि, अवसानानि, चतुरवसानानि, पञ्चावसानानि, नवावसानानि, मन्त्रखण्डानि दर्शितानि ।

## स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्टशिक्षा

तैरोविराम-क्षैप्र-तैरोव्यञ्जन-तथाभाव्य-अभिनिहित-जात्य-पादवृत्त-प्रश्लिष्टनाम्नां स्वराणां लक्षणानि वैदिकोदाहरणानि च साधु प्रदर्शितातिं सन्ति । वर्णोच्चारणविधिः, करिण्यादिपञ्चसंख्याकस्वरभक्तीनां लक्षणानि मन्त्रभागात्मकोदाहरणानि च निरूपितानि ।

## क्रमसन्धान-शिक्षा

यजुर्वेदसंहितायां सन्ति चत्वारिंशदध्यायाः, तत्र कस्मिन्नध्याये कियन्ति क्रमसन्धानानि, कस्मिंश्च क्रमसन्धानाभावः ?, सोदाहरणं विषयोऽयं प्रदर्शितः ।

## गलदृक्–शिक्षा

यजुर्वेदसंहिताभागे केष्वध्यायेषु कियत्य ऋचो गलिताः सन्ति ? इत्येतद् विवेचितम् । यथा षष्ठेऽध्याये प्रथमा ऋग् गलिता, अपो देवा इत्यत्र 'सोमस्य त्विषिरिमं देवा' इति लुप्ता ऋक् । एवमेव प्रायेण समस्तायां संहितायां गलितानामृचां निरूपणं साधुतरं सम्पादितमस्ति ।

## मनःस्वार–शिक्षा

अत्र त्रिपदाद्विरवसानमध्येऽनुदात्तानि, त्रिपदा द्विरनुदात्ता, त्रिपदा मध्योदात्तानि, चतुष्पदा द्विरवसाना मध्येऽनुदात्तानि, चतुष्पदा द्व्यनुदात्तानि, चतुष्पदाद्युदात्तमध्येऽनुदात्तानि, चतुष्पदा मध्योदात्तानि, चतुष्पदाऽन्त्योदात्तानि, चतुष्पदा प्रथमे यो जात्यस्तस्य संकेतः, चतुष्पदा द्विर्जात्यः, त्र्यवसानाऽद्व्यनुदात्ताः, त्र्यवसाने कम्पः, त्र्यवसाने जात्यः, निरवसाने द्विर्जात्यः, चतुरवसाने ह्याद्यनुदात्ताः, इत्येवं बहवो विषया निरूपिताः सन्ति ।

## प्रातिशाख्यप्रदीप–शिक्षा

वेदाध्ययने करचालनप्रकारोऽत्र साधु वर्णितः ।

पदान्तपदाद्योः सन्धिः, सन्ध्यक्षरसंज्ञकवर्णाः, अपृक्तसंज्ञा, प्रगृह्यसंज्ञा, कस्मिन् वर्णे परे को वर्णः कीदृशं स्वरूपं भजते, रङ्गोच्चारणे तर्जन्याः कीदृशी स्थितिः ?, इत्येवं बहवो विषया निरूपिताः सन्ति ।

## विसर्गाङ्गुलिप्रकारनिरूपणम्

महर्षियाज्ञवल्क्येन विसर्गाङ्गुलिप्रदर्शनप्रकारः साधु निरूपितः । एतन्निरूपणायैतदेकं स्वतन्त्रं प्रकरणं निर्दिष्टमस्ति ।

अत्रापि कस्मिन् वर्णे कुत्र ह्रस्वो भवति, क्व च दीर्घः, क्व च द्विर्वचनम् ? इत्यादिकं विस्तरेण निरूपितमस्ति ।

## यजुर्विधान–शिक्षा

अस्यां शिक्षायां तत्तन्मन्त्रस्य जपेन, तत्तन्मन्त्रैस्तत्तद्द्रव्यैर्होमेन विद्याया धनस्य च प्राप्तिः, राज्ञो वशीकरणम्, सुप्रजाप्राप्तिः, शत्रुमारणम्, शत्रुविजयः, कन्यानां वरप्राप्तिः, पुरुषेण कन्याप्राप्तिः, अन्तर्धानादिनानाविधसिद्धिप्राप्तिः, सर्पादिबाधानिवारणम्, असुरकन्यादर्शनम्, विपुलराज्यावाप्तिः, देवतानामावाहनम्, पूर्णेन्द्रियत्वस्य दीर्घायुष्ट्वस्य च प्राप्तिः, अक्षय्यस्य धनस्य प्राप्तिः, चक्षुरादीन्द्रियरोगनिवृत्तिः, सर्वाभ्युदयसिद्धिः, इत्यादीनि बहुविधकार्याणि येन येनानुष्ठानेन सिध्यन्ति, तस्य तस्य स्वरूपमत्रोपदिष्टमस्ति ।

## स्वराष्टक–शिक्षा

अस्यां शिक्षायाम् अ–इ–उ–ऋ–ऌ–ए–ऐ–ओ–औ–इत्यष्टौ स्वरान् उद्दिश्य सन्धिकार्यं प्रदर्शितमस्ति। ततश्च उदात्तानुदात्तस्वरितप्रचयाः स्वराः प्रोक्ताः सवैदिकोदाहरणाः, ततश्च जात्यादिभेदात् पञ्चविधाः स्वरिता वर्णिताः।

**उदात्तान्निहितस्वारः स्वरितात् प्रचयो भवेत्।**
**उदात्तात्स्वरितात् पूर्वो नान्य आपद्यते स्वरः॥**

इत्येवं स्वराङ्कुशस्य प्रदर्शनम्, ततश्च हस्तप्रक्षेपलक्षणं सोदाहरणं निर्दिष्टम्।

## क्रमकारिका शिक्षा

अत्र शिक्षायां क्रमावसानं क्व कर्तव्यम्? पदानामानुपूर्व्येण क्रमस्थितिर्भवति। गणान्तानां क्रमो न भवति।

अवेष्टचानां, द्विवेष्टचानां, त्रिवेष्टचानां, चतुष्पञ्चवेष्टचादीनामृचां लक्षणानि सोदाहरणानि निरूपितानि सन्ति।

## पाणिनीय–शिक्षा

वर्णानामुच्चारणविधिः, वर्णानां संख्या, कण्ठादिस्थानानि, आभ्यन्तरप्रयत्नाः, वाह्याश्च प्रयत्नाः, अनुस्वारस्य यमानां चोच्चारणे विशेषाः, रङ्गस्योच्चारणे विशेषः, उरस्यहकारनिरूपणम्, जिह्वामूलीयोपध्मानीययोर्विमर्शः, वर्णोच्चारणे गुणदोषकथनम्, इमे बहवो विषया अत्र सन्ति निर्दिष्टाः।

## शिक्षाप्रकाशः

वैदिककर्मानुष्ठानात् पुरुषो निःश्रेयसार्थफलवान् भवति। अतिगूढार्थस्य वेदस्याज्ञानान्नानुष्ठातुं शक्यो वेदमार्गः। तदर्थं शिक्षादीनि षडङ्गानि, तेषु शिक्षायाः प्राधान्यम्, तत्र चोच्चारणस्य वैशिष्टचम्, तस्मिन् विषयेऽनेकेषामृषीणां मतानि अत्र प्रदर्शितानि, अतश्च स्थानप्रयत्नदृष्टान्तादिनिरूपणेन एष प्रकाशोऽपि पूर्णतां भजते, द्रुतादिवृत्तीनां विचरोऽप्यत्र कृतोऽस्ति।

## नारदी शिक्षा

सामसंहिताध्ययनात् क्षिप्रं सर्वेषां शास्त्राणामृक्सामगतानां निश्चयं सम्यक् स्वरूपप्रतिपत्तिं कर्तुं शक्नुयादिति भगवान् नारदः सामान्येन शिष्यमुद्दिश्योपदिशति—

सामान्यभूत ओङ्कारगतस्वरूपः उच्चनीचविशेषे उच्चतरे उच्चतमे नीचे, नीचविशेषे नीचतरे नीचतमे च स्थानाभिव्यज्यमानः स्वरः स्वरान्यत्वं नानास्वरतां प्रतिपद्यते ।

अत्रापि वर्णानामुच्चारणे सोदाहरणो विधिर्महता संरम्भेण निरूपितोऽस्ति ।

## सामवेदीया गौतमी शिक्षा

अत्रादौ त्रयस्त्रिंशद् व्यञ्जनानि भवन्ति, इति व्यञ्जनानां संख्या निर्दिष्टा । त्रिविधः संयोगपिण्डः, अयस्पिण्डो, दारुपिण्ड, ऊर्णापिण्डश्चेति । तत्र यमसहितमयस्पिण्डम्, दारुपिण्डमन्तःस्थैर्युक्तम्, यमान्तःस्थवर्जं तूर्णापिण्डम् । अन्तःस्थयमसंयोगे विशेषो नोपलभ्यते इत्यशरीरं यमं विद्यादन्तःस्थः पिण्डनायकः । अग्रे च सर्वेषां व्यञ्जनानां द्विर्भावो भवति द्वादशाक्षरवर्जं, ते खछठथफाः, घझढधभाः रहयोश्चेति ।

अथ च त्र्यक्षराणां, चतुरक्षराणां, पञ्चाक्षराणां, षडक्षराणां, सप्ताक्षराणां द्विर्भावा उदाहृताः सन्ति ।

## सामवेदीया लोमशी शिक्षा

अस्यां शिक्षायां कम्पस्य विशिष्टा चर्चा कृताऽस्ति । तथा हि—

**केन कम्पातितः कम्पः संयोगो येन कम्पते ।**
**किं वा कम्प इति प्रोक्तो येनासौ कम्प उच्यते ।। इति ।**

रङ्गस्य द्वैविध्यमुक्तम्, स्वरव्यञ्जनान्यतरपरत्वात् ।

**द्विमात्रिको मात्रिको वाऽपि नसि-मूलं समाश्रितः ।**
**अन्ते प्रयुज्यते रङ्गः पञ्चमैः सर्वनासिकः ।।**

इत्यादिना रङ्गस्य विषये साधु चर्चितमस्ति । एवमेव द्विर्भावविषये वर्णोच्चारणविषये च विशेषो द्रष्टव्यः ।

## अथर्ववेदीया माण्डूकी-शिक्षा

अस्यां शिक्षायां द्रुतादिवृत्तीनां साधु लक्षणादिकं निरूपितमस्ति । अथ च सप्तस्वराः सामवेदे उक्ताः । तथा हि—

**सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः ।**
**षड्ज-ऋषभ-गान्धारो, मध्यमः, पञ्चमस्तथा ।**
**धैवतश्च निषादश्च, स्वराः सप्ततु सामसु ।।**
**षड्जे वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभे ।**
**अजा वदन्ति गान्धारे क्रौञ्चनादस्तु मध्यमे ।।**
**पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पञ्चमे स्वरे ।**
**अश्वस्तु धैवते प्राह, कुञ्जरस्तु विषादवान् ।।**

इत्येवं सप्तस्वराः साधु निरूपिताः सन्ति । करिणी-कुर्विणी, हंसपदा, स्वर-भक्ति, विवृति-प्रभृतिभेदा अत्र सम्यङ् निर्दिष्टाः सन्ति ।

अन्ते च आलस्य-मूर्खमैत्री, सम्मानेच्छाप्रभृतयो दोषा विद्याविनाशका इत्युक्तम् । अथ च—

**आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदन्तु पण्डिताः ।**
**स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥**

समं समासम्, विक्रुष्टं व्यक्तम् । मधुरं स्निग्धम् । एवं मधुरेण समापयेत्-इत्युक्तिं चरितार्थयन्ति मण्डूकमहर्षयः । इति शम् ।

## वर्णानां संख्याविषये शिक्षाशास्त्र निष्कर्षः

पाणिनीयशिक्षायां त्रिषष्टिः चतुष्षष्टिर्वा वर्णानां संख्या निर्दिष्टा । तथा चोक्तम्—

**त्रिषष्टिश्चतुष्षष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः ।**
**प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ॥**
**स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।**
**यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥**
**अनुस्वारो विसर्गश्च ᳲकᳲपौ चापि पराश्रयौ ।**
**दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥**

अयमाशयः—

अ इ उ ऋ—एते वर्णा ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदेन प्रत्येकं त्रिधा, इति द्वादश । ऌकारो ह्रस्व एवैकः ।

ए ऐ ओ औ, एते वर्णा दीर्घप्लुतभेदेन प्रत्येकं द्विधा, इति अष्टौ, इति एकविंशतिः स्वराः । स्वेन राजते, स्वस्मिन् रमते वा स्वरः, राजे रमेर्वा औणादिको ड प्रत्ययः । यस्योच्चारणे व्यञ्जनस्य साहाय्यं नापेक्ष्यते इत्यर्थः । अतोऽग्रे व्यञ्जनसंख्याविचारः ।

व्यज्यते स्वरसाहायय्येनोच्चार्यते यत्तद् व्यञ्जनम् । उक्तं च भाष्ये-'न पुनरन्तरेणाचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि सम्भवति' इति ।

एते च ककारादिहकारान्ता लोके प्रसिद्धा एव त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाः । तत्र कादयो मावसानाः पञ्चविंशतिः स्पर्शाः, ततश्चत्वारोऽन्तःस्थाः यरलवाः, ततश्चत्वार ऊष्माणः शषसहाः, चत्वारश्च यमसंज्ञका वेदे एव प्रसिद्धाः । अनुस्वारो, विसर्गः, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय एते चत्वारो वर्णाः । यमसहिता एतेऽयोगवाहपदेनापि उच्यन्ते, दुःस्पृष्टसंज्ञक एको वर्णः । स च 'अग्निमीले' इत्यादौ प्रयुज्यमानो डकार-

स्थानीयो लकारः। एतेषां संकलने त्रिषष्टिर्वर्णा भवन्ति। प्लुतऌकारस्यापि योजनया चतुष्षष्टिसंख्या भवति। अयं पक्षभेदः प्लुतऌकारस्वीकारमूलकः।

वर्णरत्नप्रदीपिकाशिक्षायामपि त्रिषष्टिर्वर्णाः प्रतिपादिताः। तत्र प्लुतऌकारस्य निर्देशो नास्ति। रङ्गवर्णस्यापि निर्देशो न वर्तते।

षोडशश्लोकीशिक्षायामपि त्रिषष्टिरेव वर्णाः परिसंख्याताः। ते च द्वाविंशतिः स्वराः, त्रयस्त्रिंशद् व्यञ्जनानि, चत्वारो यमाः, अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीयाश्च। अत्र स्वराणां द्वाविंशतिसंख्या-कथनेन दीर्घऌकारस्य स्वीकार एतन्मते नास्ति–इति प्रतीयते। गौतमीशिक्षायां त्रयस्त्रिंशद् व्यञ्जनानि, चत्वारो यमाश्च निर्दिष्टाः, स्वराणां निर्देशेऽपि संख्या न निर्दिष्टा, रङ्गाभिधोऽपि वर्णो नात्र निर्दिष्टः। तथापि अप्रतिषिद्धं परमतमनुमतमिति नियमेन पाणिनीयादिशिक्षावदेव संख्या-विषये व्यवस्था मन्तव्या।

स्वराष्टकशिक्षायामष्टौ स्वरा उक्ताः। व्यञ्जनानां निर्देशेऽपि संख्या नोक्ता। अन्ते प्रत्याहारसूत्राणि लिखितानि। तेन ज्ञायते यत् पाणिनीयवर्णसंख्या-विषये एव सम्मतिरस्याः शिक्षायाः।

याज्ञवल्क्यशिक्षायां स्वराः, स्पर्शाः अन्तःस्थाः, ऊष्माणः, इत्येवंरीत्या वर्णानां निर्देशः कृतोऽस्ति। ततश्च–अनुस्वारजिह्वामूलीयोपध्मानीयनासिक्यानुनासिक्यरङ्गा यमाश्चापि सन्ति प्रतिपादिताः। परन्तु संकलनं कृत्वा संख्या नोक्ता। अस्यां स्थितौ 'अप्रतिषिद्धं परमतमनुमतं भवति' इति न्यायेन अष्टषष्टिर्वर्णा एतन्मते वक्तुं शक्यन्ते। तथा हि दीर्घऌकारस्य संग्रहेण त्रयोविंशतिः स्वराः, त्रयस्त्रिंशत् स्पर्शान्तःस्थोष्माणः, विसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीयनासिक्यानुनासिक्यरङ्गाः इति षट्, चत्वारो यमाः, ह्रस्वो दीर्घश्चेति द्वावनुस्वारौ–एते संकलिता अष्टषष्टिर्भवन्ति।

लोमशी–पाराशरी–लघ्वमोघानन्दिनीशिक्षासु ह्रस्वदीर्घभेदेन अनुस्वारस्य द्वैविध्यं प्रतिपादितमस्ति। पाणिनीयशिक्षायां तु एकविध एवानुस्वार उक्त इति विवेकः।

एवमेव वाजसनेयप्रातिशाख्ये, तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये, ऋक्प्रातिशाख्ये, अग्निपुराणादौ च वर्णानां स्वरूपस्य संख्यायाश्च विषये भूयान् विचारः कृतोऽस्ति, तत्र तत्र स द्रष्टव्यः। इदमत्रावधातव्यम्–वर्णानां स्वरूपसंख्यादिविषये योऽयं विरोधो दृश्यते, तत्रेदं समाधानं सामान्यतो ज्ञेयम्–यत् स्थानादिभेदेन स्थानादीनामन्यान्यरूपेण सांकर्य्येण विद्यमाना अनन्ता वर्णाः, न तान् साकल्येन कश्चिदपि निश्चेतुं शक्नोति। न हि सर्वे वर्णाः सर्वत्रैव भाषासु वेदेषु वा प्रयुज्यन्ते। अतः शिक्षा-

दयोऽपि भाषाविशेष—शाखविशेषविषयका एव, न तु भाषासामान्यविषयका वेदसामान्यविषयका वा इति स्वीकरणीयम् । ये च वर्णा यत्र न निर्दिष्टाः, ते तन्मते सर्वथा न सन्ति, इति न मन्तव्यम्, तच्छाखायामनुपयुक्तत्वान्न निर्दिष्टा इत्येव मन्तव्यम् ।

इदमपि ध्येयम्—यद् अद्यत्वे भाषायां 'ड़-ढ़-क़-ज़-फ़' इत्येवमादयो बहवोऽपभ्रष्टा वर्णा उच्चार्यन्ते, तेषां साधुत्वमत्र संस्कृतवाङ्मये नास्ति तदुच्चारणे पुण्यविशेषावाप्तिर्न भवति, इत्येव तात्पर्यम्, अर्थबोधने तद्घटितशब्दानां सामर्थ्यं भवतु नाम ।

अस्तु—प्रकृतशिक्षासंग्रहग्रन्थस्य सम्पादने भूयान् विलम्बः सञ्जातः, एतदर्थं विश्वविद्यालयपक्षतः पाठकमहोदयानभिमुखीकृत्याहं क्षमां याचे । अस्य ग्रन्थस्य सम्पादनकार्ये पण्डितप्रवर-ग्रन्थाध्यक्षचर-पालिविभागाध्यक्ष-श्रीलक्ष्मीनारायणतिवारी, प्रकाशनाधिकारिपदमलङ्कुर्वच्छ्रीहरिश्चन्द्रमणित्रिपाठि, व्याकरणविभागे प्राध्यापकपदमधितिष्ठद् व्याकरणशास्त्ररहस्यविच्छ्रीराममनोहरमिश्र, अत्यन्तं जीर्णं–तत्र तत्र विकृतं च शिक्षाग्रन्थमाधारीकृत्य महता परिश्रमेण पाण्डुलिपिं परिष्कर्तृविद्यावारिधि-श्रीनलिनीकान्तत्रिपाठि, प्राग्रूप (प्रूफ) संशोधनकार्ये मनोयोगं कृतवच्छ्रीहरिबंशकुमारपाण्डेय–महोदयाः सातत्येन धन्यवादार्हाः शुभाशीर्वादार्हाश्च सन्ति; यदीयसहयोगेन विघ्नपङ्के निमग्नोऽयं ग्रन्थः प्रकाशमानीतः।'सर्वे भवन्तु सुखिन' इत्युक्त्वाऽवश्यंभूतानां त्रुटीनां कृते भूयो भूयः क्षमां प्रार्थयमानो भवानीविश्वनाथयोः पादपङ्कजेषु भूयसीं सार्वदिकीं च प्रणतिततिं विदधानो विरमति—

वाराणस्याम्
विजयदशम्याम्
भौमवासरे,
सं० २०४६ वैक्रमे

**रामप्रसादत्रिपाठी**
सम्मानिताध्यापकः,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये

याज्ञवल्क्यऋषिप्रणीता

# याज्ञवल्क्यशिक्षा

अथ याज्ञवल्क्यकृता यजुःशाखीयोपयोगिनी शिक्षा मूलमात्रं किञ्चिट्टिप्पणीयुताऽऽरभ्यते। अथातस्त्रैस्वर्यलक्षणं व्याख्यास्यामः।

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च तथैव तत्[1]।
लक्षणं वर्णयिष्यामि दैवतं स्थानमेव च[2] ॥१॥

शुक्लमुच्चं विजानीयान्नीचं लोहितमेव च।
श्यामं तु स्वरितं विद्यादग्निरुच्चस्य दैवतम् ॥२॥

नीचं[3] सोमं विजानीयात् स्वरिते सविता भवेत्।
उदात्तं ब्राह्मणं विद्यान्नीचं क्षत्रियमेव च ॥३॥

वैश्यं तु स्वरितं विद्याद् [4]भारद्वाजमुदात्तकम्।
नीचं गौतममित्याहुर्गार्ग्यं तु स्वरितं विदुः ॥४॥

विद्यादुदात्तं गायत्रं नीचं त्रैष्टुभमेव च।
जागतं स्वरितं विद्यादेवमेव नियोगतः ॥५॥

गान्धर्ववेदे ये प्रोक्ताः सप्त षड्जादयः स्वराः।
त एव वेदे विज्ञेयास्त्रय उच्चादयः स्वराः ॥६॥

---

१. तत्—तेषामुदात्तादीनाम्।
२. चकाराद् गोत्रादिकमपि।
३. नीचे सोममिति 'क' पुस्तक पाठः।
४. उदात्तं तु भरद्वसुम्।

उच्चौ[१] निषादगान्धारौ नीचावृषभधैवतौ ।
शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्जमध्यमपञ्चमाः ।।७।।
निमेषो[२] मात्राकालः स्याद् विद्युत्कालेति चापरे ।
अक्षरातुल्ययोगत्वान्[३] मतिः स्यात् सोमशर्मणः ।।८।।
सूर्य्यरश्मिप्रतीकाशात् कणिका यत्र दृश्यते ।
आणवस्य[४] तु सा मात्रा मात्रा तु चतुराणवी ।।९।।
मानसे चाणवं विद्यात् कण्ठे विद्याद् द्विराणवम् ।
त्रिराणवं तु जिह्वाग्रे निस्सृतं मात्रिकं विदुः ।।१०।।
अवग्रहे[५] तु यः कालस्त्वर्धमात्रा विधीयते ।
पदयोरन्तरे काले एकमात्रा विधीयते ।।११।।
ऋचोऽर्धे[६] तु द्विमात्रः स्यात् त्रिमात्रः स्यादृगन्तके ।
रिक्तं तु पाणिमुत्क्षिप्य द्विमात्रे धारयेद् बुधः ।।१२।।
एकमात्रो[७] भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम् ।।१३।।

---

१. श्लोकद्वयमधिकम् ‘क’ पुस्तके ।। तद्यथा–षड्जो वेदे शिखण्डी स्याद् ऋषभः स्यादजामुखे । गावो रम्भन्ति गान्धार क्रौञ्चाश्चैव तु मध्यमम् ।।१।। कोकिलः पञ्चमो ज्ञेयो निषादं तु वदेद् गजः । आश्वश्च धैवतो ज्ञेयः स्वराः सप्त विधीयते ।।२।। इति पाठो बोध्यः ।

२. अत्र निमेषलक्षणं यथा–अक्षिपक्ष्मपरिक्षेपो निमेषः परिकीर्तितः । इति ।

३. अक्षराणां तुल्येन समकालेन युज्यते इति योगः । न तुल्ययोगः, अतुल्ययोगः । अतुल्ययोगस्य भावः अतुल्ययोगत्वं तस्माद् वर्णानामसमानसबन्धाद् एकमात्राकालता भवतीत्यर्थः ।।

४. अणुत्वस्य तु इति ‘ख’ पुस्तकपाठः ।

५. अवग्रहे तु कालः स्यादिति ‘ख’ पुस्तकपाठः । किन्नामावग्रहत्वम् । प्रा. अ. ५ सू. १ ‘समासेऽवग्रहो ह्रस्वसमकालः’’ इत्यनुशासनात् पाठे समासविशिष्टस्य पदस्य पूर्वभागे एकमात्राकाल विरम्याग्रिमपदोच्चारणं कर्तव्यम् । तत्र याज्ञवल्क्यमतेनार्धमात्रिककालो विराम उक्तः, कुतः ? याज्ञवल्क्यस्य योगसामर्थ्यात् ।

६. ऋचार्धे इति ‘ख’ पुस्तकपाठः ।

७. त्रयोदशपद्यं ‘ख’ ‘छ’ पुस्तके नास्ति ।

विवृत्तौ चावसाने तु ऋचोऽर्धे च तथा परे ।
पदे च पादसंस्थाने शून्यहस्तो विधीयते ॥१४॥
प्रणवं तु प्लुतं कुर्याद्व्याहृतीर्म्मात्रिका विदुः[1] ।
चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रां वायसोऽब्रवीत् ॥१५॥
मयूरस्तु त्रिमात्रां वै मात्राणामिति संस्थितिः ।
वर्णो जातिश्च मात्रा च गोत्रं छन्दश्च दैवतम् ॥१६॥
एतत्सर्वं समाख्यातं याज्ञवल्क्येन धीमता ।

**अथाध्ययनविधिः—**

प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ॥१७॥
सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान्समारभेत् ।
हस्तौ तु संय्यतौ धार्य्यौ[2] जान्वोरुपरि संस्थितौ ॥१८॥
गुरोरनुमतिं कुर्यात्पठन्नान्यमतिर्भवेत् ।
ऊरुभागे तृतीयेऽधः[3] करं न्यस्याथ दक्षिणम् ॥१९॥
प्रसन्नमानसो भूत्वा[4] किञ्चिन्नम्रमधोमुखः ।
कूर्म्मोऽङ्गानीव संहृत्य[5] हस्तदृष्टिर्दृढं मनः ॥२०॥
स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः ।
नाभ्या हन्यान्न निर्हन्यान्न गायेन्न च कम्पयेत् ॥२१॥
यथादावुच्चरेद्वर्णांस्तथैवैतान्समापयेत्[6] ।
निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्तयेत्[7] ॥२२॥

---

१. चाषः स्वर्णचूडनीलाङ्गपुण्यदः पक्षिविशेषो नीलकण्ठ इत्युच्यते ।
२. जानुनोरिति 'क' पुस्तकपाठः ॥
३. ऊरुभागे तृतीयेऽथ कर्पूरं न्यस्य दक्षिणं इति 'घ' पुस्तकपाठः ।
४. किञ्चिन्निम्नैकदृङ्मुख इति 'ग' पुस्तकपाठः ।
५. चेष्टां दृष्टिं दृढं मन इति 'क' पुस्तकपाठः ।
६. अयमेव क्रमसंहारयोग इत्युक्तं वाक्यपदीये—वृषभदेवीयटीकायाम्—१-१ ।
७. शास्त्रार्थमनुचिन्तयन् इति 'क' 'पुस्तकपाठः ।

[1]सममुच्चारयेद्वर्णान् हस्तेन च मुखेन च ।
स्वरश्चैवाथ हस्तश्च द्वावेतौ युगपत्स्थितौ ॥२३॥
हस्ताद्भ्रष्टः स्वराद्भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते ।
न करालो न लम्बोष्ठो[2] नाव्यक्तो नानुनासिकः ॥२४॥
गद्गदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान् वक्तुमर्हति ।
प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्तोष्ठौ यस्य शोभनौ ॥२५॥
प्रगल्भश्च विनीतश्च स वर्णान् वक्तुमर्हति ।
शङ्कितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तं सानुनासिकम् ॥२६॥
काकस्वरं[3] शीर्षगतं तथा स्थानविवर्जितम् ।
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम् ॥२७॥
व्याकुलं तालुहीनं च पाठदोषाश्चतुर्दश ।
संहिता[4] स्वारबहुला पदसंज्ञाभिराकुला ॥२८॥
क्रमसन्धिसमाकीर्णो दुस्तरो मन्त्रसागरः ।
ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ॥२९॥
साम्नां वा सरहस्यां च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
संहिता नयते सूर्यं पदानि शशिनः पदम् ॥३०॥
क्रमोऽपि नयते सूक्ष्मं[5] यत्तत्पदमनामयम्[6] ।
कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती ॥३१॥
क्रमेणावर्तयेद् गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा ।
यथा महाह्लदं प्राप्य क्षिप्तो लोष्टो विनश्यति ॥३२॥

---

१. सम्यगुच्चारयेदिति 'क' पुस्तकपाठः ।
२. लम्बौ ओष्ठौ यस्य सः । ओत्वोष्ठयोः समासे वा-इति पररूपम् ।
३. मूर्ध्नि गतं यथा इति 'ग' पुस्तकपाठः ।
४. सारबहुलः पदसंज्ञाभिराकुलः इति 'क' 'ग' पुस्तकयोः पाठश्च ।
५. यच्चैतन्यमनामयमिति 'क' पुस्तकपाठः ।
६. कालिन्दीति पदद्वयं 'ख' पुस्तके नास्तीति बोध्यम् ।

एवं दुश्चरितं सर्वं वेदे निवृत्ति[1]मञ्चति ।
आम्रपालाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः ॥३३॥

वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ।
खदिरश्च कदम्बश्च करवीरकरञ्जकौ ॥३४॥

एते[2] कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ।
तेनास्य करणं सूक्ष्मं माधुर्यं चोपजायते[3] ॥३५॥
त्रिफलां लवणाक्तेन[4] भक्षयेच्छिष्यकः सदा ।
क्षीणमेधाजनन्येषा[5] स्वरवर्णकरी तथा ॥३६॥

ज्ञातव्यश्च तथैवार्थो वेदानां क्रमसिद्धये ।
पठन्मात्रापपाठात् तु[6] पङ्के गौरिव सीदति ॥३७॥

आगमं कुरु यत्नेन करणं हि तदात्मकम् ।
चुलुन्नौका स्फुटो दण्डी स्वस्तिको मुष्टिकाकृतिः ॥३८॥
एते वै हस्तदोषाः स्युः परशुश्चेति सप्तमः ।
न चासौ मुष्टिबन्धी स्यान्न चात्युत्तममाचरेत् ॥३९॥
हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमुपगच्छति ॥४०॥
स्वरहीनं तु योऽधीते मन्त्रं वेदविदो विदुः ।
न साधयति यजूꣳषि भुक्तमव्यञ्जनं यथा ॥४१॥
ऋचो यजूꣳषि सामानि हस्तहीनानि यः पठेत् ।
अनृचो ब्राह्मणस्तावद्यावत्स्वारं न विन्दति ॥४२॥

---

१. निवृत्तिमञ्चति इति पाठो योजनीयः । अथवा-निर्गता वृत्तिर्यस्य तदिति दुश्चरित-विशेषणम् । सत्ताहीनं सत् मज्जति-शुद्ध्यति इत्यर्थो बोध्यः ।

२. सर्वे कण्टकिन इति 'क' पुस्तकपाठः ।

३. त्रिफलेत्यारभ्य पद्यद्वयं 'ख' पुस्तकपाठः ।

४. जलेनेति शेषो बोध्यः

५. क्षीणस्य-मेधाजननी-मेधावर्धयित्री ।

६. पठन्मात्रावसानस्तु इति 'क' पुस्तकपाठः ।

ज्ञातव्यश्च तथैवार्थो वेदानां कर्मसिद्धये ।
पाठमात्रावसानस्तु पङ्के गौरिव सीदति[१] ॥४३॥

हस्तेनाधीयमानस्य स्वरवर्णान् प्रयुञ्जतः ।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥४४॥

न कुर्वीत पदं दीर्घं न चात्यन्तविलम्बितम् ।
पदस्य ग्रहणं मोक्षं[२] यथा शीघ्रगतिर्हयः ॥४५॥

यथा वाणी तथा पाणी रिक्तं तु परिवर्जयेत् ।
यत्र यत्र स्थिता वाणी पाणिस्तत्रैव तिष्ठति ॥४६॥

यथा धनुष्यविततें शरे क्षिप्ते पुनर्गुणः ।
स्वस्थानं प्रतिपद्येत तद्वद्धस्तगतः स्वरः ॥४७॥

उत्तानं सोन्नतं किञ्चित्सुव्यक्ताङ्गुलिरञ्जितम् ।
स्वरविद्धं[३] करं कुर्यात्प्रादेशोद्देशगामिनम् ॥४८॥

मनुष्यतीर्थोच्चं[४] कृत्वा पितृतीर्थे जलं [५]व्रजेत् ।
नामितं करपृष्ठे तु सुव्यक्ताङ्गुलिमोक्षणम् ॥४९॥

अङ्गुष्ठस्योत्तरं पर्व[६]यवस्योपरि यद् भवेत् ।
प्रादेशस्य[७] तु यो देशस्तन्मात्रं चालयेत्करम् ॥५०॥

उदात्तं[८] भ्रुवि पातव्यम् प्रचं नासाग्र एव च ।
हृत्प्रदेशेऽनुदात्तं च तिर्यग्जात्यादिकाः स्वराः[९] ॥५१॥

---

१. स्वरवर्णां प्रयुञ्जानो हस्तेनाधीतमाचरन् इति 'ग' पुस्तकपाठः ।
२. पदस्य स्वरमोक्षं तु इति 'ख' पुस्तकपाठः । पदस्य ग्रहमोक्षौ चेति 'ग' पुस्तकपाठश्च ।
३. स्वरविच्च इति पाठो युक्तः । स्वरवेत्ता इत्यर्थः ।
४. मनुष्यतीर्थोच्चयमिति पाठो युक्तः ।
५. मनुष्यतीर्थस्यौन्नत्यादिति 'क' पुस्तकपाठः ।
६. अङ्गुष्ठस्योत्तरे पर्वे तर्जन्योपरि इति 'ग' पुस्तकपाठः ।
७. प्रादेशस्य तु सोद्देश इति 'ग' पुस्तकपाठः ।
८. उदात्तं भ्रूविपातेन प्रचयं नासिकाग्रत इति 'ग' पुस्तकपाठः ।
९. तिर्यग्जात्यादिरिति इति 'क' पुस्तकपाठः ।

स्वरिते त्र्यङ्गुलं विद्यान्निपाते तु षडङ्गुलम् ।
उत्थाने तु जात्यस्य हस्तस्यानुपथस्य च ।
तच्चतुर्भागमात्रं[1] तु भूयस्तेनैव वर्तयेत् ॥५३॥

अभ्यासार्थे[2] द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम् ।
शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद् वृत्तिं विलम्बिताम् ॥५४॥

ऐन्द्री तु मध्यमा वृत्तिः प्राजापत्या विलम्बिता ।
अग्निमारुतयोर्वृत्तिः सर्वशास्त्रेषु निन्दिता ॥५५॥

मुष्ट्याकृतिर्म्मकारे तु नकारे तु नखग्रहः[3] ।
अनुस्वारेऽङ्गुलिक्षेप[4] ऊष्मान्तेऽङ्गुलिमोक्षणम् ॥५६॥

ककारान्ते टकारान्ते ङणे चाङ्गुलिनामनम् ।
पञ्चाङ्गुल्यं पकारे तु तकारे कुण्डलाकृतिः ॥५७॥

ऊर्ध्वक्षेपाच्चयोष्मा स्यादधःक्षेपाच्च पातयेत् ।
एकैकामुत्सृजेद्धीरः[5] स्वरिते तूभयं क्षिपेत् ॥५८॥

स्वरिते समभिक्षिप्ते संयोगो यत्र दृश्यते ।
द्विमात्रिके क्षिपेदेकां मात्रिके तूभयं क्षिपेत् ॥५९॥

स्वरितं यद्भवेत्किञ्चिद् वकारं सह संयुतम् ।
त्रिरङ्गुलं ततो नीचं कृत्वा प्रासारयेद् बुधः ॥६०॥

स्वरितसञ्ज्ञे निक्षिप्ते संयोगो यत्र दृश्यते ।
ऊष्माणं तं विजानीयान्निःक्षेपादुभयोरपि ॥६१॥

---

१. चतुर्थभागमात्रमिति 'ग' पुस्तकपाठः ।

२. द्रुतमित्यस्य कोऽर्थस्तदुक्तं शब्दरत्नावल्याम् । अर्द्धमात्रंद्रुतं ज्ञेयं द्रुतार्द्धं वाऽप्यनुद्रुतमित्यर्थः ।

३. नखाग्रत इति 'ग' पुस्तकपाठः ।

४. अनुस्वारेऽङ्गुष्ठक्षेपः । अनुस्वारे द्वयोः क्षेप इति पाठद्वयं 'क'–'ख' योः पुस्तकयोर्ज्ञेयम् ।

५. एकैकाङ्गुलिविक्षेप इति 'क' पुस्तकपाठः ।

अङ्गुष्ठाकुञ्चनं लघावनुस्वारे[1] त्वपाꣳरसम् ।
दीर्घे रङ्गे[2] च तर्जन्याः प्रसारः परिकीर्त्तितः ॥६२॥

ह्रस्वादग्रं भवेद् दीर्घो दीर्घादग्रे भवेल्लघुः ।
संयोगे च परे ह्रस्वः[3] सिꣳह्यसि निदर्शनम् ॥६३॥

तर्जन्यङ्गुष्ठयोः स्पर्श उदात्तं प्रतिविद्यते ।
नीचं तु मध्यमां कुर्याच्छेषं नीचतरं क्रमात् ॥६४॥

अनुस्वारो द्विमात्रः स्याद् ऋवर्णव्यञ्जनोदये ।
ह्रस्वो वा यदि वा दीर्घं देवानाꣳ हृदये तथा ॥६५॥

स्वरितं यद् भवेत्किञ्चित्सवकारोष्मकं ततः ।
दीर्घं वा यदि वा ह्रस्वं निक्षेप उभयोरपि ॥६६॥

जात्ये च स्वरिते चैव वकारो यत्र दृश्यते ।
कर्तव्यस्तूभयोः क्षेमो[4] व्वायव्व्यैरिति दर्शनम्[5] ॥६७॥

शृङ्गवद्वाथ वत्सस्य कुमारीकुचयुग्मवत् ।
उभयक्षेपस्वरो यत्र स विसर्ग उदाहृतः ॥६८॥

विसर्गान्तः स्वरो यत्र स्वरितो यत्र दृश्यते ।
दीर्घश्चैव वकारश्च तत्रोभक्षेप उच्यते ॥६९॥

यथा[6] बालस्य सर्पस्य उच्छ्वासो लघुचेतसः ।
एवमूष्मा प्रयोक्तव्यो हकारं परिवर्जयेत् ॥७०॥

---

१. ९।३।

२. अत्र चकारादुदात्तस्थविसर्गे उदाहरणं यथा १४।४। 'अभि गृणन्तु देवाः' इत्यादि द्रष्टव्यम् । नकारस्य रुत्वे कृते सति योऽनुनासिको विधीयते, स रङ्ग इत्युच्यते । रञ्जयति पूर्ववर्णमिति रङ्गो वर्णविशेषः । यथाह नारदः—नकारः स्वरसंयुक्तश्चतुर्युक्तो विधीयते । रेफोरङ्गश्च लोपश्च अनुस्वारोऽपि वा क्वचित् ॥

३. ५।१०।

४. १९।२६।

५. उभयत्त्क्षेप इति 'क' पुस्तकपाठः ।

६. यथा बालभुजङ्गस्य उच्छ्वासो गतचेतस इति 'क' पुस्तकपाठः ।

त्रिविधा तु भवेदूष्मा प्रचिता बलका तरा।
स्वरिते प्रचितां विद्यान्निपाते बलकां विदुः ॥७१॥
उत्थाने तु तथा तारा[1] एताभिस्त्रिभिरूष्मभिः।
मात्रामादौ विदित्वा तु ततः क्षेपं प्रयोजयेत् ॥७२॥
[1]अक्षरं भजते काचित्काचिद्द्वित्वे प्रतिष्ठिता।
समानजातिका काचित्काचिदूष्मप्रदायिनी ॥७३॥
विवृत्तिप्रत्ययादूष्मां प्रवदन्ति मनीषिणः।
तामेव प्रतिषेधन्ति आ ई उ ए निदर्शनम् ॥७४॥
अष्टौ स्वरान्प्रवक्ष्यामि तेषामेव तु लक्षणम्।
जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टश्च तथाऽपरः ॥७५॥
तैरो व्यञ्जनसंज्ञश्च तथा तैरो विरामकः।
पादवृत्तो भवेत्तद्वत्ताथाभाव्य इति स्वराः ॥७६॥
एकपदे नीचपूर्वः सयवो जात्य इष्यते।
अपूर्वोऽपि परस्तद्वद्धान्यं कन्या स्वरित्यपि ॥७७॥

एकपद इत्याह। नीचपूर्वः सयकारवकारो वा जात्यः स्वरो भवति[2]। यथा [2]मनुष्यानिति। [3]सुप्वेति। [4]चम्वोवेति। [5]धान्यम्। [6]कन्या इव। [7]स्वः [8]व्यीर्यम्। एव ॐ ह्याह यानि-

१. अकारम् आकारं वा इति 'क' 'ख' योः पुस्तकपाठः।
२. ९ अ।३१। कण्डिका, एतदुदाहरणं पदपाठाद् बोध्यम्।
३. प्रथमे १। अ।३॥ कण्डिकास्थपदोदाहरणम्।
४. २० अ।क. ७०। तृतीयोदाहरणम्।
५. १।२०। ६. १७।९७।
७. १८।६४। ८. १२।९४। इदं संहितोदाहरणम्।

१. तरेति संज्ञाशब्दस्य तारा इति दीर्घोच्चारणं छन्दोभङ्गभिया कृतम्।
२. अपूर्वोऽपि सयकारः सवकारो वा जात्यः स्वरो भवति इति पाठोऽन्यत्र।

चान्यानीदृग्लक्षणानि पदानि भवन्तीति ।

ए ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो रिफितश्च यः ।
अकारो लुप्यते यत्र तं चाभिनिहितं[1] विदुः ॥७८॥

यथा [2]कुक्कुटः । असि । कुक्कुटोऽसि ।
[3]श्वात्रः । असि । श्वात्रोऽसि । [4]ते ।
अप्सरसाम् । तेऽप्सरसाम् । [5]ते । अवन्तु ।
तेऽवन्तु ।
[6]व्वेदः । असि । व्वेदोऽसि ।
[7]मारुतः । असि । मारुतोऽसि ॥
[8]कः । असि । कोऽसि ।
[9]भागः । असि । भागोऽसि ॥
[10]सः । अहम् सोऽहम् ।

एव ॐ ह्याह यानिचान्यानीदृग्लक्षणानि पदानि भवन्ति ॥

इ उ वर्णौ यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित् ।
अनुदात्ते परे नित्यं विद्यात् क्षैप्रस्य लक्षणम् ॥७९॥

यथा[11] त्रि । अम्बकम् त्र्यम्बकम् ।
[12]द्रु । अन्नः । द्रुन्नः [13]व्वीडु । अङ्गः ॥

---

१. अभिनिहत इत्यपि पाठः सिद्धान्तकौमुदी-तत्त्वबोधिनी, स्वरप्रकरणम्-पा. सू. ८।२।६।
२. १।१६ ।
३. ५।३१ ।
४. २४।३७ ।
५. १६।१७ ।
६. २।२१ ।
७. १८।४५ ।
८. ७।२९ ।
९. ६।१६ ।
१०. १८।३५ ।
११. ३।६० ।
१२. ११।७८।
१३. २९।५१ ।

व्वीड्वङ्गः।[1]व्वाजी। अर्व्वन्। व्वाज्ज्यर्व्वन्।
एव ऽँ ह्याह यानि चान्यानीदृग्लक्षणानि ॥
पदानि भवन्ति। इकारो दृश्यते
यत्र इकारेण च संयुतः।
उतात्तश्चानुदात्तेन प्रश्लिष्टो भवति स्वरः ॥८०॥
यथा[2] अभि। इन्वताम् अभीन्वताम्।
[3]अभीमम्। [4]वि। इहि। व्वीहि ॥
[5]स्रुचि। इव। स्रुचीव।
एव ऽँ ह्याह यानि चान्यानीदृग्ल-
क्षणानि पदानि भवन्ति ॥
उतात्तपूर्वो यत्किञ्चिद्व्यञ्जनेन युतः स्वरः[6]।
एष सर्वबहुस्वारस्तैरोव्यञ्जन उच्यते ॥८१॥
यथा[7]इडे। रन्ते। हव्ये। काम्ये। चन्द्रे।
ज्योते। अदिति। सरस्वति। महि। व्विश्श्रुति ॥
एव ऽँ ह्याह यानि चान्यानी-
दृग्लक्षणानि पदानि भवन्ति ॥
उदात्तावग्रहाद्यस्तु स्वरितः स्यादनन्तरः[8]।
तैरोविरामं तं विद्यात्तैरोव्यञ्जमन्यथा[9] ॥८२॥

---

१. ११।४४।
२. ११।६१।
३. ३८।७ अभि। इमम्। इति विग्रहो लेख्यः।
४. १२।२७।
५. २०।७०।
६. उदात्तपूर्वं यत्किञ्चिच्छन्दसि स्वरितं पदम् इति 'ख' पुस्तकपाठः।
७. ८।४३।
८. अवग्रहात्परो यस्तु स्वरितः स्यादनन्तरः। इति 'ख' पुस्तकपाठः।
९. तैरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः। इति 'ख' पुस्तकपाठश्च।

यथा [1] गोमदिति गो । मत् । [2]गोपंताविति गो । पंतौ । [3]प्रप्रेति प्र । प्र । [4]तातेति ता । ता । [5]विततेति वि । तता [6] समिद्धऽइति सम् । इद्धं ॥
एवं ७ँ ह्याह यानि चान्यानिदृग्लक्षणानि पदानि-भवन्ति ॥

[7]स्वरयोरन्तरे काले विवृत्तिर्दृश्यते यदि ।
सः स्वारः पादवृत्तः स्या त्काईमिति निदर्शनम् ॥८३॥

यथा [8]श्वित्रऽआदित्यनाम् । [9]काऽईम् । [10]पुत्रऽईधे ॥
एव ७ँ ह्याह यानि चान्यानीदृग्लक्षणानि पदानि भवन्ति ॥

उदात्ताक्षरयोर्म्मध्ये भवेन्नीचस्त्ववग्रहः ।
ताथाभाव्यो भवेत्स्वारस्तनूनप्त्रे निदर्शनम् ॥८४॥

[11]यथा तनूनप्त्रऽइति । तनू [12]नप्त्रे । तनूनपादिति । तनू । नपात् । [13]तनूनपातमिति । तनू नपातम् ॥
एव ७ँ ह्याह यानि चान्यानि ईदृग्लक्षणानिपदानि भवन्ति ॥

माध्यन्दिनविरोधी स्या[14]त्ताथाभाव्यस्तु यः स्वरः ।
स्वरौ नैवात्र दृश्येते भिन्नोदात्तानुदात्तकौ ॥८५॥

स्वरस्पर्शान्तस्थोष्माणः कण्ठ्यजिह्वामूलीयोपध्मानीयतालव्यमूर्धन्यदन्त्यौष्ठ्ययमविसर्जनीयरङ्गानुना -

---

१. २०।८१ । २. ३।१ ।
३. १२।३० । ४. २५।४० ।
५. २९।४० ।
६. २९।१ । इमान्युदाहरणानि पदपाठस्य बोध्यनीति ।
७. स्वरे च स्वरिते चैव विवृत्तिर्यत्र दृश्यते । पादवृत्तो भवेत्स्वारः ।
८. २४।३६ । श्वित्रऽआदित्येति निदर्शनम् इति 'ख' पुस्तकपाठः ।
९. २३।५५ । १०. ११।३३ ।
११. ५।५ । १२. २१।१० ।
१३. २८।२। इमान्युदाहरणानि संहितापदयोर्ज्ञातव्यानि ।
१४. तथाभाव्य इति 'क' पुस्तकपाठश्च ।

सिकनिपाताश्च किंवर्णदैवत्यलिङ्गाः । स्वराः शुक्ला नाना दैवत्याः । स्पर्शाः कृष्णाः । अन्तस्थाः कपिलाः । ऊष्माणोऽरुणाः । यमा नीलाः । नासिक्या हरिताः । अनुस्वारः पीतः । जिह्वामूलीयो रक्तः । उपध्मानीयः पीतः । विसर्जनीयः श्वेतः । रङ्गः शबलः । आनुनासिक्योऽतिनीलः । इत्यन्तर्मध्ययोर्नासिक्यं विद्यात् । द्विरुदात्ताख्या इतिस्मृताः । उदमनुदनिपाते आद्ये ये चोपसर्गे नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति । किंदेवत्याः । अक्षराणां च के पुरुषाः । काः स्त्रियः । कानि नपुंसकानि इत्यत्र ब्रूमः । कण्ठ्या आग्नेयाऽकारादयः । जिह्वामूलीया नैर्ऋत्याः ककाराः । तालव्याः सौम्याश्चकारादयः । मूर्धन्या वायव्याष्टकारादयः । दन्त्या रौद्र्यास्तकारादयः । औष्ठ्या-आश्विनाःपकारादयः । शेषा वैश्वदेवा इत्येवमादयः ॥

स्वरास्तु ब्राह्मणा ज्ञेया वर्गाणां प्रथमाश्च ये ।
द्वितीयाश्च तृतीयाश्च चतुर्थाश्चापि भूमिपाः ॥८६॥
वर्गाणां पञ्चमा वैश्या अन्तस्थाश्च तथैव च ।
ऊष्माणश्च[३] हकारश्च शूद्रा एव प्रकीर्तिताः ॥८७॥
शुक्लवर्णानि नामानि आख्याता रोहिता मताः ।
कपिला[४]स्तूपसर्गाश्च कृष्णाश्चैव निपातकाः ॥८८॥
भारद्वाजकमाख्यातं भार्गवं नाम भाष्यते ।
वासिष्ठा उपसर्गास्तु निपाताः काश्यपाः स्मृताः ॥८९॥
सर्वं तु सौम्यमाख्यातं नाम वायव्यमिष्यते ।
आग्नेयस्तूपसर्गः स्यान्निपातो वारुणः स्मृतः ॥९०॥

---

३. विसर्गश्चेति 'क' पुस्तकपाठः । पृथग्घकारग्रहणेन औरस्यहकारस्य ग्रहणं कर्त्तव्यम् । यस्मिन्पुस्तके विसर्गश्चेति पाठस्तत्रोष्मणां मध्ये द्वयोः कण्ठौरस्ययोर्ग्रहणं ज्ञातव्यमिति ।

४. कपिञ्जला इति 'ख' पुस्तकपाठः ।

आदित्यो मुनिभिः प्रोक्तः सर्वाक्षरगणस्य च ।
स्वरा विसर्जनीयाश्च यमाः पुंल्लिङ्गकाः स्मृताः ॥९१॥
पञ्चमाश्च तथान्तस्थाः स्त्रीलिङ्गाः परिकीर्त्तिताः ।
शेषाक्षराणि षण्ढानि प्राहुर्लिङ्गविवेचकाः ॥९२॥

सन्धिश्चतुर्विधो भवति । लोपागमविकाराः प्रकृतिभावश्चेति । तत्र लोपो यथा [1]अयक्ष्माः । मा । [2]शततेजाः । व्वायुः । शततेजा व्वायुः । [3]तिग्मतेजाः । द्विषतः । तिग्मतेजा द्विषतः । आगमो यथा [4]प्रत्यङ् । सोमः । प्रत्यङ्क्सोमः । [5]प्राङ् । सोमः । प्राङ्क्सोमः । [6]अस्मान् । सीते । अस्मान्त्सीते । [7]त्रीन् । समुद्दान् । त्रीन्त्समुद्द्रान् । विकारो यथा[8]—आ इदम् । एदम् ।[9] आ इमे । एमे । [10]आ इष्ट्यः । एष्ट्ट्यः । [11]प्र । इषितः । प्रेषितः । प्रकृतिभावो यथा—[12]आशुः । शिशानः । आशुः ऽशिशानः । [13]यु ञ्जानः । प्रथमम् । यु ञ्जानः ऽप्रथमम् । [14]अदितिः षोडशाक्षरेण । [15]देवो वः सविता ॥ आकाशस्था यथा विद्युत्स्फुटितामणिसूत्रवत् ॥

---

१. १।१ । २. १।२४ ।
३. १।२४ । ४. १०।३९ ।
५. १६।२ । ६. १२।६१ ।
७. १३।३० । ८. ४।१॥
९. ६।१८ । १०. १८।४१ ।
११. २१।५७ । १२. १७।३३ ।
१३. ११।१ । १४. ६।३३ ।
१५. १।१।

एषच्छेदो विवृत्तीनां यथा बालेषु कर्तरि ॥९३॥
द्वयोस्तु स्वरयोर्मध्ये सन्धिर्यत्र न दृश्यते ।
विवृत्तिस्तत्र विज्ञेया[1] यऽईशेति निदर्शनम् ॥९४॥
पिपीलिका पाकवती यथा वत्सानुसारिणी ।
वत्सानुसृजिता चैव चतस्रस्ता विवृत्तयः ॥९५॥
पिपीलिकाऽऽद्यन्तदीर्घा [2]नाभ्याऽसीन्निदर्शनम् ॥९६॥
पाकवत्युभयोर्ह्रस्वा[3] व्विनऽइन्द्र निदर्शनम् ।
वत्सानुसृजिता चान्ते[4] ता नऽ आवो ढमश्विना ॥९७॥
करिणी कुर्व्विणी चैव हरिणी हरिता यथा ।
तद्वद्धंसपदा नाम पञ्चैताः स्वरभक्तयः ॥९८॥
करिणी रहयोर्योगे कुर्विणी लशकारयोः ॥९९॥
या तु हंसपदा नाम सा तु रेफषकारयोः[5] ।
देवं बर्हिरिति करिणी[6] उपबल्हेति कुर्विणी ॥१००॥
हरिणी[7] दर्शतमिति[8] शतवल्शेति हारिता ।
[9]व्वर्षो व्वर्षीयसीत्याहुस्तथा हंसपदेति च ॥१०१॥
रलाभ्यां पर ऊष्माणो यत्र स्युःस्वरितोदयाः ।
स्वरभक्तिरसौ ज्ञेया पूर्वमाक्रम्य पठ्यते ॥१०२॥
स्वरभक्तिं प्रयुञ्जानस्त्रीन्दोषान्परिवर्जयेत् ।
इकारं चाप्युकारं च ग्रस्तदोषं तथैव च ॥१०३॥
एतल्लक्षणमाख्यातं याज्ञवल्क्येन धीमता ।
सम्यक्पाठस्य सिद्ध्यर्थं शिष्याणां हितकाम्यया ॥१०४॥

---

१. २२।२ ।
२. ३१।१३ ।
३. ८।४४ ।
४. २०।७४ ।
५. २१।४४ ।
६. २३।४६ ।
७. ११।३६ ।
८. ५।४५ ।
९. ६।११ हंसपदीति 'ख' पुस्तकपाठः ।

नैतत्स्वरितपूर्वाङ्गे नापराङ्गं कथंचन ।
न स्वरे न च मात्रायां कथं स्वारो विधीयते ॥१०५॥

पराङ्गस्य तु यत्पूर्वं पूर्वाङ्गस्य तु यत्परम् ।
उभयोरर्द्धसंय्योगे स्वारं कुर्याद् विचक्षणः ॥१०६॥

संय्योगे तु परं स्वार्य्यं परं संय्योगनायकम् ।
संय्युक्तस्य तु वर्णस्य न स्वार्य्यं पूर्वमक्षरम् ॥१०७॥

उदात्तादनुदात्तं तु वामाया भ्रुव आरभेत् ।
उदात्तात्स्वरितोदात्तौ क्रमाद्दक्षिणतो न्यसेत् ॥१०८॥

स्वरितादुत्तरे[1] ये च प्रचयाँस्तान् प्रचक्षते ।
एकस्वरानपि च तानाहुस्तत्त्वार्थचिन्तकाः ॥१०९॥

प्रचया यत्र दृश्यन्ते तत्र हन्यात्स्वरं बुधः ।
स्वरितः केवलो यत्र[2] मृदुन्तत्र निपातयेत् ॥११०॥

दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान्नृपः ।
एवं व्यञ्जनमासाद्य अकारो हरते स्वरम् ॥१११॥

उदात्तं नानुवर्तेत नीचं न स्वरितं तथा ।
विस्वरं तं विजानीयाद्दीर्घह्रस्वविवर्जितम् ॥११२॥

हरिवरुणवरेण्येषु धारा हि पुरुषेषु च ।
[3]वैश्वानरो नकारे च शेषास्तु स्वरिता नराः ॥११३॥

द्वौ वः स्वार्यौ च स्वरितौ[4] उदुत्तमं[5] त्वं वदुत्तमं वरु ।
धारे चैवोरुधारे तु पुरुधारे च दोहने[6] ॥[I]११४॥

१. येऽत्र इति 'क' पुस्तकपाठः ।
२. मृदुस्तत्र इति 'ख' पुस्तकपाठः ।
३. १८।७२ ।
४. १२।१२ ।
५. ३३।३२ ।
६. सहस्रधारमित्यर्थः ।

I. द्वौ वरुणौ च स्वरितौ (४) यदुत्तमं त्वं वरुण ।
धारे चैवासधारे तु पुरुधारे च दोहने ॥
( इति पाठभेदोऽन्यपुस्तके )

मात्रिकं वा द्विमात्रं वा स्वर्य्यते यदिहाक्षरम् ।
तस्यादितोऽर्द्धमात्रा स्याच्छेषं तु परतो भवेत् ॥११५॥
उच्चस्थानगते ह्रस्ते स्वरितं नोपपद्यते ।
अधस्तात्तु यदाऽऽगच्छेत्स्वरितं नापि तद्भवेत् ॥११६॥
उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान्नीचतरं तथा ।
अक्षराणि च तुल्यानि प्रचितान्युच्चगानि च ॥११७॥
स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च ।
स्वरप्रधानं त्रैस्वर्य्यं[1] व्यञ्जनं तेन सस्वरम् ॥११८॥
मणिवद् व्यञ्जनान्याहुः सूत्रवत्स्वर इष्यते ।
व्यञ्जनान्यनुवर्तन्ते यत्र तिष्ठति सस्वरः ॥११९॥
आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः ।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्ट[2]मितरे जनाः ॥१२०॥
प्रथमा यत्र दृश्यन्ते सन्धिस्थानेषु पूर्वतः ।
स्ववर्गीयेण सँय्युक्ता मोक्षं कुर्वीत तत्र वै ॥१२१॥
नकारान्ते पदे पूर्वे स्वश्रुतिः परतःस्थिते ।
तकारन्न प्रयुञ्जीत अत्र सन्धिं समुद्धरेत् ॥१२२॥
नकारान्ते पदे पूर्वे[3] श्म्मश्श्रुभिः परतः स्थिते ।
छकारं न प्रयुञ्जीत ञ्शसन्धिं समुच्चरेत् ॥१२३॥
[4]ओकारः प्लुतविज्ञेयः प्लुतमग्ग्ना[5] द्वितीयकम् ।
[6]लाजीञ्छाजीं तृतीयं च[7] विवेशेति चतुर्थकम् ॥१२४॥
[8]अधः स्विंदासीत्पञ्चमं चोपरि स्विदासीच्च षष्ठकम् ॥१२५॥

---

१. आचार्याः प्रवदन्ति हि । इति 'ख' पुस्तकपाठश्च ।
२. विक्रुष्टमित्यव्यक्तेऽर्थे वर्तते ॥
३. २५।१ ।
४. २।१३ ।
५. ८।१० ।
६. २३।८ ।
७. २३।४६ ।
८. २३।७४ ।

सप्तमं तु क्लिबे स्मारः अष्टमं नैव विद्यते ।
लृकारस्य तु दीर्घत्वं नास्ति वाजसनेयिनः ॥१२६॥
तकारान्ते पदे पूर्वे चकारे परतः स्थिते ।
मोक्षं तत्रापि कुर्वीत[१] यच्चं शुपे निदर्शनम् ॥१२७॥
ककारान्ते पदे पूर्वे लकारे परतः स्थिते ।
खसवर्णं विजानीयाद्भिषक्सोमॅन[२] दर्शनम् ॥१२८॥
ङकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थिते ।
कसवर्णं विजानीयात्प्राङ्क्सोमं[३] इति दर्शनम् ॥१२९॥
तकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थिते ।
थसवर्णं विजानीया[४]त्तत्सवितुर्निदर्शनम् ॥१३०॥
नैतन्माध्यन्दिनीयानां सस्थानत्वात्तयोर्द्वयोः ।
सस्थानेऽपि द्वितीयं स्यादापस्तम्बस्य यन्मतम् ॥१३१॥
टकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थिते ।
ठसवर्णं विजानीयात्सम्म्राट् सम्भृत[५] इति निदर्शनम्॥१३२॥
नकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थिते ।
तसवर्णं विजानीया[६]त्त्रीन्त्समु द्द्रान्निदर्शनम् ॥१३३॥
पकारान्ते पदे पूर्वे सकारे परतः स्थिते
[1]पसवर्णं विजानीयाद्र[७]प्प्स्वग्गनेति निदर्शनम् ॥१३४॥
पकारान्ते पदे पूर्वे शकारे परतः स्थिते ।
[2]पसवर्णं विजानीया[८]दनु ष्टुप्प्शारदी यथा ॥१३५॥

१. ६।७।
२. २१।२२।
३. १८।३।
४. ३।३५।
५. ३६।४।
६. १३।३१।
७. १२।३६।
८. १३।५७।

१. फसवर्णमित्यपि पाठः ।
२. पूर्ववदेव ।

मकारान्ते पदे पूर्वे मवर्णे परतः स्थिते ।
मसवर्णं विजानीयादिमम्मे[1] ति[2] निदर्शनम् ॥१३६॥
नकारान्ते पदे पूर्वे त्वंपदे परतःस्थिते ।
सकारं न प्रयुञ्जीत[3] चिकित्वान्त्वमिदं यथा ॥१३७॥
वर्णे तु मात्रिके पूर्वे अनुस्वारो द्विमात्रिकः ॥
द्विमात्रे मात्रिको ज्ञेयः संय्योगाद्यश्च यो भवेत् ॥१३८॥
अनुस्वारो द्विमात्रः स्याद्वर्णव्यञ्जनोदये ।
ह्रस्वाद्वा यदि वा दीर्घाद्दे वानाᳬ हृदये[4] यथा ॥१३९॥
अनुस्वारस्योपरिष्टात्संवृतं यत्र दृश्यते[5] ।
दीर्घं तं तु विजानीयाच्छ्रोता[6] ग्रावाणकं[6] यथा ॥१४०॥
अनुस्वारस्योपरिष्टात्सँय्योगो यत्र दृश्यते ॥
ह्रस्वं तं तु विजानीयात्स ँ स्थामिति[7] निदर्शनम् ॥१४१॥
अनुस्वारस्तु यो दीर्घादक्षराच्च भवेत्परः ॥
स तु ह्रस्व इति प्रोक्तो मन्त्रेष्वेव विभाषया ॥१४२॥
ओभावश्च विवृतिश्च सषशा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥१४३॥
यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥१४४॥
ओभावमागता [8]योष्मा तां तु केलिं विनिर्दिशेत् ।
[9]विवृत्तिप्रत्ययादूष्मा विज्ञेया विकटाननां ॥१४५॥

१. २१।१॥ २. इदं पदं 'ख' पुस्तके नास्ति ।
३. २६।२५ ॥ ४. १६ ४६ ॥
५. अनुस्वारस्योपरिष्टाद्विवृतं व्यञ्जनात्परमिति 'क' पुस्तकपाठः ॥
६. ६।२६ ॥ ७ १६।२६ ॥
८. उभावादुत्थितश्चोष्मेति 'ग' पुस्तकपाठः ॥
९. विवृत्तिं प्रति या ऊष्मेति 'ख' पुस्तकपाठश्च ॥

पादादौ च पदादौ च सँय्योगावग्रहेषु च ।
लीढाऽतिलीढा [1]विद्युच्च शषसेषु प्रकीर्तिता: ॥१४६॥
जिह्वामूले च रेफे च विज्ञेया [2]चपला यथा ।
उपध्मानीयसहिता पुष्पिणीं तां विदुर्बुधाः ॥१४७॥
अन्यत्र या भवेदूष्मा सुलभा ता विनिर्दिशेत् ।
ऊष्मप्राधान्यमेतस्य तस्मात्तां यत्नतोऽभ्यसेत् ॥१४८॥
पादाद्यन्तं[3] पदाद्यन्तं तथाऽवग्रहकालिकम् ।
ईषत्स्पृष्टं विजानीयात्तस्मिन्काले तु कारयेत्[4] ॥१४९॥
पादादौ च पदादौ च सँय्योगावग्रहेषु च ।
जः शब्द इति विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः ॥१५०॥
उपसर्गपरो यस्तु पदादिरपि दृश्यते ।
ईषत्स्पृष्टो यथा विद्युत्पदच्छेदात्परं भवेत् ॥१५१॥
त्वदर्थवाचिनौ वोवा वा वै यदि निपातजौ ।
आदेशाश्च विकल्पार्था ईषत्स्पृष्टा इति स्मृताः ॥१५२॥
विभाषया यकारः स्यात्तथा नेति पदात्परः ।
भवतीत्यपि पूर्वैव तथा च सपदादपि ॥१५३॥
यदेव लक्षणं यस्य वकारस्यापि तद्भवेत् ।
यत्र तत्र विशेषः स्यादिदानीं स तु कथ्यते ॥१५४॥
वकारस्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुर्लघूतरः ।
आदौ गुरुर्लघुर्मध्ये पदान्ते च लघूतरः ॥१५५॥
यवर्णस्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुर्लघूतरः ।
आदौ गुरुर्लघुर्मध्ये पदान्ते तु लघूतरः ॥१५६॥

---

१. लीढा विलीडा इति 'क' पुस्तकपाठः ॥
२. विकटा शठा इति 'ख' पुस्तकपाठश्च ॥
३. पाद्यं च तथाऽवग्रहकालिकमिति 'ख' पुस्तकपाठः ।
४. सुस्पृष्टं तं विजानीयात्तत्कालनिबन्धनमिति 'क' पुस्तकपाठः ॥

सन्धिजौ तु पदान्तीयावुपसर्गपरौ लघू ।
अथ मा स न शब्देभ्यो विभाषाम्रेडिते यवौ ॥१५७॥

पञ्चमादुत्तरो यो वो यदि चैकपदे भवेत् ।
संहितायां लघुः सोऽपि पदकाले गुरुर्भवेत् ॥१५८॥

जात्ये च स्वरिते चैव वकारो यत्र दृश्यते ।
उभयोरपि कर्त्तव्यो वायव्यै[2]रिति दर्शनम् ॥१५९॥

जात्ये च स्वरिते चैव यकारो यत्र दृश्यते ।
कर्तव्य उभयोः क्षेपः सदस्यै[3]रिति दर्शनम् ॥१६०॥

हकाररेफसंयुक्त ऋवर्णोदय एव वा ।
सुस्पृष्टं तं विजानीयाद्यकारो नान्ययुग्यदि ॥१६१॥

उपांशु[4] स्वरितं वापि योऽधीते वित्रसन्नपि ।
[5]अपरूपसहस्राणां सन्देहेषु प्रवर्तते ॥१६२॥

पञ्चविद्यां न गृह्णन्ति जडास्तब्धाश्च ये नराः ।
अलसाश्चातिरोगाश्च येषां च विस्मृतं मनः ॥१६३॥

अहेरिव गणाद्भीतः सम्मानान्नरकादिव ।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥१६४॥

न भोजनबिलम्बी स्यान्न च नारीनिबन्धनः ।
सुदूरमपि विद्यार्थं ब्रजेद् गरुडहंसवत् ॥१६५॥

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी सन्त्यजेत्सुखम् ।
सुखिनश्च कुतो विद्या[6] विद्यार्थिनि कुतः सुखम् ॥१६६॥

---

१. अतिसंस्पृष्टप्रयत्नेनोच्चारो गुरुरिति । सोऽथेति 'क' पुस्तपाठः ॥

२. १९।२८ ॥ ३. ७।४५ ॥

४. उपांश्वित्यप्रकाशरहस्योच्चारणयोरिति मनोरमाटीकाशब्दरत्नीयार्थकः । त्वरितमिति 'ख' पुस्तकपाठः ॥

५. अपि रूपसहस्राणां सन्देहे सः प्रवर्त्तत इति 'ख' पुस्तकपाठः ॥

६. कुतो विद्यार्थिनः सुखमिति 'ख' पुस्तकपाठश्च ॥

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥१६७॥

गुणिता शतशोविद्या सहस्रावर्तिता पुनः ।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ॥१६८॥

शतेन गुणिताऽऽयाति सहस्रेण च तिष्ठति ।
जप्त्वा शतसहस्रेण प्रेत्य चेह च तिष्ठति ॥१६९॥

जलमभ्यासयोगेन[1] शैलानां कुरुते क्षयम् ।
कर्कशानां मृदुस्पर्शं किमभ्यासान्न साधयेत् ॥१७०॥

शुश्रूषारहिता विद्या अपि मेधागुणैर्युता ।
बन्ध्येव युवती तस्य न विद्या फलिनी भवेत् ॥१७१॥

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन च ।
अथवा विद्यया विद्या[2] चतुर्थं नोपलभ्यते ॥१७२॥

हयानामिव जात्यानामर्द्धरात्रार्द्धशायिनाम् ।
न हि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति ॥१७३॥

यथा[3] पिपीलिकाभिश्च क्रियते पांसुसञ्चयम् ।
न बलन्नात्र सामर्थ्यमुद्यमस्तत्र कारणम् १७४॥

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा बल्मीकस्य च सञ्चयम् ।
[4]अबन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥१७५॥

अन्नव्यञ्जनयोर्भागौ तृतीयमुदकस्य च ।
[5]वायोः सञ्चरणार्थाय चतुर्थमुपकल्पयेत् ॥१७६॥

---

१. शिलानां कुरुतेऽल्पममिति 'ख' पुस्तकपाठः ॥
कुरुते पलमिति युक्तः पाठः !

२. चतुर्थो नोपलभ्यते । इति 'क' पुस्तकपाठः ॥

३. यथा पिपीलकैः पांसुर्वल्मीकं क्रियतेमहत् । इति 'ख' पुस्तकपाठः ।

४. अवध्यं दिवसमिति ख पुस्तकपाठः ॥

५. वायुसञ्चारणार्थायेति 'क' पुस्तकपाठः ॥

हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तस्थाभि[1]श्च सँय्युतम् ।
[2]औरसं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसँय्युतम् ॥१७७॥
हकारो यत्र पूर्वस्थः [3]अन्तस्थाच्च भवेत्परः ।
पदकाले वियुज्येत संहितायां स औरसः ॥१७८॥
मेघदुन्दुभिनिर्घोषः [4]श्रूयते पयसो ह्रदात् ।
एवं नादं [5]प्रकुर्वीत सिंहस्य रुदितं यथा ॥१७९॥
मासे भाद्रपदे मेघः शब्दं कुर्वीत [6]यादृशम् ।
एवं गह्वरमासाद्य [7]शुक्रं दुदुहे निदर्शनम् ॥१८०॥
शाखायां वानरा यद्वन्निपतन्त्युत्पतन्ति च ।
[8]एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः [9]इहेहैषां निदर्शनम् ॥१८१॥
यथा पुत्रवती स्नेहाच्चुम्बते निजमौरसम् ॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [10]युञ्जान इति दर्शनम् ॥१८२॥
दर्दुरोदरदेशौ तु [11]प्रफुल्लेते पुनर्यथा ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [12]अपाम्फेनेन दर्शनम् ॥१८३॥
यथा भारभराक्रान्ता निस्श्वसन्ति नरा भुवि ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या अद्भ्यःऽसम्भृत [13]इत्यपि ॥१८४॥

---

१. अन्तस्थैश्चापि सँय्युतमिति 'क' पुस्तकपाठः ॥
२. औरस्यं तमिति 'ख' पुस्तकपाठः ॥
३. हकारो यत्र पूर्वत्र अन्तस्थश्च भवेत्पर इति 'क' पुस्तक पाठः ॥
४. ज्ञायते इति 'ग' पुस्तकपाठः ॥
५. एवं नादं प्रयोक्तव्यमिति 'ग' पुस्तकपाठः ॥
६. मेघाः शब्दं कुर्वन्ति । इति 'ग' पुस्तकपाठः ॥
७. ३।१६॥ एवं नादं प्रकुर्वीतेति 'क' पुस्तकपाठः ॥
८. निपतन्नुत्पतन्ति चेति 'क' पुस्तकपाठः ॥
९. १०।३२ १०. ११।१॥
११. च उत्फुल्लेते इति 'ख' पुस्तकपाठः ॥
१२. १९।७१ ॥ १३. ३१।१७॥

कुक्कुटः कामलुब्धोऽपि [1]ककारद्वयमुच्चरेत् ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः कुक्कुटोऽसि [2]निदर्शनम् ॥१८५॥

वडवा च हयं दृष्ट्वा योनिं विकुरुते यथा ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या[3] स दुन्दुभे निदर्शनम् ॥१८६॥

यथा कामातुरा नारी शब्दं कुर्याद्दिने दिने ।
तच्छब्दं कुरुते प्राज्ञः सिंह्यसि [4]निदर्शनम् ॥१८७॥

पक्षौ वितत्य खे गृध्रो भ्रान्त्या सङ्कुच्य तिष्ठति ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [5]वार्ध्रीनसो निदर्शनम् ॥१८८॥

रङ्गे चैव समुत्पन्ने न ग्राह्यं पूर्वमक्षरम् ।
स्वरं दीर्घं प्रयुञ्जीत पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥१८९॥

यथा सौराष्ट्रिका नारी अराँऽइत्यभिभाषते ।
एवं रङ्गः प्रयोक्तव्यो [6]ङकारेण विवर्जितः ॥१९०॥

द्विमात्रो मात्रिको वापि नासामूलं समाश्रितः ।
अन्ते प्रयुज्यते [7]रङ्गः पञ्चमैः सानुनासिकः ॥१९१॥

अनन्तरं मकारस्य यो रङ्गस्तत्र [8]दृश्यते ।
सर्वानुनासिकं विद्यादेषा [9]मध्योपधानिका ॥१९२॥

यरलवाः शहसहा [10]रज्यन्ते चोपधानिकाः ।
वर्गान्ते रङ्गते यस्तु सर्वैः सर्वानुनासिकः ॥१९३॥

---

१. कामुको यद्वत् इति 'क' पुस्तकपाठः ॥

२. १।१६॥ ३. २८।२५॥

४. ५।१२॥ इदं पद्यं 'ख' 'ग' पुस्तकयोर्नास्ति । ५. २४।३६॥

६. ङकारेण तु वर्जित इति 'क' पुस्तकपाठः ॥

७. पञ्चमैः सर्वनासिकः ॥

८. यो रङ्गस्तत्र रज्यते । इति 'क' पुस्तकपाठः ॥

९. मन्योपधानिकेति 'क' पुस्तकपाठश्च ॥

१०. अष्टौ ते चोपधानिनः ॥

[1]नासादुत्पद्यते रङ्गः कांस्येन समनिःस्वरः ।
मृदुश्चैव द्विमात्रः स्याद्दृष्टिमाँऽइडे[2]तिनिदर्शनम् ॥१९४॥
यथा व्याघ्री हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभिर्न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥१९५॥
मधुरं चापि नाव्यक्तम् सुव्यक्तं न च पीडितम् ।
सनाथस्यैव देशस्य न वर्णाः सङ्करं गताः ॥१९६॥
यथा सुमत्तनागेन्द्रः पदात्पादं निधापयेत् ।
[3]एवं पदं पदाद्यन्तं दर्शनीयम् पृथक्पृथक् ॥१९७॥
गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥१९८॥
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः [4]पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं गुरु लघुत्वं च षडेते [5]पाठका गुणाः ॥१९९॥
आवर्त्तते पदं यच्च द्विस्त्रिराम्रेडितं हि तत् ।
यथा च [6]धाम्निधाम्नेति [7]यजुषे यजुषेति च ॥२००॥
हीयते वर्द्धते वाऽपि पदं यत्र कृशोदरम् ।
उपचारः स विज्ञेय[8] उभे सुश्चन्द्र दर्शनम् ॥२०१॥
अथ सप्तविधाः संयोगपिण्डाः ।
अयस्पिण्डो दारुपिण्ड ऊर्णापिण्डो ज्वालापिण्डो ॥

---

१. वर्गान्ते रज्यते यस्तु सर्वैः सर्वानुनासिकः । इति 'क' पुस्तकपाठः ॥
२. ७।४० इदं पद्यं 'क' पुस्तके नास्ति ॥
३. पदात्पदं निधारयेत् इति 'क' पुस्तकपाठश्च ॥
४. पदच्छेदो यथास्वरमिति 'क' पुस्तकपाठः ॥
५. षडेते पाठके गुणा इति 'क' पुस्तकपाठश्च एतदग्रेऽर्द्धपद्यं 'चतुरक्षरषट्कं च निवर्त्तेत पुनः पुनः' इत्यधिकं ज्ञेयम् ॥
६. १।३० ॥ ७. १।३० ॥
८. १५।४३ ॥

मृत्पिण्डो वायुपिण्डो वज्रपिण्डश्चेति यमान्विद्याद-
यस्पिण्डान्तसान्तस्थान्दारुपिण्डवत् ।
अन्तस्थं यमवर्जन्तु ऊर्णापिण्डं विनिर्दिशेत् ॥२०२॥
अन्तस्थयमसंयोगे विशेषो नोपलभ्यते ।
अशरीरं यमं विद्यादन्तस्थं पिण्डनायकम् ॥२०३॥
ज्वालापिण्डान्सनासिक्यान्सानुस्वारांस्तु मृण्मयान् ।
सोपध्मान्वायुपिण्डांस्तु जिह्वामूले तु वज्रिणः ॥२०४॥

तत्रायस्पिण्डो यथा[1] अग्निं ॐ । [2] पत्न्कीं ं । [3] ।
तनच्च्मीति ।[4] यक्क्नेति । दारुपिण्डो यथा[5] ॥
अश्वः ।[6] सूर्य्यः ।[7] व्विल्म्मने ।[8] व्विश्श्व-
जनस्य ।[9] व्वीर्य्यम् । ऊर्णापिण्डो यथा[10] ।
अश्म्मन् ।[11] कृष्णः ।[12] अस्मिन् ।[13] ॥
कुक्कुटः ं ।[14] अमुष्मिन् ।[15] यस्मिन् ।[16] ।
अस्मै । इति । ज्वालापिण्डो यथा[17] ब्रह्म[18] ॥
व्वर्ह्लितमम्[19] गृह्लामीति । मृत्पिण्डो यथा[20] ।
सं स्थाम् ।[21] सं स्तुप्[22] । सिं ह्यसि ।[23] ॥

---

१. २३।१७ ।
२. २७।२० ।
३. १।४ ।
४. ३९।८ ।
५. २४।१ ।
६. ३।६ ।
७. १६।१५ ।
८. ५।२८ ।
९. १६।६ ।
१०. १७।१ ।
११. १।१ ।
१२. ३।१ ।
१३. १।१६ ।
१४. १७।२ ।
१५. २०।७८ ।
१६. ७।२० ।
१७. १३।३ ।
१८. १।८ ।
१९. ९।२ ।
२०. १९।२६ ।
२१. १५।५ ।
२२. ५।१० ।
२३. ५।२७ ।

उद्विं ॐ स्तभानेति। वायुपिण्डो यथा[1]।
उपहूतो द्यौष्पिता।[2] देव सवितु ं प्रसुव।[3]॥
यु ञ्जानःऽप्प्रथमम्। वज्रपिण्डो यथा[4] इष्कृतिः।
निष्कृती ं।[5] ऋक्क् सामयोरिति।[6]॥
हविष्कृ देहि।[7] दिवः ककुत्।[8] व्यदधु ं कृतिधेति।
प्रथमेन षकारेण सकारेणैव संयुतम्।
एतत्स्वरं समासाद्य[9] अग्निष्वात्तान्निदर्शनम्॥२०५॥
प्रथमेन ठकारेण षकारेण च संयुतम्।
एततस्वरं समासाद्य[10] अधिष्ठानं निदर्शनम्॥२०६॥
प्रथमेन णकारेण नकारेणैव संयुतम्।
एतत्स्वरं समासाद्य[11] त्रिणवस्त्रयस्त्रिं ०शो निदर्शनम्॥२०७॥
प्रथमेनैव रङ्गेण नकारेण च संयुतम्।
एतद्रञ्जितमासाद्य[12] वृष्ट्रिमाँ २॥ऽ इति दर्शनम्॥२०८॥
ककारादयो मकारावसानाः पञ्चविंशतिस्पर्शाः।
कृष्णाः व्याख्याताः शनैश्चरदैवत्याः॥
चत्वारोऽन्तस्था यरलवाः कपिला अग्निदैवत्याः।
चत्वार ऊष्माणः शषसहा अरुणा आदित्यदैवत्याः॥
एवं त्रयस्त्रिं० शद् व्यञ्जनानि स्पर्शोन्तस्थोष्मा-
णश्चेति। चतुर्विधं करणम् स्पृष्टमस्पृष्टं संवृतम्॥

---

१. २।११। २. ९।१।
३. ११।१। ४. १२।८३।
५. ४।९। ६. ११।५।
७. ३।१२। ८. ३१।१०।
९. १६।६१। १०. १७।१८।
११. १०।१४। त्रिषु पद्येषु प्रथममेव इति 'ख' पु० पाठः।
१२. ७।४०।

विवृतं चेति संवृता घोषा विवृता अघोषाः, ।
विंशतिर्घोषास्ते गजडदबा घझढधभाः-
ङञणनमा यरलवाश्चेति । त्रयोदशाघोषास्ते-
कचटतपाः खछठथफाः शषसाश्चेति । षड्विधम्-
आस्यप्रयत्नम् । संवृतं विवृतमस्पृष्टम् ।
स्पृष्टमीषत्स्पृष्टं चार्द्धस्पृष्टं चेति । तत्र-
अकारः संवृतो[1] ज्ञेय इतरे विवृताः स्वराः ।
सर्वे च ते स्युरस्पृष्टाः स्पर्शाः स्पृष्टा भवन्ति हि ॥२०९॥
ईषत्स्पृष्टास्तथान्तस्था ऊष्माणोऽर्द्धस्पृशः स्वराः ।
सामान्यं भजते वर्णः सस्थानकरणस्य हि ॥२१०॥
ऋलोर्मध्ये भवत्यर्द्धमात्रारेफलकारयोः ।
तस्मादस्पृष्टता न स्यादृल्कारनिरूपणे ॥२११॥
वर्गाणा प्रथमा द्वितीयाः शषसहाश्चाघोषाः, ।
घोषास्त्वन्ये दशधा वर्णा भवन्ति ॥
औरस्यकण्ठ्यमूर्धन्यतालव्यदन्त्यौष्ठ्यदन्तमूलीय -
जिह्वामूलीयमानुस्वाराश्चेति । तत्र द्वावौरस्यौ ह्व-
ह्य इति । त्रयः कण्ठ्या अवर्णहकारविसर्जनीया इति ॥
षण्मूर्धन्याः षकारः टवर्गश्चेति ।
नव तालव्या इवर्णचवर्गशकारैकारयकाराः ॥
अष्टौ दन्त्या ऌवर्णलकारसकारतवर्गा इति ।
अष्टावोष्ठ्या उवर्णवकारोपध्मानीयपवर्गा इति ॥
एको दन्तमूलीयो रेफः । पञ्च जिह्वामूलीयाः ॥
ऋ ᳵ कौ कवर्ग इति । चत्वारो यमाः-
कुँ खुँ गुँ घुँ इति । रुक्मेति प्रथमो ज्ञेयः ॥

---

१. अ अ (८।४।६८) सूत्रेणमहामुनिपाणिनिरपि अस्य संवृतत्वमाह ।

सक्थ्ना[1] इत्यपरो भवेत् ।[2] व्विद्‌ मा ।
ते तु तृतीयश्च[3] जम्भे दध्मश्चतुर्थकः ॥२१२॥
अपञ्चमैश्चैकपदे संयुक्तं पञ्चमात्परम् ।
उत्पद्यते यमस्तत्र सोऽङ्गं पूर्वाक्षरस्य[4] ॥२१३॥
पञ्चमाः शषसैर्युक्ता अन्तस्थैर्वाऽपि संयुताः ।
यमास्तत्र निवर्त्तन्ते श्मशानादिव बान्धवाः ॥२१४॥
आद्या मात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारौकारयोर्भवेत् ।
तालव्यस्य तथौष्ठ्यस्य द्वितीया च यथाक्रमम् ॥२१५॥
यादृशी रत्नवर्णाभा जपायाः कुसुमेऽथवा ।
तादृशं रञ्जयेद्वर्णं प्रान्ते नासिक्यमाचरेत्[5] ॥२१६॥
लाक्षारक्तं यथा तोयं नकारान्तं पदं[6] तथा ।
सर्वरङ्गं विजानीयाच्छत्रूनिति[7] निदर्शनम् ॥२१७॥
लुप्ते नकारे यत्स्वारं रञ्जन्ति शौनकादयः ।
आदिरङ्गं विजानीयान्न चासीदिव विन्दति ॥२१८॥
प्रथमस्थषकारेण तकारेण च संयुतम् ।[8] ।
एतदक्षरमासाद्य त्रिष्टुभेति[9] निदर्शनम् ॥२१९॥
प्रथमस्थषकारेण थकारेण च संयुतम् ।
एतत्स्वरं समासाद्या[10]धिष्ठानमिति दर्शनम् ॥२२०॥
चतुर्थं च तृतीयेन द्वितीयं प्रथमेन च ।
आद्यं मध्यं[11] तथान्त्यं च स्वरूपेणाभिपीडयेत् ॥२२१॥

---

१. २३।१९ । २. १२।१९ ।
३. १६।३४ ।
४. आपञ्चमैश्चैकपादः संयुक्तं पञ्चमाक्षरम् ॥
उत्पद्यन्ते यमास्तस्याङ्गं पूर्वाक्षरकस्य हि ॥ इति 'ख' पुस्तकपाठः ॥
५. नासिक्यमागतमिति 'ख' पुस्तकपाठः । ६. पदमित्यत्र स्वरमिति च 'ख' पुस्तकपाठः ।
७. ७।३७ । ८. एतत्स्वरं समासाद्येति 'ख' पुस्तकपाठः ।
९. २८।४० । १०. १७।१६ ।
११. पञ्चस्वाक्षरेणभि इति 'ख' पुस्तकपाठः ।

अवग्रहपदच्छेद उदात्तं दृश्यते यदि ।
स्वरन्तं स्वरितं प्राहुः सन्धौ तु स्वार्य्यते परम् ॥२२२॥
स्वरसन्धिविधानेन नीचोच्चं तु विधीयते ।
व्यञ्जनाद्वा स्वराद्वापि तत्सन्धौ स्वर उच्यते ॥२२३॥
उदात्तान्निहितः स्वारः स्वरितात्प्रचयो भवेत् ।
उदात्तात्स्वरिता[1]त्पूर्वो नान्य आपद्यते स्वरः ॥२२४॥
पदकाले यः स्वरितः संहितायां तथैव च ।
स्वरिताच्चेद्भवेत्पश्चात्स एव निचितः स्वरः ॥२२५॥
प्रथमाश्च तृतीयाः स्युः परे घोषवति स्थिते ।
पञ्चमाः पञ्चमे पाठे द्वितीयाः शषसेषु च ॥२२६॥
उदात्तान्निहतः स्वार्यः स्वरोदात्तौ न तत्परौ ।
स्वरितो यस्तथाभूतो ज्ञेयः स प्रचयः सदा ॥२२७॥
उच्चानुदात्तयोर्योगे स्वरितः स्वार उच्यते ।
ऐक्यं तत्प्रचयः प्रोक्तः सन्धिरेष मिथोऽद्भुतः ॥२२८॥
बह्वीर्जिह्वा यथा गृह्णात्यह्वा वह्निस्तथैव च ।
ब्रह्मरूपं विजानीयाद् गुरुमेवात्मनः सदा ॥२२९॥
यत्किञ्चिद् वाङ्मयं लोके सर्वमत्र प्रतिष्ठितम् ।
करोति तत्प्रदानं यत्तस्माद्ब्रह्ममयो गुरुः ॥२३०॥
विधिनाऽप्यविधिज्ञानमविधानान्न लभ्यते ।
अविधानपरो नित्यं प्रायश्चित्तीयते नरः ॥२३१॥
युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं न ग्राह्यं गुरुगौरवात् ।
सर्वशास्त्ररहस्यं तद् याज्ञवल्क्येन भाषितम् ॥२३२॥

**इति श्रीमहर्षियोगिवरयाज्ञवल्क्यप्रोक्ता शिक्षा समाप्ता ।**

---

१. पर्वन्नान्यमापद्यते स्वरितमिति 'ख' पुस्तकपाठः ।

# अथ वासिष्ठीशिक्षा

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि वासिष्ठस्य मतं यथा।
सर्वानुक्रममुद्धृत्य ऋग्यजुषोस्तु लक्षणम् ॥१॥

[1]अध्याये प्रथमे नवमेऽनुवाके पुराक्रूरस्येत्येका यꣳजूषि।
सर्वे मन्त्राः, सप्तदशोत्तरशतं यजूꣳषि प्रथमे ॥१।१७॥

द्वितीयेऽध्याये व्वीतिहोत्रमित्येषा तेऽग्न इति मरुतां-
पृषतीरिति, यम्परिधिमिति यजुरन्ताग्नेः प्रियं यजुः॥

सꣳस्रवभागा इति यजुरन्ता स्वाहा व्वाडिति-
यजुरेकेन सह मन्त्रं देवागातुविदऽइति द्वे।
सँव्वर्च्चसेति ये रूपाण्याधत्तेति द्वे द्वे द्वितीये।
द्वादशैवार्चः षट्सप्ततिर्यजूꣳषि ॥२।७६॥

तृतीयेऽध्याये समिधाग्निमिति चतस्र आयङ्गौरिति-
तिस्रोऽग्निज्ज्योतिरिति सप्त गायत्र्यः पूर्वाः-
पश्चैकपदान्तरे त्रिपदे उपप्रयन्त इति-
षडिन्धानाऽइति त्र्यवसाना महापङ्क्तिरूपाश्चेति-

सप्तगायत्र्य अध्यायास्तिस्रस्त्रिपदा उत्तराश्चतस्रो-
द्विपदाः सोमानमिति नवागन्मेति त्रिस्रो गृहा मेति॥

चतस्र उपहूता इति त्र्यवसाना महापङ्क्तिः प्रघासिन-
इति चतस्रः पूर्णा दर्व्वि द्वे अक्षन्नमीमदन्तेति-

---

१. अन्यानि पद्यानि क्वाचित्कभेदेन ऋग्युजुः परिशिष्टे लिखितानि।

षडेव रुद्रमिति चतस्र एतत्ते रुद्रेत्येकाऽऽस्तारपङ्क्ति-
र्जंपयजुरित्येके आयुषमित्येषा तृतीये ऋत्वस्त्रिषष्टि-
र्द्वाषष्टिर्वा चतुस्त्रिꣳशत् षट्त्रिꣳशद्वा यजूꣳषि ॥६३।३६॥

चतुर्थेऽध्याये एदमिति द्वे अत्यष्टी त्र्यवसाने ।
आवऽइत्येकाऽऽपो देवीरिति विश्वो देवस्येति ॥
दैवीन्धियमिति श्वात्राः पीता इति चाग्ने त्वमिति ।
त्वमग्ने व्वरव्यसि समरव्ये अभिन्त्यमित्येकैका ॥
परिमाऽग्ने इति द्वे अस्तब्भ्ना द्यामिति चतस्रो-
नमो मित्रस्येत्येका या ते धामानीति चैका चतुर्थे-
एकविंशतिर्विंशतिर्वा पञ्चषष्टिर्य्यजूꣳषि षट्षष्टिर्वा ॥२१।६६

पञ्चऽमेध्याये भवतन्नऽइति द्वे अꣳशुरꣳशुरिति-
प्रकृतिश्चतुरवसाना युञ्जतऽइति तिस्रो व्विष्णोर्न्नु-
कमिति तिस्रः पूर्वे यजुरन्ते व्विष्णवे त्वेति-
यजुरुभयतः परित्वेत्येका त्वꣳ सोमेति पञ्चाद्या-
गायत्र्यनवसाना जुषाण इत्येकपदा विराड्-
यजुरन्तोरु व्विष्णोऽइत्येषा बारद्वयं पञ्चमे-
सप्तदशर्च्चः पञ्चशोत्तरशतानि यजूꣳषि ॥१७।११५॥

षष्ठेऽध्याये या ते धामानीत्येका व्विष्णोः-
कर्म्माणीति द्वे इदमापो महापङ्क्तिस्त्र्यवसाना-
देवत्त्वष्टुरित्येका यदाहुरघ्न्याऽइत्यवसाना-
गायत्री चैका हविष्मतीरित्येका अमूर्य्या इत्येका-
ह्रदे त्वा शृणोत्त्वग्निरिति चतस्रो षत्ते सोमेति द्वे-
प्रागपागिति द्वे षष्ठे ऋचः सप्तदश-
अशीतिर्यजूꣳषि ॥१७।८३॥

सप्तमेऽध्याये वाचस्पतये इत्येकान्तस्ते इत्येका व्वायविति षड्यजुरन्ता सा यमेत्येकाऽयैँव्वेनऽइति-यजुरन्ते ये देवासऽइत्येका मूर्धानमित्येका-ध्रुवन्ध्रुवेणेति द्वे कोऽसीत्येका इन्द्राग्नीऽआगतमिति दश यजुरन्ता उदुत्यमिति चतस्रः सप्त-ऋचस्त्रिंशदेकादशोत्तरयजूꣳषि ।।३०।१११।।

अष्टमेऽध्याये कदाचनेति तिस्रो यजुरन्ताऽऽदित्ये-भ्यस्त्वेति यजु श्रदस्म्माऽइति द्वे अहं परस्ता-दित्येका समिन्द्रेति सप्तीरुꣳहीत्येकाऽग्नेरनी-कमिति तिस्रऽएजतु द्वे पूर्वा त्र्यवसाना-महापङ्क्तिर्म्मरुतो यस्येति द्वे आतिष्ठेति-यजुरन्तास्तिस्रो यस्मान्नेति द्वे द्वितीया यजुरन्ता-सह प्प्राणेनेति यजुरग्ने पवस्वेति चतस्रो यजुरन्ताऽऽजिघ्रेति द्वे व्विनऽइन्द्रेति व्वाचस्प्पति-मिति द्वे तिस्रोऽपि यजुरन्ता उपसृजन्निति द्वे युवन्तमिति त्र्यवसानेऽत्यष्टिर्य्योरोजमित्येका-चतुस्त्रिꣳ शतन्त्वऽइति तिस्रोऽष्टमे त्रिचत्वारि-ꣳ शत्यो यजूꣳषि त्रिचतुरुत्तरꣳ शतम् ।४३।१०४।।

नवमेऽध्याये देवसवितरित्येकाऽपाꣳरसमिति यजुरन्ते व्वाजस्यन्वित्येकाऽप्स्वन्तरवसाना-पुरऽउष्णिगिति व्वातो वेति तिस्रऽएषस्येति-षड्वाजस्येयमिति सप्ताग्ने सहस्वेति चैका नवमे-ऋचो द्वाविंशतिर्यजूꣳषि चतुरशीतिः ।।२२।८४।।

दशमेऽध्याये,अपोदेवा इत्येका, सधमादऽइत्येका,-हिरण्यरूपावित्येका, यजुरन्ता मित्त्रोऽसि वरुणोऽसि-

यजु। प्रपर्व्वतस्येत्येका प्रजापतेनेत्येव यजुर्म्मध्यायममुष्ययजुर्म्मातऽइन्द्रेत्येका हꣳ०-सऽइत्येका निषसादेत्येका व्वायुः पूतऽइति चतस्रो-दशमे ऋचो द्वादश, यजूꣳ०षि द्विरुत्तरशतम् ॥१२।१०२॥

एकादशेऽध्याये युञ्जानऽइत्यष्टौ, ऋचास्तोम-मित्यनवसाना गायत्री, हस्तऽआधायेत्येका यजुरन्ताऽऽनुष्टुभेनेति यजुः प्रतूर्तमिति चतस्रोऽन्त्या यजुर्गर्ब्भोर्व्वन्तरिक्षमिति यजुरन्वग्निरित्येका-दशापाम्पृष्ठमिति तिस्रस्त्वामग्नऽति षडपो देवीरिति-दश, नवमी त्र्यवसानान्त्यैकपदौषधय इति तिस्रऽआपोहिष्ठेति तिस्रो मित्रऽइति पञ्च, कृत्वायेत्येका मित्त्रस्येति तिस्रो विश्वो-देवस्याध्यायान्ताः सप्तदशैकादशे ऋचः षट्सप्ततिर्य्यजूꣳषि षड्विꣳ०शतिः ॥७६॥२६॥

द्वादशेऽध्याये ऋचां बाहुल्याद्यजूꣳषि दोग्ध्रियन्ते-शेषा ऋचो, व्विष्णोः क्रमोऽसीति चत्वारि हꣳ०सः शुचिषदित्यृक्त्वाद्यजुः स बोधि सूरिरित्यन्ते। विश्वकर्म्मणे स्वाहेति यजुः सञ्ज्ञानमसीत्यग्नेर्भ-स्मासीति चितस्थेति चिदसीति द्वे सजूरब्दऽइति। शेषाश्चतुर्दशोत्तरꣳ० शतमृचस्तत्र सुपर्णोऽसि-चतुरवसानाऽऽकृतिर्न्नमो भूत्याऽइति विराडेकपदा-द्वादशयजूꣳषि द्वादशे ऋचश्चतुर्दशोत्तरꣳ० शतम् ॥१२।११४

त्रयोदशेऽध्याये मयि गृह्णामि इति चतस्रोऽपाठा-सीत्येका मधुव्वाताऽइत्येकादश सम्यक्स्रवन्तीति-नवेमम्माहिꣳ० सीरिति षडाद्यानां पञ्चानान्तेषु-द्वे द्वे यजूꣳष्यध्यायान्ते लोकन्ताऽइन्द्रमिति तिस्रः-

प्रतीकोक्ता लोकम्पृण ताऽअस्येन्द्रँ व्विश्श्वाऽइति-
त्रयोदशे ऋचो द्वापञ्चाशद्यजूंषि सप्ताशीतिः ।।५२।८७।।

चतुर्दशेऽध्याये ध्रुवक्षितिरिति पञ्च चतस्त्रो-
यजुरन्ता मूर्द्धा व्वयऽइत्यनुवाकान्ते लोकन्ताऽइन्द्र-
मिति तिस्रऽइन्द्राग्नीऽइत्येका मूर्द्धासीति द्वे-
तयोर्मध्ये चतुर्दश यजूंषि छन्दोबन्धेन संगृह्य
सम्पद्यन्ते लोकन्ताऽइन्द्रमिति तिस्रश्चतुर्दशे-
प्रतीकोपादानं वर्ज्जयित्वा ऋचोऽष्टौ सह सप्तदश-
यजूंषि चतुःपञ्चाशदुत्तरंशतम् ।।१७।१५४।।

पञ्चदशेऽध्यायेऽग्नेजातान्निति द्वे अग्नेः पुरीषमित्ये-
काऽग्निर्म्मूर्द्धेत्येकत्रिंशत्त्राग्निं होतारमिति-
त्र्यवसानाऽग्ने त्वन्नऽइति द्विपदास्तिस्रो येनऽऋषयो-
ऽष्टौ लोकम्पृणेति चतस्रः पञ्चदशे ऋचः-
षट्चत्वारिंशद्यजूंषि नवतिः ।।४६।९०।।

षोडशेऽध्याये नमस्तऽइति षोडश द्रापेऽन्धसस्पत
इति सप्तदश षोडशे ऋचस्त्रयस्त्रिंशदुत्तरं-
शतम् ।।३३।१२९।।

सप्तदशेऽध्यायेऽश्मन्नूर्ज्जमिति चत्वारीमा-
मेऽअग्नऽइत्येकं नृषदे वेडिति पञ्चैन्द्रं दैवीरित्येक-
मित्युद्धृतानि यजूंषि एकादशर्च्चः पञ्चनवतिः ।।११।९५।।

अष्टादशेऽध्याये वाजस्य न्विति सप्त स नो-
भुवनस्येत्येका यास्तऽइति चतस्रोऽग्नि युनज्ज्मी-
त्याध्यायान्तऽऋचो नामेत्युद्धृत्य यजुर्य्यजुरेकोऽपरं-
सप्तविंशतिरष्टादशे ऋचः षट्त्रिंशं-
शद्यजूंष्यष्टषष्टिस्त्रीणि शतानि ।।३६।३६८।।

एकोनविंशेऽध्याये स्वाद्द्वीन्त्वा यजुरित्येका-
परीतऽइति चतस्रो ब्रह्मक्षत्रमिति द्वे नानाहीत्येका-
या व्याघ्रमिति आध्यायान्ताश्चतुरशीतिः-
पितृभ्यऽइत्युद्धृत्य तवेदं हविरिति त्र्यवसाना-
महापङ्क्ती रेतोमूत्रमिति द्वे त्र्यवसाने अवसानेऽप्य-
करी एकोनविंशे ऋचश्चतुर्णवतिर्य्यजूंषि
त्रिंशत् ॥९४।३०॥

विंशतितमेऽध्याये क्षत्रस्य योनिर्द्विपदा गायत्री-
निषसादेत्येका कोऽसीति षडन्त्या त्र्यवसाना-
महापङ्क्तिस्त्रयो देवा इति त्र्यवसाना पङ्क्तिर्ल्लोमा-
नीत्येका यद्देवा इति तिस्रः समुद्रे ते इति द्विपदा
विराडेका द्रुपदादिवमिति तिस्रः समाववर्त्तीत्येकाऽ-
भ्यादधानीत्यध्यायान्त्यः षड्वृष्टिभ्यऽउपयामेति-
यजुर्व्विंशतितमे ऋच्चश्चतुरशीतिर्य्यजूंषि-
चतुर्दश ॥८४।१४॥

एकविंशतितमेऽध्याये, इमम्मे व्वरुणेति विंश
शतिर्ऋचः शेषाणि होता यक्षदित्यारभ्याध्या-
यान्तानि यजूंषि त्रयस्त्रिंशदृचोऽष्टाविंश-
शतिर्यजूंषि त्रयस्त्रिंशत् ।२८।३३॥

द्वाविंशतितमेऽध्याये इमामगृभ्णन्नित्येका
योऽर्वन्तमिति च तत्सवितुरिति दश विश्वो
देवस्येत्येका द्वाविंशे ऋचस्त्रयोदश,
त्रयोदशोत्तरं शतं यजूंषि ॥१३।११३॥

त्रयोविंशतितमेऽध्याये हिरण्यगर्भऽइत्युत्सक्थ्याऽअव-
गुदमित्यध्यायान्ताः पञ्चचत्वारिंशत्त्रयोविंशे
ऋचोऽष्टापञ्चाशद्यजूंषि चतुर्व्विंशतिः ॥५८।२४॥

चतुर्विंशतितमेऽध्याये, अश्वस्तूपरऽइत्यारभ्याध्यायान्तानि सर्वाणि यजूंषि ॥

पञ्चविंशतितमेऽध्याये शादन्दद्भिरित्यारभ्य त्वचेत्यन्तं सर्वाणि यजूंषि जुम्बकायेति-द्विपदा हिरण्यगर्भ इत्यारभ्य हविष्मानित्यन्ताः-षट्त्रिंशदृचऽइमा नु कमिति षड्द्विपदाः पञ्चविंशऽऋचस्त्रिचत्वारिंशत् ॥४३॥

षड्विंशतितमेऽध्याये प्रियो देवानामित्येकाऽनवसाना बृहस्पतेऽअतीत्यध्यायान्ताश्चतुर्विंशतिः-षड्विंशे ऋचः पञ्चविंशतिः सप्त यजूंष्यष्टौ यजुरन्ताः ॥२५।१५॥

सप्तविंशतितमेऽध्याये समास्त्वाऽग्नऽइति-दशोद्धोऽअस्येति द्वादश पीवोऽन्नानीति द्वादशाभित्वा दश सँवत्सरोऽसीति यजुरेकं सप्तविंशे ऋचश्चतुश्चत्वारिंशद्यजुरेकम् ॥४४।१॥

अष्टाविंशतितमेऽध्याये होता यक्षदित्यादीनि-यजूंष्येवं सर्वाणि यजूंषि षट्चत्वारिंशत् ॥४६॥

एकोनत्रिंशेऽध्याये समिद्धोऽअञ्जन्निति सप्तपञ्चाशदृचऽआग्नेयः कृष्णग्रीवऽइत्यारभ्याध्यायान्तानि द्वात्रिंशद्यजूंषि ॥५७।३२॥

त्रिंशत्तमेऽध्याये देव सवितरिति तिस्रः पराणि सर्वाण्यध्यायान्तानि सप्तसप्तत्युत्तरं शतं यजूंषि ।३।१७७॥

एकत्रिंशत्तमेऽध्याये सहस्रशीर्षेति द्वाविंशतिर्ऋच एव ।२२॥

द्वात्रिंशतमेध्याये तदेवाग्निरित्यादय:
षोडशर्चस्तत्र तृतीया न तस्य प्रतिमेति द्विपदा
गायत्री हिरण्यगर्भो य: प्राणतो यस्येमे-
यऽआत्क्रमदा इति चतस्रोमा मा हिंसीदित्येका-
यस्मान्न जातऽइति द्वे आपो ह, यश्चिदिति द्वे एता:
प्रतीकोक्ता: सह पञ्चविंशतिरेव ।।२५।।

त्रयस्त्रिंशत्तमेऽध्यायेऽस्या जरासऽइत्याद्यध्या-
यान्ता: सर्वाऽऋच एव द्वाविंशति: प्रतीकोक्ता:
सहैकोनविंशति: शतमृच एव ।११९।।

चतुस्त्रिंशत्तमेऽअध्याये यज्जाग्रतऽइत्येवमादयोऽ-
ध्यायपर्यन्ताऽअष्टापञ्चाशदृच एव चतस्र:
प्रतीकोक्ता: सह द्वाषष्टिर्ऋचऽएव ।६२।।

पञ्चत्रिंशत्तमेऽध्यायेऽपेतो यन्त्वित्यादय-
ऽएकविंशतिर्ऋचो द्युभिरहोभिरित्येकं
यजुर्व्वायु: पुनात्विति चत्वारि यजूंषि-
अप नऽइत्येकमेकविंशदृच: षड्यजूंषि ।२१।६।।

षट्त्रिंशत्तमेऽध्याये यन्मऽइत्येका तत्सवितुरिति
षडिन्द्रो विश्वस्य विराड्द्विपदा शन्नोमित्रऽइति-
नवाहानिशमिति द्विपदा गायत्री नमस्त इति-
तिस्रस्तच्चक्षुरित्येका यजुर्मध्या पुरस्ताद्यजु-
र्यजुरन्ता षट्त्रिंशे विंशतिर्ऋचो यजूंषि ।
चैकविंशत्तमेऽध्याये युञ्जतऽइत्येका-
प्रैत्वित्येका धर्ता दिवऽइति द्वे हृदे त्वेका
सप्तत्रिंशे पञ्चर्चो यजूंषि एकत्रिंशत् ।।५।३१।।

अष्टत्रिꣳशेऽध्याये यस्ते स्तनऽइत्येका व्विश्वाऽ-
आशाऽइत्येकाऽश्विना घर्ममिति द्वे अभीममिति-
द्वे गायत्री बृहत्यौ मध्येऽनवसानाऽतिशक्वरी
वा समस्तत्र्यवसाना क्षत्रस्यत्वेति चतस्रऽउद्वय-
मित्येका यावती द्वे पयसो रेतऽइति गायत्र्यनवसाना-
चैकत्यष्टत्रिꣳशे त्रयोदश चतुर्दश वा ऋचो-
यजूꣳषि द्वापञ्चाशत् ।।१४।५२।।

एकोनचत्वारिꣳशत्तमेध्याये मनसः काममित्येको-
ग्रश्च भीमश्चेति च नवत्रिꣳशत्तमे ऋचो
द्वे यजुषी सप्तोत्तरशतम् ।।२।१०७।।

चत्वारिꣳशत्तमेऽध्याये ईशा व्वास्यमिति चतुर्दशाग्ने
नयेति च द्वे इति साप्तदशर्चो वायुरनिलमिति
द्वे यजुषी ओमिति वा गायत्री क्रतो इति-
त्रीणि यजूꣳषि हिरण्मयेन पात्रेणेति वा खम्ब्रह्मेति-
चत्वारिꣳ शत्तमे यजूꣳषि सप्त, ऋग्यजुषोः ।।
संख्याविभागः ।।१७।७।।

एकीकृत्वा ऋचः सर्वा मुनिषड्वेदभूमिताः ।।१४६७।।
अब्धिरामाथ वा ज्ञेया वसिष्ठेन च धीमता ।।१।।
एवं सर्वाणि यजूꣳषि रामाक्षिवसुयुग्मकाः ।।२८२३।।
अथवा पञ्चभिर्न्यूनाः संहितायां विभागतः ।।२।।

**इति ऋग्यजुःविभागात्मिका वासिष्ठी शिक्षा समाप्ता ।।**

---

१. एकीकृत्येत्युचितः पाठः च्व्यन्तस्याव्ययत्वेन गतित्वेन च नित्यसमासत्वात् कुगतिप्रादय इत्यनेन ।

# कात्यायनी शिक्षा

अथ कात्यायनी शिक्षाऽतिदुर्विज्ञेयत्वात्स्वरितस्यादौ । लक्षणमाह ।।

यदुदात्तात्परं नीचं स्वार्यं तत्परतो न चेत् ।
उदात्तात्स्वरितं वा स्याद्यत्र स्यात्स्वरितं वदेत् ।।[1]।।१।।

आद्यस्य पादत्रयस्यायमर्थः-पदकालीनं यदुदात्तात्परमनुदात्तमक्षरं दृश्यते तत्संहिताकाले स्वरितंकार्यम् । यदि तस्मात्परं सन्धिकाले पदकाले वा-तत्स्वरितमुदात्तन्न भवति । अथोदाहरणं यथा[2] ।।

अ॒ग्निन्दु॑वस्यत ।[3] त्वँय्यंविष्टुठ । अन्त्यस्य पादस्यायमर्थः । न केवलमुदात्तात्परमनुदात्तमक्षरं स्वार्यम् किं तर्हि यत्पदकाले स्वरितं तदपि संहितायां स्वार्यमेव न चेत्स्वरितोदात्तात्परम् । यथा[4] दे॒वस्य॑ त्वा ।[5] होता॑ऽद्ध्वर्य्युः ।।१।।

अथ स्वरितस्यापवादलक्षणान्तरमाह एकीभूतमुदात्तेन स्यादुदात्तमतः परम् । नीचं स्वार्यं-यथोक्तं चेद्यच्च स्यात्स्वरितान्वितम् ।।२।।

---

१. उदात्तं स्वरितं तस्मादेव स्यात्स्वरितं च यत् । इति 'ख' पुस्तक पाठः ।।
२. ३।१।। ३. १३।५२।।
४. १।१०।। ५. २५।२८।।

एकीभूतमुदात्तेन स्यादुदात्तमित्यर्थः। उक्तलक्षणम्-स्वरिते लक्ष्यमाणलक्षणमुदात्तम्प्रचयो वा यदा-संहिताकाले उदात्तेन सहैकत्वं गच्छति तदोदात्तमेव-भवति। ननु चात्यन्तभिन्नत्वात्स्वराणां न हि-वृक्षत्वशिंशपात्वयोरिवैकत्वं दृश्यतेऽतः कथमुच्यते। उदात्तेनैकीभूतमुदात्तं भवतीति उच्यते यत्पदकाले॥ स्वरद्वयस्थाने संहितायामेकस्वर मुच्चार्यते स-एकीभावोऽत्र विवक्षितो नान्यः सदा दृश्यतेऽतोन-दोषः। उदात्तस्यानुदात्तेन सहैकीभावे उदात्तो-भवति। उदाहरणानि यथा[1] प्रा॑र्पयतु।[2] विव्याधि-स्वरितस्योदात्तेन सहैकीभावे उदाहरणं यथा[3]-ज्ञ्य॒त्येऽवंसे—

[4]अपामीवाम्। यथोक्तं चेदित्यस्यायमर्थः। एकीभूतं यदुदात्तमुक्तलक्षणम।ऽउदात्तात्पर-मनुदात्तं संहितास्वरं तत्स्वार्यं यथोक्तं चेदिति। न चेत्स्वरितोदात्तमित्यर्थः। ननु यदुदात्तात्परन्नी-चमित्यनेनैवात्र स्वरितस्य प्राप्तत्वादिदं न-वक्तव्यमुच्यते, पदकालीनं यदुदात्तं ततः-परमनुदात्तमक्षरं स्वार्यमिति पूर्वमुक्तमिदानी-मेकीभूतेनेति लक्षणेन यत्संहितायामुदात्तमापादितं-ततः परमनुदात्तं स्वार्य्यमिति उच्यतेऽतो न-पुनरुक्तता। उदाहरणं यथा[5] प्रेते।[6] एर्हि॥

---

१. १।१॥
२. ३।२॥
३ ३४।२६॥
४. ३४।२२।
५. १७।४६।
६. २।२७।

प्रचितस्योदात्तेन सहैकीभावोदाहरणं यथा[१]- अश्श्वेभ्योऽश्श्वपतिभ्यः ।[२] अमीमदन्तातीतृपन्त । यच्च स्यात्स्वरितान्वितमित्स्यायमर्थः । न-

केवलमेकीभावान्निहितादुदात्तात्परमनुदात्तमक्षरं स्वार्य्यं किं तर्हि यदनुदात्तं स्वरितेन सहैकीभूतं भवति, तदपि स्वार्यं किं तर्हि यदनुदात्तं स्वरितेन सहैकीभूतं भवति स्वार्य्यमेव । यथोक्तं चेदित्यनुवर्तते तत्रोदाहरणानि यथा[३] स्वाहोग्र्यायं ।[४] गायत्रं छन्दोऽसि ।[५] इन्द्राश्विना । ननु स्वरितानुदात्तयो रेकीभावः स्वरितं[६] भवतीत्युक्तेः क उपयोगः ॥

उदात्तस्वरितयोरेकीभावे स्वरितस्योदाहरणे,[७]- उपोपेत्यत्रैवास्याप्यनुदात्तत्वादुच्यते । तत्र एक-पदगतस्य स्वरितादुपरितनस्योदात्तस्यानुदात्त-सञ्ज्ञां वक्ष्यति । तेनास्याप्यनुदात्तत्वादत्रोदाहरणे तु भिन्नपदत्वमतो न विरुद्धमिदमेवाल्पं वैलक्षण्यमालो-च्योदाहरणत्रितयमत्र दत्तम् । एकीभूतमुदात्तेन स्यादुदात्तमित्यस्यापवादमाह ॥

यदुदात्त इकारः स्यादनुदात्तेन संयुतः ।
इकारेण तदा स्वार्य्योऽभीन्धतामित्ययं यथा ॥१॥

उदात्तो यदेकारः पूर्वं, परेणानुदात्तेनैकीभूतो भवति ह्रस्वेनैवेकारेण तदा स्वरितो भवति संहितायाम् ।

१. १६।२४ ।
२. क्रमोदाहरणम् १९।३४ ।
३. ३९।११ ।
४. ३८।६ ।
५. पूर्वोक्तमुदाहरणं ज्ञेयम् ।
६. ३।३४ ॥ इमान्युदाहरणानि कुत्रचित्संहितायाः कुत्रचित् पदपाठस्य बोध्यानि ॥
७. स्वरितो भवति इति पाठो युक्तः ।

यदि स्वरितमुदात्तं वाऽतो न भवति, एतद्यावत्स्वरित-लक्षणं तावदनुवर्तते । अत्रोदाहरणं यथा[1] अग्नीन्ध-ताम् । एकीभूतमुदात्तेनेत्यस्य तत्परस्य चापवादकं लक्षणान्तरमाह-

पदकाले य एकार उदात्तः संहितोद्भवः ।
ओकारःस्वरसंयुक्तोऽयं न च स्वार्य्यं एव सः ॥४॥

अस्यार्थः स्पष्टः । उदाहरणे यथा संहितायाः-[2] अभीन्धताम् ।[3] तऽप्सरसाम् । न पदकालीने इत्यर्थः । अत्रोदाहरणम् ।[4] मारुतोऽसि । व्वेदोऽसि ।[5]

स्वरितं पदमध्यस्थमुदात्तेन समन्वितम् ।
पदकाले न पूर्व्वेण ततः स्वार्यन्तु यत्परम् ॥५॥

स्पष्टार्थः । उदाहरणं यथा[6] मातेव[7] । पितेव ॥ अत्र इवकारे विशेषमाह-

एकीभूताविकारौ चेदुदात्तस्वरितौ पदे ।
एकस्मिन्नेव तौ स्वार्य्यौ दीर्घपूर्वे तयोः परम् ॥६॥

स्पष्टार्थः ॥

पदस्य स्वरितस्थाने व्यञ्जनं जायते यदि ।
सन्धिकाले तदा नीचः स्वार्य्यः स्यात्तत्पुरः स्थितः ॥७॥

स्पष्टार्थः ॥ उदाहरणे यथा[8] यदत्त्युप ।[9] कत्त्यस्य ।

पदकाले यदा नादः स्वरितः स च इष्यते ॥
सन्धिकाले तदा तस्मात्स्वार्य्यः पूर्वपदे तु यः ॥८॥

---

१. ११।६१ । २. ११।६१ ।
३. २४।३७ । ४. १७।४५ ।
५. २।११ ६. ११।६१ ।
७. ३।१४ । ८. ११।७४ ।
९. २३।५७ ।

स्पष्टार्थः ।। व्यञ्जनं स्वरितात्पूर्वं पञ्चमेनान्वितं यदि ।
स्वरितादुत्तरं तस्मात्स्वार्य्यो नादस्त्वनन्तरः ।।९।।

द्विविधं स्वरितं भवति । एकः सन्धिकाले, एकस्तु पदकालेऽपि । एवं द्विविधादपि स्वरितात्परो यदि संहिताकाले वा पञ्चमव्यञ्जनयोः संयोगो भवति तदा स्वरितमुदात्तं कृत्वा तस्मात्स्वरितात्परतरो नादः स्वार्यः ।[1] वसोर्मन्दानमन्धसः ।[2] यदेनश्चकृम । प्रागुक्तकृष्णोऽकौ शब्दौ परशाखिनौ ।। क्वचिदुदात्तस्याप्यनुदात्तसंज्ञामाह ।।

तच्च नीचमिति ज्ञेयं यद्येकस्मिन्पदे भवेत् ।
प्रचयं स्वरितादूर्ध्वमुपोपेदित्ययं यथा ।।१०।।
नीचात्प्रचयतस्तस्मात्स्वरिता संहिता भवेत् ।
परेषां यत्तु पूर्वं स्यात्स्वरोच्चं नीचमेव तत् ।।११।।

अनयोरर्थः [3]कार्यानन्तरं प्रचयत्वं भवति । उभयत्रोदाहरणं यथा[4] रक्षाणो ब्रह्मणस्पते ।[5] सनो भुवनस्य पते ।[6] योगक्षेमो नः—कल्पताम् ।।

उदात्तलक्षणमाह-

उदात्तं पदकाले यत्संहितायां तथैव च ।।
तस्मात्पूर्वं तु यत्किञ्चिदनुदात्तं तदुच्यते ।।१२।।

अत्रोदाहरणं यथा[7] अग्निन्दुवस्यत ।[8] देवा देवानाम् ।। तथा सति तस्मादुदात्तत्वमेव न स्वरिता-

---

१. २६।११ ।
२. २।१३ ।
३. स्वार्यानन्तरमिति पाठो युक्तः ।
४. ३।३० ।
५. १८।४४ ।
६. २२।२२ । कात्यायनमहर्षिणा यत्स्पष्टतरा कारिका प्रतिपादिता तस्या व्याख्यान व्याख्यानकर्त्रा जयन्तस्वामिना सुलभत्वान्न कृतेति सुधियो विभावयन्तु ।
७. ३।१ ।
८. २१।५२ ।

नपि प्रचयम् । स्वरितस्यानुदात्तोदाहरणे[1] इन्द्रं दैवी । प्रचयस्यानुदात्तोदाहरणे[2] तिस्रो देवीः ।[3] कल्पमानाऽइन्द्रम् । लक्षणान्तरमाह-

यन्नीचं पदकाले तत्संहितायां तथैव च ।
उक्तं वा नीचहीनं चेत्पितृश्रवणं तद्भवेत् ॥१३॥

पदकाले यदनुदात्तं तत्संहिताकालेऽपि भवति । यदुदात्तात्परं नीचमित्यादिना रहितं च अत्रोदाहरणे, पितृश्रवणं स्वरितलक्षणचतुष्टयस्य जात्याभिनिहित-क्षैप्रप्रश्लिष्टस्य पितृदानवद्धस्तं कृत्वा स्वरयितव्य-मित्यर्थः ॥

**॥ इति जयन्तस्वामिनिर्मितव्याख्यानयुता**
**महर्षिकात्यायनप्रणीता शिक्षा समाप्ता ॥**

* * *

१. १७।८५ । २. ११।५४ ।
३. १३।२५ ।

# पाराशरोक्तक्रमीयचतुर्थी पाराशरीशिक्षा

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाराशरमतं यथा ।
यथा देवेषु विश्वात्मा यथा तीर्थेषु पुष्करम् ॥१॥

तथा पाराशरी शिक्षा सर्वशास्त्रेषु गीयते ।
प्रणवं तु प्रवक्ष्यामि तिस्रो मात्रास्त्रिदैवतम् ॥२॥

त्रिरूपं च त्रिवर्णं च त्रिस्थानं त्रिगुणं तथा ॥
अक्षराशीतिरेकश्च प्रथमा कण्डिका स्मृता ॥३॥

लक्षणोक्तप्रकारैस्तु[1] इषे त्वेति निदर्शनम् ॥
त्रीणि त्रीणि च चत्वारि दश पञ्चाष्टमं स्मृतम् ॥४॥

एकादशाक्षरं तद्वदुभयोरपि दृश्यते ॥
सप्तमं पञ्चमं चैव पुनश्चैकादशाक्षरम् ॥५॥

नवाक्षरं विजानीयाद्वाक्यं चैकादशाक्षरम् ॥
अन्त्यावसानाः षट् चैव पञ्चैतास्त्रिभिरर्द्धकाः ॥६॥

एका चतुर्थता ज्ञेया शेषा युग्मार्द्धकाः स्मृताः ॥
उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान्नीचतरं तथा ॥७॥

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः[2] इषेत्वेति निदर्शनम् ॥
सप्त त्रीणि चतुष्कं च वसुवर्णाः प्रकीर्त्तिताः ॥८॥
षट्द्व्यष्टौ च प्रपद्यन्ते द्वितीया कण्डिका स्मृता ॥
प्रथमं रुद्रसङ्ख्या वै सप्त सङ्ख्या द्वितीयकम् ॥९॥

---

१. ३।१।

२. पूर्वोक्तमुदाहरणं बोध्यम् ।

निधिसङ्ख्या तृतीयं स्याद्वसुसंख्या चतुर्थकम् ।।
पञ्चम वेदसंख्या च तृतीया कण्डिका स्मृता ।।१०।।
अष्टौ वाक्यं तथा पञ्च द्वितीया च तृतीयका ।।
चत्वारिंशत्तथा सप्त चत्वारिंशत्तथा नव ।।११।।
अक्षराणां प्रमाण च[1] व्वसौद्धौं च विभाषया ।।
चतुस्त्रिंशच्च नवतिरक्षराणां प्रमाणतः ।।१२।।
चतुर्थी कण्डिका प्रोक्ता मुनिः पाराशरोऽब्रवीत् ।।
सप्तमं नवमं चैव अष्टमं तु तथैव च ।।१३।।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः[2] व्वीतिहोत्रं निदर्शनम् ।।
उभयोः कण्डिकामध्ये न चोष्ठयं[3] विद्यते क्वचित् ।।१४।।
अग्निश्चैव यजुश्चैव अर्द्धा त्रीणि चतुष्टयम् ।।
दशाक्षराणि पञ्चैव[4] अग्निर्ज्योतिर्निदर्शनम् ।।१५।।
सप्ताक्षराणि चत्वारि[5] यमर्दग्नेरितिस्मृतः ।
दशाक्षरं च चत्वारि दशाक्षरं द्वादशाक्षरम् ।।१६।।
अन्ते युग्माक्षरं वाक्य[6] माकूत्यै च निदर्शनम् ।
नवाक्षरम् त्रयश्चैव त्रयश्चैव षडक्षरम् ।।१७।।
इति वाक्यानि विद्यन्ते[7] सि ॐ ह्यसीति निदर्शनम्[8] ।
यस्पंरिधि[9]मत्रं पितरो[10] अयं तै च[11] इडे तथा ।।१८।।
सकारेण विना चैव[12] यो देवेभ्यः पञ्चकण्डिका ।
अकाराद्या हकारान्ताश्चतुर्विंशतिरक्षराः ।।१९।।

---

१. १।१।२ ।
२. २।३ ।
३. चौष्ठयं विद्यते इति पाठो युक्तः ।
४. ३।९ ।
५. ३।६२ ।
६. ४।७ ।
७. ५।१० ।
८. २।:७ ।
९. २।३१ ।
१०. ३।१४ ।
११. ८।८३ ।
१२. ३१।२० ।

गायत्रीसदृशी प्रोक्ता पवित्रा यज्ञमध्यगा[1] ।
अग्निन्दूतं[2] व्वसन्तार्यं कपिञ्जलानां[3] प्रजापतये च द्वये ॥२०॥
ऊष्मान्ता प्रथमा शेषा स्वरान्ता वर्तिका परा ।
शुद्धा च प्रथमाध्यक्षा पीड्याध्यक्षा द्वितीयया ॥२१॥
[4]चिदसि, प्रथमा ज्ञेया [5]अम्मे भ्योऽथ पराभवेत् ।
ध्यक्षा ध्यक्षान्तयोः सम्यगुभयोः कण्डिकाद्वयी ॥२२॥
वकारे केवलो यत्र तत्र रेफोऽप्यधः स्थितः ।
दन्त्यश्चोपरि विज्ञेयं [6]यूपव्व्रस्वकेति निदर्शनम् ॥२३॥
नानुस्वारं न संयोगं विसर्गं नैव दीर्घता ।
केवलस्तत्र विज्ञेय एकारात्परतो हि यः ॥२४॥
मात्रा सह भवेद्दीर्घं ह्रस्वं मात्रा विना भवेत् ।
इत्यक्षरं विजानीयात्क्षिप्रं दीर्घं भवेदिति ॥२५॥
क्षिप्रं दीर्घं समाख्यातं अङ्गुल्यामेकमन्तरम् ।
दीर्घस्यार्द्धं भवेत्क्षिप्रं नास्ति दीर्घस्य दीर्घता ॥२६॥
यथा सङ्ख्या तु दीर्घस्य तथा चोष्मा प्रकीर्त्तिता ।
ऊष्मा दीर्घं समत्वं च क्षिप्रं कुर्यात्तदर्धकम् ॥२७॥
अनुस्वारस्योपरिष्टात्संयोगो दृश्यते यदि ।
ह्रस्वत्वं विजानीयात्सुँसुवभागास्थेति [7]निदर्शनम् ॥२८॥
अनुस्वारस्योपरिष्टात्संवृतं तत्र दृश्यते ।
दीर्घं तं तु विजानीयाच्छ्रोता ग्रावाणे[8]ति निदर्शनम् ॥२९॥

---

१. २२।१७ ।

२. २४।२० । इमान्युदाहरणानि संहितायां बोध्यानि ।

३. २४।२९।३० ।

४. ४।१६ ।

५. ३०।११ ।

६. २५।२९ ।

७. २।१८ ।

८. ६।२५ ।

अनुस्वारस्तु यो दीर्घादक्षराच्च भवेत्ततः ।
स तु ह्रस्व इति प्रोक्तो मन्त्रेष्वेव विभाषया ॥३०॥
अनुस्वारो द्विमात्रः स्याद्वर्णव्यञ्जनादिषु ।
दीर्घं तं तु विजानीया[1]द् देवानाठंहृदयेभ्य इति निदर्शनम् ॥३१॥
अनुस्वाराच्च संयोगः परतो दृश्यते यदि ।
ह्रस्वं तं तु विजानीयान्मन्त्रेषु ब्राह्मणेषु च ॥३२॥
ह्रस्वादग्रे भवेद्दीर्घो दीर्घादग्रे भवेल्लघुः ॥३३॥
अदीर्घो दीर्घतां याति नास्ति दीर्घस्य दीर्घता ।
संय्योगादिपरो नास्ति ह्रस्वो दीर्घस्य दीर्घता ॥३४॥
संय्योगादिपरो यत्र तत्र ह्रस्वं भवेद्ध्रुवम् ।
अभिनीतं निपातं वा जात्यं वा स्वरितं विदुः ॥३५॥
वाक्यकाले भवत्येव पाठकाले यथाक्रमम् ।
षडङ्गुलं तु जात्यस्य हस्तस्यानुपथस्य च ॥३६॥
चतुर्थभागमात्रं स्याद्भूयस्तेनैव वर्त्तयेत् ।
निपातं चाभिनीतं च शेषं नीचतरं क्रमात् ॥३७॥
त्रिस्वरं तं विजानीया[2]दाज्येनेति निदर्शनम् ।
नीचान्नीचतरं चैव पुनर्नीचं प्रयोजयेत् ॥३८॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [3]ओजोनेति निदर्शनम् ।
नादसंज्ञा भवन्तीमे ङञणनमाश्चानुनासिकाः ॥३९॥
भवन्ति प्रत्यये येषामन्तस्थाः संयुतास्तथा ।
हकारं चैव वर्गाणा तृतीयं च चतुर्थकम् ॥४०॥
अथ दीर्घविसर्गान्ता अष्टौ ते नादसञ्ज्ञकाः ।
नमौ गुरू नादसञ्ज्ञौ लघू चैवानुनासिकौ ॥४१॥

---

१. १४।४६ । २. २।९ ।
३. २८।५ ।

संय्योगौ च विसर्गौ च नादावेतौ प्रकीर्त्तितौ ।
पञ्चमा यत्र दृश्यन्ते पञ्चमे परतः स्थिते ।।४२।।
नासिकं तत्र कुर्वीत मात्रैकत्वे न संशयः ।
संय्युक्ताग्रे विरामस्तु विवृत्तिस्तु विशेषतः ।।४३।।
संय्युक्ताग्रे ह्यघोषस्तु नासिकं तु विधीयते ।
प्रत्यये च स्थिता ये च अघोषाः पञ्चमाः स्वराः ।।४४।।
पदान्ते संय्युता ह्रस्वाः पञ्चैवेतेऽनुनासिकाः ।
विवृतौ चाऽवसाने च ऋगर्द्धे च तथापरे ।।४५।।
पदे च पादसंस्थाने नासिकं तु विधीयते ।
हकारो रेफसंयुक्तो नादो भवति नित्यशः ।।४६।।
द्वितयेन पदाक्रान्तो न तु नादः कदाचन ।
आद्यन्तस्थौ सकारौ द्वौ हकारो यत्र मध्यगः ।।४७।।
उभौ नादौ प्रयुज्येताम्[1] अग्ने व्रतपते निदर्शनम् ।
नकारस्य मकारस्य अनुस्वारो यदा भवेत् ।।४८।।
तदाऽनुनासिके विद्यादुभयोर्ह्रस्वदीर्घयोः ।
नकारस्य मकारस्य अन्तःस्थाश्च समीपगाः ।।४९।।
नासिको नावमन्तव्यस्तत्र नादः प्रकीर्त्तितः ।
तवर्गान्ते पवर्गान्ते व्यञ्जनान्ते पदे परे ।।५०।।
तत्र नादं प्रकर्त्तव्यं नान्तिमं क्षिप्रकीर्त्तितम् ।
पूर्वतः परतो वाऽपि हकारो यत्र दृश्यते ।।५१।।
तत्र नादो भवत्येव न विकल्पः कदाचन ।
नकारात्परतो यत्र मकारात्परतस्तथा ।।५२।।
हकारो यत्र दृश्येत तत्र नादो भवेद् ध्रुवम् ।
नमौ गुरु यत्र दृश्येते अघोषाः परतः स्थिताः ।।५३।।

---

१. १।६ । इमान्युदाहरणानि संहितापाठस्थानि बोध्यानि ।

नादं कुर्वीत यत्नेन तत्र घोषबलं न हि ।
एकाक्षरं नकारस्य चोभयोः स्वरयोर्द्वयोः ।।५४।।

अर्द्धचन्द्रं तदुपरि ह्यघोषाः पुरतः स्थिताः ।
पञ्चमं चार्द्धचन्द्रं च ऊष्मान्तस्वरयोर्द्वयोः ।।५५।।

नासिकं तु भवत्येव[1] नॄःऽपाहीति निदर्शनम् ।
विंशतिर्घोषास्ते गजडदबा ङञणनमा यरलवहाश्चेति ।।५६।।

त्रयोदशाघोषास्ते कचटतपाश्च खछठथफाः शषसाश्चेति ।
मुखनासिकाभ्यामुच्चार्यमाणोऽनुनासिकः ।।५७।।

जकारौ द्वौ मकारश्च रेफस्तदुपरिस्थितः ।
अशरीरं यमं विद्या[2]त्सम्र्माज्ज्मीति निदर्शनम् ।।५८।।

शून्यालये पिशाचोऽपि गर्ज्जते न च दृश्यते ।
एव वर्णाः प्रयोक्तव्याः[3] उपज्ज्मन्निति निदर्शनम् ।।५९।।

एकाक्षरं वकारस्य निपातस्थो यदा भवेत् ।
संहितायां लघुर्ज्ज्ञातः पदकाले गुरुर्भवेत् ।।६०।।

वकारस्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुर्लघूतरः ।
आदौ गुरुर्लघुर्मध्ये पदान्ते तु लघूतरः ।।६१।।

पदान्ते पदमध्ये च वकारो दृश्यते यदा ।
लघुरेव स मन्यव्यो ह्यन्यत्रापि लघूतरः ।।६२।।

औकारान्ते पदे पूर्वे अकारे परतः स्थिते ।
लघूतरः विजानीया[4]द्ग्नावग्निश्चेति निदर्शनम् ।।६३।।

यथा पुत्रवती स्नेहाच्चुम्बतीति पुनः पुनः ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या[5] युञ्जानऽइति निदर्शनम् ।।६४।।

---

१. १३।५२ । २. १।२९ ।
३. १७।५ । ४. ५।४ ।
५. ११।१ ।

मूत्रं कुर्वींत[1] वडवा योनिं करोति 'यादृशीम् ।
तन्मुखं कुरुते प्राज्ञः[2] स दुन्दुभे निदर्शनम् ॥६५॥
उकारान्ते उकारे च दृश्यते चोभयोर्यदि ।
द्विरौष्ठ्यं तु विजानीया[3]द्भूर्भुवः स्वर्न्निदर्शनम् ॥६६॥
एकपद्ये भवेद्यस्तु सकृदौष्ठ्यं तदुच्यते ।
द्वित्रिभिश्च चतुष्कं चतुरौष्ठ्यं ततः परम् ॥६७॥
यथा मर्कटयोर्युद्धं कुर्व्वन्मुखेन धावति ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः किकिदीवेति निदर्शनम् ॥६८॥
कुक्कुटः कामलुब्धोऽपि ककारद्वयमुच्चरेत् ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः[4] कुक्कुटोऽसि निदर्शनम् ॥६९॥
चतुर्दशाक्षरं वाक्यं पुनश्चैकादशाक्षरम् ।
पुनर्दशाक्षरं वाक्यमष्टाक्षरमतः परम् ॥७०॥
लक्षणैर्वा विहीनं तु भुक्तमव्यञ्जनं तथा ।
तच्छब्दं कुरुते प्राज्ञः[5] सि ँ ह्यसि निदर्शनम् ॥७१॥
हस्तहीनं तु योऽधीते वेदं वेदविदो विदुः ।
तल्लक्षणविहीनस्तु भुक्तमव्यञ्जनं यथा ॥७२॥
एवं चतुष्टयं वाक्यं[6] श्रीश्च्च ते तिनिदर्शनम् ।
वसुसंख्याक्षरं वाक्यं त्रिपदा वा चतुष्पदा ॥७३॥
सप्ताक्षरं तु गायत्री[7] अग्निन्दूतं निदर्शनम् ।
उभौ सप्ताक्षरं वाक्यं पुनश्चैव नवाक्षरम् ॥७४॥
अष्टाक्षरं विजानीयाद्य[8]त्पुरुषेणेति निदर्शनम् ।
अष्टाक्षरं चतुष्पादं[9] तद्वादि ऋचं त्रयम् ॥७५॥

---

१. कुर्वंती इति शत्रन्तः पाठो भाति । २. २९।५५ ।
३. ३।५॥ ४. १।१६ ।
५. ५।१० । ६. ३१।२२॥
७. २२।१७॥ ८. ३१।१४॥
९. ३३।१॥

अन्ते पूर्व्वा ऋचः सम्यक्स्वाहाकारं पृथक् पृथक् ।
तदेव लक्षणं सम्यक् पाराशरमतं यथा ॥७६॥

याज्ञवल्की तु वासिष्ठी शिक्षा कात्यायनी तथा ।
पाराशरी गौतमी तु माण्डव्यामोघनन्दिनी ॥७७॥

पाणिन्या सर्ववेदेषु सर्वशास्त्रेषु गीयते ।
वाजसनेयशाखायां तत्र माध्यन्दिनी स्मृता ॥७८॥

एकादशाक्षरं वाक्यं द्वितीयं च नवाक्षरम् ।
रुद्रसङ्ख्यं तृतीयं स्यान्निधिसंख्यं चतुर्थकम् ॥७९॥

चत्वारिंशच्चाक्षराणां वाक्यं स्यात्तु चतुष्टयम् ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः[1] एष वस्तोमेति निदर्शनम् ॥८०॥

आद्यन्तह्रस्वयोर्म्मन्त्रे वकारो यत्र दृश्यते ।
स तु ह्रस्व इति प्रोक्तो[2]ऽअभियुध्येति निदर्शनम् ॥८१॥

अकारात्परतो यश्च नैव दीर्घं प्रयुज्यते ।
अभिविध्येति विज्ञेयो मन्त्रब्राह्मणयोर्द्वयोः ॥८२॥

[3]व्वनेषु व्यन्तरिक्षं च ह्युष्टौ व्यख्यत्तथैव च[4] ।
नामग्रहणकालेषु गुरुरेव न संशयः ॥८३॥

पूर्वा तु कण्डिका दृष्टा अपराभिस्तु संयुता ।
तदेव नामग्रहणं न विकल्पः कदाचन ॥८४॥

पूर्व्वा विद्धा परा चाथ कण्डिका यत्र दृश्यते ।
चापलानीति सा ज्ञेया[5] आच्छच्छन्दो निदर्शनम् ॥८५॥

---

१. ३४।४७॥ २. ३४।२३॥
३. ४।३१॥ ४. ३४।२४॥
५. १५।५॥ इमान्युदाहरणानि आर्ष्याः संहितायाः ज्ञेयानि ।

यथा भारभराक्रान्तो निश्श्वसेल्लघुचेतसः ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या[1] होता यक्षन्निदर्शनम् ॥८६॥
वाक्यौ द्वौ च समुद्भूतौ अक्षरा ऊनविंशतिः ।
त्रयोविर्ठं०शतिश्चाक्षराणाँ होता मित्रा पृथिव्यया ॥८७॥
हर्ठं० सः शुचिष[2]च्चैतद्द्वादशाक्षरसञ्ज्ञकः ।
ऊनाशीतिश्चाक्षराणाम् अथैताँश्च प्रकीर्तिताः ॥८८॥
अकारादीनि वाक्यानि द्वादशैतानि सङ्ख्यया ।
द्वादशाक्षरं प्रथमं पञ्चमं चेति सप्त वै ॥८९॥
षडक्षरं ततो वाक्यं पुनर्द्वादशकं स्मृतम् ।
एकादशाक्षरं चैव अन्ते च द्वादशाक्षरम् ॥९०॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या[3] अथैतानि निदर्शनम् ।
तिस्रोऽअर्द्धा[4] अभित्यञ्च तिस्रो अर्द्धा[5] प्रजापतिः ॥९१॥
पुनन्तु मेति चत्वारि[6] व्वायुः पञ्च[7] ततः परम् ।
[8]अनाधृष्टाऽत्र पञ्चैव[9] एधोऽस्यर्द्धचतुष्टयम् ॥९२॥
संव्वत्सरोऽसि[10] चत्वारि[11]द्यौः शान्तिश्चार्द्धयोर्द्वयोः ।
क्वचित्स्वाहा पृथक्कुर्यात् क्वचिद्युक्तं तु कारयेत् ॥९३॥
क्वचिच्चादौ विजानीयात्क्वचिच्चान्ते विधीयते ।
[12]पुनन्तु मा पितरो[13] व्वायुरनिलं[14] प्रजापतये त्वा ॥९४॥

---

१. २८।१॥ २. १०।२४॥
३. २६।२२॥ ४. ४।२५॥
५. २२।५॥ ६. १६।३७॥
७. १०।३१॥ अत्र सर्वानुक्रमसूत्रभाष्यकृतान्तादेव याज्ञिकेन पञ्च यजूंषि स्वीकृतानि ।
८. ३७।१२॥ ९. २०।२३॥
१०. २७।४५॥ ११. ३६।१७॥
१२. १९।३७॥ १३. ४०।२५॥
१४. २२।४॥

वाक्यकालेऽवसाने च स्वाहान्ते चाहुतिं क्षिपेत् ।
मन्त्रभागं पृथक्कुर्यात्स्वाहाकारं पृथक् पृथक् ।।९५।।

स्वाहादौ च भवेद् वाक्यं[1] अग्निन्दूतं मनस्तथा ।
अन्ते चादौ पुनश्चान्ते[2] काय स्वाहेति दर्शनम् ।।९६।।

मकारादौ भवेद् वाक्यं[3] ऊर्णा म्रदसं प्रकाश्यते ।
आविर्म्मर्त्या[4] अकारादौ स्वरान्तं प्रथमान्तरम् ।।९७।।

रससंख्या भवेद् वाक्यं वेदवाणौ पुनः पुनः ।
युग्मवाणान्तयोः सप्त अन्ते चैव चतुर्दश ।।९८।।

पञ्चाशतं च वर्णानाम् अक्षराणां प्रमाणतः ।
इदमित्येव विज्ञेयं वाक्यं तस्माद् भवेन्न च ।।९९।।

[5]अङ्गिरसि । [6]अग्ने तमद्य । [7]सहस्रस्य प्प्रमा ।
[8]अग्निर्देवता । [9]इयमु परि । [10]मखस्यशिरः-
[11]अश्श्वस्य त्वा । [12]प्रथमा वा म् । [13]अन्तरामित्रा-
वरुणा । [14]होता यक्षदग्निꣳस्वाहा ।[15] स्वाहा यज्ञम्-
[16]बर्हिरूर्णम्म्रदाः । एकाक्षरं पदं वाक्यं नचार्द्धयुग्म-
योरपि । मध्ये चैकाक्षरं वाक्यं द्वे द्वे चार्द्धावसानयोः ।।१००।।

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या लोकतश्च प्रकीर्त्तिताः ।
विभक्त्यन्तं विजानीयाद् गुरुतः शास्त्रतोऽपि वा ।।१०१।।

---

१. २२।१७।। २. २२।२०।।
३. २।२।। ४. १०।६।।
५. ११।१०।। ६. १५।४४।।
७. १५।६५।। ८. १४।२०।।
९. १३।५८।। १०. ३७।७।।
११. ३७।८।। १२. २९।७।।
१३. २९।६।। १४. २१।४०।।
१५. ४।५।। १६. २१।३३।।

लोपागमविकाराभ्यां वाक्यानामेष निर्णयः ।
द्वादशैतानि वाक्यानि द्वादशैतानि शान्तिके ॥१०२॥

देवादीनां भवन्त्येते द्वादशैतानि संख्यया ।
छाया[1] छिद्द्रा[2] तथा छन्दं[3]श्छकारा लघुसङ्ख्यया ॥१०३॥

ह्रस्वो वा यदि वा दीर्घः शेषा द्वित्वे प्रतिष्ठिताः ।
दीर्घादग्रे छकारोऽपि ह्रस्वादग्रे तथैव च ॥१०४॥

द्वित्वाक्षरं विजानीयादिति शास्त्रविधानतः ।
दीर्घादग्रे तु यो दीर्घो[4] गिरिशा[5] व्वर्म्मणा तथा ॥१०५॥

द्वित्वाक्षरं विजानीयाच्छादयामि[6] निदर्शनम् ।
वकारस्य भकाराभ्यां छकारस्य चकारयोः ॥१०६॥

धकारस्य दकाराभ्यां थकारस्य मकारयोः ।
कवर्गस्य चवर्गस्य खवर्गस्य पवर्गयोः ॥१०७॥

द्वित्वं चैव यमं चैव भवत्येव न संशयः ।
ओष्ठ्यं चैव वकारस्य मकारेण सहायवान् ॥१०८॥

तम्बधान[7] तथा चाम्बे[8] संयोगोऽप्यतिदुर्लभः ।
तँव्वंश्चैव[9] शतँव्वंश्च[10] सँय्योगोऽत्यन्तदुर्लभः ॥१०९॥

अनुस्वारं पृथक्कुर्यादसंप्राहुर्विचक्षणाः ।
वकारस्य यकारस्य मध्ये बिन्दुः प्रतिष्ठितः ॥११०॥

अन्त्यबिन्दुं विना ये च शेषान्तस्थाः प्रकीर्त्तिताः ।
शृङ्गवद् बालवत्सस्य कुमार्य्यास्तनयुग्मवत् ॥१११॥

---

१. २५।१३॥
२. २५।४३॥
३. ३४।४९॥
४. १६।४॥
५. १७।४६॥
६. अत्र पूर्वोक्तोदाहरणं बोध्यम् ॥
७. १२।४॥
८. २३।१०॥
९. २६।११॥
१०. १२।७६॥

नेत्रवत्कृष्णसर्पस्य स विसर्ग इति स्मृतः ।
विस्फुलिङ्गा इव स्फोटा वेदस्याङ्गानि सन्ति हि ॥११२॥
अशुद्धपठनाच्चैव नैव मोक्षं प्रपेदिरे ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धपाठी भवेद्द्विजः ॥११३॥
अन्यथा निरयं यान्ति कुम्भीपाकं च दारुणम् ।
सप्ताक्षरं च चत्वारि पुनरष्टाक्षरं तथा ॥११४॥
[1]ऋचँ व्वाचमिति ज्ञेया अन्ते चैव चतुष्टयम् ।
एकादशाक्षरं वाक्यं पुनरेव चतुष्टयम् ॥११५॥
त्रयोदशं द्वादशं च[2] यन्मे इति निदर्शनम् ।
व्याहृत्या सह गायत्री तिस्र अर्द्धा भवेदिह ॥११६॥
प्रणवाश्चैव चत्वारो भवन्त्येव न संशयः ।
ऋचँव्वाचं त्रयश्चैव प्रारम्भे च चतुष्टयम् ॥११७॥
इति पाराशरेणोक्तं प्रमाणं वेदसम्मितम् ।
पूर्वा चतुर्दशास्तिस्रो ह्यर्द्धायुग्मार्द्धषड्दश ॥११८॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या[3] अग्निश्चेति निदर्शनम् ।
पूर्वमष्टाक्षरं वाक्यं परतो द्वादशाक्षरम् ॥११९॥
द्विपादान् वा विनिश्चित्य [4]इन्द्रो विश्वस्य राजति ।
[5]अहानि शं त्रयश्चैव त्रयश्चैव यथापरे ॥१२०॥
अन्त्यावसाना दुर्मित्रा शेषा द्वे द्वे प्रकीर्त्तिताः ।
कण्डिकापञ्चयुग्मार्द्धं चतुःपञ्च नवं नवम् ॥१२१॥
पुनश्चतुस्त्रयश्चैव त्रयश्चैव पुनः पुनः ।
शेषा युग्मार्द्धकं विद्याद्देवस्य[6] निदर्शनम् ॥१२२॥

---

१. ३६।१॥
२. ३६।२॥ एतान्युदाहरणानि संहिताकण्डिकाङ्केन बोध्यानीति वेदाङ्कप टिभिरिति ।
३. २६।१॥ ४. ३६।७॥
५. ३६।११ ६. ११।०॥

एवं ज्ञात्वा पठेद्यस्तु स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।
त्रयश्चैव त्रयश्चैव त्रयश्चैव चतुष्टयम् ॥१२३॥
षडर्द्धं च त्रयश्चैव द्विपञ्चान्त्यावसानयोः ।
शेषाश्च कण्डिकाः सर्वा द्वे द्वे अर्द्धे प्रकीर्त्तिताः ॥१२४॥
न मे प्रियो द्विजः कश्चिच्छ्रद्धावानतिथिप्रियः ।
इति पाराशरेणोक्तं विप्राणां हितकाम्यया ॥१२५॥
शिष्याणामुपकाराय परलोकहिताय वै ।
[1]स्वाहा प्राणेभ्यस्त्रयश्च [2]लोमभ्यश्च त्रयस्तथा ॥१२६॥
शेषाश्च कण्डिकाः सर्वा द्वे द्वे अर्द्धे प्रकीर्त्तिताः ।
अष्टौ वाक्यं तयोः सप्त पञ्च द्वादश वै पुनः ॥१२७॥
चतुर्थं दश एका च अष्टादश ततः परम् ।
नवमं चाष्टमं चैव सप्तमं च ततः परम् ॥१२८॥
इति वाक्यविधिं सम्यक् [3]प्राणेभ्यश्च निदर्शनम् ।
[4]व्वायुः पञ्च भवेदर्द्धा अर्द्धे द्वे च हिरण्मये ॥१२९॥
[5]ईशाव्वास्यं तु मन्त्रस्य शेषा द्वे द्वे प्रकीर्त्तिताः ।
अष्टादशाक्षरं वाक्यं नाकपृष्ठे तु पञ्च वै ॥१३०॥
सप्तदशाक्षरं चैतद् वैश्वदेवं विनिर्दिशेत् ।
सप्तदशाक्षरं वाक्यं पुनरष्टादशाक्षरम् ॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [6]ग्रामण्यौ तु सुपञ्चयोः ॥१३२॥
उभौ सप्ताक्षरं वाक्यमष्टाक्षरमतः परम् ।
नवाक्षरं विजानीया[7]द्यामिषुं चेति निदर्शनम् ॥१३३॥

---

१. ३९।१॥
२. ३६।१०॥
३. ३९।१॥
४. ४०।१५॥
५. ४०।१॥
६. १५।१५।१६।१७।१८।१६॥
७. १७।१॥

एकैकस्य नमस्काराः शङ्कराय महात्मने ।
श्वभ्र्यश्चादौ च वर्णान्ते वाक्यकाले भवेदिति ।।१३४।।
नमकं चमकं चैव पुरुषसूक्तं तु नित्यशः ।
प्रविश्यते महादेवो गृहे गृहपतिर्य्यथा ।।१३५।।
रुद्राध्यायः स्वरेणैव कण्डिकादशकेन तु ।
ततो वाक्यं प्रकुर्वीत ऋचान्ते षोडशाक्षरम् ।।१३६।।
अष्टादशाक्षरं वाक्यं पुनः षोडशकैः शुभैः ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या अश्मन्नूर्जं[1] विनिर्दिशेत् ।।१३७।।
पुँश्चलू[2] पुँश्चली चेति संख्या यत्र यत्र च ।
[3]दङ्क्ष्णवश्च विज्ञेया अर्द्धचन्द्रस्तु षटसु च ।।१३८।।
मकाराग्रे छकारादावनुस्वारेण सँय्युतौ ।
तन्द्रञ्छन्दो[4] विजानीया[5]दग्निः पशुर्न्निदर्शनम् ।।१३९।।
तकारान्ते पदे पूर्वे शकारे परतः स्थिते ।
क्षणिकं तं विजानीया[6]त्तच्छकेयं निदर्शनम् ।।१४०।।
पाठकाले भवेद्ह्रस्वो वाक्यकाले तु दीर्घता ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या[7] नक्षत्रेभ्यः स्वाहेति निदर्शनम् ।।१४१।।
[8]शर्म्म च स्थ स्तथो[9] पप्रागात्समुद्रस्य त्वेति च[10] ।
स्वरितो वाक्यकालेऽपि उदात्तं नोपपद्यते ।।१४२।।
एह्यूषु[11] ऋर्जीते[12] अभित्त्वा[13] गोमदूषुणा सुत्या ।
स्वरितो वाक्यकाले तु न चोद्धर्वं नीयते करम् ।।१४३।।

---

१. ३०।१० ।   २. ३०।२२ ।
३. १५ ।   ४. २६।१५ ।
५. २२।१४ ।   ६. १५ ।
७. २२।२८ ।   ८. ११।३० ।
९. २६।२३ ।   १०. १७।४ ।
११. २६।१३ ।   १२. २९।४६ ।
१३. २०।२१ ।

सुद्यो जातः[1] सुमुद्रोऽसि [2]प्रथमार्च्यस्य तु द्वया ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या गुरुरेव न संशयः ॥१४४॥
अन्तस्थैः सह सँय्योगे स्पर्शो वा दृश्यते क्वचित् ।
ऋवर्णेन तदा ग्रस्तो न लघुर्न्न लघूतरः ॥१४५॥
ऋकारो गुरुतां यातः संयुक्तो हरयैः सह ।
ऋवर्णेन परस्यैव[3] व्यृद्ध्या इति निदर्शनम् ॥१४६॥
[4]क्रतून् [5]जहि शत्रून् [6]व्रुन स्पती न् [7]परिधींश्चेति ।
चतुर्वेदोऽपि यो विप्रो यावद्ब्रह्म न विन्दति ॥१४७॥
तावद्भ्रमति संसारे ह्यसारे दुरतिक्रमे ।
पठित्वा चतुरो वेदान्त्सर्वशास्त्रमनेकधा ॥१४८॥
यो हि ब्रह्म न जानाति मूर्खः पाठे शठो यथा ।
ज्ञात्वैव ब्रह्मसायुज्यं लभते नाऽत्र संशयः ॥१४९॥
यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य ।
तथा हि विप्राः स्मृतिवेदपूर्णा ज्ञानेन हीनाः खरवद्वहन्ति ।१५०।
आहारनिद्राभयमैथुनं च समानमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
[8]ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ।१५१।
प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपासया ।
तृप्ताः कामेन बध्यन्ते जन्तवो निशि तद्वशाः ॥१५२॥
नादबिन्दुसहस्राणि तथा कोटिशतानि च ।
सवाता रश्मयो यान्ति यत्र वेदो निरामयः ॥१५३॥

---

१. २६।३६ ।　　२. ५।३३ ।
३. ३०।१८ ।　　४. १९।४० ।
५. ७।३१ ।　　६. १९।५३ ।
७. इमान्युदाहरणानि आर्ष्याः संहितायां बोध्यानि ।
८. सदसद्विवेकविषयकज्ञानमत्र ग्राह्यम् ।
वस्तुतस्तु ज्ञानमत्यस्य स्थाने धर्म इति पाठो युक्तः । अतो धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना इत्यन्वययोजना ज्ञेया ।

गवामनेकवर्णानां क्षीरं स्यादेकवर्णकम् ।
क्षीरं यथा तथा ज्ञानं लिङ्गनस्य गवां यथा ।।१५४।।

द्वे पदे चैव मोक्षाय न ममेति ममेति च ।
स ममेति क्षिणन्ती च शत्रूँरनपव्ययन्त: ।।१५५।।

अरञ्जना: पञ्च अर्द्धा अर्द्धमात्रा भवन्ति च ।
पूषा मित्रो वसुश्चैव अञ्जनाश्च प्रकीर्त्तिता: ।।१५६।।

पूषा मित्रो वसून्पञ्चानुरञ्जना:प्रकीर्तिता: ।
एकार्द्धमात्रिकाश्चैव पञ्चैते चानुरञ्जना: ।।१५७।।

वक्षयक्ष्यकक्ष्यभक्ष्यमाणा इत्येवमादय: ।
इमे वर्णास्तु तालव्या: पर। मूर्धन्यजा: स्मृता: ।।१५८।।

एवं ज्ञात्वा पठेद्यस्तु स गच्छेद् वैष्णवं पदम् ।
न मे प्रियो द्विज: कश्चिचच्छुद्धपाठी त्वतिप्रिय: ।।१५९।।

इति पाराशरेणोक्तं विप्राणां हितकाम्यया ।
शिष्याणामुपकाराय परलोकहिताय च ।।१६०।।

**।। इति पाराशरीशिक्षा समाप्ता ।।**

* * *

# माण्डव्यमहर्षिप्रणीता शिक्षा

अथातः संप्रवक्ष्यामि शिष्याणां हितकाम्यया ।
माण्डव्येन यथा प्रोक्ता ओष्ठ्यसंख्या समाहृता ॥१॥

[१]इषे त्वा, बह्वीः । प्रथमाक्षरम् । [२]बाहुभ्यां तिस्रः । [३]पृथुबुध्नः । [४]बृहद् ग्रावासि । [५]ब्रह्मवनित्त्वा । [६]इन्द्रस्य बाहुरसि । [७]बधानदेव तिस्रः । [८]ऊर्ज्जेत्वा दब्धेन । पञ्चदश ॥१॥ [९]कृष्णोऽसि बर्हिषे त्वा । बर्हिरसि स्रुग्भ्यः । [१०]बृहन्तमध्वरे । [११]सवितुर्ब्बाहूस्त्थः । [१२]बाहुभ्याम् । [१३]बृहस्पतये ब्रह्मणे । [१४]बृहस्पतिर्यज्ञमिमम् । [१५]बर्हिषि मादयध्वम् । [१६]अग्ने दब्धायो । [१७]सम्बर्हिस्त्रयोदश ॥२॥ समिधाग्निं घृतैर्ब्बोधयत । बृहच्छो च । [१८]अदब्धासः । [१९]स नो बोधि । [२०]ब्रह्मद्वयम् ।

---

१. १।१ ।
२. १।१० ।
३. १।१९ ।
४. १।१५ ।
५. १।१७ ।
६. १।२३ ।
७. १।२४ ।
८. १।२५ ।
९. २।१६ ।
१०. २।४ ।
११. २।५ ।
१२. २।११ ।
१३. २।१२ ।
१४. २।१३ ।
१५. २।१८ ।
१६. २।२० ।
१७. २।२२ ।
१८. ३।१ ।
१९. ३।३ ।
२०. ३।१८ ।

[1]गृहा मा बिभीत। [2]ऊज्र्जम्बिभ्रतं द्वयम्। [3]सैम-
नसो बहुः। [4]मनस्तनूषु बिभ्रतः। [5]सह स्वसा-
म्बिकया। [6]देवन्त्र्यम्बकम्। [7]उर्व्वारुकमिव बन्धं-
नात्सप्तदश ॥३॥ [8]एदं, मापो देवीर्बृहतीः—

[9]बृहस्पतये। [10]ब्रह्माग्निः। [11]प्रबुधे। [12]अदब्धस्तनू पाः
[13]बध्नीताम्। [14]बृहस्पतिष्ट्वा। [15]अस्मे ते बन्धुः।
[16]चतस्रो ब्रूतात्। [17]अङ्घारे बम्भारे। [18]ब्रह्मद्वयम्।
पञ्चदश ॥४॥ [19]अग्नेस्तनू, ब्बर्हिर्द्धा यज्ञात्।
[20]ब्रह्मत्रयम् [21]विप्रस्य बृहतो [22]बाहुभ्यां बृहन्नासि
बृहद्द्रवा बृहतीमिन्द्राय। [23]यम्मे सबन्धुर्य्यमसबन्धुः।
[24]बम्भारिरसि। [25]बुध्न्यो [26]घृतयोने पिब द्वौ
षोडश ॥५॥ देवस्य त्वा [27]बाहुब्भ्यान्तिस्रः। [28]ब्रह्म-

---

१. ३।२६।
२. ३।३०।
३. ३।४१।
४. ३।५७।
५. ३।५८।
६. त्र्युम्बकद्वयं बन्धनादद्वयं च । ३।६०।
७. इदमुदाहरणद्वयमेकस्मिन् मन्त्रे ४।७। बोध्यम्।
८. ४।७।
९. ४।७।
१०. ४।११।
११. ४।१४।
१२. ४।१५।
१३. ४।१९।
१४. ४।२१।
१५. ४।२२।
१६. ४।२४।
१७. ४।३७।
१८. ४।३३।
१९. ५।११।
२०. ५।१२।
२१. ५।११। अस्मिन्मन्त्रे उदाहरणत्रयं बोध्यम्।
२२. ५।२२। उदाहरणद्वयमेकस्मिन् मन्त्रे बोध्यम्।
२३. ५।२३।
२४. ५।३२।
२५. ५।३३।
२६. ५।३८।
२७. ६।१।
२८. ६।३।

द्वयम् [1]बृहस्पते धारयं । [2]रक्षोऽवबाधे । [3]पिबत द्वयम् । [4]सोमस्य पिबता [5]म्बं निष्परे [6]न्द्र ब्रवीमि द्वादश ॥६॥ व्वाचस्पतये, [7]ज्येष्ठतातिम्बर्हि षद [8]म्बृहस्प्पतिस्ति स्रो [9]ब्रह्मद्वय [10]म्बृह्मद्वते यत्त ऽइन्द्र बृहद्वयस्तृ [11]णन्ति बर्हिर[12] [13]पिबः [14]सोमम्पिब [15]पिबा सोम[16]मुत द्विबर्हाश्चतुर्दश ॥७॥ [17]उपयाम गृहीतोसि बृहदुक्षाय ।
[18]बृहस्पतिं सुतस्येति [19]सोमम्पिब [20]ब्रह्मद्वयं [21]सुभृतम्बिभृत । [22]सु कृतम्बूता [23]द्बृहच्छुक्रोऽष्टौ ॥८॥ देवं सवित [24]ब्बलंवान्बलं न [25]बृहस्पतिः षोडश [26]ग्रीवायाम्बद्धः [27]पिबत मादयध्वं [28]प्रसवऽआबभूव [29]ब्रह्मद्वयं [30]बाहुभ्यान्द्वयं पञ्चविंश० शतिः ॥९॥ अपो देवा- [31]बृहस्पतिं द्वयं [32]बन्धुस्तपोजाः [34]क्षत्रस्योल्बं

---

१. ६।८ ।
२. ६।१६ ।
३. ६।१९ ।
४. ६।३४ ।
५. ६।३६ ।
६. ६।३७ ।
७. ७।१२ ।
८. ७।१५ ।
९. ७।२१ ।
१२. ७।२२ । उदाहरणद्वयमेकस्मिन्नेव मन्त्रे बोध्यम् ।
१३. ७।३२ ।
१४. ७।३५ ।
१५. ७।३७ ।
१६ ७।३८ ।
१७. ७।३९ ।
१८. ८।९ ।
१९. ८।९ ।
२०. ८।१० ।
२१. ८।१५ ।
२२. ८।२६ ।
२३. ८।४३ ।
२४. ८।४६ ।
२५. ९।६ ।
२६. ९।१० ।
२७. ९।१४ ।
२८. ९।१८ ।
२९. ९।२५ ।
३०. ९।२६ ।
३१. ९।३० ।
३२. १०।५ ।
३३. १०।६ ।
३४. १०।८ ।

[1]दृबासिं [2]ब्रह्मषड[3]हिंम्बुध्न्यम् [4]परिता बंभूवा [5]ञ्जागोजाऽऋतम्बृहद्वा[6]हूऽअंभ्युपावहंरामि । [7]बहुं-कार श्रेयंस्कर [8]बंर्हिषं [9]अपिबः शचीभिर्विंठं० शतिः ॥१०॥

युञ्जानःऽप्रथमं [10]बृहतेदश[11]ब्रह्मं त्रयं[12]बाहुभ्यां न्तिस्रो [13]बिभ्रदभ्रिं [14]बहुलेऽउभे [15]अदब्धव्रतप्रमति [16]बांधस्व द्विषः [17]साग्निम्बिभत्तु [18]बिलङ्ग्भ्णातु [19]सुबाहुरुता [20]म्बं धृष्णु [21]बलद्वयं [22]येषांम्बाहू एकोनत्रिंठं० शत् ॥११॥

दृशानो रुक्मो [23]बृहदब्जा गोजा [24]घृतै-ब्बोंधयत [25]बिभृंताप्स्वेन [26]द्वोधा मे [27]स बोंधि [28]ब्रह्मद्वयं [29]बृहस्पतिंपञ्च [30]बन्धंमेतं [31]बन्धानांमव-

---

१. इदमुदाहरणं पूर्वोक्तं मन्त्रस्थं बोध्यम् ।
२. १०।१० ।
३. १०।१९ ।
४. १०।२० ।
५. १०।२४ ।
६. १०।२५ ।
७. १०।२८ ।
८. १०।३२ ।
९. १०।३४ ।
१०. ११।३ ।
११. ११।५ ।
१२. ११।९ ।
१३. ११।११ ।
१४. ११।३० ।
१५. ११।३६ ।
१६. ११।४९ ।
१७. ११।५७ ।
१८. ११।५६ ।
१९. ११।६३ ।
२०. ११।६८ ।
२१. ११।८१ ।
२२. ११।८२ ।
२३. १२।२३ ।
२४. १२।३० । इमान्युदाहरणानि संहिताया बोध्यानि ।
२५. १२।३५ ।
२६. १२।४२ ।
२७. १२।४३ ।
२८. १२।६६ ।
२९. १२।९३ ।
३०. १२।६४ ।
३१. १२।६५ ।

सर्जनाया [१]वबन्ध [२]ह बीजठं० [३]सजूरब्दो [४]बभ्रू-
णामह [५]मंब धामा [६]न्युपब्रुवे द्वयं [७]विबाधद्ध
[८]पड्वीशात्सर्वस्मादेव किल्बिषा [९]द्ध्वी: ।
प्रथमाक्षरं [१०]नाशयित्री बलासस्य द्वात्रिंठं० शत् ॥१२॥

मयि गृह्णामि [११]ब्रह्मयज्ञानं [१२]सबुध्न्या [१३]अदब्धो [१४]धत्त
बृहस्पते [१५]द्विबुध्नं [१६]त्रिष्टुब्ग्रैष्मी पञ्चदश [१७]बृहत् ॥१३॥
ध्रुवक्षिति [१८]ब्रह्म चत्वारि [१९]बृहती पञ्च [२०]बस्तो व्वयं
प्रथमं [२१]विबाधसे [२२]बृहस्पतित्रयं [२३]ब्रध्नस्य पञ्चदश ॥१४॥
अग्ने जातान्ब्रूहि [२४]द्वयं [२५]बृहत्पञ्च [२६]बृहस्पतिद्वयम
[२७]बोध्यग्नि: [२८]सुब्रह्मा यज्ञो [२९]बभूथ [३०]स्तीर्णम्बर्हिषं [३१]मुद्बुध्वस्व [३२]चतुर्दश ॥१५॥

---

१. १३।६८ ।
२. १३।६८ ।
३. १२।७४ ।
४. १२।७५ ।
५. १२।७६ ।
६. १२।७८ ।
७. १२।८६ ।
८. १२।९० ।
९. १२।९२ ।
१०. १२।९७ ।
११. १३।३ ।
१२. १३ । अस्मिन्नेव मन्त्रे उदाहरणद्वयं बोध्यम् ।
१३. १३।११ ।
१४. १३।२३ ।
१५. १३।४२ ।
१६. १३।५५ ।
१७. १३ । अस्मिन्नध्याये पूर्वोक्तमन्त्रस्योदाहरणं ज्ञेयम् ।
१८. १४।२ ।
१९. १४।३ ।
२०. १४।९ ।
२१. १४।११ ।
२२. १४।२० ।
२३. १४।२३ ।
२४. १५।२।३ ।
२५. १५।११ ।
२६. १५।१४ ।
२७. १५।२४ ।
२८. १५।३४ ।
२९. १५।४५ ।
३०. १५।४६ ।
३१. १५।५४ ।
३२. उद्बुध्यस्वइति पाठो भाति ।

नमस्ते[1]बाहुभ्यामुत ते[2]विभर्ष्यस्तवे[3]उत बभ्रु [4]बर्णवा
[5]न्बभूवते [6]बाहुभ्यान्तवं [7]हिरण्यबाहवे [8]बम्लुशाय
[9]बृहत्ते [10]बुध्न्याय [11]बिल्मिने [12]पिनाकम्बिभ्रदागहि
[13]बाह्वोस्तवं [14]प्रथम मैलबृदाः, [15]पिबतो जनान्पञ्चदश ॥१६॥

अश्मन्नूर्ज्जम[16]बुदश्व [17]बर्हिषद [18]स्वयम्पिबन्तु
[19]ब्रह्म [20]यत्र बाणाः, [21]प्रजया च बहुङ्कृधि [22]ब्रुवन्
[23]बाधमाना [24]हस्तेषु बिभ्रतः [25]प्रब्रवाम
[26]त्रिधा बद्धः सप्तविठं० शतिः ॥१७॥

व्वार्जश्च मे [27]बलं चमे [28]बृहस्पतिस्त्रयं [29]बर्हिर्द्वयम्,
[30]बृहत्त्रयम् [31]ब्रह्मैकादश [32]बाहुभ्यामिह [33]बोधि
[34]ब्रध्नस्यो [35]दबुध्यस्व चतुर्विठं०शतिः ॥१८॥

---

१. १६।१ ।
२. १६।३ ।
३. १६।६ ।
४. १६।१० ।
५. १६।११ ।
६. १६।१४ ।
७. १६।१७ ।
८. १६।१८ ।
९. १६।३० ।
१०. १६।३२ ।
११. १६।३५ ।
१२. १६।५१ ।
१३. १६।५३ ।
१४. १६।६० ।
१५. १६।६२ ।
१६. १७।२ ।
१७. १७।१२ ।
१८. १७।१३ ।
१९. १७।४५ ।
२०. १७।४८ ।
२१. १६।५० ।
२२. १७।५२ ।
२३. १७।५४ ।
२४. १७।६५ ।
२५. १७।९० ।
२६. १७।९१ ।
२७. १८।२ ।
२८. १८।१६ ।
२९. १८।२१ ।
३०. १८।२३ ।
२६. १८।२६ ।
३२ १८।३७ ।
३३. १८।४९ ।
३४. १८।५१ ।
३५. १८।६१ ।

स्वाद्वीन्त्वा [1]ब्रह्म चत्वारि [2]बर्हिर्दश [3]बलं चत्वारि
[4]रूपम्बर्दरं [5]पिब षड्वा [6]रे बाधस्व [7]बह्वचस्तन्वं
[8]प्रथमम्बहु लाम्मे [9]अधि ब्रुवन्द्वय[10]मुल्बञ्जहाति
[11]बहुधा न [12]बाधमाना:, [13]सब्वन्त[14]द्बर्दरै:,
[15]सुकृतं बिभर्ति षट् त्रिंशतू ॥१९॥

क्षत्रस्य्योनिं [16]बाहुभ्याम् [17]बलं षड् [18]बाहू मे
[19]बृहस्पतिं पुरोहिता [20]बभ्र्वैमदे [21]बृहच्चत्वारि
बाहू चत्वारि [22]बर्हिर्द्वयं [23]सबिभेद [24]बाध-
तान्द्वेषं [25]पिब द्वयमष्टाविंशतिः ॥२०॥

[26]इमम्मे [27]व्वरुणेह बोधि [28]ब्रह्मद्वयं [29]प्रबाहवा [30]पिब
द्वयं [31]बर्हि: सप्त [32]बृहत्त्रयं [33]बृहस्पतिर्बलं

---

१. १६।५।
२. १९।१७।
३. १६।८।१८।
४. १६।२२।
५. १९।३५।
६. १९।३८।
७. १९।४४।
८. १९।४८।
९. १९।५७।
१०. १९।७६।
११. १९।८१।
१२. १९।८४।
१३. अस्मिन्पूर्वोक्तमन्त्रस्योदाहरणं द्रष्टव्यम्।
१४. १६।६०।
१५. १९।९४।
१६. २०।३।
१७. २०।३।
१८. २०।७।
१९. २०।११।
२०. २०।२८।
२१. २०।३०।
२२. २०।३६।
२३. २०।६८।
२४. २०।५१।
२५. २०।७७।
२६. २१।२।
२७. २१।६।
२८. २१।११।
२९. २१।१५।
३०. तथा।
३१. २१।१६।
३२. २१।३०।
३३. २१।५६।

चत्वारि [1]बदरैर्द्वौ [2]बध्नन्न्शिवभ्यां [3]बहुभ्यः,
[4]सूक्ता ब्रूहि षड्विंशतिः ॥२१॥
तेजोऽसि [5]बाहुभ्यां [6]सुतऽआ बभूव [7]ब्रह्मत्रयं
[8]तम्बधान[9]बृहस्पतये [10]प्रबुद्धाय [11]बलाय [12]पिबति
[13]बोधयो[14]पब्रुवे [15]बृहत्यै स्वाहा त्रयोदश ॥२२॥
हिरण्यगर्भःऽ [16]सम्बभूव सप्त [17]युञ्जन्ति ब्रध्नं
[18]बृहत्सप्त [19]ब्रह्म षट् [20]पिब चत्वा [21]र्य्यम्ब
ऽअम्बिकेऽम्बालिके [22]बहुद्वयं [23]ये बर्हिषः, [24]प्रब्र-
वीमि [25]परिता बभूव त्रयस्त्रिंशत् ॥२३॥
अश्श्वस्तूपरो [26]बाह्वोः प्रथमो [27]बभ्रुः सप्त [28]बाहू
चत्वारि [29]बाहस्पत्या [30]द्वय [31]म्बृहद्वय[32]म्बलं चत्वारि
[33]बाहुद्वयं [34]बर्हिषद[35]स्त्रैयम्बकाः [36]सोमाय लवा

---

१. २१।६१।
२. तथा।
३. तथा।
४. २२।१।
५.
६. २२।२।
७. २२।३।
८. तथा।
९. २२।६।
१०. २२।७।
११. २२।८।
१२. तथा।
१३. २२।१५।
१४. २२।१७।
१५. २२।२०।
१६. २३।२।
१७. २३।५।
१८. २३।११।
१९. २३।१३।
२०. २३।१७।
२१. २३।१८।
२२. २३।२५।
२३. २३।३८।
२४. २३।५८।
२५. २३।६५।
२६. २४।१।
२७. २४।२।
२८. पूर्वस्मिन्तद्धुदाहरणं ज्ञेयम्।
२९. २४।७।
३०. २४।१३।
३१. २४।३२।
३२. २४।७।
३३. २४।१८।
३४. इदमुदाहरणं पूर्वमन्त्रस्थं बोध्यम्।
३५. २४।२४।
३६. २४।२८।

[1]न्बृहस्पतिर्द्वयमष्टाविंशतिः । शार्दन्दद्भि
[2]र्म्मृदम्बस्वैं [3]रनू काशेन बाह्वं[4]न्निर्बाधेनं [5]बृह-
स्पतिश्चत्वा [6]र्य्याद्धानम्बाहुभ्यां जाम्बीलेन
[7]बलद्वयं [7]जुम्बकाय[8]जगतो बभूव [10]यस्य बाहू [11]अदब्ध-
द्वयम् [12]बन्धु पञ्च [13]पड्वीशद्वयं [14]ब्रह्मणा सूदयामि
[15]देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य पञ्चविंशतिः ॥२५॥
अग्निश्च [16]ब्रह्म राजन्याभ्यां [17]बृहस्पतिंत्रयम् [18]पिब-
त्रयं [19]बृहदर्च्चं [20]ब्रर्वाणि ते [21]बर्हिद्द्वयमेकादश ॥२६॥
समास्त्वा [22]बोधयद्वयं [23]ब्रह्मद्वयं [24]बृहस्पते द्वयं
[25]बर्हिरेदं [26]यद्बृहतीरष्टौ ॥२७॥
होता यक्षद्बर्हि [27]र्दंश [28]बृहतीमेकं [29]बध्नं द्वयं
[30]बृहतीत्रयं [31]ब्रह्माणं [32]बिभ्रद्द्वयं
[33]बृहद्द्वयं बध्नं द्वाविंशतिः ॥२८॥

---

१. २५।१ ।
२. २५।२ ।
३. इदमपिपूर्वोक्तमन्त्रे ।
४. २५।४ ।
५. अस्मिन्नुदाहरणे वकारद्वयं २५।३ द्रष्टव्यम् ।
६. २५।६ ।
७. २५।९ ।
८. २५।११ ।
९. २५।१२ ।
१०. २५।१४ ।
११. २५।३० ।
१२. २५।३८ ।
१३. २५।४० ।
१४. २५।४१ ।
१५. २६।२ ।
१६. २६।३ ।
१७. २६।४ ।
१८. २६।११ ।
१९. २६।१३ ।
२०. २६।२३ ।
२१. २७।२ ।
२२. २७।३ ।
२३. २७।८ ।
२४. २७।१९ ।
२५. २७।२५ ।
२६. २८।४ ।
२७. २८।२७ ।
२८. २८।२३ ।
२९. २८।३१ ।
३०. २८।२८ ।
३१. २८।३२ ।
३२. २८।३४ ।
३३. २९।४ ।

समिद्धोऽअञ्ज[1]न्वर्हिस्त्रयं [2]बहोः कर्त्तार [3]म्बाहू [4]बन्धं नानिद्वयं[5]बृहद्‌द्वयं [6]पु त्रं बिभृता[7]बह्वीनाम्पिता प्रथमं बहुरस्य पुत्र ऽ [8]इषु बला [9]ब्राह्मणासः [10]सोमोऽअधि-ब्रवीतु [11]पर्य्येति बाहु [12]म्बाधमाना द्वयं [13]बलमोजो [14]बभ्रुः सौम्यो बार्हस्पत्यो [15]बार्हताय [16]बृहस्पतये सप्तविंशतिः ॥२९॥

देवं सवितर्ब्र[17]ह्मणे ब्राह्मणत्रयं [18]क्लीबत्रयं [19]बिदलकारीं [20]बलद्वय [21]मुत्सादेभ्यः कुब्जमर्धमाय बधिरं [22]ब्रध्नस्य [23]बधाय[24]बहुवादिनं [25]शब्दाया-डम्बराघातं [26]शाबल्या [27]ङ्क्लीब अष्टादश ॥३०॥

सहस्रंशीर्षा [28]तंय्यज्ञं बर्हिषि [29]ब्रह्म चत्वारि [30]द्वौ बाहूराजन्योऽ[31]बध्नन्पुरुषं,जायमानो[32]बहुधा[33]तदब्रुवन्दश॥३१॥

---

१. २९।९ ।
२. २९।१२ ।
३. २९।१४ ।
४. २९।३० ।
५. २९।४१ ।
६. २९।४२ ।
७. २९।४३ ।
८. २९।४६ ।
९. २९।५७ ।
१०. २९।४९ ।
११. २९।५१ ।
१२. इदमुदाहरणं पूर्वोक्तमन्त्रस्थं बोध्यम् ।
१३. २९।५६ ।
१४. २९।५८ ।
१५. तथा ।
१६. २९।६० ।
१७. पूर्वोक्तोदाहरणं बोध्यम् ।
१८. ३०।५ ।
१९. पूर्वोक्तमन्त्रस्थोदाहरणं बोध्यम् ।
२०. ३०।८ ।
२१. ३०। इदमप्युदाहरणं प्राङ्मन्त्रस्थं बोध्यम् ।
२२. ३०।१० ।
२३. अस्मिन्पूर्वोक्तमन्त्रे उदाहरणद्वयं बोध्यम् ।
२४. ३०।१२ ।
२५. अस्मिन्पूर्वोक्तमन्त्रोदाहरणम् ।
२६. ३०।२० ।
२७. ३०।२२ ।
२८. ३१।९ ।
२९. ३१।१० ।
३०. ३१।११ ।
३१. ३१।१५ ।
३२. ३१।१९ ।
३३. ३१।२१ ।

तद्देव [1]ब्रह्मद्वय [2]माबभूव [3]यद्बृहतीः [4]सनो बन्धुंपञ्च ॥३२॥

अस्याजरासो [5]बृहत्रयं [6]बर्हिर्द्वयं [7]पिब त्रयम् [8]बर्हिषि द्वयं [9]बृहद्द्वयं [10]बृहतीं [11]पिबतु [12]बट्त्रयं [13]बबीरिटे [14]बृहस्पतिं [15]ब्रह्मणो द्वयं [16]बृहती [17]बर्हिषि [18]शाम्बरे [19]बहुलाऽ[20]दब्धेभिर्द्वं [21]ब्रह्माणि [22]पिबत [23]बहुलम् [24]बाधते [25]बृहद्भानो [26]बृहते [27]ब्रह्म चतुस्त्रिंशत् ॥३३॥

यज्जाग्रतो [28]बाधते [29]ब्रूहि [30]पिबत [31]बृहती [32]ब्रह्मणश्चतु [33]बाधामहे [34]बिभर्त्य [35]बध्नन् बध्नामि [36]बुध्न्यो [37]बोधि [38]बृहत्पञ्च दश ॥३४॥

---

१. ३२।१ । २. ३२।५ ।
३ ३२।७ । ४. ३२।१० ।
५. ३३।३ । ६. ३३।७ ।
७. ३३।१० । ८. ३३।१५ ।
९. ३३।२४ । १०. ३३।२८ ।
११. ३३।३० । १२. ३३।३९ ।
१३. ३३।४४ । १४. ३३।४५ ।
१५. ३३।४६ । १६. ३३।५५ ।
१७. ३३।५३ । १८. ३३।६३ ।
१९. ३३।६४ । २०. ३३।६६ ।
२१. ३३।८४ । २२. ३३।७८ ।
२३. ३३।८८ । २४. ३३।९० ।
२५. ३३।९५ । २६. ३३।९६ ।
२७. ३३।९६ । २८. ३४।२५ ।
२९. ३४।२७ । ३०. ३४।२८ ।
३१ ३४।३२ । ३२. ३४।५८ ।
३३. ३४।४६ । ३४. ३४।५१ ।
३५. ३४।५२ । ३६. ३४।५३ । अस्मिन्मन्त्रे उदाहरणद्वयमस्ति ।
७. ३४।५८ । ३८. ३४।५८ ।

अपतो [1]ब्रवीमिप्रथमाक्षरं [2]किल्विषं [3]बाधस्व तृतीयम् ॥३५॥

ऋचं [4]वाचं [5]बृहस्पतिर्द्वयं [6]ब्रह्म [7]ब्रवामप्रथमाक्षरंचतुर्थम् ॥३६॥

देवस्य त्वा [7]बाहुभ्याम् [8]बृहतो

[9]ब्रह्मणो [10]बृहस्पते [11]बोधि । पञ्च ॥३७॥

देवस्यत्वा [12]बाहुभ्याम्[13] बृहपतये [14]पिबत [15]ब्रह्मणे

[16]ब्रह्मोर्ध्वं [17]बर्हिर्भ्यो [18]बभूव [19]ब्रह्मणो

[20]बृहद् [21]ब्रह्मणा दश ॥३८॥

स्वाहा प्राणेभ्यो [22]बृहस्पति [23]ब्बलेन

[24]ब्रह्मणे ब्रह्महत्यायै चतुर्थः ॥३९॥

इशा व्वास्यं[25] क्लिब एकः ॥४०॥

॥ इति श्रीमाण्डवी शिक्षा समाप्ता ॥

---

१. ३५।७। २. ३५।११। ३. ३५।१६। ४. ३६।२। ५. ३६।१७। ६. ३६।२४। ७. ३७।१। ८. ३७।२। ९. ३७।७। १०. ३७।१२। ११. ३७।२०। १२. ३८।१। १३. ३८।८। १४. ३८।१०। १५. ३८।१४। १६. ३८।१४। १७. ३८।१५। १८. ३८।२७। १९. ३८।११। २०. ३८।२७। २१. ३८।२७। २२. ३९।६। २३. ३९।९। २४. ३९।१३। अस्मिन्नपि मन्त्रे उदाहरणद्वयं बोध्यम्। २५. ४०।१५। एतेषूदाहरणेषु आर्ष्याः संहिताया अङ्का बोध्याः।

# अमोघानन्दिनी शिक्षा

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि ह्यमोघानन्दकारिणीम् ।
यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वत्र विजयी भवेत् ॥१॥

ओष्ठ्या दन्त्या लघुश्चैव पुनरेव लघूत्तरः ।
नादनासिक्यसहिताँल्लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥२॥
ब्रह्मबाहू बृहद्बद्धो बृहती द्यौर्बधान यः ।
बर्हिर्बृहस्पते बिभ्राड्बिभितो बहु बोधय ॥३॥
बर्हिषा च पिब ब्रूते त्र्यम्बकं बाधबुद्धयः ।
बन्धुस्तब्भ्नी च बध्नीताम्बिकया बभ्लुशाय च ॥४॥
ब्रवीद्दबासि बम्भारे अम्बश्चैव बभुर्बहुः ।
क्षत्रस्योल्बं तथाऽब्दं च शतम्बस्त्यज्यते बुधैः ॥५॥
प्रथमाक्षरन्न वर्ज्जीत द्वितीयं परिवर्ज्जयेत् ।
एवं बह्वीस्तथा बाह्वोः पूर्णबन्धुं परित्यजेत् ॥६॥
बिभ्रतं बिभ्रताप्स्वेनद्बिलं गृब्भ्णातूप ब्रुवे ।
आवबन्धं च बीजं च बभ्रुः पड्वीशकिल्बिषात् ॥७॥

मूर्धा व्वयसि यद्बस्तो बध्नाऽबोध्यग्निर्बाणवान् ।
उद्बुध्यैलबृदा बद्धो बाहवे बिल्मिने यथा ॥८॥
कुबलं विबलं चैव स बिभेद बलं तथा ।
रक्षोहणं बलं त्याज्यमन्त्योष्ठो बल उच्यते ॥९॥
अन्तस्थायवकारोऽपि इत्येतैः सँय्युतो मतः ।
अर्बुदन्यर्बुदं बभ्रुः शुल्बं चोल्बं जहाति च ॥१०॥

बीभत्सं च बहुर्ब्रूहि बडवा स्तंबधारयन् ।
प्रबोधयाम्बिकेऽम्बेऽम्बालिके बलायका ॥११॥
अम्बिके बष्किहा बाह्यं बाधध्व बर्हितः ।
बिभ्रतामपि वेदश्च बरश्चैते ब्रवाणि ते ॥१२॥
क्लिबे विदलकारीं च बोधि बद्धं च जुम्बकः ।
बीभत्सायै च शाबल्यां शब्दायाडम्बरा बभूत् ॥१३॥
बण्महाँश्च बडादित्य बट्सूर्यस्य सुबीरये ।
येषाम्बरेषु बहुलं प्रब्रवाम बिभर्ति च ॥१४॥
बिभर्षि बिभर्ष्यस्तवे संहितायां क्रमेण तु ।
एते ओष्ठ्याः समाख्याताः शेषा दन्त्याः प्रकीर्तिताः ॥१५॥
विष्णुर्वायुस्तथा वह्निर्वरुणस्य विषूचिका ।
वसोर्विभाति विश्वस्य ह्यष्टौ दन्त्याः प्रकीर्त्तिताः ॥१६॥
व्वाममद्य विनश्चैव व्रशीनां वृषभस्तथा ।
वन्द्यमानश्च वृत्रं च वाचः सत्यमशीय च ॥१७॥
वृष्णो वक्र्यो वधोऽसीति वपा उर्व्वी वहन्ति च ।
वेदो बर्च्चो वराहश्च ह्यमी दन्त्याः प्रकीर्तिताः ॥१८॥
वलो वस्तिर्वलं वाहनं बुरीतं च विवब्रुः ।
कुबलं विबलं चापार्बाणममी दश दन्त्याः ॥१९॥
वक्ष्य मुक्ष्व तथा कक्ष्यमाणं तु यद्भवेत्तदा ।
वक्ष्यमाणास्तु, ह्रीत्येतां पीड्यहस्तामुदाहृताः ॥२०॥
व्वेत्वा व्वीतां तथा व्व्यन्त, उषे यह्वी तथैव च ।
व्विशल्यो व्वाणी वृष्णश्च इमे दन्त्याः प्रकीर्तिताः ॥२१॥
विद्मा ते [1]विभृतेश्चेतौ प्रतद्वो चेद् वित्तस्य च ।
विभ्राष्टि विभ्राड्विभ्राजमाना दन्त्याः स्मृता बुधैः ॥२२॥

---

१. १२।१६।

न तद्देवीरापऽआपो देवी तु [1]विभृतान्तथा ।
रक्षोहणं बलं दन्त्यं स बिभेद बलन्तथा ॥२३॥
सामवेदं जातवेदा नवाऽउऽएतन्म्रियसे ।
पर्णन्नवेरनुवाति प्रगर्द्धिनऽअमी दन्त्याः ॥२४॥
इषुबला बलं चौष्ठ्यं न विकल्पः कदाचन ।
संहितायां तथा वर्णा लघवो वै भवन्ति हि ॥२५॥
एकाक्षरं वकार[2]श्च निपातस्थो यदा भवेत् ।
संहितायां लघुर्जातः पदकाले गुरुर्भवेत् ॥२६॥
वकारस्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुलघूतरः[3] ।
आदौ गुरुर्लघुर्मध्ये पदान्ते च लघूतरः ॥२७॥
पदान्ते पदमध्ये च वकारो दृश्यते यदि ।
लघुरेव स मन्तव्यो ह्यन्यत्रापि [4]लघूत्तरः ॥२८॥
औकारे च पदे पूर्वे अकारे परतः स्थिते ।
लघूतरं विजानीदग्नावग्निनिदर्शनम् ॥२९॥
नादसञ्ज्ञा भवन्तीमे ङञणनमाश्चानुनासिकाः ।
भवन्ति प्रत्यये येषामन्तस्थासंयुताः स्वराः ॥३०॥
हकारं चैव वर्गाणां तृतीयं च चतुर्थकम् ।
[5]अथ दीर्घा विसर्गान्ता अष्टौ ते नादसञ्ज्ञकाः ॥३१॥
आद्यन्तयोर्म्मकारौ द्वौ हकारो यत्र [6]मध्यतः ।
तत्र नादं प्रकुर्वीत [7]अग्ने' व्रतपते निदर्शनम् ॥३२॥
मकारान्ते पदे पूर्वे अकारे परतः स्थिते ।
तत्र नादं प्रकुर्वीत [8]मुक्षिकेति निदर्शनम् ॥३३॥

---

१. देवी चेति 'ख' पुस्तकपाठः । २. वकारस्येति 'ख' पुस्तकपाठश्च । ३. लघुतर इति पाठो युक्तः । ४. पूर्ववदेव । ५. नादसञ्ज्ञिका इति 'ख' पुस्तकपाठः । ६. यत्र मध्यमः । इति 'क' पुस्तकपाठश्च । ७. अग्ने व्रतपतेति, अपपाठः । ८. २५।३२ ।

नमौ गुरू नादसञ्ज्ञौ लघू चैवानुनासिकौ ।
[1]संयुक्तौ, च विसर्गौ च नादावेतौ प्रकीर्तितौ ॥३४॥
पञ्चमा यत्र दृश्यन्ते पञ्चमे परतः स्थिते ।
नासिकं तत्र कुर्वीत [2]मात्रिकत्वेन संशयः ॥३५॥
संय्युक्ताग्रे विरामस्तु विवृत्तिस्तु विशेषतः ।
प्रत्यये च स्थिता ये च अघोषाः पञ्चमाः स्वराः ॥३६॥
पदान्ते सँय्युता ह्रस्वाः पञ्चैते ह्यनुनासिकाः ।
विवृत्तौ चावसाने वा ऋचार्द्धे तु तथापरे ॥३७॥
क्षिप्रे दीर्घे च संयुक्ते यकारो यत्र दृश्यते ।
पदे च पादसंस्थाने नासिकं तु विधीयते ॥३८॥
ककारान्ते पदे पूर्वे ऋवर्णे परतः स्थिते ।
नासिकन्तु विजानीयात्तमु॑त्वेति [3]निदर्शनम् ॥३९॥
हकारो रेफसँय्युक्तो नादिर्भवति नित्यशः ।
द्वितीयेन पदाक्रान्तो न तु नादः कदाचन ॥४०॥
जहि शत्रून् ऋतून् वनस्पतीन् परिधीन् क्षिणम्ति शत्रूँ ररनपव्ययन्तः ।
अनुरङ्गाः पञ्चैकार्द्धमात्रिका भवन्ति ॥४१॥
पूषा मित्रो वसुश्चैव अञ्जनाः परिकीर्तिताः ।
एकार्द्धमात्रिकां स्थित्वा पञ्चैते चानुनासिकाः ॥४२॥
पञ्च रङ्गाः प्रवर्तन्ते घातनिर्घातवज्रिणः ।
अहिणः प्रहिणो ज्ञेयो यथा ऽऽई ऊ ऋ निदर्शनम् ॥४३॥
[4]देवाँ २ । ऽआसादयेति घातः । [5]देवाँ २ ।
ऽइदे॑षीति निर्घातः । [6]देवाँ २ ॥ ऽउपागा इति
वज्रिणः ४। [7]देवाँ २॥ ऽऋतुर्भि॑रिति अहिणः ।
[8]अमित्राँ २ ऽ ॥ ओषतादिति प्राहिणः ।

१. संय्योगौ चेति 'ख' पुस्तकपाठः । २. नमस्तेति निदर्शनमिति 'ग' पुस्तकपाठः ।
३. ११।३३ । ४. २२।१७ । ५. २३।१६ । ६. ५।३९ । ७. १८।३३ । ८. १३।१२ ।

द्विमात्रो मात्रिको वाऽपि नासामूलं समाश्रितः ।
अन्ते प्रयुज्यते रङ्गः पञ्चमैः सर्वनासिकैः ॥४४॥

बण्महाँश्च बडादित्यो ह्यद्धा देवमहाँ २ ॥ ऽअसि ।
बट्सूर्यस्य तु सत्रातो महारङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥४५॥

परिते परिमाग्ने च अदृश्रं परिकीर्तिताः ।
यस्याद्वयं प्रदृश्यन्ते अतिरङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥४६॥

[1]अग्ना ३ इ पक्त्नीवन्स्वर्ल्लाजा ३ न्छाचीनिति द्विः ।
तिरश्चीनो व्विततः पृच्छामि त्वां व्वायुरनिलमिति
सप्त प्लुता भवन्ति ह्यष्टमो न विद्यते ॥४७॥

मनो जूतिश्च वायुश्च प्लुतमेकं द्विधाकृतम् ।
ओकाराद्याः प्लुताः सर्वे न विकल्पः कदाचन ॥४८॥

षडङ्गुलं तु जात्यस्य ह्रस्तस्यानुपथस्य च ।
चतुर्थभागमात्रं स्याद्भूयस्तेनैव वर्तते ॥४९॥

शून्ये गृहे पिशाचोऽपि गर्जते न च दृश्यते ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [2]उपजज्मन्निति निदर्शनम् ॥५०॥

स्फुरितं चिबुकोन्मूलं वायुना सम्प्रपूरितम् ।
मण्डूकस्फुरणं नाम [3]अपाम्फेने निदर्शनम् ॥५१॥

इडे रन्तेऽश्विवन्नें कृतस्यते, पातन्नो, यस्ते-
युवठं० सुरामम् । इडऽएहि ।
पदकाले तु वाक्ये च ह्रस्वाः पञ्च सरस्वति ॥

जकारौ द्वौ मकारश्च रेफस्तदुपरि स्थितः ।
अशरीरं यमं विद्यात्सर्म्माञ्ज्मींति [4]निदर्शनम् ॥

१. इदं गद्यात्मकं पद्यं केचिन्मतमवलम्ब्याङ्को लिखितः । उदाहरणाङ्काः प्रातिशाख्यतो ज्ञेयाः । २. १३।६ । ३. १९।७१ । ४. २।१४ ।

[1]इयन्ते, द्याम्मा, सुवीरान् सुप्रजाः। प्प्रजाः।
रश्मिना सत्त्याय। परो दिवा पृथिव्या इति षट्-
स्वरान्ताः ॥

लोहकार इवा, कर्म्म भस्मसात्कुरुते यदि।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः संवत्सरो निदर्शनम् ॥५४॥

ऊष्माकारं पठेद्यस्तु कूर्म्मपृष्ठो विधीयते।
एवं च कुरुते प्राज्ञः [2]कल्ल्याण्य[4] इति निदर्शनम् ॥५५॥
यथा मीनार्थिनः पक्षिण ऽ उत्पतन्ति पतन्ति च।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः [3]कल्ल्याण्य इति दर्शनम् ॥५६॥

कूर्मपृष्ठं परित्यज्य कर्त्तव्यमश्वत्त्थपत्त्रवत्।
एवं हि कुरुते ऽ भिज्ञो [4]द्वेवस्य त्वेति दर्शनम् ॥५७॥
कुक्कुटः कामलुब्धो वा ककारद्वयमुच्चरेत्।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः [5]कुक्कुटोऽसि निदर्शनम् ॥५८॥

कुक्कुटी कामलुब्धा च कुक्कुहन्ती पुनः पुनः।
तन्मुखं कुरुते प्राज्ञः कुक्कुटोऽसि निदर्शनम् ॥५९॥
यथा भारभराक्रान्तो निश्श्वासो लघुचेतसः।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [6]होता यक्षन्निदर्शनम् ॥६०॥

यथा बालस्य सर्पस्य निश्श्वासो लघुचेतसः।
एवमूष्मा प्रयोक्तव्यो हकारपरिवर्जितः ॥६१॥
यथा पुत्रवती स्नेहाच्चुम्बती च पुनः पुनः।
तन्मुखं कुरुते प्राज्ञो [7]युञ्जान ऽ इति दर्शनम् ॥६२॥
यथा कामातुरा नारी शब्दं करोति यादृशम्।
तच्छब्दं कुरुते प्राज्ञः [8]सिँ ह्यसि निदर्शनम् ॥६३॥

---

१. मूलस्थोदाहरणानि संहितातो ज्ञेयानि बुधैरिति। २. १७।८६। ३. द्वितीयोदाहरणं 'ख' पुस्तकपाठश्च। ४. १।१०। ५. १।१६। ६. २१।२९। ७. ११।१। ८. ५।१०।

यथा मर्कटयोर्युद्धं रोषेण प्रतिधावति ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या [१]किकिदीविना, निदर्शनम् ॥६४॥
मूत्रं करोति बडवा योनिं कुर्वीत यादृशीम् ।
तन्मुखं कुरुते प्राज्ञः [२]सदुन्दुभे निदर्शनम् ॥६५॥
उकारान्ते उकारे च दृश्यते चोभयोर्यदि ।
द्विरौष्ठ्यन्तु विजानीया [३]द्भू्भुर्वः स्वर्न्निदर्शनम् ॥६६॥
एकयत्नो भवेद्यस्तु सकृदौष्ठ्यन्तदुच्यते ।
द्वित्रिभिश्च चतुष्कं च चतुरौष्ठ्यं ततः परम् ॥६७॥
अथ सादृश्यविज्ञेयः समानस्वरवर्णयोः ।
न्यूनाधिकानि तान्येव चक्षुषीति विनिर्दिशेत् ॥६८॥
विश्वे देवास्तमुक्त्वा च असौ यस्तु कदाचन ।
ये देवा नमस्तेऽस्तु वाजो नः सप्त चक्षुषी ॥६९॥
समानाक्षरबाधे च सन्ध्येकाक्षरचक्षुषी ।
समानवर्णयोगं च सम्प्रधानैव चक्षुषी ॥७०॥
शन्नो मित्रस्तथा बातो ऊर्ध्वमेनं प्रचक्षते ।
मानस्तोके तनये तु चक्षुषी च चतुष्टयम् ॥७१॥
पूर्वायां कण्डिकां दृष्ट्वा आपरा सहसँय्युता ।
तदेव नामग्रहणं न विकल्पः कदाचन ॥७२॥
पूर्वा विद्धा परान्ता च कण्डिका यत्र दृश्यते ।
चपला चैव सा ज्ञेया [४]आच्छच्छन्दो निदर्शनम् ॥७३॥
तिस्रो ह्यर्द्धा अभित्यं च तिस्रोऽर्द्धा प्रजापतिः ।
पुनन्तु मेति चत्वारि वायुः पञ्च ततः परम् ॥७४॥
अनाधृष्टा त्रयश्चैव एधोस्यर्द्धचतुष्टयम् ।
सँव्वत्सरोऽसि चत्वारि द्यौः शान्तिश्चार्द्धयोर्द्वयोः ॥७५॥

---

१. १२।८७ । २. २९।५५ । ३. ३।३७ । ४. १५।५ ।

क्वचित्स्वाहा पृथक्कुर्यात् क्वचिद्युक्तं तु कारयेत् ।
क्वचिच्चादौ विजानीयात्क्वचिच्चान्ते विधीयते ॥७६॥
वाक्यकालेऽवसाने वा स्वाहान्ते चाहुतिं क्षिपेत् ।
मन्त्रभागं पृथक्कुर्यात्स्वाहाकारं पृथक्पृथक् ॥७७॥
स्वाहादौ च भवेद्वाक्यं [1]नृमणा नृमणस्तथा ।
अन्ते चादौ पुनश्चान्ते [2]काय स्वाहेति दर्शनम् ॥७८॥
अक्षराशीतिरेकश्च प्रथमा कण्डिका स्मृता ।
लक्षणोक्तप्रकारैस्तु [3]इषे त्वेति निदर्शनम् ॥७९॥
त्रीणि त्रीणि च चत्वारि दश पञ्चाष्टमं स्मृतम् ।
एकादशाक्षरं तद्वदुभयोरपि दृश्यते ॥८०॥
सप्तमं पञ्चमञ्चैव पुनश्चैकादशाक्षरम् ।
नवाक्षरं विजानीयाद्वाक्यं चैकादशं स्मृतम् ॥८१॥
उच्चादुच्चतरन्नास्ति नीचान्नीचतरं तथा ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या इषे त्वेति निदर्शनम् ॥८२॥
मकारादौ भवेद्वाक्यं म्रदाऽऊर्णम्प्रशस्यते ।
आविर्म्मर्य्याऽकारादौ स्वरान्ते प्रथमस्वराः ॥८३॥
रुद्रसंख्या भवेद्वाक्यं वेदसंख्या पुनः पुनः ।
युग्मवाणानयोः सप्त अन्ते चैव चतुर्दश ॥८४॥
पञ्चाशत्पञ्चवर्णानि अक्षराणां प्रमाणतः ।
इन्द्रादित्ये च विज्ञेयं वाक्यं तस्य भवेत्त्रयम् ॥८५॥
सुधा च प्रथमाध्यक्षा पीड्याध्यक्षा द्वितीयका ।
ऊष्मान्ता प्रथमा ज्ञेया अर्म्मेभ्योऽथ परा भवेत् ॥
ध्यक्षाध्यक्षा तयोः सम्यगुभयोः कण्डिकाद्वयोः ।
अभिरग्नेश्चतस्रस्तु पदाद्यञ्च विधीयते ।
एकाक्षरं पदं वाक्यं नवाब्धियुग्ममेव च ॥८८॥

---

१. १२।२० । २. २२।२० । ३. १।१ ।

मध्ये चैकाक्षरं वाक्यं द्वे द्वेऽअघ्न्याऽवसानयोः ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या, लोके ताश्च प्रकीर्तिताः ।।८९।।

विभक्त्यन्तं विजानीयाद् गुरुतः शास्त्रतोऽपिवा ।
लोपागमविकाराभ्यां वाक्यानामेष निर्णयः ।।९०।।

व्वने॑षु व्व्यृन्तरि॑क्षं च, अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्तथैवच ।[1]
[1]नामग्रहणकाले तु गुरुरेव न संशयः ।।९१।।

श॑र्म्म च स्थस्तथा चित्रऽउपप्रागात्समुद्द्रवः ।
स्वरितो वाक्यकालेषु उदात्तं नोपपद्यते ।।९२।।

एह्य॒षु शुक्रा जाते च अ॒भित्त्वा॑ गोर्म॑दूषुणा ।
स्वरितो वाक्यकालेषु न चोद्धर्वन्नीयते करम् ।।९३।।

अक्षन्नमीमदन्ते च अहरहश्च तथैव च ।
वाक्यं च स्वरितं विद्यात्पाठकाले यथाक्रमम् ।।९४।।

ऊष्माणो यत्र दृश्यन्ते ह्यन्तस्थाश्च तथैव ।
गुरुस्तत्रैव विज्ञेयऽऋवर्णसहसँय्युतः ।।९५।।

अन्तस्थपदसंयोगे विशेषो नोपपद्यते ।
अशरीरं यमं विद्यादन्तस्थः पिण्डनायकः ।।९६।।

सद्यो जातः समुद्रोऽसि प्रथमाथ व्यृध्यया ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या गुरवोऽत्र न संशयः ।।९७।।

अभिनीतं निपातं वा जात्यं वा स्वरितं विदुः ।
पदकाले भवन्त्येवं पाठकाले यथाक्रमम् ।।९८।।

तव व्वायो महोऽअग्ने व्वृणीत्यत्रैव दृश्यते ।
प्रथमोऽत्र लघुर्ज्ञेयो द्वितीयश्च गुरुर्भवेत् ।।९९।।

---

१. इमान्युदाहरणानि संहितापाठस्थानि बोध्यानि । अन्येषामुदाहरणानामङ्कः शिक्षान्तराद् ग्राह्याः ।

द्वादशैतानि नामानि देवता च तथैव च ।
अन्यथा निरयं याति सम्यक् पाठमजानतः ॥१००॥[1]

छायां च्छिद्रा तथा छन्दश्छकारा लघुसञ्ज्ञकाः ।
ह्रस्वा वा यदि वा दीर्घाः शेषा द्वित्वे प्रतिष्ठिताः ॥१०१॥

दीर्घादग्रे छकारोऽपि ह्रस्वादग्रे तथैव च ।
द्वित्वाक्षरं विजानीयादिति शास्त्रविधानतः ॥१०२॥

दीर्घादग्रे तु यो दीर्घो गिरिशा वर्म्मणा तथा ।
गुरुरेव स मन्त्रेष्वश्छादयामि निदर्शनम् ॥१०३॥

मा त्वा यऽआकृतमदाश्चैव सहस्तो मास्तथैव च ।
पाठमध्ये लघुत्रीणि पदकाले गुरुर्भवेत् ॥१०४॥

पशुभिर्यजुर्भिराप्यन्ते तस्माद् यज्ञात्तथैव च ।
ऋचार्द्धेतु छकारो न त्रिसँय्योगं कदाचन ॥१०५॥

न संयोगं न द्विर्भावमृकारो मृदुरुच्यते ।
अवसाने गुरुं विद्याच्छौनको वाक्यमब्रवीत् ॥१०६॥

निपातं चाभिनीतं च शेषं नीचतरं क्रमात् ।
त्रिस्वरं तं विजानीयाद्धोता ओजो निदर्शनम् ॥१०७॥

द्वौ ककारौ स्वरौ द्वौ च नैव मात्रा विधीयते ।
स्वरे प्रतिस्वरं दद्याद्व्रीणानान्त्वा निदर्शनम् ॥१०८॥

चतुर्दशाक्षरं चादौ पुनश्चैका दशाक्षरम् ।
पुनर्दशाक्षरं वाक्यमष्टाक्षरमतः परम् ॥१०९॥

लक्षणैर्वा विहीनस्तु भुक्तमव्यञ्जनं यथा ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः श्रीश्च ते च निदर्शनम् ॥११०॥

वसुसङ्ख्याक्षरं वाक्यं त्रिपदी वा चतुष्पदी ।
सप्तास्यासन् हि गायत्री अग्निन्दूतं, श्रुधी हवम् ॥१११॥

---

१. इदं पद्यं 'ख' पुस्तके पूर्वापरीभावेण दृश्यते ।

उभौ सप्ताक्षरं वाक्यं पुनश्चैव नवाक्षरम् ।
अष्टाक्षरं विजानीयाद्यत्पुरुषं च निर्दिशेत् ॥११२॥
ऊनाशीतिस्तु वर्णानि अथैताश्च प्रकीर्तिताः ।
एकाक्षरादिवाक्यानि द्वादशैतानि सङ्ख्यया ॥११३॥
द्वादशाक्षर प्रथमं पञ्चमे पञ्च सप्त वै ।
षडक्षरं ततो वाक्यं पुनर्द्वादशकं स्मृतम् ॥११४॥
एकादशाक्षरम्प्राहुरन्ते च द्वादशाक्षरम् ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या अथैतानिति दर्शनम् ॥११५॥
अष्टादशाक्षरं वाक्यं नाकपृष्ठे च पञ्चधा ।
सप्तदशाक्षरं चैव वैश्वदेवी निदर्शनम् ॥११६॥
रौद्राध्यायोत्तरेणैव कण्डिका शतकेन तु ।
ततो वाक्यं प्रकुर्वीत ऋचार्द्धे षोडशाक्षरम् ॥११७॥
अष्टादशाक्षरं वाक्यं पुनः षोडशकैः शुभैः ।
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या अश्मन्नूर्जं विनिर्दिशेत् ॥११८॥
पुस्तके[1] प्रज्ञयाऽधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
न भ्राजन्ते सभामध्ये जारगर्भा इव स्त्रियः ॥११९॥
एकः सर्वं न जानाति सर्वं एकं न विन्दति ।
एवं मन्त्रा न गृह्यन्ति पण्डिताः शुद्धभाविनः ॥१२०॥[2]
श्रुत्वा वेदविनाशं तु सम्यग्ब्रूयान्न वै बुधः ।
आहूय तं विविक्ते वै तस्य धर्मो न हीयते ॥१२१॥
मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति ।
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥१२२॥

१. प्रत्ययाधीतमिति 'ख' पुस्तकपाठः ।
२. शुभभाजिन इति 'क' पुस्तकपाठः ।

लक्षणं न त्यजेद्धीमान्सम्प्रदायोऽन्यथा भवेत् ।
लक्षणेन विना शिष्यः सम्प्रदायो विनाशवान् ॥१२३॥

नासौ तत्फलमाप्नोति सम्यक्पाठमजानतः ।
उत्तमो लक्षणज्ञानी लक्ष्यज्ञानी तु मध्यमः ॥१२४॥

लक्ष्यलक्षणयोर्ज्ञानी तद्धि मात्रं प्रचक्षते ।
लक्षणेन विना वाणी निर्मलाऽपि न शुद्ध्यति ॥१२५॥

प्रमदा रूपसम्पन्ना दरिद्रस्येव योषिता ।
स्वरहीना यथा वाणी वस्त्रहीनास्तु योषितः ॥१२६॥

एवं वर्णाः न शोभन्ते प्राणहीनाः शरीरिणः ।
वेदपाठी सदा सम्यग् विचार्यैवं पुनः पठेत् ॥१२७॥

विश्वारूपाण्यबोध्यग्निरेधोऽसीति तथाऽपरः ।
केतुङ्कृण्वन्निति च ते षकारा मूर्द्धजाः स्मृताः ॥१२८॥

अग्नेरनीकं, य्युक्ष्वा हि, व्विश्वे देवा, द्वितीयकम् ।
उदग्ने चायमुत्तरा, न्नमी व्वन्न्याय, हीत्ययम् ॥१२९॥

देवम्बर्हि, र्य्यदापोऽस्ति त्वामद्य, स्वस्ति नस्तथा ।
मानो मित्रो हि व्वक्ष्यन्ती क्षकारा ययुतास्तथा ॥१३०॥

॥ इत्यमोघानन्दिनी शिक्षा समाप्ता ॥

---

१. लक्षणेन विना शिष्यः सम्प्रदायश्च विनाशवान् भवति इत्यन्वययोजना बोध्या ।
२. तद्धि पात्रं प्रशस्यते इति 'क' पुस्तकपाठः ।

# लघ्वमोघानन्दिनी शिक्षा

पादादौ च पदादौ च सँय्योगावग्रहेषु च ।
जः शब्द इति विज्ञेयो योऽन्त्यः स य इति स्मृतः ॥१॥

युक्तेन मनसा तद्वत्तत्वावामि तथापरम् ।
अनूकाशेन बाह्यं च तुरीयमनुया[1] पदे ॥२॥

पदादावप्यविच्छेदे सँय्योगान्ते च तिष्ठताम् ।
वर्ज्जयित्वा रह्रौ यानामीषत्स्पृष्टत्वमिष्यते ॥३॥

विद्यदी, र्य्यमित्रांश्च रोचनास्य यथा भवेत् ।
तथा पार्य्याय सूर्यश्च मुह्यन्त्वन्ये समूह्यवत् ॥४॥

उपसर्गंपरो यस्तु पदादिरपि दृश्यते ।
ईषत्पृष्टो यथा विद्यात्पदच्छेदात्परो भवेत् ॥५॥

विभाषया यकारश्च नित्यमाम्रेडिते[2]ऽपि च ।
यत्र यत्रेति मा यज्ञं तथा येति पदादपि ॥६॥

अथातऽउत्तरो यः स्यात्तथा नेति पदात्परः ।
भवन्त्येतेऽपि पूर्वत्र तथा च स पदादपि ॥७॥

अथा वयमादित्यादावथोयेऽ अस्य दृश्यते ।
न यत्परो यथा च स्यात्स पदे तदुदाहृताः ॥८॥

वो वा वा वै वि वौ पाठे उपसर्गात्परो लघुः ।
अथ मा स न शब्देभ्यो विभाषाऽऽम्रेडिते यवौ ॥९॥

---

१. अस्याऽन्वयश्चिन्त्यः ।

२. आम्रेडितम् – कृतद्विर्वचनम् ।

यदेव लक्षणं यस्य वकारस्यापि तद्भवेत् ।
यत्र यत्र विशेषः स्यात्तदिदानीं तु कथ्यते ॥१०॥

त्वदर्थवाचिनौ वो, वां, वा वै यदि निपातजौ ।
आदेशाश्च विकल्पार्था ईषत्स्पृष्टाश्च ते स्मृताः ॥११॥

देवीवः सविता या वां, व्वातो वेति तथा न तत् ।
तत्र वाय्वृतस्पते तान ऽ आवेति कीर्तिताः ॥१२॥

यत्कृतं सूत्रकारेण तद्वत्स्यात्सम्प्रसारणम् ।
तज्ज्ञेयं सर्वशाखासु न तु वाजसनेयिनाम् ॥१३॥

लक्षणस्य विरोधेऽपि पाठैक्यं यदि दृश्यते ।
तत्तथा प्रतिपत्तव्यं य्यज्ञा यज्ञा वऽइत्यथ ॥१४॥[1]

अनुस्वारो द्विमात्रः स्याद्वर्णव्यञ्जनोदये ।
ह्रस्वाद्वा यदि वा दीर्घाद्देवानाꣳ हृदयेभ्यः ॥१५॥

स ꣳ स्रष्टा सि ꣳ ह्यसि संय्योगे ह्रस्व इष्यते ।
मध्यम ꣳ श्रथायेति संय्योगो न द्विरुच्यते ॥१६॥

ज्ञात्वा वेदविनाशं तु सम्यग् ब्रूयान्न वै बुधः ।
आहूय तं विविक्ते वै तस्य धर्मो न हीयते ॥१७॥[2]

॥ इति श्रीलघ्वमोघानन्दिनी शिक्षा समाप्ता ॥

---

१. इदं क्रियाबोधकं पृथक् पदम् । यज्ञा यज्ञा इति तूदाहरणं बोध्यम् ।

२. इदं पद्यं प्राक् शिक्षायां लिखितम्, तथाऽपि सम्प्रदायविदोऽत्रापि लिखन्त्यतो मया लिखितम् ।

# माध्यन्दिनमहर्षिप्रणीता शिक्षा

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्[1] ॥१॥

स्वराद्द्वित्वमवाप्नोति व्यञ्जनं व्यञ्जने परे ।
हरौ न यद्यचः पूर्वौ निमित्तं व्यञ्जनस्य च ॥२॥

इषे त्वोर्जे त्वा । स्वरपूर्वाः शषसहा अन्तस्थाश्च
तथा यदि । निमित्तभूता द्वित्वस्य स्पर्श एव न संशयः ॥३॥

अश्मन् । स्पर्शपूर्वा यरलवाः स्पर्शपूर्वाः शरस्तथा ।
व्यञ्जनञ्च ततः पूर्वं द्वेधाभावं न चाप्नुयात् ॥४॥

अयक्ष्माः । विसर्गाच्च परः कादिर्व्यञ्जनात्किल पूर्वगः ।
ह्रस्वपूर्वौ नङौ द्वित्वमापद्येते पदान्तगौ ।
अपि स्वरतरावेव श्लिष्टौ भवति नान्यथा ॥५॥

विष्णोः, क्रमं । दध्यङ्ङृषि । अश्मन्नूर्ज्जम् । अत्र
येन निमित्तेन द्वित्वं व्यञ्जनमश्नुते । द्वितीयस्य च
प्रथमस्तुरीयस्य तृतीयकः ॥६॥

बाहुभ्याम् । स्ववर्गे च परे चैवापञ्चमे परतः
स्थिते । सवर्णे च यमे चैव ऋवर्णे न तथा शलि ॥७॥

तद्देवानाम् । ऋद्धि । तन्नं । अग्निः । पितॄणाम् ।

---

१. स्वरेण वर्णेन वा हीनो मन्त्रोऽभीष्टमर्थं न साधयति । अत्राद्यादित्वात्तसिना प्रत्ययेन स्वरतो वर्णत इति पदद्वयनिष्पत्तिर्बोध्या ।

अत्र कवर्गीयखकारा निर्दिश्यन्ते । आखरे ष्ट्ठाः ॥१॥ आखुस्ते ॥२॥ मयूखैः ॥३॥ द्याम्मा लेखीः, ॥४॥ ततः खनेम ॥५॥ उखाङ्कृणोतु ॥६॥ उखांम्परिद-दामि ॥७॥ खनत्ववट ॥८॥ दधतु खे ॥९॥ मित्रै-तान्तऽउखाम् ॥१०॥ त्वङ्खाद ॥११॥ सुखा-दितान ॥१२॥ अभारुखा ॥१३॥ गन्धर्व्वाऽअख-नन् ॥१४॥ आखिदते ॥१५॥ प्रखिदते ॥१६॥ विशिखाऽइव ॥१७॥ श्रियै शिखा ॥१८॥ भूम्या ऽआखून् ॥१९॥ ऋतूनामाखुः ॥२०॥ खड्गो वैश्वदेवः ॥२१॥ नखेषु ॥२२॥ मोखा भ्राजन्ती ॥२३॥ उखायाः, सदने स्वे ॥२४॥ मधु शारवः ॥२५॥ स्त्रीषखम् ॥२६॥ शङ्खध्मम् ॥२७॥ मुखस्यशिरोऽसि ॥२८॥ मखाय त्वा ॥२९॥

अथ गलितर्चानां निर्णयः । इषे त्वा एदम् । अश्व-स्तूपरः । समिद्धोऽअञ्जन् । सहस्रशीर्षा पुरुषः । तदेव । स्वाहा प्राणेभ्यश्चैष्वध्यायेषु न गलिता ऋचः ॥१॥

द्वितीयेऽध्याये अग्ने व्रतपते इति प्रविष्टास्त्रय-स्त्रिᳪं शत् ॥२॥

तृतीयेऽयमग्निः पुरीष्यऽइति प्रविष्टा द्वाषष्टिः ॥३॥

पञ्चमेऽग्ने व्रतपाऽउरु विष्णोऽ इति प्रविष्टे एकचत्वा-रिंशत् ॥५॥

षष्ठे प्रथमा ऋग्गलिता रेवतीरमध्वमित्यतः परा देवस्य त्वान्तः पञ्चविंशत् ॥६॥

वाचस्पतये स्वाङ्कृतोऽसि आत्मने मेअग्ने नया यन्नो लुप्ते चतुश्चत्वारिंशत् ॥७॥

आदित्येभ्यस्त्वेत्यत्र कदाचन सँव्वर्चसा देवा गातुवि-
दऽउदुत्यमवभृथ निचुम्पुण मिलिता अष्टपञ्चा-
शत् ॥८॥

देवसवितरित्यत्र देवस्याहं एकोनचत्वारिंशत् ॥६॥

अपो देवा इत्यत्र सोमस्य त्विषिरिमं देवा इति लुप्ते
द्वात्रिंशत् ॥१०॥

युञ्जानः प्रथममित्यत्र युञ्जते देवसवितः पृथिव्याः
सधस्थाद् वसवस्त्वाचछृन्दन्तु मिलिताऽअष्ट
सप्ततिः ॥११॥

दृशानो रुक्क्म इत्यत्र ह्ठ॰ सः शुचिषदक्रन्ददग्निर्दृ-
शानो रुक्क्मः समिद्धाग्निं सहरय्या पुनरूर्ज्जाऽअयन्ते
भवतन्नऽअष्टोत्तरशतम् ॥१२॥

मयि गृह्णामीत्यत्राग्निर्मूर्द्धाऽपाम्पृष्ठम्मही द्यौ-
र्विष्णोः कर्माणि चित्रं देवानां त्रिपञ्चाशत् ॥१३॥

ध्रुवक्षितिरित्यत्र शुक्रश्च विश्वकर्मा त्वा द्वे नभश्चेष-
श्चेति पञ्चविंशतिः ॥१४॥

अग्ने जातानित्यत्राग्नेर्मूर्द्धा त्वामग्ने पुष्कराद्ध्रुवो
यज्ञस्यायमिहायन्ते लोकं पृण ताऽअस्येन्द्रँविश्वा
नवैता लुप्यन्ते परमेष्ठी त्वा द्वे मिलिते चतुः पञ्चा-
शत् ॥१५॥

नमस्ते इत्यत्र नीलग्रीवा द्वितीया नमोऽस्तु द्वे मिलि-
तास्त्रयस्त्रिषष्टिः ॥१६॥

अश्मन्नूर्जमित्यत्र हिमस्य त्वा वाचस्पतिं विश्वकर्म्मन्ह-
विषोदुत्वाऽइन्द्रं विश्वा नक्तोषासाऽग्ने त्वं सप्त-
द्वानवतिः ॥१७॥

व्वाजश्चेत्यत्र वाजस्य नु देवस्य त्वा यास्ते या व ऽ उद्दबुद्ध्यस्व येन वहसि व्विनत्वंय्यविष्ठेत्यष्ट मिलिता एकोनसप्ततिः ।।१८।।

स्वाद्वीन्त्वेत्यत्र वायोः पूतः कुविदङ्गेति द्वे त्रिनवतिः ।।१९।।

क्षत्रस्य योनिरित्यत्र समुद्रे ते उतापः पुत्रमिव पितरौ निषसाद यदि जाग्रद्यदापो यदि दिवेति यद्ग्रामे सुमित्रियानोयत्सुरामं नवैकाशीतिः ।।२०।।

इमम्मे इत्यत्र तत्त्वा शन्नो वाजेवाजेऽवत होतायक्षदिन्द्रमृषभस्य सरस्वतीम्मेषस्येति प्रविष्टाः सप्तपञ्चाशत् ।।२१।।

तेजोऽसीत्यत्र तत्सवितुर्विश्वो देवस्य पृथिव्यै स्वाहा मधवे स्वाहा वाजाय स्वाहाऽसवे स्वाहेति प्रविष्टाऽएकविंशतिः ।।२२।।

हिरण्यगर्भ ऽइत्यत्र कः स्विदत्सूर्यऽएकाकी कास्विद् द्यौरासीत्प्रजापते न सप्तपञ्चाशत् ।।२३।।

शादन्दद्भिरित्यत्र हिरण्यगर्भः सँय्यः प्प्राणतोऽग्ने त्वं चत्वारिंशत् ।।२५।।

अग्निश्चेत्यत्र वैश्वानरो नः पञ्चविंशत्[1] ।।२६।।

समास्त्वेत्यत्र उद्वयं चतुश्चत्वारिंशत् ।।२७।।

होता यक्षदित्यत्र देवा दैव्याहोतारा शुचिमुष्णिहानन्तरं सर्वे लुप्ता अन्तस्त्रिपञ्चाशत् ।।२८।।

देव सवितरित्यत्र तत्सवितुर्विंशत्[2] ।।३०।।

---

१. पञ्चविंशतिरिति पाठो युक्तः । २. विंशतिः—इति पाठो युक्तः ।

अस्याजरासऽइत्यत्र युक्ष्वा हि अयमिह मूर्द्धानन्दिवऽ ऊदुत्त्यं विश्वेऽअद्येन्द्रवायूऽइमे यज्ञो देवानां गावऽउप दैव्व्यावद्ध्य्यूँऽअदब्धेभि: सवित: सप्ताशीतिः ।।३३।।

यज्जाग्रतऽइत्यत्राक्कृष्णेन सप्तपञ्चाशत् ।।३४।।

अपेत इत्यत्राश्वत्त्थे व: सुमित्रिया न ऽउद्वयमग्न ऽआयू ँ षीत्यष्टादश ।।३५।।

ऋचॅव्वाचमित्यत्र भूर्भुव: कया नः कस्त्वा स्योना पृथिव्यापोहिष्ठेति त्रिर्न्नमस्ते हरसे सुमित्रिया नोऽभी-षुणो दृते दृठ्ठ० हमेति त्रयोदश ।।३६।।

देवस्य त्वेत्यत्र देवी द्यावापृथिवीन्द्रस्यौजोऽश्वस्य त्वेयत्यग्रे हृदे त्वा युञ्जते मन: प्रैतु मखस्य शिरस्त्र-योदश ।।३७।।

द्वितीयदेवस्य त्वेत्यत्र सुमित्रिया न उद्वयमेधो ऽसीऽऽ-एह्यदित्यै रास्नासीन्द्रायत्वा षड्द्वाविंशति: ।।३८।।

ईशाव्वास्यमित्यत्रान्धन्तमोऽन्यदेवासम्भूतिमिलितास्त्र-योऽग्ने नय त्रयोदश ।।४०।।

एवं चतुष्पष्टयुत्तरशतं लोपा:। एकादशोत्तरमष्टा-दशशतैः सहेति ।

।। प्रथमा माध्यन्दिनीयशिक्षा समाप्ता ।।

# लघुमाध्यन्दिनीया शिक्षा

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि माध्यन्दिनमतँय्यथा ।
षकारस्य खकारः स्याट्टुकयोगे तु नो भवेत् ॥१॥
इषे लक्ष्यं कृष्णऽउक्षा समुद्रः प्रत्युदाहृतिः ।
पदादौ विद्यमानस्य ह्यसँयुक्तस्य यस्य च ॥२॥
आदेशो हि जकारः स्याद्युक्तः सन्हरणेन तु ।
यज्ञेन यज्ञं वैलक्ष्यं मयूरे प्रत्युदाहृतिः ॥३॥
तस्माद्यज्ज्ञात्सर्व्वहुतः समस्म्माद्यत्तथैव च ।
रेफेणाथ हकारेण युक्तस्य सर्वथा भवेत् ॥४॥
सूर्यो बाह्यन्तु वैलक्ष्यं शष्प्याय प्रत्युदाहृतिः ।
यकारर्कारयुक्तस्य जकारः सर्वथा भवेत् ॥५॥
सहय्य्या तथा व्यृद्ध्या चोपसर्गपरस्य न ।
उपयज्ञम्मानुषाणामपि यन्तीत्युदाहृतिः ॥६॥
गुरुर्वकारो विज्ञेयः पदादौ पठितो भवेत् ।
विभ्राड्डुदाहृतिर्ज्ञेया सवितान्तर्लघुः स्मृतः ॥७॥
पदान्ते वै लघुतरस्तव व्वायवृतस्पते ।
उपसर्गपरो यस्तु सवकारो लघुर्मतः ॥८॥
वो वां वा वै मन्त्रपाठे लघवो गुरवः पदे ।
प्रवायुमच्छा बृहती वातो वेति निदर्शनम् ॥९॥
रेफो रेकत्वमाप्नोति शषहेषु परेषु च ।
ददर्श वर्षोऽर्हाच्च संय्योगे नैव कारयेत् ॥१०॥

व्वर्ष्म्मन्वर्ष्यायान्तर्हृदा तत्र तावदुदाहृतिः ।
लकारोऽपि च सावर्ण्यादिकारसदृशो भवेत् ॥११॥
शतवल्शा च वल्हा च तत्र तावदुदाहृतिः ।
अनुस्वारो यत्र कुत्र ठं॰कारो भवति ध्रुवम् ॥१२॥
ह्रस्वो दीर्घो गुरुश्चेति त्रिविधः परिकीर्तितः ।
ह्रस्वात्परो भवेद्दीर्घो हठं॰ स ऽ इति दर्शनम् ॥१३॥
दीर्घात्परो भवेद् ह्रस्वो मा ᳪ सेभ्यऽइति दर्शनम् ।
गुरौ परे ह्यनुस्वारो गुरुरेव हि स स्मृतः ॥१४॥
सि ᳪ ह्यसीति तत्र तावदृकारे दीर्घऽएव सः ।
देवाना ᳪ हृदये तद्वत्तस्कराणां तथा सृके ॥१५॥
अथायोगवाहानाह— अवर्णाच्च ऋकाराच्च
विसर्गः कण्ठ्य एव सः ।
इवर्णाच्च तथोवर्णात्तथा चैकारपूर्वकः ॥१६॥
औकारपूर्वकश्चैव तालव्यो भवति ध्रुवम् ।
एकाराच्च कण्ठतालुर्विसर्गो भवति ध्रुवम् ॥१७॥
कण्ठ्योष्ठ्यस्तु तथौकाराद् विसर्गो भवति ध्रुवम् ।
देवो वः सविता चात्र हकारसदृशो भवेत् ॥१८॥
देवीस्तिस्रो विसर्गस्तु हिकारसदृशो भवेत् ।
आखुस्ते पशुरित्यादौ हकारसदृशो भवेत् ॥१९॥
विसर्गश्चाग्नेरित्यादौ हेकारसदृशो भवेत् ।
विसर्गो बाह्वोरित्यादौ होकारसदृशो भवेत् ॥२०॥
अथ स्वैर्दक्षैरित्यादौ हिकारसदृशो भवेत् ।
विसर्गो द्यौष्पितेत्यादौ हकारसदृशो भवेत् ॥२१॥
हकारो नैव मन्तव्य इति शास्त्रव्यवस्थितिः ।
फणिनिश्वाससदृशो विसर्गो भवति ध्रुवम् ॥२२॥

कनिष्ठिकामोचनं तु नीचे च प्रचये सति ।
नमः कूप्याय प्रथमो द्वितीयो जाग्रतस्तथा ॥२३॥

तर्जनीमोचनं कुर्यादुदात्ते तु विसर्गके ।
देवो धर्मस्तथा ह्रस्वे स्वरिते तूभयं क्षिपेत् ॥२४॥

अश्वो मर्त्यो भवेल्लक्ष्यं स्वारे दीर्घे कनिष्ठिकाम् ।
उभयोरपि ह्रस्वे च वकारे स्वरिते सति ॥२५॥

दीर्घेऽपि चोभयोः क्षेपऽइति शास्त्रव्यवस्थितिः ।
यथा स्फटिकदण्डादिरुपाधिवशतो भवेत् ॥२६॥

तद्वदूष्मा प्रयोक्तव्यो हिहुहेहो निदर्शनम् ।
व्वसोः पवित्रं वै तत्र ह्युदाहरणमुच्यते ॥२७॥

ऋकारः खलु सर्वत्र [1]ह्येकारसदृशो भवेत् ।
हृदे मृगस्तृतीया च ऋचं व्वाचमथापरम् ॥२८॥

॥ लघुमाध्यन्दिनीया शिक्षा समाप्ता ॥

---

१. ऋकारो वर्णः रे इत्युच्चारणीयः ।

# अथ वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा

श्रेयो दिशतु नः कृष्णः कंसमातङ्गकेसरी ।
राधाकेलिकलाऽभिज्ञो गोपीवादकुतूहली ॥१॥

उत्पन्नो यः स्तुते वंशे बुद्धिमान्कृतनिश्चयः ।
अमरेश इति ख्यातो भारद्वाजकुलोद्वहः ॥२॥

सोऽहं शिक्षां प्रवक्ष्यामि प्रातिशाख्यानुसारिणीम् ।
बालानां पाठशुद्ध्यर्थं वर्णज्ञानादिहेतवे ॥३॥

जपादिशुभकार्येषु पुमान्नाधिकृतो भवेत् ।
सम्यक्पाठं विना यस्मात्तं निमित्तं बदाम्यहम् ॥४॥

स्वरसंस्कारयोर्व्वेदे नियमः कथितो यतः ।
ततो विचार्य वक्तव्यो वर्णसंघातऽउत्तमः ॥५॥

मन्त्रो यः स्वरतो हीनो वर्णतो वापि कुत्रचित् ।
निष्फलं तं विजानीयात्तथैवाशुभसूचकम् ॥६॥

वेदस्याध्ययनाद्धर्मः सम्प्रदानात्तथा श्रुतेः ।
वर्णशोऽक्षरशो ज्ञानाद् विभक्तिपदशोऽपि च ॥७॥

स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा तत्प्रयोगाऽर्थऽएव च ।
मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ॥८॥

स्थानं च करणं मात्रा सम्यगुच्चारणं तथा ।
यो न वेद स निर्लज्जः पठामीति कथं वदेत् ॥९॥

अथ प्रथमतो वर्णसञ्ज्ञाऽधिक्रियते मया ।
यया विना न सिद्ध्यन्ति व्यवहारा नृणामिह ॥१०॥

एकविंशतिरुच्यन्ते स्वराः शब्दार्थचिन्तकैः ।
द्विगुणानि व्यञ्जनानि ह्येतावान्वर्णसङ्ग्रहः ॥११॥

ऋपर्यन्ताः स्वरास्त्रेधा लृकारो ह्रस्व एव च ।
सन्ध्यक्षराण्यह्रस्वानि ते चैवमेकविंशतिः ॥१२॥

ककारादिमकारान्ताः स्पर्शाः स्युः पञ्चविंशतिः ।
चतस्रो यादयोऽन्तस्था ऊष्माणः शषसाः[1] सहाः ॥१३॥

स्पर्शानां पञ्चमैर्योगे चत्वारश्च यमाः स्मृताः ।
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीयऽएव च ॥१४॥

उपध्मानीय इति च द्विस्स्पृष्टश्च[2] तथाऽपरः ।
द्विस्पृष्टता च विज्ञेया डढयोः स्वरमध्ययोः ॥१५॥

पदकाले वियुज्येत द्विस्पृष्टो न भवेत्तदा ।
सव्यञ्जनः सानुस्वारः शुद्धो वापि स्वरोऽक्षरम् ॥१६॥

चतुर्णां पञ्चमैर्योगे उत्पद्यन्ते यमाश्च ये ।
कुँ खुँ गुँ घुँ इति च ते चत्वारो नात्र पञ्चमः ॥१७॥

वर्गाणां प्रथमौ द्वौ द्वावूष्माणश्च हवर्जिताः ।
जित्सञ्ज्ञा भवन्त्येते शेषा धिसञ्ज्ञकाः स्मृताः ॥१८॥

शषसामुत्समाख्याता अवर्णः कण्ठ्यसञ्ज्ञकः ।
सिम्सञ्ज्ञका ऋपर्यन्ता भावी स्यात्कण्ठ्यवर्जितः ॥१९॥

अन्त्याद्वर्णाद्भवेद्वर्णः पूर्वः स उपधाभिधः ।
एताः सञ्ज्ञा बुधैर्ज्ञेया व्यवहारप्रसिद्धये ॥२०॥

---

१. हकारसहिता इत्यर्थः । हेन--हकारेण सह-इति सहाः । तेन सहेति तुल्ययोगे इति सूत्रेण बहुव्रीहिसमासः ।

२. दुःस्पृष्टश्चेति पाठो युक्तः । दुःस्पृष्टलकारश्च ( लड विलासे इति धातौ ) लडयोर्लरयोश्चैकत्वस्मरणादिति सिद्धान्तकौमुदीग्रन्थमादायोक्तं शेखरकृता "एको दुःस्पृष्ट, इति" । अनेन ज्ञायते यत्-दुःस्पृष्ट एव पाठो युक्त इति ।

लल्हृजिह्वामूलभवोपध्मानीयस्तथैव च ।
नासिक्याश्च तथा चास्मिन्वर्णा वर्ज्याः सदैव हि ॥२१॥

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रिकम् ॥२२॥

तदर्द्धमणु तस्यार्द्धं परमाण्वभिधीयते ।
वर्णग्रहे सवर्णोऽपि सङ्ख्यया स्पर्शेषु कीर्त्तिताः ॥२३॥

अथ वर्णसमाम्नाये स्थानं करणसंय्युतम् ।
आत्मशक्त्या प्रवक्ष्येऽहं तत्क्षन्तव्यमघं बुधैः ॥२४॥

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठशिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥२५॥

हकारः पञ्चमैर्युक्तो योऽन्तस्थाभिरथाऽपि वा ।
औरस्यं तं विदुः प्राज्ञाः कण्ठ्यं शुद्धं प्रचक्षते ॥२६॥

ऋवर्णोऽथ कवर्गश्च जिह्वामूलीय एव वा ।
जिह्वामूले भवत्येषां जिह्वामध्यं तु कारणम् ॥२७॥

इवर्णोऽथ चवर्गश्च एऐकारौ यशैः सह ।
तालुस्थाना भवन्त्येषां जिह्वामध्यं तु कारणम् ॥२८॥

षकारोऽथ टवर्गश्च मूर्धन्याः परिकीर्तिताः ।
जिह्वायाः प्रतिवेष्ट्याग्रमेतेषां कारणं स्मृतम् ॥२९॥

लृलसिताः स्मृता दन्त्या जिह्वाग्रकरणा हि ते ।
रेफश्च दन्तमूलोत्थो जिह्वाग्रेण विधीयते ॥३०॥

उवर्णोऽथ पवर्गश्च ओऔकारौ तथा च वः ।
ओष्ठ्या एते स्मृता वर्णा उपध्मानीय एव च ॥३१॥

समानस्थानकरणा नासिक्यौष्ठ्याः प्रकीर्तिताः ।
वकार ओष्ठसम्भूतो दन्ताग्रकरणः स्मृतः ॥३२॥

अवर्णश्च विसर्गश्च हकारश्चापि केवलः ।
कण्ठ्या वर्णाः स्मृता ह्येषां हनुमध्यं[1] तु कारणम् ॥३३॥
यमानुस्वारनासिक्या नासामूलभवा दशा ।
मुखनासिकाकरणोऽनुनासिक इति स्मृतः ॥३४॥
पूर्वा मात्रा तु कण्ठ्यस्य एकारौकारयोर्भवेत् ।
तालव्यस्य तथौष्ठ्यस्य परा प्रोक्ता यथाक्रमम् ॥३५॥
ऐकारौकारयोश्चैवं तत्त्वं ज्ञेयं विचक्षणैः ।
ए ऐ तु कण्ठतालव्यौ ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥३६॥
एतद्वर्णसमाम्नायस्थानं करणसंयुतम् ।
ज्ञातव्यं यन्मया प्रोक्तं शास्त्रतत्त्वार्थदर्शनम् ॥३७॥
यद्यद्यस्य भवेत् स्थानं करणं वा विशेषणम् ।
सवर्णत्वेन सङ्ग्राह्य आस्ययत्नस्तु भिद्यते ॥३८॥
संव्वृतं विवृतं तद्वदस्पृष्टं स्पृष्टमेव च ।
ईषत्स्पृष्टं चार्द्धस्पृष्टमास्ययत्नस्तु षड्विधः ॥३९॥
अकारः संव्वृतो ज्ञेयो विवृताश्चेतरे स्वराः ।
अस्पृष्टास्यप्रयत्नाश्च स्वराः सर्वे भवन्ति हि ॥४०॥
स्पृष्टाः स्पर्शास्तु विज्ञेया अन्तस्था ईषदुत्स्पृशः ।
अर्द्धस्पृष्टाश्च विज्ञेया ऊष्माणो वर्णवेदिभिः ॥४१॥
ऋलोर्मध्ये भवत्यर्द्धमात्रा रेफलकारयोः ।
तस्मादस्पृष्टता न स्यात्सम्भवे ऋलृकारयोः ॥४२॥
द्विमात्रस्यैकमात्रस्य संव्वृतादि प्रयत्नतः ।
भिन्नस्याप्यस्तु सावर्ण्यं तदर्थमिदमुच्यते ॥४३॥
अथातोऽवरतो वच्मि चर्चा पूर्वपराङ्गयोः ।
स्वारप्रयोजना चासौ वेदितव्या विचक्षणैः ॥४४॥

---

१. हनुश्चिबुकम्—मुखस्याधोभागः ।

संय्योगस्यादिभूतो यः स पूर्वाङ्गं भवेद्यथा ।
अश्वः शशवसंय्योगे शः पूर्वाङ्गं शवोऽन्यतः ॥४५॥

यमश्च पूर्वस्याङ्गं स्याच्चकारात्पूर्वसंय्युतः ।
रुक्मः पूर्वस्य कयमावुत्तरस्य तु मः स्मृतः ॥४६॥

संय्योगादिपरद्वित्वे पूर्वाङ्गं क्रमजं यथा ।
पार्श्वं रशौ तु पूर्वस्य परस्य शवयात्मकम् ॥४७॥

क्रमजाच्चोत्तरं स्पर्शे परे पूर्वाङ्गकं यथा ।
पाष्ण्यां पूर्वस्य रषषाः परस्याङ्गं णयात्मकम् ॥४८॥

यद् व्यञ्जनं च यस्याङ्गं तत्तेन सस्वरं भवेत् ।
एतदर्थमिदं प्रोक्तं स्वारसन्देहभेदकम् ॥४९॥

अनुस्वारो विसर्गश्च नासिक्योऽथ यमास्तथा ।
जिह्वामूलमुपध्मा च नवैते स्युः पराश्रयाः ॥५०॥

सँय्योगवाहा एवैते निजस्वरविवर्जिताः ।
पूर्वस्याङ्गं भवन्त्येते स्वर एतेषु पूर्ववत् ॥५१॥

स्वरभक्तिश्च पूर्वाङ्गं देवम्बर्हिरुदाहृतिः ।
इकारे च तथोकारे तां यत्नेन विवर्जयेत् ॥५२॥

रेफो वाऽथ लकारो वा यत्रोष्मणि स्वरोदये ।
स्वरभक्तिर्भवेत्तत्र पूर्वमाक्रम्य पठ्यते ॥५३॥

ऊष्मणामुपरिस्थस्तु रेफो याति रेवर्णताम् ।
रेफत्वं पुनरायाति यद्यूष्माणोऽन्यसँय्युताः ॥५४॥

ऊष्मणां स्वरभक्तिस्तु द्विर्भावं बाधते यथा ।
वर्षो वर्षीयसि ह्वार्षीच्छतबल्शोऽपि सिद्ध्यति ॥५५॥

अष्टौ स्वरान्प्रवक्ष्यामि तेषामेव च लक्षणम् ।
जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टस्तदनन्तरम् ॥५६॥

तैरो व्यञ्जनऽएवाथ तैरोविराम एव च ।
पादवृत्तस्ततस्तद्वत्ताथ[1]भाव्यस्तथाऽष्टमः ॥५७॥

एकपदे निपूर्वस्तु सयवो जात्य इष्यते ।
अपूर्व्वोऽपि परस्तद्वद्धान्यं कन्या स्वरित्यपि ॥५८॥

सप्तोदात्तादयो ज्ञेया परेऽभिनिहितादयः ।
त्रयो नीचपरास्तत्र प्रश्लिष्टान्तं निदर्शनम् ॥५९॥

ए ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो नीच एव च ।
लुप्यते सन्धिकार्ये यत्तं चाभिनिहितं[2] विदुः। ।६०॥

तेऽप्सरसा च तेऽवन्तु वेदोऽसीति तुथोऽस्यपि ।
इउवर्णावुदात्तौ चेदनुदात्तस्वरोदयौ ॥६१॥

यवाभ्यां चैव सँय्युक्तौ तदा क्षैप्रः[3] स्वरो भवेत् ।
वाज्यर्वीस्त्र्यम्बकँय्यद्वद्व्रन्नो योजान्विन्द्रेति च ॥६२॥

उच्चः पूर्वः परा नीच इकारोऽन्योऽन्यसङ्गतः ।
प्रश्लिष्टः स स्वरो ज्ञेयः स्रुचीवाभीन्धताँ य्यथा ॥६३॥

उदात्तपूर्वो यत्र स्यान्नीचो व्यञ्जनसँय्युतः ।
स तैरोव्यञ्जन इति स्वरो भवति तद्यथा ॥६४॥

इडेरन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते निदर्शनम् ।
उदात्तावग्रहो यत्र स तु तैरोविरामकः ॥६५॥

स्वरो ज्ञेयः पदेऽन्यत्र तैरोव्यञ्जन एव तु ।
यथा गोपताविति गोपतौ यज्ञपतिस्तथा ॥६६॥

स्वरयोरन्तरे यत्र विवृत्तिर्यदि दृश्यते ।
स पादवृत्त इत्याख्यः काईमरे निदर्शनम् ॥६७॥

---

१. तथाभाव्य इत्यपि पाठः । २. अभिनिहतमित्यपि पाठो दृश्यते । ३. क्षिप्रं भवतीति क्षैप्रः स्वरः ।

उदात्तादिरुदात्तान्तो नीचो ऽवग्रह एव च ।
ताथाभाव्यो भवेत्कम्पस्तनूनप्त्रे निदर्शनम् ।।६८।।
माध्यन्दिनविरोधी स्यात् ताथाभाव्यस्तु यः स्वरः ।
भिन्नो यतोऽत्र दृश्येते तावुदात्तानुदात्तकौ ।।६९।।
तस्मान्माध्यन्दिनीयानां पदे कम्पो विधीयते ।
तथोक्तमौज्जिह्वायनकैर्माध्यन्दिनानुसारिभिः ।।७०।।
अवग्रहो यदा नीचप्रोच्चयोर्म्मध्यतः क्वचित् ।
तथाभाव्यो भवेत्कम्पस्तनूनप्त्रे निदर्शनम् ।।७१।।
जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्टाः स्वरिता इमे ।
नीचपूर्वा यदा त्वेते तिर्यक्स्वा[1]रस्तदा भवेत् ।।७२।।
जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टश्च चतुर्थकः ।
एते स्वराः प्रकम्पन्ते दृष्ट्वोदात्तं पुरः स्थितम् ।।७३।।
यथा वरुणः पस्त्या स्वा युद्ध्यो ऽअस्माकन्तथाऽपरम् ।
परमेष्ठ्यभिधीतोऽभीममित्यादि निदर्शनम् ।।७४।।
नीचपूर्वोदात्तपरः स्वरोऽसौ प्रणिहन्यते ।
अन्यथा नीचवर्ण एव स्यात्स्वर्णघर्मादिकं यथा ।।७५।।
स्वरितादनुदात्तं यत्तत्सर्वं प्रचयाह्वयम् ।
स्यादुदात्तमयं चैव त्वामद्येत्यादिकँय्यथा ।।७६।।
तिर्यक्स्थानगते हस्तेऽनुदात्तो दृश्यतेऽपरः ।
प्रचितं तँ विजानीयादुदात्तं स्वरमाप्नुयात् ।।७७।।
जात्यं कृत्वा ततः पश्चात्प्रचितो दृश्यते यदि ।
तन्तु तत्रैव निर्वर्त्य पश्चाद्धस्तं प्रचालयेत् ।।७८।।
नोदात्तस्वरितात्पूर्वं प्रचितं स्यादुदात्तवत् ।
कृत्वानुदात्तमथ तमुदात्तस्वरमाचरेत् ।।७९।।

---

१. स्वर एव स्वारः। स्वार्थेऽण्प्रत्ययः।

यथा स्यात्स्वरितात्स्वारो वाजे वाजेऽवतेति च ।
स्वरितोदये सेनानीग्रामण्यौ, सहस्याय च ॥८०॥
तैरोव्य[1]ञ्जनवज्ज्ञेयो जात्योऽभिनिहितः प्रचः ।
यथा धान्यं कन्या इव वेदोऽसीति तुथोऽस्यपि ॥८१॥
वत्सरोऽसि भवेत्तद्वद्वाज्यर्णश्च स्रुचीव च ।
उदात्तस्वरितपरप्रचितस्यापि नित्यशः ॥८२॥
भवेन्नीचतरादेशो वैयाकरणसम्मतः ।
स्वरिताद्वाऽनुदात्ताद्वा उदात्तो दृश्यते यदि ॥८३॥
शून्यं प्रचालयेद्धस्तं स्वरितात्स्वरितेऽपि च ।
शून्यं प्रचालयेद्धस्तं यदुक्तं केनचित्क्वचित् ॥८४॥
तत्कातीयविरोधी स्यात्सम्प्रदायविरोधकृत् ।
उक्तं च याज्ञवल्क्येन मन्त्रे वाजसनेयके ॥८५॥
स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च ।
स्वरप्रधाने त्रैस्वर्ये व्यञ्जनं तेन सस्वरम् ॥८६॥
मणिवद् व्यञ्जनान्याहुः सूत्रवत्स्वर इष्यते ।
व्यञ्जनान्यनुवर्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वरः ॥८७॥
वर्णेषूच्चार्यमाणेषु विकाराः स्युस्त्रयस्तनोः ।
आयाममार्दवौ चोभौ तृतीयश्चाभिघातकः ॥८८॥
गात्रस्योच्चमधस्तिर्यग्गमनं स्यद्यतः क्रमात् ।
तच्चोदात्तेऽनुदात्ते च स्वरिते च प्रकीर्तितम् ॥८९॥
उभयवाँश्च स्वरित एकीभावेऽन्ययोर्भवेत् ।
यथा पथ्येव चम्वीव ब्रह्माऽसृज्यत मृत्यवे ॥९०॥
अथोदात्तोनुदात्तस्य स्वरितस्यापि सङ्गमे ।
उदात्त एकीभवति षट् प्रकारः स नान्यथा ॥९१॥

---

१. तिरोभूतं व्यञ्जनम्-तिरोव्यञ्जनम् । तदेव तैरो व्यञ्जनमिति स्वार्थिकाणन्तः ।

द्वयोस्तु स्वरयोस्सन्धावेकीभावो यदा भवेत् ।
तदा नीचोऽप्युदात्तस्य वशं गच्छति सान्वयः ॥९२॥
उदात्तयोरथैकत्वे भवेदुदात्त एव च ।
स पुरस्तात्परस्ताद्वा यथा स्यात्प्रार्पयत्विति ॥९३॥
एमे तन्नैजति परं विश्वाभ्यस्त्वा पुनस्तथा ।
नाभिरस्याथ मेऽङ्गानि जयन्तन्त्वां तथैव च ॥९४॥
पाशिनोऽति देवाऽगात्पूर्वाऽगाद्बर्हिराऽसदत् ।
आरुह्य माऽदधुरास्थाद्विद्यादेवं निदर्शनम् ॥९५॥
अस्यापवादरूपं यदुदाहरणमुच्यते ।
आख्यातानां प्रयोगेषु पूर्वं पदमुपस्थितम् ॥९६॥
षोडशाक्षरपर्यन्तं तद्योगि स्वरमुद्धरेत् ।
याँ२॥ऽआ ऽवह्नो यदावहृन्यो नः पिता तथा ऽपरम् ॥९७॥
यत्पुरुषँ व्यदधुश्च विद्यादेवं निदर्शनम् ।
जात्य[1]पूर्वोदात्तपरो ह्युच्चो भवति नित्यशः ॥९८॥
यथाऽश्वृत्वेऽवसेऽपि स्याज्ज्ञातव्यं स्वरवेदिभिः ।
सूव्व्याय स्वरितपरोदात्तपूर्वो यथा भवेत् ॥९९॥
स्वरितोदात्तयोः सन्धावुदात्तो बलवान्स्मृतः[2] ।
हित्वाऽभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्टांस्त्रीनिमान्स्वरान् ॥१००॥
क्वीद्ध्र्यानुदात्तपूर्वोदात्तपरो यथा भवेत् ।
सूव्व्याय स्वरितपरोदात्तपूर्वः पदे यथा ॥१०१॥
सर्वतीक्ष्णोऽभिनिहतः प्रश्लिष्टस्तदनन्तरम् ।
ततो मृदुतरौ स्वारौ जात्यक्षैप्रावुभौ स्मृतौ ॥१०२॥
ततो मृदुतरः स्वारस्तैरोव्यञ्जन उच्यते ।
पादवृत्तो मृदुतरस्त्वेतत्स्वारबलाबलम् ॥१०३॥

१. जात्यः स्वरितविशेषो बोध्यः । २. अत एव पाणिनिशास्त्रेऽपि उदात्तेन सहैकादेशे उदात्तो भवति इत्युच्यते ।

द्वयोस्तु स्वरयोस्सन्धौ स्वरितः स्यात्परो यदि ।
उदात्तस्यान्तस्थीभावे प्रोच्यते त्र्यम्बकं यथा ॥१०४॥
योजान्विन्द्र वीड्वङ्गो द्व्वन्नः सर्पिस्तथाऽपरः ।
नियमः स्वरसन्धेस्तु समाप्तो विदुषां प्रियः ॥१०५॥
अथा[१]ऽतः संस्कारविधिः कथ्यते यो मयाऽधुना ।
लोपागमौ विकारश्च प्रकृत्या भवन तथा ॥१०६॥
ज्ञातव्यो निपुणैरेवं संस्कारोऽसौ चतुर्विधः ।
स्वरयोर्वा हलोर्वाऽपि स्वरव्यञ्जनयोरुत ॥१०७॥
ते नोऽवन्त्वथ देवासऽएदमापोऽअपान्नपात् ।
देवानऽआयुः प्राङ्क्सोमस्तन्नश्चिकित्वान्त्वँ यथा ॥१०८॥
प्रथमात्तु हकारोऽयं तच्चतुर्थत्वमाप्नुयात् ।
उद्धर्षयावाड्ढव्यानि ज्ञेयमेवं निदर्शनम् ॥१०९॥
आद्यः स्वरे तृतीयत्वं घोषवत्सु त्वपञ्चमः ।
अघोषे प्रथमत्वं वा उदेनं यद्ग्रामे अपि ॥११०॥
पदान्ताः प्रथमा वर्णाः परयोः स्वरघोषिणोः ।
भजन्ते स्वतृतीयत्वं स्वोत्तमत्वं यथोत्तमे ॥१११॥
आद्योत्तमाः पदान्तीयाश्चवर्गं परिहाय च ।
स्युर्वण्महाँस्तन्मित्रस्य विन्द्यादेवं निदर्शनम् ॥११२॥
कखयोः परयोर्नित्यं पफयोः परयोरपि ।
विसर्गस्य यदुक्तन्तल्लक्षणन्नात्र सिध्यति ॥११३॥
मयि वः कामधरणं ततः खनेम चाऽप्यथ ।
अग्निः पशुर्य्याः फलिनीर्विद्यादेवं निदर्शनम् ॥११४॥
अम्ब निष्परसमरीद्यौष्पिता च वसुष्ककविः ।
आविष्कृणुष्वेव तथा पर्णे वो व्वसतिष्कृता ॥११५॥

---

१. स्वरसन्धिनियमकथनानन्तरमित्यर्थः । आनन्तर्येऽथशब्दः ।

एवमादौ विसर्गस्य षत्वमिच्छन्ति सूरयः ।
पूर्वोक्तस्यापवादोऽयं ज्ञातव्यः कृतबुद्धिभिः ॥११६॥
कण्ठ्योपधः सकारः स्याद्भाव्युधः ष एव च ।
अघोषे घोषवति तु लोपो रेफो यथाक्रमम् ॥११७॥
इडस्पदेडायास्पदं ज्योतिष्कृदिष्कृतिस्तथा ।
तन्नऽइन्द्रोऽयक्ष्मा मा हविर्होतर्निदर्शनम् ॥११८॥
भाव्युधः षत्वमेति वर्जयित्वा कृषीस्कृधिम् ।
प्रत्ययस्य सवर्णत्वं यातीति शाकटायनः ॥११९॥
अविकारं च शाकल्यो मन्यते शषसेषु च ।
आशुः शिशानो वृषभो देवो वः सविता तथा ॥१२०॥
अदितिः षोडशेत्यादिर्विज्ञेयोदाहृतिर्विदा ।
पदान्ताः प्रथमा वर्णाः शषसेषु परेषु तान् ॥१२१॥
शौनको द्वितीयानिच्छेत्प्रकृत्या शाकटायनः ।
असमानस्थलस्थाश्चेच्छौनकोऽपि वदेत्तदा ॥१२२॥
सम्यक्स्रवन्तीवट्सूर्यानुष्टुप्शारद्यथापरम् ।
तत्सवितुश्च तत्सत्यन्द्वितीयं नात्र कर्हिचित् ॥१२३॥
असस्थानस्थितत्वाच्च तैत्रा॒णां तु न तन्मतम् ।
पदान्तस्य तवर्गस्य चवर्गे परतः स्थिते ॥१२४॥
चवर्गः स्यात्तकारस्य चछयोः शागमः स्मृतः ।
शकारश्छत्वमाप्नोति तवर्गात्स्पर्शवर्जितः ॥१२५॥
तच्चक्षुरुज्जिहानाश्च तच्छकेयमतः परम् ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्येति वाजाञ्जयत्त्वथापरम् ॥१२६॥
तकारस्य पदान्तस्य शकारे परतः स्थिते ।
चवर्गपञ्चमत्वं स्यान्नच्छादेशे तु शागमः ॥१२७॥

---

१. तैत्तिरीयशाखिनामित्यर्थो भाति ।

स्वधावाञ्छुक्रः पिशङ्गाञ्छिशिरायेति वै तथा ।
आदित्याञ् श्मश्रुभिर्नात्र छत्वं स्यात्स्पर्शशङ्कया ॥१२८॥
दधन्वान्स्ववान्यकारे नकारो लोपमाप्नुयात् ।
पीवोअन्नान् रयिवृधे परे वाऽपि तथा पुनः ॥१२९॥
स्वराणामानुनासिक्यं प्रतिजानन्ति सर्वतः ।
वर्जयित्वा तमाकारं[1] मकारो यत्र लुप्यते ॥१३०॥
उपधारञ्जनं कुर्यात्स्वरे विकरणे सति ।
लोपे प्रकृतिभावे च नोपधारञ्जनं भवेत् ॥१३१॥
पदान्तस्थो नकारो यः सोऽनुनासिकपूर्वकः ।
लकारे लत्वमाप्नोति शसत्वं चतकारयोः ॥१३२॥
यथाऽस्मिँल्लोके त्रीँल्लोकानहीँश्च सर्वानप्युत ।
गवयाँस्त्वष्ट्रे पशूस्ताँश्चक्रे चैव निदर्शनम् ॥१३३॥
स्पर्शे परे नकारस्य विकारो नोपलभ्यते ।
चतौ विहाय तत्राऽपि प्रकृत्या भवनं क्वचित् ॥१३४॥
यथाऽस्मिन्गोष्ठेऽकन्कर्म देवान्दिवमथापरम् ।
पशून्पाहीतिजानीयान्नकारस्यैकरूपताम् ॥१३५॥
धामन्ते पतयिष्णवर्व्वन् शत्रून्ताढि तथाऽपरम् ।
मित्र महश्चिकित्वान्त्वम्पूषन्तव व्रते तथा ॥१३६॥
मदिन्तमानां च मधुन्तमानां तद्धिते तमे ।
निर्जगन्वान्तमसि च न विकारो भवेदिह ॥१३७॥
एते निपातसिद्धत्वान्न विकारमवाप्नुयुः ।
नॄन्पकारे विसर्गत्वमुपधारञ्जनं लभेत् ॥१३८॥
शत्रून्क्रतून्वनस्पतीन्परिधींश्च चतुर्थकम् ।
स्वरे रेफत्वमाप्नोति नासिक्यं चोपधा तथा ॥१३९॥

---

[1] यत्र लोपो विधीयते । इति 'ग' पुस्तकपाठः ।

अनुस्वारश्चरोष्मसु मकारस्येति यो विधिः ।
पदयोरन्तरे सः स्यात्पदमध्ये तु नस्य च ॥१४०॥
यथाऽपाꣳ रसं चैव त्वाꣳ शश्वन्तऽएव च ।
यजूꣳषि तपूꣳषि उरूꣳ हीति निदर्शनम् ॥१४१॥
पदान्तीयमकारस्य त्वन्तस्थाः परतो यदि ।
नासिक्यमुपधापूर्वं सोऽन्तस्थात्वमवाप्नुयात् ॥१४२॥
सँय्यौमि सँव्वपामीति तँल्लोकं च यथा भवेत् ।
अपदान्तस्य रेफे न यद्वम्रोऽअतिसर्पति ॥१४३॥
एकमात्रो द्विमात्रः स्यात्त्रिमात्रान्मात्रिको यथा ।
त्वꣳ सोम हवीꣳषि सꣳ स्रष्टा न संय्युजि ॥१४४॥
अनुस्वारो द्विमात्रः स्याद्वर्णव्यञ्जनोदयः ।
ह्रस्वाद्वा यदि वा दीर्घाद्देवानाꣳ हृदये यथा ॥१४५॥
मकारः प्रत्यये स्पर्शे भवेत्तद्वर्गपञ्चमः ।
व्रजङ्गच्छ व्रतञ्चरिष्यामि शण्डस्तथा पुनः ॥१४६॥
एतन्तेदम्पितृभ्यश्च यच्छन्तास्पञ्च वै यथा ।
संयोगादिः स्वराद् द्वित्वं प्राप्नोतीति विदुर्बुधाः ॥१४७॥
तत्पदान्तपदाद्योर्वा पदमध्येऽपि सर्वतः ।
सम्यक्स्रवन्ति सरितः सन्धौ तु पदयोर्यथा ॥१४८॥
अनुष्टुप् शारदी तद्वत्प्रथमस्तु द्विरुक्तिजः ।
मध्येऽश्वस्तूपरो यद्वदश्वस्य त्वा तथाऽपरम् ॥१४९॥
अस्वरान्न भवत्येतत् श्रुधि श्रुत्कर्णवद्यथा ।
परं रेफहकाराभ्यां व्यञ्जनं तूष्मवर्जितम्[१] ॥१५०॥
द्वित्वमापद्यते रेफहकारौ तु न कुत्रचित् ।
यथा सूर्योऽथ सर्वेभ्यो बाह्वोर्गृह्णामि चैव हि ॥१५१॥

---

१. ऊष्मभिः शषसहैर्वर्जितमित्यर्थः ।

ऊष्माणो रेफसङ्क्रान्ता न द्विः स्युश्चेत्स्वरोदयाः ।
यथाऽर्शसदुपञ्चिता वर्षो वर्षीयसीति च ॥१५२॥
सहस्रशीर्षा पुरुषो देवम्बर्हिर्य्यथा स्मृतम् ।
अन्तस्थाभिर्यदा युक्ता ऊष्माणो रेफपूर्वकाः ॥१५३॥
वष्यीय चान्तः पार्श्व्यश्च रेफाद्द्वित्वं भजन्ति ते ।
ऊष्मान्तस्थापरः स्पर्शो द्वित्वमापद्यते यथा ॥१५४॥
अश्मन्नूर्ज सस्निनतमं धिषणया राष्ट्रं च गृह्णते ।
यकारात्स्पर्शसँय्योगो नोपलभ्येत कुत्रचित् ॥१५५॥
शल्मलिश्च दधिक्क्राब्णः पुरुश्राब्णस्तथैव च ।
यदि चास्वरपूर्वाः स्युरूष्मान्तस्था न तत्परः ॥१५६॥
स्पर्शो द्वित्वमाप्नोति स्थालीभिर्दिवः स्कम्भनीः ।
यत्र चोभयतः स्पर्शैः सँय्युक्ताः शषसाः सहाः ॥१५७॥
तत्र नाद्यः क्रमो ज्ञेयो नापरो बोधितो बुधैः ।
पक्ष्माणि वाऽथ सूक्ष्मा च विश्वप्स्न्या च तथा पुनः ॥१५८॥
नेदृशेषु द्विरुक्तिः स्यादिति प्राहुर्मनीषिणः ।
जिह्वामूलीयतः स्पर्शो उपध्मानीयतस्तथा ॥१५९॥
सऽइधानो व्वसुष्क्कविद्यौष्पितेत्यादिकँय्यथा ।
विसर्जनीयाच्च परो यः स्पर्शो व्यञ्जनोदयः ॥१६०॥
सोऽपि द्वित्वमवाप्नोति युञ्जानः प्प्रथमँय्यथा ।
सकारस्य द्विरुक्तिः[१] या सा द्वयोरेव नान्यतः ॥१६१॥
आ च सास्वा च रास्वेयत्सकारोऽत्र द्विरुक्तितः ।
ह्रस्वपूर्वौ ङनौ स्यातां पदान्तौ द्विः स्वरोदयौ ॥१६२॥
युङ्ङसीति तथा चाश्मन्नूर्जमित्यादिकँ व्यथा ।
प्रथमैश्च स्ववर्गीयैर्द्वितीया द्विर्भवन्ति हि ॥१६३॥

---

१. द्विरुक्तिः द्विर्वचनम्, द्विर्भावः, इमे पर्यायाः ।

तृतीयैस्तु चतुर्थाश्च व्विकरव्याजिघ्रकँय्यथा ।
उख्यं संख्यं च मुख्यं च वर्जयित्वा पदत्रयम् ॥१६४॥

ख्याधातोः खययोः स्यातां कशौ गार्ग्यमते यथा ।
व्विक्ष्यैयाऽऽक्शातमित्येतन्माध्यन्दिनविरोधकृत् ॥१६५॥

विख्याय कखया युक्ताश्चछया आच्छ्यतीतिवत् ।
गोष्ठानं षटठा एवं पात्थ्यं तथयसँय्युतम् ॥१६६॥

विष्प्फुरन्ती च षपफा युक्ताश्चैवं चतुर्थकाः ।
आजिग्घ्र गघरायुक्ता मीड्ढ्वश्च डढवास्तथा ॥१६७॥

अद्धवनो दधवाश्चैवं विब्भाड्भरसँय्युतम् ।
ऋवर्णे न द्विरुक्तिः स्यात् ङनकारो विहाय च ॥१६८॥

ऌवर्णेऽपि तथैव स्यात् क्लृप्तं चानिष्ट्टतँय्यथा ।
अवसानस्थितं चापि व्यञ्जनं न द्विरुच्यते ॥१६९॥

ऊक्क्सूनृता पदे एवं संहितायां न वार्यते ।
स्वरात्परश्छकारस्तु सर्वत्र द्वित्वमाप्नुयात् ॥१७०॥

यस्यातिहाय सहेति पदत्रयपरं विना ।
द्विरुक्तिं वर्जयेन्नित्यं यमेऽपि परतः स्थिते ॥१७१॥

सक्थ्ना देदिश्यते नारी ककारोऽत्रैकऽएव हि ।
यमे परे निषेधस्तु पुनर्द्वित्वनिवारकः ॥१७२॥

ये रुक्मपाप्मप्रभृति प्राहुस्तेषां मनीषिणाम् ।
संय्योगादिश्च पूर्वाङ्गं यमश्चेति विरोधकृत् ॥१७३॥

तस्माद्यदुक्तं तत्साधु नत्वन्यत्कल्पनाक्षमम् ।
अपञ्चमात्पदे नित्यं पञ्चमेषु परेषु च ॥१७४॥

यमोत्पत्तिर्भवेत्तत्र रुक्मः पाप्मा निदर्शनम् ।
स्वरात्संयोगपूर्वस्य द्वित्वाज्जातो द्वितीयकः ॥१७५॥

तस्यैव यमसञ्ज्ञा स्यात्पञ्चमैरन्वितो यदि ।
स्पर्शानां पञ्चमैर्योगे चत्वारो ये यमाः स्मृताः ॥१७६॥
अयस्पिण्डेन ते तुल्या घनबन्धाः प्रकीर्तिताः ।
यमास्तदा निवर्तन्ते ऊष्मा मध्ये भवेद्यदि ॥१७७॥
ऊर्णापिण्डेन ते तुल्याः पाशैस्तमन्न्या निदर्शनम् ।
स्पर्शाऽअपञ्चमा ये च अन्तस्थाभिश्च सँय्युताः ॥१७८॥
दारुपिण्डेन ते तुल्याः श्लथबन्धाः प्रकीर्तिताः ।
अपञ्चमे स्ववर्गीये न प्राग्वर्णो द्विरुक्तिभाक् ॥१७९॥
तद्देवानां च यद्देवाऽअन्तरिक्षम्पुरीतता ।
ईद्ध्य्वाद्ध्रीनसावेतावुद्रश्चापि तथैव च ॥१८०॥
चरद्द्रव्यस्य वचनो द्वित्वं नैवात्र विद्यते ।
क्षत्रवृत्रस्तथा श्वित्र[1] चित्र[2] सत्र[3] तथैव च ॥१८१॥
यत्र तत्र पदेष्वेषु व्यञ्जनं न द्विरुच्यते ।
उपोत्थितमुत्तम्भनमुत्तभानोत्थिताय च ॥१८२॥
उत्थाय बृहती चैषु त्रयः स्पर्शा भवन्ति हि ।
वर्णं द्विवर्णसंयोगे एकवर्णवदुच्यते ॥१८३॥
स्वरमध्ये सजातीये विजातीये द्वयोः श्रुतिः ।
कुक्कुटोऽसि तथा तन्नऽआज्ज्यं भुज्ज्युः श्रुतिर्द्वयोः ॥१८४॥
स्पर्शात्परककारस्य स्फोटनं दोषकृन्न वा ।
अत्राचार्याशयाद्द्वित्वं स्फोटनं द्वित्वनाशनम् ॥१८५॥
अयस्पिण्डेन तत्तुल्यं तस्मादुच्चारणं तथा ।
काण्डात्काण्डाद्द्वषट् कृतं यक्कृत्क्लोमादिकँय्यथा ॥१८६॥
स्ववर्गीयैस्तु सँय्योगः स्पर्शानां सम्भवेद्यदि ।
तत्पूर्वस्य श्रुतिर्नास्ति विरामव्यञ्जनस्य च ॥१८७॥

१. श्वित्रमिति पाठो युक्तः । २. चित्रमिति पाठो युक्तः । ३. सत्रमिति पाठो युक्तः ।

द्वितीयाश्च चतुर्थाश्च वर्णाः सोष्माण एव हि ।
यदैते पञ्चमैर्युक्ता वायुः सम्यगृते मुखात् ॥१८८॥
तं धरयेत् प्रयत्नेन घनबन्धं समुच्चरेत् ।
सक्थ्ना दध्मस्तथा अघ्न्या इति निदर्शनम् ॥१८९॥
स्वराः संयोगपूर्वा ये व्यञ्जनान्तास्तथान्तगाः ।
एषां कालो द्विमात्रः[1] स्यान्न तु दीर्घा हि ते स्मृताः ॥१९०॥
यथाऽग्निर्द्धूर्य्यथा विष्णुः प्रत्यङ् दध्यङ् ऋषिस्तुतम् ।
याहि पाहि रक्ष मधु विद्यादेवं निदर्शनम् ॥१९१॥
व्यञ्जनान्तस्य मोक्षः स्यात्करणस्थानतः पदे ।
अन्यदन्यप्रयत्नेन पदमारभ्यते बुधैः ॥१९२॥
अन्यथा तु पदादौ च द्वित्वमापद्यते ध्रुवम् ।
सँय्यौमि सँव्वपामीति इमम्मेति निदर्शनम् ॥१९३॥
अर्द्धर्चादिः समाप्तौ च मोक्षणं तु विधीयते ।
पादश्छन्दोऽनुरोधेन एकद्वित्रिचतुष्पदः ॥१९४॥
अप्यनेकपदैः क्वाऽपि दृश्यते पादपूरणम् ।
हृदि स्पृशं यथैकस्मिन्पदे स्यात्पादपूरणम् ॥१९५॥
ऋतोर्भद्रस्य द्विपदं ऋतुन्न भद्रमित्यतः ।
अग्ने त्वन्नोऽअन्तमश्च विद्यात्पादचतुर्विधम् ॥१९६॥
विधूममग्नेऽनेकपदमेवमादिनिदर्शनम् ।
ङनकारौ पदान्तीयौ मकारे परतः स्थितेः ॥१९७॥
कताभ्यां व्यवधीयेते प्राङ्क्सोमश्च यथा तथा ।
प्रत्यङ्क्सोमस्त्रीन्त्समुद्रानस्मान्त्सीते निदर्शनम् ॥१९८॥
ऋकारे प्रत्यये कण्ठ्यः पाठे ह्रस्वत्वमाप्नुयात् ।
स्वाहऽऋषभमिन्द्रोऽथ विश्वकर्म्मऽऋषिस्तथा ॥१९९॥

---

१. द्विमात्रत्वेऽपि दीर्घत्वं न भवति । यथा 'क्ष' इत्यस्य एकमात्रत्वेऽपि ह्रस्वत्वं न भवति ।

येनऽऋषयऽइत्यत्र यत्रऽऋषयऽइत्यपि ।
ह्रस्वे ह्रस्वविधानँय्यत्तत्सन्धिविनिवर्तकम् ॥२००॥
एओ ऐऔ तु चत्वारः क्रमादेव स्वरे परे ।
अयवायावतां यान्ति इडऽएहि कृशानुवत् ॥२०१॥
सरस्वत्याऽअग्रजिह्वं ताऽउभौ च यथाक्रमम् ।
यवयोरत्र लोपः स्यात्स्वरमध्ये पदान्तयोः ॥२०२॥
अयादौ यवयोर्लोपे न पुनः सन्धिरिष्यते ।
असस्थाने वकारस्य लोपन्नेच्छन्ति सूरयः ॥२०३॥
पादादौ च पदादौ च सँय्योगावग्रहेषु च ।
यः शब्द इति विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः ॥२०४॥
युक्तेन मनसा यद्वत्तत्त्वा याभि तथापरम् ।
अनूकाशेन बाह्यश्च योगे योगे निदर्शनम् ॥२०५॥
उपसर्गपरो यः स पदादिरपि दृश्यते ।
ईषत्स्पृष्टो यथा वियत्पदच्छेदे परो भवेत् ॥२०६॥
यदेव लक्षणं यस्य वकारस्यापि तद्भवेत् ।
यत्र यत्र विशेषः स्यादिदानीं स तु कथ्यते ॥२०७॥
वकारस्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुलघू[1]तरः ।
आदौ गुरुर्लघुर्मध्ये पदस्यान्ते लघूतरः ॥२०८॥
उपसर्गपरौ यत्र यवकारौ पदादिगौ ।
ईषत्स्पृष्टौ ततो ज्ञेयावभियुध्य उपा यथा ॥२०९॥
परि वाजपतिः कविः प्रवोचं च निदर्शनम् ।
अनुयोजान्विन्द्र ते तु उप यज्ज्ञँ व्विना तथा ॥२१०॥
त्वदर्थवाचिनौ वो वाँव्वा वै यदि निपातजौ ।
आदेशाश्च विकल्पास्स्युरीषत्स्पृष्टा हि ते स्मृताः ॥२११॥

---

१. लघुतर इति पाठो युक्तः । छन्दोऽनुरोधेन दीर्घोच्चारणं स्यात् ।

देवो वः सविता या वाँव्वातो वाऽथ तथा न वै ।
तव व्वायवृतस्पतेऽस्ति वान्वा निदर्शनम् ॥२१२॥
द्वेधीभावे समुत्पन्ने लक्षणान्निर्णयो भवेत् ।
लक्षणँव्वाऽविनाशि स्यात्सम्प्रदायोऽविनाशवान् ॥२१३॥
प्रमाणानुगतं वाक्यं यो मोहाद्धातुमिच्छति ।
प्रतिवातं स मूढात्मा पांसुं प्रक्षिपति स्वयम् ॥२१४॥
कण्ठ्या वर्णाऽग्निदेवत्यास्तालव्याः सोमदेवताः ।
जिह्वामूलीया नैर्ऋत्या रौद्रा दन्त्याः प्रकीर्तिताः ॥२१५॥
ओष्ठ्याश्चैवाश्विना ज्ञेया वायव्या[१] मूर्द्धसम्भवाः ।
शेषास्तु वैश्वदेवाः स्युरिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥२१६॥
क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत् ।
सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पादपूरणः ॥२१७॥
भारद्वाजकमाख्यातं भार्गवं नाम भाष्यते ।
वासिष्ठ उपसर्गस्तु निपातः काश्यपः स्मृतः ॥२१८॥
सर्वन्तु सौम्यमाख्यातं नाम वायव्यमिष्यते ।
आग्नेयस्तूपसर्गः स्यान्निपातो वारुणः स्मृतः ॥२१९॥
स्वरास्तु ब्राह्मणा ज्ञेया वर्गाणां प्रथमाश्च ये ।
द्वितीयाश्च तृतीयाश्च चतुर्थाश्चापि भूमिपाः ॥२२०॥
उदात्तं ब्राह्मणं विद्याद्भारद्वाज ऋषिस्ततः ।
गायत्रं च भवेच्छन्दो नियोगो ब्रह्मसाधने ॥२२१॥
नीचं तु क्षत्रियं प्राहुर्गौतमोऽस्य च देवता ।
छन्दस्त्रैष्टुभमेवास्य विनियोगोऽघनाशने ॥२२२॥
स्वरितं वैश्यमेवाहुर्मुनिर्गार्ग्योऽस्य कीर्त्तितम्[२] ।
जागतं तु भवेच्छन्दो नियोगः शत्रुनाशने ॥२२३॥

१. मूर्धसम्भवा मूर्धन्या ऋटुरषा वायव्याः-वायुदेवताकाः ।
२. अस्य मुनिर्गार्ग्य इति कीर्तितंःशास्त्रेषु इति शेषः ।

एषा मन्त्ररहस्यस्य मञ्जूषोद्घाटिता मया ।
एतत्सर्वं विदित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥२२४॥
अनेन विधिना वेदं योऽधीते श्रद्धया द्विजः ।
सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥२२५॥
रहस्यं यो न जानाति लक्षणं चार्षकादिकम् ।
सोऽध्यापने न योग्यः स्याज्जपहोमादिकर्मसु ॥२२६॥
अमरेशकृतामेतां शिक्षां यो धारयेत्सुधीः ।
विद्वज्जनसभामध्ये जयं स लभते ध्रुवम् ॥२२७॥

॥ इत्यमरेशकृता वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा समाप्ता ॥

# अथ केशवीं शिक्षां

नत्वा गणपतिं देवं परिभाषाङ्कसूत्रकम् ॥ उच्यते केशवेनेदं वेदाध्यायिसुखाप्तये ॥१॥ तत्रादौ माध्यन्दिनीयपरिभाषा । अङ्कानां नवानां सूत्राणां मध्ये येन सूत्रेण पदादिमध्यान्तवर्णेषु सञ्ज्ञा जायते तद्विना पदादिवर्णेष्वेव सञ्ज्ञा न जायते तत्रोच्यते ॥

## पदादौ पूर्व्वाहल्व्वोर्द्विर्व्योच्चारौ सम्पूर्व्वयोश्छन्दसि ॥१॥

माध्यन्दिनीये पदादौ आद्यहल्विहीनयोर्वकारयकारयोः सम्पूर्वयोश्चाप्यनयोः क्रमाद्द्वित्ववकारयकारोच्चारः स्याच्छन्दसि । हल् इति व्यञ्जनम् । अस्योदाहरणानि संहितायाः प्रथमाध्याये प्रथमकण्डिकायां वायवस्थऽइत्यत्र वाय्वइत्युच्चारः ॥ तथैव द्वितीयकण्डिकायां वसोः पवित्रमित्युच्चारः । प्रथमर्चि यजमानस्येत्यत्र यजमानस्येत्युच्चारः । द्वितीयर्चि यज्ञपतिरित्यत्र यज्ज्ञपतिरित्युच्चारः । कस्त्वा युनक्तीत्यत्र यु नक्तीत्युच्चारः । सम्पूर्वकस्योदाहरणानि संहितायां प्रथमाध्याये देवस्य त्वेत्यृङ्मध्ये संवपामीत्यत्र सँव्वपामीत्युच्चारः ॥ संवर्चसेत्यत्र सँव्वर्च्चसेत्युच्चारः ॥ जनयत्यै त्वा सँय्यौमीत्यत्र सँय्यौमीत्युच्चारः । सयज्ञपतिरित्यत्र सँय्य् ज्ज्ञपतिरित्युच्चारः । इत्यादिषु पदादित्वात्सम्पूर्वत्त्वाच्च यवयोर्द्वित्ववकारयकारौ स्तः । न वयकारौ इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् । पदादाविति किम् । आद्यकण्डिकायां प्रजावती रनमीवाः । पापयतु श्रेष्ठतमायेत्यादिषु वकारमकारयोः पदादित्वाभावान्न द्वित्ववकारयकारौ स्त इति । आद्यहल्विहीनयोरिति किम् । द्वितीयाध्याये 'अग्ने व्राजजिद्व्राजन्त्वा । तृतीयाध्याये अवरुद्रमित्यृङ्मध्ये श्रेयसस्करद्यथा न इत्यनयोर्वकारयकारयोः पदादित्वमस्त्यतो द्वित्वजकारोच्चारः । अनयोरुदाहरणयोस्तु आद्यदकारहल्युक्तत्वान्न द्वित्वजकारोच्चारो न द्वित्ववकारोच्चारश्चेति प्रथमसूत्रव्याख्या जकारोच्चारणार्थमन्यत्सूत्रं च प्रदर्श्यते ॥

## पदान्तमध्यऋहरेफयुग्यस्य यश्च ॥२॥

पदान्तमध्ये ऋकारहकाररेफैश्च युक्तस्य यस्य योच्चारणं छन्दसि माध्यन्दिनीये। उदाहरणानि। विंशतितमेऽध्याये प्रथमा[1] द्वितीयैरित्येकादशकण्डिकायां सामान्दृग्भिः। द्वितीयाध्याये यम्परिधिंपर्य्यङ्मध्ये पणिभिर्गुह्यमान इत्यत्र हकारजकारयुक्तोच्चारः। व्वेदोऽसि येनेति कण्डिकायां मह्यँव्वेदो भूयाः। घृताचीस्थो धुर्य्यौ। तृतीयाध्याये उपत्वेत्यृङ्मध्ये घृताचीर्यन्तु हर्य्यतइत्यादिषु ऋकारहकाररेफयुक्तत्वाज्जकारो न यकारः। ऋहरेफयुक्तस्येति किम्। अभिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति। अत्र न जकारोच्चारः। कुतः हरेफयुक्तत्वाभावात्। एवमन्यत्रापि बोध्यम्॥ इति द्वितीयसूत्रव्याख्या। सूत्रद्वयार्थे कारिकाऽपि। पूर्वाहल्ययोः पदादौ च वेदे सम्पूर्वयोर्द्विजौ। यस्यर्हरेफयुक्तस्य जः पदाद्यन्तमध्यके।

## षः खष्टुमृते च ॥३॥

पदान्तमध्ये षकारस्य खकारोच्चारः[2] स्याट्टवर्गं विना छन्दसि माध्यन्दिनीये। उदाहरणानि। इषे त्वोर्जेत्वेत्यत्र खकारोच्चारो न षकारः एवं। ब्राह्मणेऽपि 'इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानामित्यत्र कवर्गीयखकारसदृशोच्चारो न मूर्धन्य षकार इति। टवर्गं विनेति किम्। आद्ये ऋचि 'श्रेष्ठतमाय कर्मणे' इत्यत्र टवर्गयुक्तत्वात्षकारोच्चार एव न खकारोच्चार इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् ॥इति तृतीयसूत्रं व्याख्यातम्॥

## अहल्शल्यूर्ध्वरेफस्य सैकारः प्राक् च ॥४॥

पदान्तमध्ये हल्विहीनशल्यूर्ध्वरेफस्य सैकारः प्रागुच्चारश्छन्दसि माध्यन्दिनीये॥ शल् इति शषसहा ज्ञेयाः। उदाहरणानि यथा। अष्टत्रिंशदध्याये सप्तदशकण्डिकायां अभीमं महिमा दिवमित्यत्र दर्शतमित्यूर्ध्वरेफस्य प्रागेव सैकारोच्चारः। दरेशतमिति न तु सोर्ध्वरेफोच्चारः॥ एकोनचत्वारिंशदध्याये अग्निर्ठं हृदयेनाशनिमित्यृङ्मध्ये पर्शव्येनेत्यत्र परेशव्येनेत्युच्चारः॥ पञ्चमाध्याये "द्यास्मा" इति कण्डिकायां शतवल्शो व्विरोह सहस्रवल्शा इत्यत्रापि रलयोः सावर्ण्याल्लस्यापि प्राक्सैकारोच्चारः शतवलेशो व्विरोह सहस्रवलेशा इति न लकारयुक्तोच्चारः। व्वसोः पवित्रमसीति कण्डिकायां ह्वार्षीत् अत्रापि प्राक्सैकारोच्चारः ह्वारेषीत्। षकारस्योदाहरणमेव सकारस्य तत्कथम् आदेशप्रत्यययोः॥ इण् कवर्गाभ्यां परस्य मूर्द्धन्यादेश इति कृत्वा रेफस्तु इण्मध्ये वर्तते तर्हि रेफात्परो यः सकारः स मूर्द्धन्य एवेति कृत्वा षकरसकारयोरेकमेवो-

---

१. अस्यान्वयश्चिन्त्यः।

२. षकारस्य खकारोच्चारणं कर्तव्यम्, टवर्गयोगं विना।

दाहरणम्। आर्ष्यां[1] सँहितायां तृतीयाध्याये प्रथमर्चि बर्हिषेत्वा बर्हिरसीत्यनयोर्बरेहिषेत्वा बरेहिरसीत्येवमेवोच्चारो न तु सोर्ध्वरेफोच्चारः। त्रयोविंशत्यध्याये "केष्वन्त इत्यृङ्मध्ये" एतद्ब्रह्मन्नुपवल्हामसीत्यत्र वलेहामसोत्युच्चारो रलयोः सावर्ण्यात् एवमादीनी ज्ञेयानि। हल्विहीनेति किम्। वसोः पवित्रमसोति कण्डिकायां "यज्ञपतिह्वार्षीत्॥ एकत्रिंशदध्याये नाभ्या॒ऽआसीदन्तरि॒ꣳक्षꣳ॑ शीर्ष्णो द्यौरित्यत्र हकारषकारयोर्वकारणकारहल्युक्तत्वादूर्ध्वरेफयुक्त एवोच्चारो न प्राक्सैकारोच्चार इत्यादि। शलीति किम्। इषेत्त्वोर्ज्जेत्त्वा प्रार्पयतु इत्यत्र शल्विहीनत्वात्सोर्ध्वरेफोच्चारो न प्राक्सैकारोच्चार इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयम्। इति चतुर्थसूत्रव्याख्या। एतदर्थे कारिकाऽपि। षस्योच्चारः खकारः स्याद्दु विना छन्दसि स्वके। विहल्शल्यूर्ध्वरेफो यः सैकारः प्राक्समुच्चरेत्॥४॥

अनुस्वारस्य ꣳ शलि रेफे च परे
ह्रस्वाद्दीर्घो दीर्घाद्ध्रस्वः सँय्योगे गुरुश्च॥५॥

पदान्तमध्ये शलि रेफे च परे अनुस्वारस्यꣳ स्याद्ध्रस्वाद्दीर्घो दीर्घाद्ध्रस्वः संयोगे च परे गुरुः स्याच्छन्दसि माध्यन्दिनाये उदाहरणानि यथा। त्रिꣳशद्धामेति। ब्राह्मणेऽपि सर्वꣳ षडिति। द्वितीयाध्याये अग्ने गृहपतऽइति कण्डिकायां भूयासꣳ सुगृहपतिः। तस्यामेव शतꣳ हि माः। तृतीयाध्याये सन्त्वमग्नऽइति कण्डिकायां सम्प्रजया सꣳ रायस्पोषेणेति। प्रथमाध्याये पृथिवि देवयजन्योषध्यास्तऽइत्यृङ्मध्ये पृथिव्याꣳशतेन पाशैः। द्वादशाध्याये एषा तऽइत्यृङ्मध्ये ससृवाꣳसँव्वाजजितम्। सम्बर्हिरङ्क्ताꣳहविषा। तृतीयाध्याये उभा वामिति कण्डिकायां इषा ꣳ रयीणाम्। एकविंशत्यध्याये होता यक्षत्सुरेतसमृषममित्यृङ्मध्ये सुरया भेषज ꣳ श्रिया न मासरम्। अष्टादशाध्याये आयुर्य्यज्ञेनेत्यृङ्मध्ये कल्पता ꣳ श्रोत्रँय्यज्ञेन कल्पताम्। एकादशाध्याये दꣳष्ट्राभ्याम्मलिम्म्लून्। एकोनविंशतितमेऽध्याये पुरोडाशै हवीꣳष्या[2]। तृतीयाध्याये सोमान ꣳ स्वरणम्। सन्त्वमग्नऽइत्यृङ्मध्ये समृषीणा ꣳ स्तुतेन। पञ्चमाध्याये सिꣳह्यसि। एवं रेफसँय्योगे परे ज्ञेयम्। इत्यादिषु क्रमेण दीर्घह्रस्वगुरूच्चाराः कर्त्तव्या न व्यस्ता इति। शलि रेफे च परे किम्। इन्द्राय भागं प्रजावतीरित्यनयोरनुस्वारस्याग्रे शल्रेफाभावादनुस्वार एव न ꣳकार इति। पञ्चमसूत्रं व्याख्यातम्। सूत्रार्थे कारिकाऽपि। अनुस्वारस्य ꣳ वेदे शलि रेफे परे भवेत्॥ ह्रस्वाद्दीर्घो दीर्घाद्ध्रस्वः संय्योगे च परे गुरुः॥५॥

---

१. ऋषिणा प्रोक्ता आर्षी, तेन प्रोक्तमिति अणि सति निष्पद्यते।

२. हविष् शब्दस्य प्रथमाबहुवचने नपुंसके हवींषि, इतिरूपं भवति लोके। वेदे तु सुपां सुलुगिति सूत्रेण जसो यादेशे कृते हवींष्या इति भवितुमर्हति।

शर्पूर्व्वाणामृद्धीनकादिपञ्चवर्गाणां
द्वित्वं विसर्गाद् रेफयुक्तानाम् ॥६॥

पदान्तमध्ये शर्पूर्वाणां ऋकारहीनकादिपञ्चवर्गाणां विसर्गात्परेषां रेफयुक्तानामेषां च द्वित्वं स्याच्छन्दसि माध्यन्दिनीये। शर् इति शषसा ज्ञेयाः। उदाहरणानि यथा। द्वितीयाध्याये अस्क्कन्नमद्य देवेभ्यः। आधत्तेति मध्ये पुष्करस्स्रजम्। समिदसीत्यृङ्मध्ये कस्या श्चिदभिशस्त्यै। कृष्णोऽस्याखरेष्ठः। सूर्य्यस्त्वा पुरस्तात्पातु। उपहूतोद्यौष्पितोपमाम्। समिदसीत्यृङ्मध्ये दब्धास्त्वस्मात् इत्यादिषु कादिपञ्चवर्गाणामेव द्वित्वं शर्युक्तत्वात्र शषसानां विसर्गाद्रेफयुक्तानामुदाहरणानि यम्परिधिमित्यस्यामृचि मध्ये अग्नेः प्रियमस्या अग्रिमकण्डिकायां बृहन्तः प्रस्त्तरेष्ठाः। तृतीयाध्याये आनस्तु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ऋकारहीनत्त्वादिति किम्। तृतीयाध्यायेऽष्टादशकण्डिकायां वयस्कृतं सहस्कृतम्। चतुर्विंशत्यध्याये-द्वितीयकण्डिकायां बार्हस्पत्यः पृषतीति द्वितीयाध्याये द्वितीयर्चि ऊर्णम्म्रदसन्त्वा स्तृणामीत्यत्र ककारपकारतकाराणामृकारयुक्तत्वान्न द्वित्त्रमित्यादि ज्ञेयम्। एतदर्थे कारिकापि। ऋकादयः पञ्चवर्गाः शर्पूर्वा गुरवश्च ते॥ विसर्गाच्च परे तद्वद्युक्ताश्छन्दसि स्मृताः॥६॥ शरादि ज्ञापनार्थं प्रत्याहारसूत्राणि लिख्यन्ते। तथा च। अ इ उ ण्। ऋ लृ क्। ए ओ ङ्। ऐ औ च्। ह य व र ट्। ल ण्। ञ म ङ ण न म्। झ भ ञ्। घ ढ ध ष्। ज ब ग ड द श्। ख फ छ ठ थ च ट त व्। क प य्। श ष स र्। ह ल्। इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसञ्ज्ञार्थानि। एषामन्त्या इतः। हलन्त्यम्। उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात्। आदिरन्त्येन सहेता। अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च सञ्ज्ञा स्यात्। यथाऽणिति अइउवर्णानां सञ्ज्ञा। एवमच् हल् अलित्यादयः प्रत्याहाराः ज्ञेयाः। कस्य वर्णस्य पुनः किं स्थानमित्यपेक्षायामाह। अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इचुयशानां तालु। ऋटुरषाणां मूर्द्धा। लृतुलसानां दन्ताः। उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। ञमङणनानां नासिका च। एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। वकारस्य दन्तोष्ठम्। जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। नासिकाऽनुस्वारस्य। अचः स्वराः। ≍ क इति जिह्वामूलीयः। ≍ प इत्युपध्मानीयः। अं इत्यनुस्वारः। अः इति विसर्जनीयः इति ज्ञेयम्। पाणिनीयसूत्रे[१] अपि द्वित्त्वविधायके भवतः। तथा हि। अनचि च। अत्रः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि। अचो रहाभ्यां द्वे॥ अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वेवास्तः। पाणिनीयद्वित्वसूत्रद्वयोदाहरणानि-प्रथमाध्याये द्वितीयर्चि पृथिव्यसि मातरिश्वनो-घर्म्मोऽसि विश्वधाऽसि। ह्रु० ह्स्व माह्वार्म्मा ते इत्यादि सर्वत्र कीर्त्तितम्। ऋं बिना कादयः पञ्च शर्पूर्वा द्वित्वमाप्नुयुः॥७॥ विसर्गाच्च परे ते रेफयुक्ताश्छन्दसि स्मृताः॥ पाणिनीयप्रातिशाख्यसूत्रैर्द्वित्वं प्रकीर्तितम्॥८॥

---

१. इदं प्रथमाद्विवचनान्तमिति एदन्तस्य द्विवचनस्य प्रगृह्यसंज्ञायां प्रकृतिभावः।

न सोव्योश्च ।।७।।

पदान्तमध्ये वकारयकारयो परयोः सकारस्य द्वित्वं न स्याच्छन्दसि माध्यन्दिनीये। उदाहरणानि यथा। द्वितीयाध्याये द्वितीयर्चि स्तृणामि स्वासस्थाम्भुव[१] पतये स्वाहा। प्रथमाध्याये शर्म्मास्य वधूतठं० रक्षः। धृष्टिरस्यपाग्ने इत्यादिषु सकारस्य यवयोः परयोर्न द्वित्वम् एवं सर्वत्र ज्ञेयम्। इति सप्तमसूत्रव्याख्यानम्।

हृल्युतायुतस्योः सैकारश्च ।।८।।

पदान्तमध्ये हृल्युतायुतस्य ऋकारस्य ऋवर्णस्य सैकार इवोच्चारः स्याच्छन्दसि माध्यन्दिनीये। उदाहरणानि यथा द्वितीयेऽध्याये-कृष्णोऽसीत्यत्र क्रेष्णोऽसीत्युच्चारो न ऋकारः। अग्नये इत्यृङ्मध्ये पितृमते इत्यत्र पित्रे मते स्वाहेत्युच्चारः।। तृतीयाध्याये अयन्ते योनिर्ऋत्त्वियइत्यृङ्मध्ये रेत्त्विय इत्युच्चार इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयम्। इत्यष्टमसूत्रव्याख्या। सूत्रार्थे कारिकाऽपि। यवयोः परयोः सस्य द्वित्वं न स्यात्तु छन्दसि।। ऋकारो हृल्वियुग्युग्वा सैकारश्छन्दसि स्मृतः।

ह्रस्वं किञ्चिद्दीर्घं हृल्युताकारे हहृल्विसर्गयुग्वर्णे च न संहितायाम् ।।९।।

पदान्तमध्ये च ह्रस्वत्वस्य किञ्चिद्दीर्घोच्चारः स्याद्धल् युतायुत आकारे परे हृल्विसर्गयुग्वर्णे च परे न स्याद्वाजसनेयसंहितायाम्। अस्योदाहरणानि यथा संहितायां प्रथमाध्याये प्रथमर्चि इषे त्वोर्ज्जे त्वा व्वायवस्थ देवो व इत्यादिषु इकारयकारास्थाकारा ह्रस्वाः। अत एषां किञ्चिद्दीर्घोच्चारो न तु ह्रस्वता। सविताऽत्र तकारहृल्युतआकारोऽग्रे तिष्ठति। अतः सकारविकारयोर्ह्रस्वतैव। दृठं० ह्रस्व मा ह्वार्म्मा ते। प्रार्प्पयतु। अत्र पकारयकारयोः किंचिद्दीर्घता। 'श्रेष्ठतमाय, अत्र मकारयुत आकारोऽग्रेस्ति। अतः ठकारतकारयोर्ह्रस्वतैव। अत्र यकारस्य किंचिद्दीर्घता। कर्म्मणऽआप्या। अत्र मकारणकारयोर्हृल्युताकारोऽग्रेऽस्ति। अतो ह्रस्वावेव। यद्धमग्न्या[२] अत्र ध्वस्य किञ्चिद्दीर्घता। इन्द्राय भागं प्रजावतीः, अत्र यकारमकारयोरग्रे हृल्युतआकारोऽग्रेस्तिअतो ह्रस्वावेव। वस्य किंचिद्दीर्घता। रनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशतइत्यादिषु रेफनकाराकाराणां किञ्चिद्दीर्घोच्चारः। ईशत मा" अत्र हृल्युत्त आकारोऽग्रेऽस्ति। अतः शतयोर्ह्रस्वतैव।। माऽघशठं० सो ध्रुवाऽस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीः।। अत्र घकारपकारतकाराणां किञ्चिद्दीर्घता। यजमानस्येत्यत्र मयुत[३] आकारोऽग्रेऽस्ति।

१. भुवनपतये-भुवः पतये वा इति पाठः सम्भाव्यते।
२. अघ्न्या हन्तुमयोग्या-अहिंसनीया इत्यर्थः।
३. मेन मकारेण युत इत्यर्थः।

अतो ह्रस्वतैव यजयोः स्वस्य च किंचिद्दीर्घता पशून्पाहि। अत्र पकारहिकारयोः किञ्चिद्दीर्घोच्चारः। द्वितीयाध्याये-मित्रावरुणौ त्वोत्तरत इत्यत्र वकाररुकारयोः किञ्चिद्दीर्घता। तकाररेफयोर्हल्विसर्गयुग्वर्णोऽग्रेऽस्ति। अतो ह्रस्वतैव न दीर्घोच्चारः। प्रतिज्ञासूत्रे "ईषद्दीर्घता च भवति"। एकमात्राकालापेक्षया किञ्चिदधिककाल उच्चारणीयः। सार्द्धकमात्रिकः काल इत्यर्थः। अत एवाष्यां-संहितायां दीर्घपाठेऽमुकोऽध्याय इति लिखितमाचार्यैः॥ इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयम्॥

सूत्रार्थे कारिकापि।

ह्रस्वं दीर्घं भवेत् किञ्चित्संहितायां परो न चेत्।
हल्संयुतायुताकारश्चावर्णौ हल्विसर्गयुक् ॥१०॥

नवानामपि सूत्राणां षण्मिताः कारिकास्त्विमाः।
केशवेन कृतास्ताः स्युर्वेदाध्ययनबोधिकाः ॥११॥

परिभाषाङ्कसूत्रं च याजुर्वेदं सकारिकम्।
दैवज्ञकेशवेनेदं कृतं हस्तस्वरान्वितम् ॥१२॥

ह्रस्वोदात्तादिभिर्भेदैः सहस्तस्वरलक्षणम्।
शिक्षादिभिः षडङ्गैश्च विज्ञेयं वेदपाठकैः ॥१३॥

॥ इति श्रीदैवज्ञकेशवकृता प्रतिज्ञासूत्रानुसारिणी केशवी शिक्षा समाप्ता॥

---

१. संहितायां किञ्चिद् अक्षरं परं न चेदित्यन्वयः। एवं च परो न चेदित्यत्र परं न चेदिति पाठ उचितः। किञ्चिदित्यनेनान्वयानुरोधात्। अन्यथा तत्स्थाने कश्चिदिति पठनीयम्। कैश्चिद् वर्णैः परो न चेदित्यन्वयः।

# तत्कृता पद्यात्मिका शिक्षा

अनुदात्तादुदात्तश्चेत्स्वरितोत्तर एव च ।
हृच्छिरः कर्णमूलेषु न्यसेद्धस्तमसंशयम् ॥१॥

अनुदात्तादुदात्तश्चेदनुदात्तपरस्तथा ।
अनुदात्तं हृदि न्यस्योदात्तं वामभ्रुवि न्यसेत् ॥२॥

पुनर्हृदि न्यसेन्नीचमिति शास्त्रव्यवस्थितिः ।
प्रचितोच्चारणे न्यासो हस्तस्य नासिकाग्रतः ॥३॥

जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टो व्यञ्जनस्तिरः ।
तैरोविरामः पादवृत्तस्ताथाभाव्यस्तथाऽष्टमः ॥४॥

एतेषां लक्षणान्याहुः कात्यायनमुनीश्वराः ।
तत्र जात्यादिसञ्ज्ञानां चतुर्णां दर्शने करम् ॥५॥

तिर्य्यञ्चङ्क्रमयेद्धीमान्पितृदान[1]वदेव हि ।
मनुष्यदान[2]मिव चेदुदात्तः प्रत्ययः स्वरः ॥६॥

आद्यान्तस्थस्य जोच्चारः पदादौ पठितस्य च ।
उपसर्गपरो यस्तु यस्य छन्दसि नेष्यते ॥७॥

पदस्याद्यन्तमध्ये स्यादृरहैः सँय्युतस्य च ।
द्विर्भावेऽप्येवमेव स्यादिति कात्यायनश्रुतिः ॥८॥

अन्तस्थानां द्वितीयस्य सैकारोच्चारणं भवेत् ।
अत्युक्तहलिभः शषसैर्ऋकारेण युतस्य च ॥९॥

---

१. पितृतीर्थेन पितृभ्यो जलं दीयते । तत्तीर्थसदृशं हस्तं कुर्यात् ।

२. दिव्यमनुष्येभ्यः सनकादिभ्यो येन तीर्थेन जलं दीयते, तदिवेत्यर्थः ।

एवमेव तृतीयस्य शषसैः सँय्युतस्य च ।
सैकारोच्चारणं कुर्यादिति शास्त्रव्यवस्थितिः ॥१०॥
ऋकारस्य च सँय्युक्तासँयुक्तस्यापि सर्वतः ।
सैकारोच्चारणं कुर्याल्लकारस्य तथा भवेत् ॥११॥
अथ चान्तस्यान्तस्त्रिविधं गुरुमध्यमलघुवृत्त्योच्चारः ।
वाक्यस्यादिममध्यान्त्यस्य प्रादिकपरस्य लघ्वेव स्यात् ॥१२॥
वो वां वा वैं मन्त्रे लघवो गुरवः पदे च विज्ञेयाः ।
देवो वः सविताऽऽदौ मृग्यमुदाहरणमन्येषाम् ॥१३॥
असंय्युक्तस्य मूर्द्धन्योष्मणः खोच्चारणं मतम् ।
टुमृते संय्युक्तस्यापि कस्य योगे ष एव हि ॥१४॥
छन्दसीत्येव खोच्चारो लोके प्रकृतिरिष्यते ।
अनुस्वारस्य ठंॅकार आदेशश्छन्दसि स्मृतः ॥१५॥
ऊष्मरेफेषु परतस्तस्य त्रैविध्यमुच्यते ।
ह्रस्वाद्दीर्घाद्दीर्घह्रस्वो[1] गुरौ च परतो गुरुः ॥१६॥
ऋकारपरऊष्मान्त्ये दीर्घाद्दीर्घोऽपि जायते ।
परसवर्णे ह्यनुस्वारस्येषत्प्रकृतिरुच्यते ॥१७॥
अणुमात्रमनुस्वारो ह्युत्तमं चाणुमात्रकम् ।
शषसे च कखपफे विसर्गाः सन्ति यत्र च ॥१८॥
वाचो विरामः कर्त्तव्यस्तत्रेषच्छ्रुतिचोदनात् ।
सॅय्युक्तस्य पदाद्यस्य चाकारस्य प्रतीयते ॥१९॥
ईषद्दीर्घतयोच्चारः कात्यायनमुनेर्गिरा ।
आस्तिकस्य मुनेर्वंशे जातो दैवज्ञगोकुलः ॥२०॥

---

१. ह्रस्वादित्यस्य दीर्घे, दीर्घादित्यस्य ह्रस्वेऽन्वयः संभाव्यते । एवं च दीर्घह्रस्वौ इति द्विवचनान्तपाठो युक्तः प्रतिभाति । अथवा दीर्घेण सहितो ह्रस्व इति मध्यमपदलोपिसमासः ।

तत्सुतेन केशवेन कृता सम्यक् शुभाप्तिनाम् ।[1]
प्रीत्यर्थं सुधियां कारिकावली निर्म्मला शुभा ॥२१॥

॥ इति श्रीमदास्तिकमहर्षिवंशोद्भवज्ञगोकुलचन्द्रसुतदैवज्ञकेशवरामकृता-
कारिकावली सम्पूर्णा ॥

१. आप्तम्, आप्लृधातोर्नपुंसके भावे क्तः। शुभस्याप्तम्, शुभाप्तम् तदस्ति येषु ते शुभाप्तिनः, तेषां शुभाप्तिनाम्। शुभार्थिनामित्युचितः पाठः।

# मल्लशर्म्मकृता शिक्षा

नत्वा गणपतिं देवं ध्यात्वा श्रीकुलदेवताम् ।
मल्लशर्मा हस्तपूर्वां करोमि स्वरप्रक्रियाम् ॥१॥

नत्वा विघ्नहरं सदा शुभकरं, सर्वस्य कामप्रदम् ।
स्मृत्वा श्रीगुरुपादुकां सुललितां ध्यात्वा परां देवताम् ॥
वेदे वाजसनेयके त्वधिकृता विप्राश्च ये सत्तमाः ।
तेषामेव कृते कृता न कुधियां हस्तस्वरप्रक्रिया ॥२॥

अथ साधारणनियमः, तथा प्रातिशाख्ये मनुः ।
ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ॥
स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥३॥

तथा उत्तानपाणिं फणवत्कृत्वा सह शलाकया ।
गुरुं प्रणम्य मनसा ततः स्वाध्यायवान्भवेत् ॥४॥

अत्र जपादौ हस्तस्वरवर्णहीनस्यानधिकारत्वं रावणेन ।
स्वराङ्क[1]शे याज्ञवल्क्येन शिक्षायां च बोधितम् ॥

तथा हि–हस्तहीनं तु योऽधीते हस्तस्वर[2]विवर्जितम् ।
ऋग्यजुः सामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥५॥

इति याज्ञवल्क्यशिक्षायां चोक्तम् ।
जपादौ नाधिकारोऽस्ति सम्यक् पाठमजानतः ॥

---

१. स्वराङ्कुशे इति युक्तः पाठः ।
२. स्वरवर्ण इति 'ख' पुस्तक पाठः ।

इत्युक्तं प्रातिशाख्ये ।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा-
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति-
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥६॥

इत्यपि तत्रैवोक्तम् एतेन हस्तस्वरवर्णयुक्त एव ।
वेदोऽध्येतव्य इत्यतो हस्तस्वरप्रक्रियोच्यते तत्र ॥

तावद्धस्तस्वरस्य मूलस्थानं श्लोकैकेन कथ्यते तथा ।
आदौ हस्तं न्यसेन्मध्ये स्थितिरेषा सनातनी ॥
ततः स्वरानुकूल्येन गतिस्तस्य न संशयः ॥७॥

इति मूलस्थानम् अधस्तात्प्रव्रजन्पूर्वामूर्द्धन्मध्ये च तिष्ठति ।
मध्यतो दक्षिणं गच्छेद्दक्षिणाद्याति चोत्तरे ॥८॥
दृष्ट्वा जात्य[1]स्वरं शीघ्रं मध्यतो याति चोत्तरम् ।
उत्तराद्यात्यधो हस्तं स्वरं दृष्ट्वा च दक्षिणे ॥९॥
अर्द्धं न्युब्जे ततः पाणिरधस्ताद्याति दक्षिणे ।
सम्पूर्णे सत्यधो गच्छेदधस्ताच्च न संशयः ॥१०॥
सिᳫंह्यसि प्रतीकं च ह्यवसानं विना करम् ।
मध्यतो याति सर्वत्र व्यूध्द्वंमेव सुनिश्चितम् ॥११॥
अनुदात्तसमूहो यान्वर्णानाश्रित्य तिष्ठति ।
ते युक्तास्तं परित्यक्तुमशक्ता निजबन्धुवत् ॥१२॥
स्वरितेऽप्येवमेव स्याद्दक्षि[2]णांसे विशेषतः ।
न च पूर्वोक्तनियमो विद्यतेऽत्रेति निश्चितम् ॥१३॥

---

१. स्वरितविशेषो जात्यः ।
२. दक्षिणस्कन्धे इत्यर्थः ।

प्रतीकेऽपि विशेषोक्तिर्म्मन्यते वाऽनुवर्तिनम् ।।१४।।

इति सामान्यविधिः ।।

एकारेण समा रेखा मूर्द्ध्नि वर्णस्य या स्थिता ।
वामगान्तां विजानीयादूर्ध्वगां ह्यूर्ध्वसंस्थिताम् ।।१५।।
तिर्य्यग्रेखा च वर्णस्य पादपार्श्वे स्थिता तु या ।
ऊर्ध्वरेखासहायेन तस्यास्तु स्यादधोगतिः ।।१६।।
वामरेखासहायेन गतिस्तस्यास्तु दक्षिणे ।
विन्दोर्गतिश्च जात्यस्य मध्ये स्यादिति निश्चितम् ।।१७।।
अर्द्धन्युब्जस्य पूर्णस्य दक्षिणः स्यात्त्वधो गतिः ।

इति चतुस्स्वरगतिः ।।

पूर्णार्द्धन्युब्जजात्यानां सञ्ज्ञा सम्यक् क्रमेण हि ।
अङ्कैः षड्भिश्चतुर्भिश्च स्वरविद्भिरुदीरिता ।।१८।।

इति पूर्णार्द्धन्युब्जजात्यानां सञ्ज्ञा ।

अथ हस्तस्वरगतिप्रमाणम् ।

षडङ्गुलिप्रमाणानि दक्षिणे च तथोत्तरे ।
ऊर्ध्वेनवाङ्गुलिर्ज्ञेया गतिः पाणेरधस्तथा ।।१९।।
वामे च दक्षिणाद्याति चार्द्धेऽधस्तात्तथैव च ।
अष्टादशाङ्गुलिर्ज्ञेया गतिर्हस्तस्य सुस्थिरा ।।२०।।

इति हस्तस्वरगतिप्रमाणम् ।।

अथ विसर्गोच्चारणप्रमाणम् ।

ह्रस्वाद्दीर्घाच्च परतो विसर्गश्चेत्तदा बुधः ।।
ह्रस्वस्वरानुकूल्येनोच्चारयेत्तं सदा बुधैः ।।२१।।

इति विसर्गोच्चारणप्रमाणम् ।।

अथाङ्गुलिनिस्सरणम् ।

ह्रस्वे स्वरितसंय्युक्ते वर्णे च सविसर्गके ।
कनिष्ठा तर्जनी चैव निष्कास्या हि स्वयूथतः ।।२२।।

दीर्घे स्वरितसम्प्राप्ते ह्येकामेव कनिष्ठिकाम् ।
जात्ये युग्मं विशेषेण त्यक्तव्यमिति निश्चितम् ॥२३॥

स्वरितेभ्यः क्रमेणैव दक्षिणोत्तरगामिनी ।
कनिष्ठा तर्जनी चैव त्याज्या तूर्ध्वे हि देशिनी ॥२४॥

अनुदात्तयुते ह्रस्वे सस्वराच्च परेऽपि वै ।
सुज्ञैः कनिष्ठिका त्याज्या सविसर्गे द्विजोत्तमैः ॥२५॥

अथ ठं०कारसंज्ञा ।

ह्रस्वादग्रे भवेद्दीर्घो दीर्घादग्रे भवेल्लघुः ।
देवानां हृदयं त्यक्त्वा ठं० स्यादेव द्विलके परे ॥२६॥

दीर्घे तु देशिनी त्याज्या क्षिप्रं स्याद् द्विलके लघौ ।
मन्त्रे त्रिधा विधिर्ज्ञेयो ब्राह्मणे[१] तु द्विधा स्मृतः ॥२७॥

अथ क्षिप्रविचारः ।

तर्जन्याः पृष्ठसंश्लिष्टमङ्गुष्ठं चाग्रनामितम् ।
तं वै क्षिप्रं विजानीयात्स्वरविद्भिरुदीरितम् ॥२८॥

इत्यङ्गुलिनिस्सरणम् ।

अथ रेखाभिरुदात्तानुदात्तस्वरितसंञ्ज्ञा ।

ऊर्ध्वरेखा तु वर्णस्य मूर्ध्नि तिष्ठति या स्थिरा ॥
तामुदात्तं[२] विजानीयाद्द्विस्स्वरे स्वरितं तु ताम् ॥२९॥

तिर्य्यग्रेखा च वर्णस्य पादपार्श्वे स्थिता तु या ।
अनुदात्तं विजानीयात्स्वरितं वा सहायतः ॥३०॥

वर्णस्य वर्तुलाकारं पादे तिष्ठति केवलम् ।
स्वरितं तु विजानीयात्स्वरविद्भिरुदीरितम् ॥३१॥

---

१. ब्राह्मणात्मकवेदपाठे इत्यर्थः ।
२. उदात्तस्वरपरिचायिकामित्यर्थः ।

अथ तकारादिमान्तेषु तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगादि-
मुष्ट्यन्ताः क्रियाः कथ्यन्ते ।

तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोर्योगो नखयोगश्च यस्तयोः ।
अङ्गुष्ठमध्ये यस्तस्या योगो भवति निश्चितम् ।।३२।।
अत्रैवोक्तः क्रमेणैव नैतदेकेऽवसानगे ।
विस्वरे च मकारान्ते मुष्टिका च तथैव च ।।३३।।

अथ विचित्रगतिः कोऽदादिति प्रतीके च कौऽसौ च ।
त्र्यम्बकेऽपि च ।

एषूदात्तं विजानीयात्तदन्यत्र च मध्यमम् ।।३४।।
स्वरितस्य विशेषेण स्थानं मध्ये ह्यदीरितम् ।
मध्यतश्च बहिर्गन्तुमशक्यत्वमिति स्थितिः ।।३५।।
वर्णाश्च येन तिष्ठन्ति सञ्ज्ञा तेषां तु तस्य वै ।
स्वरितस्य विशेषेण ज्ञेयाः[1] स्वरविशारदैः ।।३६।।
त्रयाणां च स्वराणां च त्रिधा सञ्ज्ञा विशेषतः ।
खल्वेकस्य त्रिधा सञ्ज्ञा मध्यस्थस्वरितस्य च ।।३७।।
तत्समः स्वरजात्यश्च ह्यर्द्धन्युब्जो न तत्समः ।
सोऽपि पूर्णोऽनुदात्तेन समश्चेति विधिक्रमः ।।३८।।
इति विचित्रगतिः । अथ रेफविशेषोक्तिः ।
अक्षराणामुपरि यो वेदे रेफः प्रवर्त्तते ।
स एव शषहर्ऋणां विपरीतं तु यद्भवेत् ।।३९।।
इति रेफविशेषोक्तिः ।। अथ ब्राह्मणस्वरसङ्क्षेपः ।
वामस्था चोपरिष्ठा या मन्त्रे वर्णस्य संस्थितिः ।
ब्राह्मणे सा तु मध्यस्था ज्ञेया मध्यस्थिताऽपि या ।।४०।।

---

१. ज्ञेया इत्यस्य संज्ञा इति विशेष्यम् ।

यदुत्तरमधोयाति मन्त्रे याति च दक्षिणे ।
तदेव ब्राह्मणाख्ये तु विपरीतगतिर्भवेत् ।।४१।।

जात्यं मध्ये स्थितं नित्यमूर्ध्वे न्युब्जं समाश्रितम् ।
इति सङ्क्षेपनियमो ब्राह्मणेष्वेव निश्चितः ।।४२।।

इति ब्राह्मणस्वरसङ्क्षेपविधिः ।

अथ रङ्गमहारङ्गातिरङ्गाः ।।

सुसन्धेश्चावसानस्य सार्द्धद्व्यङ्केन बिन्दुना ।
भङ्गं[1] स्यादत्र मन्त्रेण वै रङ्गस्तु भवेदिति ।।४३।।

महाशब्दोऽतिशब्दश्च यद्वर्णात्प्राक् प्रवर्तते ।
महारङ्गोऽतिरङ्गश्च सञ्ज्ञा तस्यैव निश्चिता ।।४४।।

अथ रङ्गादीनामुच्चारणे प्रमाणम् ।

ह्रस्वात्तु द्विगुणो दीर्घो दीर्घादेकगुणः प्लुतः ।
प्लुतादेकगुणो रङ्गो रङ्गादेकगुणाधिकः ।।४५।।

महाशब्देन सँय्युक्तो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रिकम् ।
अतिरङ्गो महारङ्गाद् वृद्धो ह्येकगुणाधिकः ।।४६।।

एतत्तु किल वेदे वै ज्ञेयं पूर्णेऽपि सुस्थिरम् ।

अथ द्विस्स्वरक्रमः ।

द्विस्स्वरे स्वरहीनस्य गतिस्तूपरि चोत्तरे ।
जात्ये त्वर्द्धे च सम्पूर्णे न्युब्जे चतुस्स्वरेषु यत् ।।४७।।

स एव नियमो ह्येकैर्द्विस्स्वरेऽपि च दर्शितः ।
भेदेनैव प्रकारस्तु[2] लिपिमात्रे सुनिश्चितः ।।४८।।

तिर्यग्रेखा द्विके मध्ये मध्ये वा तिर्यगूर्ध्वयोः ।
उत्तरं याति सोर्ध्वञ्च विस्वरश्चेत्क्रमेण हि ।।४९।।

---

१. 'भङ्गः' इति पाठो युक्तः ।

२. त्रिमात्रे इति 'ख' पुस्तकपाठः ।

अथौष्ठमकारस्थानानि ।

म्रन्ते मिभ्रातौ मोधे च मत्रं मध्यं मधौ मिधौ ।
रक्षोहृणे च मन्त्रे तु बलं त्यत्त्कामलेऽपि च ॥५०॥
मिमन्धे च मिभतौं च मिभयौं मभयेऽपि च ।
औदुम्बय्यात्मके चैवं म्रह्मणे म्राह्मणे मृषे ॥५१॥
माधोस्तु महिषं मध्याँ[1] मृहन्ते च मधानके ।
मृहस्पतौ च मिमते मृते माल्बे मभूषते ॥५२॥
मिभ्राडिति प्रमुधे च मुघ्ने मघ्नौ प्रमाहुके ।
मम्लुशे मदरे म्रघ्ने मपायो म्रह्मचर्यके ॥५३॥
मटे सोमे च मीभत्से क्लीमे त्रैय्यम्मकेऽपि च ।
शमले च मलाकायां सञ्ज्ञा सप्तविभक्तिषु ॥५४॥
स्थानेष्वेतेषु शिक्षायां याज्ञवल्क्येन भाषिता ॥५५॥

अथौष्ठमकारोत्पत्तिः ।

मकारश्चौष्ठसंज्ञः स्यान्मकारं बिन्दुगर्भकम् ।
सर्वासामाङ्गु[2]लीनान्निस्म[3]रणं कार्यमत्र वै ॥५६॥

अथ ठकारस्थानानि ।

पृष्ठे गोष्ठे च शोचिष्ठेत्यनुष्ठाने च पिष्ठके ।
अधिष्ठानेऽनधिष्ठाने स्वादिष्ठे च वसिष्ठके ॥५७॥
निविष्ठौष्ठवनिष्ठेषु कनिष्ठायां मदिष्ठके ।
निष्ठायां चाप्यनिष्ठायां मजाविष्ठां च षष्ठके ॥५८॥
प्रतिष्ठायां यविष्ठ्यं च वर्षिष्ठे तिष्ठतेऽपि च ।
आपोहिष्ठे यजिष्ठे च नेदिष्ठस्त्रिष्ठिनेऽपि च ॥५९॥
निष्ठीवने चाखरेष्ठः पुञ्जिष्ठे गह्वरेष्ठके ।
ज्येष्ठे श्रेष्ठे कनिष्ठे च भूयिष्ठायान्तु पिष्ठके ॥६०॥

---

१. माह्लोर्म्मर्हिम्माह्यमिति 'पुस्तकपाठश्च । २. अङ्गुलीनामिति पाठो युक्तः ।
३. निःसरणमिति पाठो युक्तः ।

नरिष्ट्ठायाँ गरिष्ट्ठे च भ्राजिष्ट्ठेऽष्टविभक्तिषु ।
सप्तस्वेव यथा प्रोक्तः सूरभिः शब्ददर्शिभिः ॥६१॥

इति ष्ठाकारस्थानानि ।

यस्सुबोधाम्पठेन्नित्यमिमाँ च स्वरप्रक्रियाम् ।
हस्तपूर्वां तु तस्यैव सम्यग्वेदे गतिर्भवेत् ॥६२॥

श्रीमता कान्यकुब्जेन ह्युपमन्यवग्निहोत्रिणा ।
श्रीमद्वेदस्वरूपाणां श्रीमद्वाक्पतिशर्म्मणाम् ॥६३॥

सूनुना पितृभक्तेन मल्लविप्रेण धीमता ।
विक्रमार्कगताब्देषु चन्द्रवस्वगभूमिषु ॥६४॥

ऊर्ज्जमासे सिते पक्षे ह्येकादश्यां शनेर्दिने ।
कृतेयं बालबोधाय स्वहस्तस्वरप्रक्रिया ॥६५॥

इति श्रीमत्कान्यकुब्जीयोपमन्युगोत्रीयाग्निहोत्रिवाक्पतितनूजपितृभक्त-घाटमपुरवासिमल्लशर्म्मकृता शिक्षा समाप्ता ।

# स्वराङ्कुशशिक्षा

हेरम्बं चण्डिकां ध्यात्वा शम्भुं सूर्य्यं हरिं गुरुम् ।
सरस्वतीं कविवरान्वक्ष्येऽहं स्वरनिर्णयम् ॥१॥

उदात्तान्निहतः स्वारः स्वरितात्प्रचयो भवेत् ।
उदात्तात्स्वरितात्पूर्वो नान्यमापद्यते स्वरम् ॥२॥

व्यञ्जनैस्तु यवौ यत्र प्रयुज्येते ततः प॒र॑ ।
अपूर्वो नीचपूर्वो वा जात्यः स्वारः स उच्यते ॥३॥

एदोतोरुच्चयोर्य्यत्र नीचोऽकारः परो यदि ।
एकीभावे भवेत्तत्र स्वरोऽभिनिहितस्तदा ॥४॥

इ उ वर्णौ यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित् ।
अनुदात्तस्वरे नित्यं विद्यात्क्षैप्रस्य लक्षणम् ॥५॥

इकार उच्चः पूर्वस्मिन्परस्मिन्नियतः स च ।
प्रश्लिष्टमाहुराचार्याः स्वरवर्णविदस्तदा ॥६॥

कम्पन्ते ते च चत्वारः स्वरितोच्चोदयाः स्वराः ।
एतत्सम्यक्प्रकारेण ज्ञात्वाऽसौ कम्पविद् भवेत् ॥७॥

नीचेन स्वरितः स्वारमेकीभावेऽनुगच्छति ।
नीचं नीचस्त्रिभिश्चोच्च उच्चत्वमभिगच्छति ॥८॥

उदात्तात्स्वरिताद्यस्य स्वरितोदात्तवच्छ्रुतिः ।
प्रकृत्या निहितं चाहुराचार्याः स्वरवित्तमाः ॥९॥

उदात्तपूर्वं यत्किञ्चिच्छन्दसि स्वरितं भवेत् ।
एष सर्वबहुस्वारस्तैरोव्यञ्जन एव च ॥१०॥

अवग्रहात्परं यत्र स्वरितस्स्यादनन्तरः ।
तैरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः ॥११॥
स्वरे चेत्स्वरितं यत्र विवृत्या तत्र संयुतम् ।
एतत्तु पादवृत्तस्य लक्षणं शास्त्रनिश्चितम् ॥१२॥
जात्यस्वारः स जात्येन श्रुष्ट्यग्ने क्षैप्रउच्यते ।
तेऽवर्द्धन्ताऽभिनिहितः प्रश्लिष्टो ह्यीन्द्र गिर्वणः ॥१३॥
तैरोविरामो विष्कभिते तैरोव्यञ्जन ऊतये ।
पादवृत्तस्य विद्यात्तु ताऽअस्येति निदर्शनम् ॥१४॥
जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रस्तैरोव्यञ्जन एव च ।
तिरोविरामः प्रश्लिष्टः पादवृत्तस्तु सप्तमः ॥१५॥
यत्राभिनिहितात्पूर्वो ह्युदात्तो दृश्यते यदि ।
तत्र स्वारं न कुर्वीत रथानां नेति दर्शनम् ॥१६॥
एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः स्वरितः स्वरः ।
तस्योदात्ततरोदात्तादर्द्धमात्रार्द्धमेव वा ॥१७॥
स्वरात्परं व्यञ्जनं यत्पञ्चमेनान्वितं यदि ।
पूर्वस्य स्वरतो नादो न पूर्वं स्वरते स्वरः ॥१८॥
यत्र स्वरात्परो नादः पूर्वस्वरितभाक्परः ।
तत्राक्षेपो न कर्त्तव्यो नादे जङ्घेऽपि तत्परे ॥१९॥
स्वरितस्यानुरूपेण कम्पं कुर्वीत शास्त्रवित् ।
ह्रस्वे ह्रस्वं विजानीयाद्दीर्घे दीर्घं तथैव च ॥२०॥
स्वरितान्नियतं गच्छेत्स्वरितो नियतश्च नौ ।
द्विमात्रो यत्र दृश्येत ह्रस्वकम्पः स उच्यते ॥२१॥
अनुदात्तं क्रमात्कुर्यात्स्वरितं ह्यवलम्बयेत् ॥
पुनर्नियतमागच्छेद्दीर्घकम्पः स उच्यते ॥२२॥

जयन्तस्वामिना प्रोक्ताः श्लोकानामेकविंशतिः ।
स्वराङ्कुशेति विख्याता बह्वृचां स्वरसिद्धये ॥२३॥
एकोदात्तं पदं विद्यादेकस्वारमथापरम् ।
कानि चोरुद्व्युदात्तानि कनिष्ठं निहितं स्मृतम् ॥२४॥
उदात्तान्निहितः स्वार्यः स्वरोदात्तौ न चेत्परौ ।
स्वरितो यस्तथाभूतो ज्ञेयः सप्ताकृतीस्त्विति ॥

॥ इतिश्री जयन्तस्वामिप्रोक्ता स्वराङ्कुशा शिक्षा समाप्ता ॥[१]

१. केचन रावणकृता स्वराङ्कुशा शिक्षा प्रतिपद्यन्ते ।[२]

२. अत्र 'केचन 'रावणकृता स्वराङ्कुशा शिक्षा, इति प्रतिपद्यन्ते, इत्युचितः पाठो भाति ।

# षोडशश्लोकी शिक्षा

अथ शिक्षाँ प्रवक्ष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ।
यथा संव्यवहारेषु स्वयं प्रोक्ता स्वयम्भुवा ॥१॥

त्रयस्त्रिंशद्दशा वर्णाः स्वरा द्वाविंशतिर्य्यमाः ।
चत्वारश्च विसर्गोऽनुस्वार ८ क ८ पस्त्रिषष्टिकाः ॥२॥

समास्तेऽदिदुतो ज्ञेया ऋच्चादीर्घ ऌपञ्चमः ।
एदैदोदौ तु चत्वारो ह्रस्वाः सन्ध्यक्षराणि च ॥३॥

ह्रस्वदीर्घप्लुता भेदास्तदुदात्तोऽनुदात्तकाः ।
स्वरितश्चापि ते सानुनासिकाऽननुनासिकाः ॥४॥

इत्यष्टादशधा भेदा व्यवर्णा नामिनः स्वराः ।
कुचुटुतुपुवर्गास्तदुत्पञ्चवर्णसङ्ग्रहः ॥५॥

इति स्वरभेदाः ।

कुप्वन्त्यच्वादिवर्गाणां व्युत्क्रमातपञ्चमादितः ।
खफाद्याश्छठथा ज्ञेया रलान्त्या हयवाः स्मृताः ॥६॥

अतश्चेतः स्वराः पूर्व्वा हलो ञमो झमो जबः ।
खथश्चपः शसश्चैते प्रत्याहारास्त्वसङ्ख्यकाः ॥७॥

कादयो मान्तिकाः स्पर्शा यमा झपञमान्तरे ।
शषसहाः स्युरूष्माणोऽन्तस्था यरलवाः स्मृताः ॥८॥

कखत ८ पफत ८ पूर्वः क्रमादर्द्धविसर्गकः ।
जिह्वामूलीयको ज्ञेय उपध्मानीयसञ्ज्ञकः ॥९॥

विसर्गार्द्धविसर्गानुस्वारव्यङ्गं पराश्रयम् ।
एतत्परापरौ ह्रस्वौ ग्लौ दीर्घश्च गुरुस्तथा ॥१०॥

इति व्यङ्गभेदाः ।

हकुविसर्जनीयानां स्यात्कण्ठ्यं[1] यिश्चु तालुकम् ।
ऋटुर्षं स्लृतुला दन्तम्पूपध्मानीयमोष्ठजम् ॥११॥

वो दन्तोष्ठं ञमस्यापि नासिकायमयुग्घुरः ।
ओदौतोरपि कण्ठोष्ठं त्वेदैतोः कण्ठतालुकम् ॥१२॥

जिह्वामूलीयमात्रस्य जिह्वामूलं हि चाष्टमम् ।
सद्यो बोधकरा शिक्षा मणिभूता प्रकाशिता ॥१३॥

करालो न च लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः ।
गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति ॥१४॥

व्याघ्री दद्भिर्हरेत्पुत्रान्भीता पाताच्च पीडनात् ।
तद्वत्प्रयोजयेद्वर्णास्तेन लोके महीयते ॥१५॥

इति वर्णोच्चारः ।

शिवा यान्निःसृतां शिक्षां प्रयतो यः पठेदिह ।
पुत्रकीर्तिधनायुष्मान्त्स्वर्गेऽतिसुखमश्नुते ॥१६॥

॥ इति रामकृष्णविरचिता षोडशश्लोकी शिक्षा समाप्ता ॥

१. कण्ठे भवं कण्ठ्यं स्थानमिति भावः ।

# अथावसाननिर्णयशिक्षा

नमस्कृत्य तु तं देवं शङ्करस्य सुतं प्रभुम् ।
यस्य प्रसादाद्देवस्य बुद्धिभेदोऽत्यभून्मम ॥१॥

अवसानं तु वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥२॥

इषे त्वा भूताय कुक्कुटोऽसि जनयत्यै त्वा मा भेः
पृथिवि देवयजन्यदित्यै व्युन्दनमस्कन्नमद्याग्ने
व्वेरग्नेऽदब्धायो दिवि व्विष्णुरग्ने व्रतपतेऽन्धस्त्यैष
ते रुद्र भागः स्वाहा यज्ञमेष ते गायत्री
व्वरुणस्योत्तम्भनमग्नेस्तनूः सिᳪंह्यसीन्द्रघोषस्त्वा
सिᳪंह्यसि ध्रुवोऽसि रक्षोहणँ व्वलगहनᳪंस्वराडसि
रक्षोहणो वो मित्रस्य मा देवीरापो व्वाचन्ते
समुद्रङ्गच्छ मनो मे तर्प्पयत स्वाङ्कृतोऽस्युप
यामगृहीतोऽस्याग्रयणः सोमः पवते मित्रावरुणा-
भ्यान्त्वाऽऽत्मने मे मघवे त्वाऽग्नये त्वा मह्यं
यस्तेऽअश्वसनिरग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं त्रेशीनान्त्वो
शिक्त्वन्देवान्दिवमापये स्वाहाऽग्निरेकाक्षरेण मित्रो
व्वसवस्त्रयोदशाक्षरेणैष ते ये देवाऽआविर्म्मर्त्याऽ-
ऊद्ध्वामारोहाग्निः पृथुः सवित्रा प्रसवित्रा पृथिव्याः
सधस्थाद्वसवस्त्वोभयोरदितिष्ट्वा वसवस्त्वाऽऽ-
कृतिमग्निम् ॥ ॥३॥

विष्णोः त्क्रमश्चिदस्यपान्त्वाऽयम्पुरः पञ्च सजूर्ऋतु-
भिरनड्वान्वयोराज्ञस्यायुर्म्मे पृथवीच्छन्दोऽग्नि-
र्देवताऽऽशुस्त्रिवृन्नवविꣳशत्त्यास्तुवताच्छच्छन्द-
स्तन्तुना रायस्त्रिवृदसि राज्ञ्यसि व्विराडसि सम्राडसि
स्वराडस्यधिपत्न्यसि सहस्रस्य प्प्रमा सेनाभ्यऽआशवे
शङ्कवे शम्भवाय पर्णयेमा मे नृषदे वेड्वाजश्च
सप्तविꣳशतिः समुद्रोऽसि स्वर्णघर्मस्तेजोऽसि
प्प्रथमा द्वितीयैरश्विभ्यान्त्वा होता यक्षत्समि-
धाग्निन्द्वादशाश्विनौ सरस्वतीश्चत्वारोऽग्निꣳस्विष्ट-
कृतन्देवोऽअग्निः स्विष्टकृत्त्वामद्द्याग्नये स्वाहा
हिङ्काराय यते कायाऽऽब्रह्मन्नध्यायान्तस्ताऽउभाव-
श्श्वस्तूपरोऽध्यायान्तःशादन्दद्भिर्न्नवाग्नेयः कृष्णग्ग्री-
वस्तिस्रो ब्रह्मणे ब्राह्मणꣳसप्तदश सुमित्रिया
नः सुमित्रिया नः सुमित्रिया नऽएधोऽसीति
द्वे शते चतुस्त्रिꣳशदित्यन्त्यावसानानि ॥४॥

अथ[1] त्र्यवसानानि।

युष्माऽ इन्द्रोऽग्ने ब्रह्म सँव्वपामि पुरा क्रूरस्य
सवितुस्त्वा गन्धर्व्वस्त्वोपहूतो द्यौरेषा ते
व्वसुभ्यस्त्वा व्वेदोऽस्यग्निर्ज्ज्योतिः सꣳहिताऽ-
स्युपहूताऽइहैदं द्वेऽआकूत्यै प्रयुजऽऊर्ग्गसि द्वे त्वम-
ग्नेऽभित्त्यमदित्त्यास्त्वा भद्द्रो मे तप्तायनी मे
देवस्य त्वोभयोरुद्दिवमत्त्यन्यान्घृतेनाक्तौ मनस्तऽ-
इदमापऽऐन्द्रः प्प्राणो माऽपोऽग्नेर्वः सोम राजन्निन्द्र-
वायूऽइमेऽअयँव्वाँय्यावाङ्कशातम्प्रत्क्रथाऽयँव्वेनो ध्रुवो-
ऽसि कोऽसीन्द्राग्नीऽआगतं पञ्च सजोषाऽइन्द्र-

१. एषु मध्यभागेषु अवसानत्रितयं प्रदर्श्यंते । पूर्वं तु अन्त्यावसानं दर्शितम् ।

चतस्रो व्विवस्वन्नादित्य बृहस्प्पतिसुतस्यैजतु दशमाऽ-
स्यआतिष्ठ तिस्रऽउदुत्त्यँव्वि नऽइन्द्रेति तिस्रऽइह रतिः ॥५॥

ध्रुवसदन्त्वा ग्रहाऽऊर्ज्जाहुतयऽइन्द्रस्य व्वज्रो यवो यस्तेऽआ मा व्वाजस्याऽस्मे वः क्षत्रस्योल्बं प्रपर्वतस्य प्रजापते नाश्विबभ्याम्पच्यस्व कुविदङ्ग पुरीष्योऽस्यृतर्ठ० सत्यमुखाङ्कृणोत्त्व देत्यै रास्नास्यूर्द्ध्वो भवाग्निर्म्मूर्द्धा मधुश्चेमं मा द्वे शुक्रश्च व्विश्श्वकर्म्मोभयोर्न्नभश्चेषश्च षोडशी स्तोमोऽग्निर्ठ० होतारमग्ने त्वं तपश्च परमेष्ठी त्वोभयोर्न्नमोऽस्तु तिस्रऽ-आयुर्यज्ञेन ऽऋचो नाम ॥६॥

स्वादृ्वीन्त्वा कुविदङ्ग यदा पिपेषेदर्ठ० हवीरेतो मूत्रं दृष्ट्वा रूपे निषसाद नाभिर्म्मे त्रया देवा यदापोऽअश्विनौ च्छागस्य प्प्रजापतये त्वाऽअग्निः पशुः प्राणाय स्वाहेमा नु कन्द्वेऽअग्निश्चाथैतानष्टौ यङ्क्रन्दसीऽआ सुते कुतस्त्वमधि नो दस्रा युवाकवोदैव्यावद्ध्वर्य्यूऽअस्येदिन्द्रो ब्रह्मणस्पतेऽअपेतः स्योना पृथिवि भूर्भुवोऽहानि शन्दृते दृर्ठ० ह यमाय त्वाऽनाधृष्टा पुरस्ताद्विश्श्वासां भुवां पते यस्ते स्तनो गायत्रीच्छन्दः समुद्राय त्वाऽभीमं पयसो रेतः स्वाहा प्राणेभ्यो लोमभ्यः स्वाहेति शतमेकचत्वारिर्ठ०शदित्येतानि त्र्यवसानानि ॥७॥

अथ चतुरवसानानि[1] प्रत्युष्टर्ठ० रक्षोऽग्नीषोमयो रुज्जितिर्ठ० सजूर्देवेनेन्धानास्त्वा त्र्यम्बकँय्यजामहेऽर्ठ० शुरर्ठ० शुष्टे या ते धामान्युश्म्मसि देवस्य

१. अवसानचतुष्टयी उदाह्रियते । पूर्वं तु अवसानत्रयी दर्शिता ।

त्वाऽग्नीषोमाभ्यां मरुत्वन्तं वृषभं माहिर्भूरग्ने
पवस्वोत्तिष्ठन्नोजसा ऽदृश्रमस्य केतवो य् उवन्तं
देवस्याऽहन्न्ज्योतिष्मन्तं प्रैतु सुपर्णोऽसि विराड्ज्योति-
रिमर्ठ० साहस्रं तिस्रो वायोः पूतः पुनन्तु मा पित-
रऽएधोऽसि सँव्वत्सरोऽस्यग्निमद्द्योभयोरिन्द्रस्यौज-
स्त्थऽऋजवे त्वा स्वाहा रुद्राय हिरण्मयेन
पात्रेणेति द्वात्रिर्ठ०शदित्येतानि ऽवसानानि ॥८॥
कृष्णोऽसि नमो व ऽउशिगसि समुद्रोऽसि
मधुमतीर्न्नऽइषः प्प्राणाय परमेष्ठ्यभिधीतऽइन्द्रश्च
प्रोह्यमाणः सोमो विश्वे देवा द्वेऽअग्निरेकाक्षरेण
पूषा पञ्चाक्षरेण मित्रो नवाक्षरेण व्वृक्णऽऊर्म्मि-
रत्थैतस्त्थावेष्ट्रा दन्दशूका दक्षिणामारोह प्रतीची-
मुदीचीम्मूर्द्धा वयो मा छन्दोऽग्नेर्भागोऽसि
वसूनाँव्वानामेकया स्तुवत नवभिर्नवदशभिः ॥९॥
एवश्छन्दो ऽरश्मिना सत्याय प्रतिपदसि नमो-
हिरण्यबाहवे बब्लुशाय रोहिताय कृत्स्नायतयोष्णी-
षिणे विसृजद्भ्यः सभाभ्यो गणेभ्यस्तक्षभ्यः श्वभ्यः
कपर्दिने ह्रस्वाय ज्येष्ठाय सोम्याय वन्याय विल्मिने
स्रुत्याय कूप्याय वात्याय पार्याय सिकत्याय व्रज्याय
शुष्क्क्याय प्रथममग्निमद्य सूपस्त्थाऽ अद्येति
षट्पञ्चाशदित्येतानि निरवसानानि ॥१०॥
अथ[1] मध्यावसानानि ।
द्वितीयर्ठ० शर्म्मास्यग्ने व्वाजजिद्विभूरस्याददे रावाऽसि
द्वे मध्यऽइन्द्राय त्वा बृहद्द्वते पञ्चेति मध्यावसानानि ॥११॥
अथ पञ्चावसानानि ।
प्रैतु वायुरनिलन्द्वे पञ्चावसाने ॥१२॥

---

१. निरवसानानां मन्त्रभागानामुदाहरणप्रदर्शनानन्तरं मध्यावसानानि उदाह्रियन्ते ।

अथ[1] षडवसानानि ।

या तेऽअग्नेऽय: शया या ते घर्म्मं द्वे षडवसाने ॥१३॥

अथ नवावसानानि ।

मखस्य शिरोऽश्वस्य त्वा द्वे नवावसाने ॥१४॥

अथ मर्य्यादा ।

शतानि चतुर्दश त्रिनवतिर्द्वयसानानि १४९३ भवन्ति ।
द्वे शते त्रयस्त्रिं॑ᳬशदन्त्यावसानानि २३३ भवन्ति ।
शतं पञ्चाशत्त्र्यवसानानि १५० भवन्ति ।
त्रिं॑ᳬशच्चतुरवसानानि ३२ भवन्ति ॥
षट्पञ्चाशन्निखसानानि ५६ भवन्ति ।
पञ्च मध्यावसानानि ५ भवन्ति ॥
द्वे पञ्चावसाने ५ द्वे षडवसाने २ नवावसाने भवत: ।
सर्वाण्य[2]वसानान्येकीकृत्यैकोनविं॑ᳬशति: शतानि ॥
पञ्चसप्तति: संख्या कण्डिकायाश्चत्वारिं॑ᳬ ।
शदध्याये १९७५ ।

इत्यनन्तदेवविरचिताऽवसाननिर्णयशिक्षा समाप्ता ॥
रसवेदाङ्केन्दुमिते १९४६ फाल्गुने शुक्लपक्षके ॥
पूर्णिमायां गुरोर्वारेऽवसानान्यङ्कितानि वै ।

---

१. पञ्चावसाना: षडवसाना अपि मन्त्रभागा उदाहृता: ।

२. पञ्चावसानानां षडवसानानां नवावसानानामित्यादिक्रमेण समस्तावसानव्यवस्था दर्शिता ।

- DONATED BY -
Lt. PADMASHREE
Prof. V. VENKATACHALAM
VARANASI

# अथ स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्टशिक्षा

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वलक्षणलक्षिताम् ।
शिक्षां समासतस्तत्र स्वरास्त्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥१॥
तैरोविरामः क्षैप्रश्च तैरोव्यञ्जकस्तथा ।
भाव्योऽभिनिहितो जात्यः पादवृत्तश्च सप्तमः ॥२॥
प्रश्लिष्ट इति विज्ञेयाः प्रोच्यन्ते लक्षणान्यथ ।
अवग्रह उदात्तश्चेत्स्वरितः स्यात्ततः परम् ॥३॥
अवग्रहात्पदं यस्तु तं विद्यात्प्रथमं स्वरम् ।
लक्ष्यमस्य तु विज्ञेयं गोपताविति गो । पतौ ॥४॥
इकारोकारयोः स्थाने यवौ स्यातामुदात्तयोः ।
अनुदात्ते पदे नित्यं स क्षिप्र इति कीर्त्तितः ॥५॥
त्र्यम्बकं द्रून्न इत्यादि लक्ष्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ।
स्वरितं छन्दसि पदं यत्किञ्चिदपि दृश्यते ॥६॥
उदात्तपूर्वं तत्सर्व्वंतैरोव्यञ्जन उच्यते ।
इडेरन्ते तथा हव्ये काम्ये इत्यादि दर्शनम् ॥७॥
अकार एकोदात्तेन रेफेणापहृतो भवेत् ।
तञ्चाभिनिहितं प्राहुः कुक्कुटोऽसि निदर्शनम् ॥८॥
विवृत्त्या दृश्यते यत्र स्वरं च स्वरितं पदे ।
स स्वरः पादवृत्तः स्यात्पुत्रऽईधे निदर्शनम् ॥९॥

यत्रोदात्त इकारो हि निपातैकारसँय्युतः ।
स प्रश्लिष्ट इति ज्ञेयोऽभीममित्यादि दर्शनम् ॥१०॥
सादौ पदे परे पूर्वं ककारान्ते पदे स्थिते ।
कसवर्णं तु विज्ञेयं भिषक्सीसेन दर्शनम् ॥११॥
चकारान्ते पदे तान्ते पूर्वं च समवस्थिते ।
प्रत्यारम्भो न तत्र स्याद्यच्चाहमिति दर्शनम् ॥१२॥
सादौ पदे परे पूर्वं ङकारान्ते पदे सति ।
कसवर्णद्वयं तत्र प्राङ्क्सोम इति दर्शनम् ॥१३॥
सादौ पदे परे नान्ते पूर्वे च समवस्थिते ।
तसवर्णं विजानीयात्त्रीन्त्समुद्रान्निदर्शनम् ॥१४॥
मादौ पदे परे मान्ते पूर्वमुच्चारिते सति ।
[1]मसवर्णन्तु तत्र स्यादिमम्म इति दर्शनम् ॥१५॥
पदमध्ये पदाद्यन्तऽऋहरेफैश्च संयुते ।
यकारे जं विजानीयद्युञ्जानेत्यादिकं यथा ॥१६॥
टवर्गमन्तरा षस्य खोच्चारम्छन्दसीरितः ।
प्रत्युदाहरणं पृष्टो दिवीषे त्वा निदर्शनम् ॥१७॥
ऊष्मोर्ध्वरेफस्योच्चारः सैकारो हल्युतो न चेत् ।
पितॄणामिह पित्रेणामित्यादि च निदर्शनम् ॥१८॥
ꣳ कारः स्यादनुस्वारस्थाने शलि च रे परे ।
ह्रस्वाद्दीर्घो भवेद्दीर्घाद्ध्रस्वो गुरुरथो मतः ॥१९॥
सँय्योगे परतो हꣳ स इत्यादि निदर्शनम् ।
ताꣳ सवितुरित्यादि दꣳष्ट्रेत्यादिकं तथा ॥२०॥
ह्रस्वदीर्घगुरूच्चारः कर्त्तव्योऽत्र यथाक्रमम् ।
शल् रेफयोरभावेन सिꣳ ही प्रत्युदाहृतिः ॥२१॥

---

१. मस्य मकारस्य सवर्णमसवर्णम् ।

शरेः परे या नु दिती द्विर्भवेद्रेफभागिनाम् ।
विसर्गाच्च परे यां ऋकारहीनां निदर्शनम् ॥२२॥
अस्कन्नमद्य कस्याश्चित्कृष्णोऽस्या इति च क्रमात् ।
सूर्यस्त्वा द्यौष्पिता चाथ दधात्वस्मानिति क्रमात् ॥२३॥
बृहन्तः प्रस्तरेष्ठेति पुनः कत्वे निदर्शनम् ।
पाणिनीयस्य सूत्राभ्यां द्वित्वं सर्वत्र कीर्त्तितम् ॥२४॥
यवयोः परयोः सस्य द्वित्वं न स्यात्तु छन्दसि ।
व्वसवस्त्वा धूपयन्तु तस्य योनि यथायथम् ॥२५॥
हल्युक्तऋकारस्तु रेकारश्छन्दसि स्मृतः ।
पितृणामिति पित्रेणामित्यादि च निदर्शनम् ॥२६॥
ह्रस्वं दीर्घं भवेत्किञ्चित्संहिताविषये स्वके ।
हल्विसर्गयुते वर्णा हल्युतायुतके च न ॥२७॥
सपत्नान्यद्धवमग्घ्न्येति किञ्चिद्दीर्घो भवेदिह ।
भागम्प्रजावतीत्यादौ ह्रस्वता न तु दीर्घता ॥२८॥
हल्युताकारसँय्योगादिति ज्ञेयं विचक्षणैः ।
इति कात्यायनपरिशिष्टे वर्णोच्चारप्रकारः ।
सन्ध्य[1]श्चतुर्धा विज्ञेया लोपागमविकारतः ॥२९॥
प्रकृत्या च तथा तत्र प्रथमं हि निदर्शनम् ।
विकारतो यथा चेदं प्रेषितेत्यादिकं भवेत् ॥३०॥
देवो वः सवितेत्यादौ प्रकृत्यादिप्रदर्शनम् ।
उभौ स्वरौ तयोरन्तः सन्धिर्यत्र न दृश्यते ॥३१॥
सा विवृत्तिर्बुधैर्ज्ञेया स एवेति च पश्यति ।
एषा चतुर्धा विज्ञेया प्रथमा तु पिपीलिका ॥३२॥

---

१. सम्पूर्व धाद् धा धातोरौणादिके ईप्रत्यये सति जसि विभक्तौ रूपमेतद् बोध्यम् ।

परा पाकवती चैव तथा वत्सानुसारिणी ।
वत्सानुत्सृजिता चैव चतस्रस्ता विवृत्तयः ।।३३।।

पिपीलिकाऽऽद्यन्तदीर्घा नाभ्याऽऽसीन्निदर्शनम् ।
द्वितीया तूभया ह्रस्वा विवनऽइन्द्रेति दर्शनम् ।।३४।।

तृतीया चोदिता दीर्घा ताऽअस्येति निदर्शनम् ।
अन्ते चतुर्थी दीर्घा स्यात्तानऽआवोढमश्विना ।।३५।।

स्वरभक्तिः पञ्चधा स्यात्तत्राद्या करिणी स्मृता ।
लकारेण हकारेण सँय्योगो यत्र दृश्यते ।।३६।।

करिणी सा तु विज्ञेया बर्हिरसीति दर्शनम् ।
लकारेण हकारेण सँय्योगो यत्र दृश्यते ।।३७।।

कुर्विणी सा हि विज्ञेया उपवल्हेति पश्यति ।
रकारस्य शकारेण सँय्योगो यत्र दृश्यते ।।३८।।

हरिणी सा तु विज्ञेयाऽर्शसऽइत्यादि दर्शनम् ।
लकारेण शकारेण सँय्योगो यत्र जायते ।।३९।।

तां हरिणीं विजानीयाच्छतवल्शेति दर्शनम् ।
रेफस्याथ षकारेण सँय्योगो यत्र दृश्यते ।।४०।।

हंसपादेति विज्ञेया वर्षो वर्षीयसीति च ।
एतल्लक्षणमाख्यातं स्वरभक्तेर्विचक्षणैः ।।४०।।

ज्ञात्वैतन्मनुजो याति ब्रह्मलोकं सनातनम् ।
इति कात्त्यायनेनैव परिशिष्टं कृतं मुदा ।।४२।।

।। इति कात्यायनोक्ता स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्टशिक्षा समाप्ता ।।

# क्रमसन्धानशिक्षा

यथा समाम्नातङ्क्रमावसानर्ठं॰ सङ्क्रमेषु ।
क्रमशास्त्रानुसारेण सन्धानं प्रोच्यतेऽधुना ॥१॥

विश्श्वधाः परमेण ।१। ह्वार्षीच्छतधारम् ।२। सहस्रधारन्देवः ।३। अधुक्षः सा ।४। व्विश्वधायाऽ-इन्द्रस्य ।५। राध्यतामिदम् ।६। एमि कः ।७। तस्म्मै कर्म्मणे ।८। व्वाम्प्रत्त्युष्टम् ।९। अरातयऽ-उरु ।१०। एमि धूः ।११। धूर्व्वामो देवानाम् ।१२। देवहूतममह्रुतम् ।१३। हविर्धानँ व्विष्णुः ।१४। हस्ताभ्यामग्नये ।१५। गृह्ह्णामि भूताय ।१६। रश्मि-भिर्द्देवीः ।१७। देवयुवँय्यँुष्म्माः ।१८। स्थाग्नये ।१९। अग्नीषोमाभ्यां दैव्याय ।२०। व्वेत्त्वद्द्रिः ।२१। व्वेत्त्वग्ग्नेः ।२२। शमीष्वहविष्कृत् ।२३। इहि कुक्कुटः ।२४। व्वहद् ध्रुवम् ।२५। वधायाग्ग्ने ।२६। अन्तरिक्षन्धर्त्रम् ।२७। दिवंव्विश्वाभ्यः ।२८। व्वेत्तु धान्यम् ।२९। व्यानाय दीर्ग्घाम् ।३०। रसेन रेवतीः ।३१। पृच्च्यन्ताञ्जनयत्त्यै ।३२। बधः पृथिवि ।३३। मौगप ।३४। बध्यासमररो ।३५। स्क्कन्गायत्रेण ।३६। जागतेन सूक्ष्मा ।३७। माज्म्यं-निशिता ।३८। माज्म्र्यंदित्त्यै ।३९। पश्याम्म्य-ग्ग्नेः ।४०। यजुषे यजुषे सवितुः ।४१। त्वा तेजः ।४२। इति द्विचत्वारिंशत्प्रथमाध्याये॥ पतये गन्धर्वः ।१।

ईडितऽइन्द्रस्य ।२। दक्षिणो मित्रावरुणौ ।३। अभिशस्त्यै सवितुः ।४। ध्रुवा ध्रुवा ।५। मार्ज्मि नमः ।६। सचन्तामस्माकम् ।७। अश्नाम्येतम् ।८। ब्रह्मणे तेन ।९। ऊहाम्यग्नीषोमौ ।१०। ऊहामीन्द्राग्न्योः ।११। इन्द्राग्न्योरिन्द्राग्नी ।१२। इन्द्राग्नी व्वसुभ्यः ।१३। अवतां व्व्यन्तु ।१४। मरुद्भिरिन्द्रः ।१५। तस्म्मै पोषाय ।१६। व्वर्त्तेग्ग्ने ।१७। हिमाऽअचारिषम् ।१८। व्वेदिषदो ये ।१९। इत्येकोनविंशतिर्द्धितीयाध्याये ॥२॥ उषसा सूर्य्यः ।१। गृहपते पुरीष्यः ।२। पतिवेदनमितः ।३। इति त्रीणि क्रमसन्धानानि तृतीयाध्याये ॥३॥ चतुर्थे क्रमसन्धानाभावः ॥४॥ पुरूरवा मन्थामि ।१। रजः शया हरिशया ।२। देववीतये सिꣳहि ।३। ध्रुवो व्वैष्णवम् ।४। ध्रुवऽऐन्द्रम् ।५। हव्व्यवाहनः श्वात्रः ।६। अभूद्यथायथम् ।७। इति सप्त पञ्चमाध्याये ॥५॥ षष्ठाध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥६॥ मादयस्वोदानाय ।१। भून्म्महेन्द्राय ।२। इति द्वे क्रमसन्धाने सप्तमाध्याये ॥७॥ अष्टमाध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥८॥ इन्द्रस्य सत्यप्रसवः ॥१॥ इन्द्रंव्वाजजितः ।२। इति द्वे क्रमसन्धाने नवमाध्याये ॥९॥ दशमाध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥१०॥ जागतेन हस्ते ।१। हिरण्ययीमानुष्टुभेन ।२। इति द्वे क्रमसन्धाने एकादशाध्याये ॥११॥ परिचिल्लोकम् ।१। इत्येकं क्रमसन्धानं द्वादशाध्याये ॥१२॥ दिशामि साहस्रम् ॥१॥ गवयमूर्णायुतम् ।२। उष्ट्रमजः ।३। शरभन्त्वम् ।४। इति

चत्वारि क्रमसन्धानानि त्रयोदशाध्याये ॥१३॥ अन्तरिक्षं व्वायुः ।१। व्वायूराज्ञी ।२। बृहती नभः ।३। इति त्रीणि क्रमसन्धानानि चतुर्दशाध्याये ॥१४॥ अग्ग्नेरेवः ।१। रथेचित्रो मेनका ।२। असमरथः प्प्रम्लोचन्ती ।३। अरिष्टनेमिर्व्विश्वाची ।४। सुषेणऽउर्व्वशी ।५। शैशिरौ परमेष्ठी ।६। दिवः सूर्य्यः ।७। दिवं ध्रुवे ।८। इत्यष्टौ पञ्चदशाध्याये ॥१५॥ षोडशसप्तदशाध्यायौ क्रमसन्धानरहितौ स्तः ॥१६॥ ॥१७॥ स्वस्तोमः ।१। रथन्तरंव्वेट् ।२। इति द्वे क्रमसन्धानेऽअष्टादशाध्याये। एकोनविंशतितमाध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥१९॥ व्वायुर्जाग्रत् ।१। स्वप्ने सूर्य्यः ।२। शूद्रेऽर्य्ये ।३। आपोऽग्यक्षि ।४। इति चत्वारि क्रमसन्धानानि विंशतितमाध्याये ॥२०॥ एकविंशतितमाध्याये क्रमसन्धानाभावः ॥२१॥ स्वाहाकृतः स्वगा ।१। प्राणाय यत्ते ।२। इति द्वे द्वाविंशाध्याये ॥२२॥ चतुष्पदश्चन्द्रमाः ।१। चन्द्रमा रात्रौ ।२। व्वायुः सूर्य्यः। इति त्रीणि क्रमसन्धानानि त्रयोविंशाध्याये ॥२३॥ चतुर्विंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशतितमाध्यायेषु क्रमसन्धानाभावः ॥२४।२५।२६।२७॥ शुचिमुष्णिहा ।१। देवौ त्रिष्टुभा ।२। इति द्वे क्रमसन्धानेऽष्टाविंशाध्याये ॥२८॥ एकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशद्द्वात्रिंशत्त्रयास्त्रिंशच्चतुस्त्रिंशत्पञ्चत्रिंशदध्यायेषु क्रमसन्धानाभावः ॥२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५॥ ऊतिभिः कया ।१। ईक्षऽईक्षामहे ॥२॥ इति द्वे क्रमसन्धाने षड्त्रिंशदध्याये ॥३६॥ पाहि

मधु ।१। स्वाहा रात्रिः ।२। इति द्वे सप्तत्रिंशदध्याये ।।३७। सरस्वत्यसौ ।१। इत्येकमष्टात्रिंशाध्याये ।।३८।। एकोनचत्वारिंशाध्याये क्रमसन्धानाभावः ।।३९।। अविद्याँविद्‌ध्यायाम् ।१। ओं ३ क्रतो । स्मर क्लिबे । क्लिबे कृतम् ।।४०।। इति चत्वारि चत्वारिंशाध्याये ।। इति पञ्चदशाधिकैकशतं क्रमसन्धानानि ।।११५।। एभ्योऽन्यत्र संहितानुसारेण निर्णयः ।।

।। इति क्रमसन्धानशिक्षा समाप्ता ।।

# गलदृक्शिक्षा

इषेत्वाऽश्वस्तूपरः समिद्धोऽअञ्जन्त्सहस्रशीर्षा पुरुषस्तदेव स्वाहा प्राणेभ्यश्चेत्येतेष्वध्यायेषु न गलिता ऋचः। द्वितीयेऽध्यायेऽग्ने व्रतपतऽइति पश्चात्प्रविष्टाऽतस्त्रयस्त्रिꣳशत्। तृतीयेऽध्यायेऽयमग्निः पुरीष्य इति प्रविष्टाऽतो द्विषष्टिः। पञ्चमेऽध्यायेऽग्ने व्रतपाश्च प्रविष्टोरु विष्णो गतोऽतएकचत्त्वारिꣳशत्। षष्ठेध्याये प्रथमा ऋग्गलिता-रेवतीरमद्ध्वमित्यत्र देवस्य त्वा एवं पञ्चत्रिꣳशत्। वाचस्पतय इत्यत्र स्वाङ्कृतोऽसि आत्मने मे सम्पृक्ते। अयन्नोऽग्नेनयलुप्तत्वाच्चतुश्चत्वारिꣳशत्। आदित्येभ्यस्त्वेत्यत्र कदाचन। सँव्वर्च्चसा युग्देवा गातुविदऽउदुत्त्यमवभृथनिचुम्पुणोशिक्त्वं गलिते सप्त षट्पञ्चाशत्। देव सवितरित्यत्र देवस्याहमेकोनचत्वारिꣳशत्। अपो देवाऽइत्यत्र सोमस्य त्विषिरिमं देवा लुप्ता द्वात्रिꣳशत्। युञ्जान इत्यत्र युञ्जते मनो विश्वो देवस्य देव सवितः पृथिव्याः सधस्स्थाद्वसवस्त्वाच्छृन्दन्तु-मिलिताष्टाशीतिः। दृशानऽइत्यत्र हꣳसः शुचिषदक्रन्ददग्निर्द्धं दृशानो रुक्मः समिधाग्नि पुनरुर्ज्जा सहरय्याऽयन्ते भवतन्नऽइतिमिलिता

---

गलदिति शत्रन्तं पदम् ऋचो विशेषणम्।

अष्टोत्तरशतम्। मयि गृह्णाम्यग्निर्म्मूर्द्धा प्रविष्टाऽअपाम्पृष्ठं महीद्यौर्व्विष्णोः कर्माणि चित्रन्देवानां त्रिपञ्चाशत्। ध्रुवक्षितिः शुक्रश्च विश्वकर्मा त्वा द्वे नभश्चेषश्च राज्ञ्यसि मिलितं सहश्च षट्त्रिंशत्। अग्ने जातानग्निर्म्मूर्द्धा त्वामग्ने पुष्करादधि भुवो यज्ञस्यायमिहाग्ने त्वमयन्ते लोकम्पृणताऽअस्येन्द्रं विव्वा न चैता लुप्यन्ति परमेष्ठी त्वा द्वौ मिलित्वा चतुः पञ्चशत्। नमोऽस्तु नीलग्रीवाय, नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो, द्वौ मिलित्वाऽतस्त्रिषष्टिः। अश्मन्नूर्ज्जंᳫं हिमस्य त्वा व्वाचस्पतिं विश्वकर्मन्हविषोदुत्वेंद्रंविश्वा नक्तोषासाऽग्ने तᳫं सप्तनवतिः। वाजश्च देवस्य त्वा वाजस्य नु यास्ते या वऽउद्बुध्यस्व येन व्वहसि विनस्त्वँय्यविष्ठ्ठैकोनसप्ततिः। स्वाद्वीन्त्वा व्वायोः पूतः कुविदङ्ग त्रिणवतिः। क्षत्रस्य योनिः समद्रे तऽउपयामगृहीतोऽसि पुत्रमिव निषसाद, यदि जाग्रद्यदापो यदि दिवा यत्रेन्द्रश्च युवᳫं सुराममिति नवतिः। इमम्मे तन्त्वा शन्नो वाजेवाजेऽवत होता यक्षदिन्‌मृषभस्येति सरस्वतीम्मेषस्येति प्रविष्टाः सप्तपञ्चाशत्। तेजोऽसि तत्सवितुर्विश्वोदेवस्य पृथिव्यै स्वाहा मधवे स्वाहा वाजाय स्वाहाऽसवे स्वाहेति प्रविष्टा एकोनविंशतिः। हिरण्यगर्भः कुविदङ्ग कः स्विदत्सूर्यऽएकाकी स्विद्द्यौराशसीदुपयामगृहीतोऽसि सप्तपञ्चाशत्। शादन्ददद्भिर्हिरण्यगर्भो यः प्राणतोऽग्ने त्वञ्चतुश्चत्वारिंशत्। अग्निश्च वैश्वानरो नः पञ्च विंशतिः। समास्त्वोद्वयञ्चतुश्चत्वारिंशत्।

होता यक्षद्देवा दैव्या शुचिमुष्णिहा। नन्तरं सर्वाऽनः पञ्चत्रिꣳशत् । देव सवितस्तत्सवितुर्विꣳशत् । अस्या जरासो युक्ष्वा ह्ययमिह मूर्द्धानन्दिवऽउदुत्त्यँ-विश्वेऽअद्येन्द्र वायू यज्ञो देवानां गावऽउप दैव्यावद्ध्वर्य्यूऽअदब्धेभिः सप्ताशीतिः । यज्जाग्रतऽआकृष्णेन सप्तपञ्चाशत् । अपेतोऽश्वत्त्थे वः सुमित्रियानऽउद्वयमन्नऽआयूꣳषि ह्यष्टादश । ऋचँव्वाचम्भू-र्भुवः कया नः कस्त्वा स्योना पृथिवि आपो हिष्ठेति तिस्रो नमस्ते हरसे सुमित्रिया नोऽभीषुणो दृते दृꣳह त्रयोदश । देवस्य त्वा देवी द्यावा पृथिवीऽन्द्र-स्यौजोऽश्वस्य त्वा ऋजवे त्वे यत्यग्रे प्रविष्टास्त्रयो हृदे त्वा युञ्जते मनः प्रैतु मखस्य शिरस्त्रयोदश । देवस्य त्वा सुमित्रिया नऽउद्वयमेधोऽसीडऽ ह्यदित्यै रास्नासीन्द्राय त्वा षड् द्वाविꣳशत् । ईशावास्य-मन्धन्तमोऽन्यदेव सम्भूतिं च मिलितास्त्रयोऽग्नेनय त्रयोदश । एवं चतुष्षष्टिऋचो विलुप्तौ एकादशो-त्तर शतानि ऋचोऽधिकाश्च । एवं कृते धृतिशता-न्यपिसङ्ख्यकाश्च प्रोक्ताः समाय्यैः खलु कण्डिकाश्च ॥१॥

॥ इति लुप्तवर्गसङ्ख्यात्मिका शिक्षा समाप्ता ॥

# मनःस्वारशिक्षा

मनः स्वारं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
भगवद्याज्ञवल्क्येन भाषितँल्लोकहेतवे ॥१॥

अथ त्रिपदा द्विरवसानमध्येऽनुदात्तानि । अथाधि-
मध्येऽनुदात्तानि भवन्ति । कस्त्वा राजन्तमद्वराणां
सनः पितेव मा नः परि ते प्रागपाक् प्रणो मरुतो
यस्य योगे योगे तवस्तरं तस्माऽअरन्द्रवन्नः परस्याऽ-
अधि पुनरूर्ज्जा समितमग्ने यत्ते शुक्रं तुभ्यन्ता मयि
गृह्णामि मधु व्वाता मधुमान्नोऽग्ने युक्ष्व त्वँय्य-
विष्ट्ठाग्ने पावक स नः पावक वार्त्रहत्त्याय शवसे
पवमानः सस्तानऽआबोढं चित्रभानो धियेषितः ।
आ नो मित्रावरुणाजीजनो ह्यग्ने पक्त्नीः स यक्षत्तव
व्वायो व्विश्वानि देव हरयो धूमकेतवो विश्वेभिः
॥२॥ सोम्यँ य्येना पावक यदद्य कच्च वरुणः प्राविता-
षस्तद्यन्मे च्छिद्रमिन्द्रो विश्वस्य शन्नो देवीदृं ते
दृठँ० ह मा स्वाहा मरुद्भिः पञ्चचत्त्वारिठँ०
शत् ॥१॥ अथ त्रिपदा द्विरनुदात्ता । प्रधासिनो
हवामहे व्वयठँ० सोमान्तर्यंच्छ मही द्यौः सह
रय्याऽग्निः प्रियेषु समुद्रस्य त्वा द्वयं शुक्रज्योति-
श्चेदृङ्च वैश्वानरो नः पावका नः सुनावमारु-
हेयन्देवस्य चेततो रातिठँ० सत्पतिं देवस्य सवितु-
रुपह्वरे गिरीणामुच्चा ते द्रविणो दाः पिपीषति

व्विभक्तारर्ठं० हवामहऽउभा पि तर्ठं० हृदे त्वा द्वाविर्ठं० शतिः ॥२॥ अथ त्रिपदाद्यन्ता मध्येऽनुदात्तानि । अग्ने व्रतपते सुसमिद्धाय त्रयं मनो नु पुनर्नंऽउदुत्यं तमुत्वा पात्थ्यो वृषाऽऽपो हि ष्ठाऽयमग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नग्ने वाजस्य येनासमत्स्वग्ने तमद्द्य नमस्ते रुद्र सम्मा सृजाम्यग्नऽआयूर्ठंष्यध्वर्य्योऽअद्रिभिर्गोमदूषुणा सत्त्या तूतुजानः स हव्यवाट् स नऽइन्द्राय मध्वा यज्ञमच्छाय तेऽअस्य व्वायो ये ते वनस्पतेऽव कस्त्वा सत्यस्मदसस्पतिं गावऽउपेन्द्रे ह्युपास्माऽइन्द्राण्याऽउष्णीषोऽश्विना घर्ममपातामश्विनैकोनचत्वारिर्ठं० शत् ॥३॥ अथ त्रिपदाऽऽद्यानुदात्तानि । स्वयम्भूरस्यग्नये कव्यवाहनाया समिधाग्निं त्रिर्ठं० शद्धामास्य प्रत्नान्न हि तेषा व्युक्ष्वा हि देव क्षपो राजन्भद्राऽउतैभिर्न्नो वीतर्ठं० हविरुभाभ्यां देवायां फेनेन क्षत्रस्य योनिर्द्धानावन्तं करम्भिणमश्विनकृतस्य ते महोऽअर्णऽइमम्मे सुष्टुतिर्ठं० सुमतीवृधो युञ्जन्त्यस्यैना विश्वान्यभि यज्ञं केतुङ् कृण्वन्नग्निर्वृत्राणि बृहन्निदिध्मो मित्रर्ठं० हुवऽउग्रा विघनिना सविता ते शरीरे द्वे व्वायुः तु स्योना पृथिव्येकत्रिर्ठं० शत् ॥४॥ अथ त्रिपदा मध्योदात्तान्यन्तश्चरत्स्यग्निर्मूर्द्धामहि त्रीणामिदं विष्णुर्विष्णोः कर्म्माणि मित्रस्य चर्षणीधृतो विमुच्यद्ध्वमषाढाऽसि सऽइधानो भद्रो नऽइष्टोऽअग्निः पुनाति ते यत्ते पवित्रं चोदयित्री सूनृतानां तनूनपादसुरो द्वारो देवीरग्ने स्वाहा व्वायुरग्रेगाऽअभीषुणो यदद्य सूरऽउदिते विश्वेभिरुप नः पूषन्तव

धत्ता दिवश्चतुर्विंशतिः ॥५॥ अथ त्रिपदा अन्त्योदात्तानि वीतिहोत्रन्त्वोपप्र यन्तो अद्ध्वरं सोमानꣳ स्वरणं यो रेवाना नऽएतु युञ्जाथाꣳ रासभन्तमुत्त्वा सीरा युञ्जन्त्याप्यायस्व समेतु ते मदिन्तमं मधुनक्तमयमग्निः सहस्त्रिणऽऋतजिच्चऽऋतश्चस्वतवाँश्च दिवो मूर्द्धा हिरण्यपाणिमूतयेऽग्निन्दूतँय्युञ्जन्ति ब्रध्नं कस्त्वाऽऽगच्छति स्वादिष्ठया तिस्रो देवीर्बर्हिद्द्वयं नियुत्वान्वा कया नश्चित्रस्तरणिर्विश्वदर्शतऽइन्द्रवायू बृहस्पतिमिमे सुतास्तद्विप्रासः प्रजापतौ त्वऽऋचँव्वाचमेकत्रिंशत् ॥६॥ अथ त्रिपदामध्ये अन्तोदात्तानि भेषजमस्यूद्धर्वाऽअस्य काव्ययो राजानेषु देवी द्यावापृथिवी देव्यो वम्म्यूऽइयत्त्यग्रे षट् ॥७॥ अथ त्रिपदा कम्पः । प्रत्युष्टꣳ रक्षो द्विकं रेवतीरमर्द्धंनिषसादाग्निस्तिग्मेन पयः पृथिव्या नारिरस्याददेऽदित्यै रास्नासि ॥८॥ अथ त्रिपदा जात्यः । कस्त्वा विमुञ्चति तद्विष्णोर्युक्तेन मनसेन्द्रस्य स्यूरप्स्वग्नेऽधाह्यग्ने प्रेद्धोऽग्नेकोऽसि बाहू में स्वयँवाजिन्दैव्या होताराऽऊद्ध्र्वमद्ध्वरमस्मात्त्वमेकादश ॥९॥ अथ त्रिपदामध्ये तकारान्ता आपवस्व परिवाजपतिराते वत्सो मनो देवहूर्यज्ञो मध्यान्ते पवित्रेण पुनीहि यजा नः षट् ॥१०॥ अथ त्रिपदान्ते तकारान्ता । आधत्तेऽऽएहि तत्सवितुरभ्यावर्त्तस्वाग्निꣳ स्तोमेन रक्षोहा विश्वचर्षणिः सप्त ॥११॥ अथ त्रिपदामध्ये नकारान्ताः । अग्निर्ज्योतिषोत्सक्थ्याऽअव कया त्वं त्रीणि ॥१२॥ अथ त्रिपदान्ते नकारान्ताः । ऊर्ज्जँवहन्ति त्रीणि पदा द्वयम् ॥१३॥ अथ त्रिपदान्तरा

आद्युदात्ता। आऽयन्ते हि, मा सु, न षदाऽऽहानि पञ्च ॥१४॥ अथ चतुष्पदा द्विरवसाना मध्ये ऽनुदात्ताऽन्यथादिमध्योदात्तानि भवन्ति। सा विश्वायु: शर्मासि मनो जूतिर्ष्मम्परिधिं सम्बर्हिरत्र पितरऽआऽगन्म गृहा माग्ने त्वठँ० सु, अनु त्वा माता वस्व्यसि समख्ये परि मा प्रति पन्थां सूर्यस्य चक्षुर्भवतन्नऽआपतये त्वा सन्ते कार्षिरसि यत्ते सोम त्वमङ्गाऽऽवायो मनो न देवा गातुविदो देवी रापऽएष वो गर्भो, यस्यै ते वातो वा बृहस्पते वाजँवाजस्य न्वग्नेऽअच्छ सूर्यत्वचसस्थऽइन्द्रस्य वज्रऽइयदस्यन्वग्निस्त्वमग्नेद्द्युभिः सन्ते वायुर्यदग्ने यदत्ति ये जनेषु योऽअस्मभ्यमन्नपतेऽन्नस्य विश्वा रूपाण्यग्नेऽअङ्गिरऽउदुत्तमँय्यस्तेऽद्य त्वामग्ने यजमानाऽउदुत्वा गर्भोऽअसि पुनरासद्य सँव्वाँय्यस्यास्ते कामङ्कामदुघे यत्रौषधीरुच्छुष्मा यस्यौषधीर्याः फलिनीरोषधयः सन्त्वाङ्गन्धर्व्वा मा मेषमूर्जन्नमोऽस्तु सर्पेभ्यो याऽइषवो ये वा यस्ते यावस्त्रीन्त्समुद्रानजस्रमिन्दुँय्योऽअग्निरग्नेस्त्वामग्ने अऽङ्गिरसः सखायः सठँ० सोऽअग्निर्य्येनऽऋषयो नमोऽस्तु नीलग्रीवाय या ते हेतिर्म्मा न स्तोकेऽसङ्ख्याता सहस्राणि नीलग्रीवाः शितिकण्ठादिवँय्ये वृक्षेषु ये भूतानाँय्ये पथाँय्ये तीर्थान्यश्मन्नूर्जँयऽइमाऽअवसृष्टापरोद्धर्षय यत्र बाणा वाजो नस्त्रयठँ० रुचन्नस्तत्त्वा याम्येतावद्रूपँय्यजुर्भिराप्यन्ते ये समाना द्वे सृतीऽउदीरतामङ्गिरसो नो ये नः पूर्वे त्वठँ० सोमाच्या जानु सरस्वती मनसाऽङ्गान्याक्तमञ्छिरो मे नराशठँ० सः प्रति

आनऽइन्द्रो हरिभिरिन्द्रः सुत्रामा स्ववान्तस्य व्वयमा-
मन्द्रैर्गीभिर्न यऽइन्द्रे ता नासत्त्या त्वष्ट्वा तुरीपो
वनस्पतिमभि यः प्प्राणतो द्विपदा या दैव्याऽअद्धर्य्यवः
कि ᳪ स्विद् ब्रह्म सूर्य्यसमँय्यग्निर्णिजोपप्रागात्सु-
मद्यदश्वस्य यत्ते गात्राद्ये वाजिनं चतुस्त्रिᳪ᳭
शद्वाजिनो यद्वाहिष्ट्टँव्वायो शुक्रस्तनूनपातमूति-
भिर्बर्हिषीन्द्रमिन्द्र ᳪ स्वाहा प्रचेतसा देवाना ᳪ
स्वाहाकृतिरग्निस्त्वष्टा वीरमसि यमः समिद्धोऽअद्दय
तनूनपात्पथो धन्वना गाऽआजङ्घन्तीन्द्रस्य वज्रो
मरुता मनोकमाक्रन्दय तस्माद्यज्ञात्तस्मादश्वा यो
देवेभ्यस्तदेव स नो बन्धुर्यम्मेधान्द्वे विरूपेऽअग्ने
शर्द्ध प्रवो महे श्रायन्त ऽइव सूर्य्यं ये त्वा जनिष्ट्ठा
ऽउग्रोऽनुतेऽदब्धेभिः प्रवीरया ब्रह्माणि मेऽनुत्तमा
तऽऋधगित्था येन कर्म्माणि त्रयं त्वमग्ने प्रथमऽ-
इडायास्त्वा हिरण्यपाणिः सविता ये ते भगप्प्रणेतराना
सत्त्या यदा बध्नन्तुत्तिष्ठा पाथᳪ᳭ शन्नो व्वातो द्यौः
शान्तिर्यतो यतो, गर्भो देवाना ᳪ समग्निरग्निनाऽहः
केतुनेडऽएहि स्वाहा पूष्णे चतुः स्रक्तिर्न्नाभिस्तपसे
स्वाहा शतमेकाशीत्येकन्यूनम् ॥१५॥ अथ चतुष्पदा
द्व्यनुदात्तानि गायत्रेण त्वा समिदस्युभावाम्पूर्णा
दर्वि देहि मे महीनाम्पयः शुक्रन्त्वाऽग्नेर्जनित्रमुरु
विष्णो द्व्यᳪ᳭ हविष्मतीरिमा हृदे त्वा वाचस्पतये
सुवीरो वीरान्त्सप्रजाः प्प्रजा ब्राह्मणमद्दय वाम-
मद्यापा ᳪ रसमेषा वऽउतस्मेमन्देवाः स्योनाऽसि
युवᳪ᳭ सुराममागत्त्य वाजी प्रसद्द्य भस्मना सजूरब्दः
साकँय्यक्ष्म द्रप्सश्चस्कन्द कृणुष्व पाजऽइषे राये
प्राणम्मेऽएना वऽउभे सुश्चन्द्रापो हिष्ट्ठाऽवतत्य

धनुर्ऋतवस्त्थोऽपामिदं गोत्रभिदं गोविदमस्माक-
मिन्द्रोऽमीषां चित्तꣳ सप्त ते समुद्रादूर्म्मि रेताऽअर्षन्ति
सम्यक्स्रवन्ति सह दानुम्पुरुहूत मृगो न पृष्ट्ठो
दिव्यश्याम तं देवा यज्ञन्दीक्षायै रूपमातिथ्यरूपं
प्रैषेभिः प्रैषानर्द्धꣳऽऋचैरुक्थानामश्विभ्यां प्रातः सवनं
पुनन्तु मोशन्तस्त्वा दृष्ट्वा परिस्रुतः पृष्ठीर्म्मे
द्रुपदादिव मुमुचानोꣳ० शुना ते प्राणाय मे तिस्र-
स्त्रेधाऽऋतुथेन्द्रो महीमूषु सुबर्हिरग्निरुषे यह्वी
तिस्रऽइडा शमिता नो देवीऽऊर्ज्जाहुती देवा देवानां
देवम्बर्हिर्वारितीनाँवायुष्ट्वा कुविदङ्गऽऋतवस्त्थऽ
ऋतुथाऽर्द्धमासाः परूꣳषि पृच्छामित्त्वा परमियँ-
व्वेदिर्देवानाम्भद्राः स्वस्ति नः शतमिदेषच्छागऽ-
ऋतवस्ते यज्ञमिहैवाग्ने देवा दैव्योषासानक्ता इति
चतस्रऽएता उवऽइर्म्मान्तासो बह्वीनां पिता तीव्रा-
न्घोषान्दिवः पृथिव्याः परीत्य भूतानि मेधाम्मऽ-
आतिष्ट्ठन्तम् परी माऽउ त्वाऽयꣳ० सहस्रमुत्ता-
नायामव प्रातरग्निमुतेदानीमायासाय स्वाहा
शतमेकाधिकम् ॥१६॥ अथ चतुष्पदाद्युदात्तमध्येऽ-
नुदात्तानि भवन्ति । धूरसि धृष्टिरसि मयीदमग्ने
गृहपतेऽक्रन्कर्माऽदित्त्यास्त्वा नमो मित्रस्याग्ने व्रतपाः
परि त्वा गिर्वणो गिरो रेवतीरमद्धवाम्माऽहिर्भू र्म्माऽ-
ग्नाइ पत्त्नवन्याँ ऽ आवह यज्ञयज्ञं देव सवितर्वा-
तरꣳ० हा भव वाजे वाजे ऽवत सोमꣳ० राजान
मग्ने सहस्व सोमस्य त्वाऽऽत्त्वा जिघर्म्मि परि
त्वाऽग्ने सीद होतः सुजातो व्विपाजसाऽहरहरप्रयावँ
व्विश्वस्य केतुरस्ताव्यग्निरिन्द्रँव्विश्वाऽसुन्वन्तमय-
जमानमोषधीरितीष्कृतिन्नामाग्ने तव श्रवो व्वयो

भुवो यज्ञस्य विश्वस्मै प्प्राणाय काण्डात्काण्डात्प्ररोह-
न्त्यदित्यास्त्वाऽबोध्यग्निर्ज्जनस्य गोपास्त्वाञ्चित्र-
श्रवस्तमाऽऽवाचऽउद्बुद्धस्व नमस्तऽआयुधाय मीढुष्टम
शिवतम नमस्ते हरसे यो देवानां चक्षुषः पिता
बृहस्प्पते परीन्द्रऽआसाम्प्रेत मर्माणि तऽउदेनँ
दैव्याय धर्त्रे ऋमद्ध्वमग्निना व्वाजाय स्वाहा विश्वस्य
मूर्द्धन्ब्रह्म क्षत्रँय्या व्याघ्रं सोमस्य रूपं यमश्विना
यदत्र त्वया हि नो अग्निष्वात्ताः पितरऽआसीनासोऽ-
अरुणीनां वेदेन रूपे सरस्वती योन्यां तेजः पशूनाँ-
ल्लोमानि प्रयतिर्दैव्या मिमाना व्वरुणः क्षत्रँयस्मिन्न-
श्वासः समिद्धोऽअग्निदुरोदेवीर्द्वासो यद्हरिणी
ह्रयन्नार्य्यस्ते केष्वन्तः कस्त्यस्यानो भद्रा यद्वद्ध्यम्
मा त्वाऽग्निर्य्यदश्वाय यत्ते सादे तँव्वस्तवायमेकया
च न त्वावान्त्समिधेन्द्रमिडाभिरिन्द्रन्दैव्या होतारा
त्वष्टारमिन्द्रं समिधानम्महत्तनूपातमुद्भिदमीडेऽ-
न्यमीडितम् व्यचस्वतोः सुप्प्रायणाः सुपेशसा सुशिल्पे
पेशस्वती स्तिस्त्रः समिद्धोऽअञ्जन्द्वयोश्चोपप्प्रागात्पर-
ममासुष्वयन्ती दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचाऽऽनो
यज्ञम्भारती ब्राह्मणासः पितरोऽहिरिव भोगैः
श्रीश्चतेऽग्ने विश्वेषामदितिस्तत्सूर्य्यस्य तन्मित्रस्य
बरामहानग्नऽइन्द्र तमिदायातमुप प्रवऽइन्द्राय
यज्जाग्रतोऽनुनोऽद्य सिनीवालि पृथुष्ठुकऽआरात्रि
समद्धवराय कल्पातान्तऽआयुष्मानग्ने परीमऽइन्द्राय
त्वा धर्मैतन्मनसः कामं त्रिंशत्यधिकमेकशतम् ॥१७॥
अथ चतुष्पदाऽऽद्युदात्तमध्येऽनुदात्तानि । अग्नेस्तनूरे-
तन्ने कदा वनायमग्निरेतन्ते शिवो नाम चित्पतिर्मऽ
ऋक्सामतयोः शिल्पे श्वात्राः पीताऽएषा तेऽग्नावग्नि-

र्युं ञ्जते मनोऽग्रेणीरसि घृतङ्घृतपावानः श्वात्रास्त्थ
राया व्वयँय्यज्ञो देवानां सुशर्माऽसि हरिरसि पुरुदस्मो
व्विषुरूपः सत्रस्यऽऋद्धिर्यज्ञस्य दोहो दवस्याह्-
मेषस्यार्यमणम्बृहस्पतिं सविता त्वा पुत्रमिव
पितरावपाम्पृष्ठं रुद्राः सर्ठं सृज्य देवस्त्वा घृतेन
सीता शतँव्वोऽश्वावती ॶ सोमावतीमन्यावोऽव
पतन्तीरवदन्नाशयित्री बलासस्येरज्वन्नग्ने ध्रुवाऽस्यृचे
त्वादित्त्यङ्गर्भमग्निन्तम्मन्येऽमी यस्ताम्रः सहस्राणि
सहस्रशः पावकया यो वाचस्पतिम्पगे दिवा
सङ्क्रन्दनेनामिषेणोक्षा समुद्रो विधेम तऽइम ॶ
स्तनं चत्वारि शृङ्गऽऋताषाड्ऋतधामा षडिष्टो
यज्ञऽएतश्चानाथ व्वयन्ते हविर्द्धानँय्यद्धानाः करम्भो
धानाना ॶ रूपंव्रतेन दीक्षाम्पितृभ्यः स्वधायिभ्योऽ-
शिवभ्याञ्चक्षुर्जिह्वा मेऽपोऽभ बृहदिन्द्राय तिस्रो
देवीर्हविषा त्रातारमिन्द्रमश्विना नमुचे, रश्विना हवि,
रश्विना पिबतां सुत्रामाणं पृथिवीन्देवीस्तिस्रो देवो
देवैः स्वगात्त्वा यकासकादूद्ध्र्वामेनामूर्ध्वमेन-
म्महानाम्न्यो रेवत्त्यो रजता हरिणीः पृच्छामि त्वा
यूपव्व्रस्काऽउत निक्क्रमणन्निषदनममेव नोऽमुत्र
भूयादध यज्ञायज्ञा वऽऊर्जो नपातं जोष्ट्रीऽऊर्ज्जाऽऽ-
हुती प्रथमा वामुपावसृजत्मन्या रथवाहणठं०
हविश्चन्द्रमा मनसोऽद्भ्यः सम्भृतः प्रजापतिश्चरति
वेनस्तदिदम्मे ब्रह्ममहोऽअग्ने विभ्राड्बृहदर्वाश्चोऽ-
अद्दय देवासो हि घृतवती भुवनानामनड्वाऽ-
हम्पितानोऽसि द्विविधाऽइममिषे पिन्वस्व दिग्भ्यः
स्वाहा वाचे यमाय त्रयोदशाधिकशतमेकम् ।।१८।।

अथ चतुष्पदा मध्योदात्तानि । यद्ग्रामेऽवभृथ निचुम्पुण विश्वो देवस्येयन्ते चिदसि मित्रो नऽइरा- वत्यपाम्पेरुर्य्ये देवासश्चित्रं देवानां समिद्रणो धाता रातिः सुगा वो व्वयर्ठ० हीन्द्रश्च ककुभर्ठ० रूपं शन्नो भवन्तु वाचस्येमामुदुतिष्ठोद्‌र्ध्वा ऊषुणऽ- ओषधयः प्रति मित्रः सर्ठ० सृज्य सिनीवाली सुकपर्दोत्थाय बृहती दृशानो रुक्मोऽन्तरग्ने शिवो भूत्वा विद्मा ते प्रप्रायमयर्ठ० सोऽग्ने दिवो नमः सुयाऽओषधीरश्वत्थे वो यदिमा सहस्व मे दीर्घा- युस्तऽऊर्जो नपाद्भूरस्यपाङ्गर्भं ध्रुवक्षितिर्ध्रुव- योनिः कुलायिनी घृतवती पृथिव्याः पुरीषमिन्द्राग्नी ऽअव्यथमाना ँ सर्ठ० समितप्रमुच्य या ते रुद्र शिव परि नः शितिकण्ठा यऽएतावन्तऽउपज्मन्ये देवा देवेषु प्राणदाऽपानदा हविषां व्वावृधानस्तऽआयजन्ता शुशिशानो यस्य कुर्म्मः प्राचीमन्वग्ने सहस्राक्षा जुह्वानः सुप्रतीकः सिन्धोरिव प्राद्ध्वने स नो भुवनस्य पतऽइन्दुर्द्दक्षो विनऽइन्द्रो वेद्याव्वेदिर्य्यै समाना यमग्ने वाव्यवाह त्वमग्ने ये चाऽधा यथा नः सोमो राजाङ्गयः क्षीरं कुम्भो वनिष्ठुराक्तमन्नपस्त्थे यद्देवास्तिस्रो यत्र ब्रह्म यत्रेन्द्रः समिद्धऽइन्द्रो जुषाणो- बर्हिव्वनस्पतिरवसृष्टऽउषासा नक्तं स्तोकानामिन्दुं दैव्या होतारा भिषजा वसन्तेनऽऋतुना पञ्चेमाम- गृभ्णन्नभिधाऽअसि प्रजापतये सूर्यस्ते चन्द्रमास्ते काऽ ईमजारे षडस्य होता यक्षत्प्रजापतिर्यस्येमे यऽआत्म दास्तमीशानमदितिद्याः सुगव्यन्नोऽनुवीरैः समास्त्वा पीवोऽअन्नारयिवृधऽआपो ह यश्चित्प्रयाभिरानो

नियुद्भिरुषेऽइन्द्रस्य होता यक्षास्तिस्रोदेवीर्धियो जोष्टारं स्तीर्णम्बर्हिरन्तरा मित्रावरुणा त्रीणि तेऽत्रा ते वक्ष्यन्ती वेद्रथे तिष्ठन्नूर्जीते पर्प्रैषो ह देवोऽस्या जरासऽमान्ते विश्वे देवाः प्रवायुँय्यस्मिन्नोऽषाढँय्युत्स्वप्नस्वतीमश्विना प्रातर्जितम्भगमश्श्वावती-र्गोमतीरिमञ्जीवेभ्यो वहवपाँविश्वाऽआशायावती द्यावापृथिव्यग्निर्ठ० हृदयेन यस्मिन्त्सर्वाणि-सम्भूतिश्च विद्याञ्च शतमेकचत्वारिंशत् ।।१९।।

अथ चतुष्पदाऽन्त्योदात्तानि । अवन्ते देवश्रुतौ देवेष्व-च्छिन्नस्य ते स प्रथमस्ते नोऽअर्वन्तोऽग्नेय गृहपतये यस्य प्रयाणं द्यौस्ते पृष्ट्ठन्निहोता सर्ठ० सीदस्वापो देवीर्नाभा पृथिव्याऽउदेषाम्बाहू दिवस्परिश्रीणामुदारऽ-इडामग्ने ताऽअस्य निर्वेशनः सङ्क्रमनः सोमराज्ञीर्ब-ह्वीर्म्मा वो रिषत्पावकवर्च्चाः शुक्रवर्च्चऽऋतावानम्म-हिषँय्या शतेन सम्यक् स्रवन्त्यग्ने जाताँस्तत्पक्त्नीभिः सम्प्रच्यवद्धमुपपरि ते धन्वनो विकिरिद्र विलोहित यो नः पिता सूर्य्यरश्मिर्हरिकेशो विमानऽएषः पृथिव्याऽ-अहं स्वर्यन्तस्तां ॐ सवितुश्चित्तिञ्जुहोमि घृतं मिमिक्षे विश्वेऽअद्येमौ ते यदाकूताद्धामच्छदग्नि-रासन्दी रूपमाश्रावयेडाभिर्भक्षान्सुरावन्तम्बर्हिष-दँय्यस्ते रसः त्वर्ठ० सोम पितृभिर्य्योऽअग्नि स्तदश्विना मुखर्ठ० सत्प्रति क्षत्रेऽभ्यादधामि सिञ्चन्ति परीडितो देवैरुषासा नक्तेन्द्रायेन्दुम्पातन्नो अऽश्विना भेषजं सविता वरुणस्ता भिषजा प्रवाहवा कास्विद्द्यौरासी-द्गणानान्त्वा माता चापि तेषु केऽअस्य वेदाहम्प्रजापते न पृषदश्वा मरुतः सञ्च प्रजापतेस्तपसेमा तेऽउपप्रा-

गाच्छसनं प्राचीनम्बर्हिर्व्व्यचस्वतीर्व्वियैतावानस्य
ततो व्विराण्न तस्य यस्म्माज्जातं श्रुधि श्रुत्कर्णो-
नऽइडाभिरसम्मे रुद्द्रा विश्वेऽअद्द्य त्वमिन्द्र
देवन्द्रेवँव्वऽइच्छन्ति त्वा न ते द्युभिरक्तुभिर्भगऽएव
सप्प्तऽऋषयोऽपश्श्यङ्गोपाँय्यमायत्त्वा मयि त्यदन्ध-
न्तमोद्वयमन्यदेव शतमेकमूनमिति ॥२०॥

अथ चतुष्पदामध्येऽन्तोदात्तानि । स ॐ स्नवभागास्य
येषामद्व्येति मा पूणस्त्र्यायुषञ्जमदग्नेर्वसुमते
रुद्द्र ते मूर्द्धानन्दिवऽआक्रम्य व्वाजिन्नुदक्रमोन्न-
त्तोषासा स मनसा स्विष्टकर्त्तारमद्ध्वरस्य व्विज्ज्य-
न्धनुरिमा रुद्द्राय व्विश्श्वकर्म्मा व्विमनास्समिद्धेऽ-
अग्नावेतावद्द्रूपमाग्निष्वात्तानृतुमतऽइदम्पितृभ्यस्तद-
स्य रूपमान्त्राणि स्थालीर्य्यौं भूतानां समिद्धोऽअग्निन-
रश्शिवना तन्नो व्वातऽएकस्त्वष्ट्टुरना घृष्यो जातवेदा-
नराशर्ठं० सस्य महिमानं सद्द्यो जातः स्वादुषर्ठं०
सदः पितरस्तँय्यज्ञन्नहि स्पशं हिरण्यहस्तोऽअसुरः
शन्नो मित्रोऽचिक्रदद् वृषा सविता प्रथमेतदेजत्ये-
कोनचत्त्वारिंशत् ॥२१॥

अथ चतुष्पदा प्रथमे यो जात्यः पवित्रेस्स्थो धान्यम-
स्यादित्यैरास्नासि भूर्भुवः स्वरमग्निः पुरीष्योऽ-
स्यावो देवासस्तस्तस्यास्ते सत्त्यसवसोव्विष्णोर्न्नुकं
प्रतद्विष्णूरक्षसां भागोऽसि देवीरापोऽअपान्नपात्त-
सावित्रोऽसि देवकृतस्यैनस सऽइमन्नो देवपुरीष्यासोऽ-
अग्ग्ने त्वं पुरीष्योमातेव पुत्रँय्यन्त्री राट्सुपर्णोऽ-
स्यभ्यर्षते मन्नो देव पुरीष्या सोऽग्ने त्वन्नऽआश्विन-
न्तोजोऽन्नात्परिस्रुतोऽविर्न्नं मेषऽएवेद्विभूर्मात्रा यकोऽ-

सको यद्ध्रविष्यन्तव शरीरँव्वनस्पते वीड्वङ्गो येन द्यौरिन्द्राग्नी मित्रावरुणा प्रैतु ब्रह्मणस्पति सुखारथिरश्वा।िव प्रवो महेमह्यु्त नऽउग्रश्चेशा व्वास्य शतं त्रिशदुत्तरम् ॥२२॥

अथ चतुष्पदा मध्ये जात्याग्ने त्वं विष्णोरराटमिन्द्रस्यस्यूः परिवीरस्यग्नेरनीकमभिभूरसि युजे वा सुजातो ज्योतिषा मूर्द्धर्वाऽसि राडयम्पुरो हरिकेशः पश्चा जुह्वाना सरस्वत्यश्विना तेजसा स त्वन्नो यद्वातो देवीऽउषासा नक्तेन्द्रस्य रूपं परिद्यावापृथिवी विदद्ययदी त्वन्नोऽअग्ने पथस्पथः परिपातमिमा गिरः प्रनूनङ्क्षत्रस्य त्वा सप्तविर्ठ० शतिः ॥२३॥

अथ चतुष्पदा मध्येऽन्त्यो जात्यो घृताच्यसि घृताचीस्थोऽयमिहाक्षन्नमीमदन्त सुसन्दृशन्त्वा देव सवितरेष ते कदाचन प्रयुच्छसि प्रजापतेः प्रजाऽभूम हिरण्यरूपाऽउषसः शर्म च परमस्याः परावतो याः सेनाऽअपो देवीर्बोधा मे पुनस्त्वा यत्ते दिवि वर्चो युनक्त सीरा लाङ्गलम्पवीरवदोषधयः प्रतिविष्ठिताः पृथिवीं यश्च ब्रह्म जज्ञानं तव भ्रमासः प्रजापतिष्ट्वाऽवोचाम कवये विश्वस्य दूतँ य्येन वहस्य द्वयवोचन्मा नो महान्तँय्या ते धामानि परमाणि विश्वकर्माह्यु्दग्रामञ्चाग्ने प्रेहि प्रस्तरेण परिधिना पशुभिः पशूनायन्तु नः पितरो येऽअग्निष्वात्तास्तमिन्द्रं देवं बर्हिः सरस्वती त्रिः, सर्ठ० शितो रश्मिना भद्रं कर्णेभिर्म्मा नो मित्रोयन्नीक्षणं क्षत्रेणाऽग्नेऽति निहः स्वासस्थमिन्द्रेणानु त्वा रथोजीमूतस्येव भवति त्रिपादूर्ध्वस्तस्म्माद्यज्ञाद्यत्पुरुषेण त्रीणिशताऽऽ

यदिषऽइन्द्रो वृत्रँव्वद्‌त्सूर्यस्य देवेभ्यो हि देवेनऽएष वस्तोमो नमस्तेऽतु प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः कुर्वन्नेव स परि चतुष्षष्टिः ।।२४।।

अथ चतुष्पदा कम्पो जात्यः। रूपेण वऽउआॅंशो वीर्य्येण सधमादी द्युम्निन्नीराददे गायत्रेण प्रतूर्व्वन्नेहि मुञ्चन्तु माऽस्मिन्महत्त्यश्विनो भैषज्येन सुभूः स्वयम्भूर्यद्वाजिनो दश ।।२५।।

अथ चतुष्पदा कम्पमानेऽन्तकः। द्वितीयँवसोः पवित्रमग्नये जुष्टं गृह्णाम्याददेऽद्ध्वरकृतं सँव्वर्च्चसा ध्रुवासि ध्रुवोऽयमग्ने नवान्तस्तं समुद्रे तेऽप्स्वन्तः सरस्वत्त्यै वाचोऽपो देवाऽआ विश्वतः सर्ठ० सृष्टाँ व्वसुभिः सर्ठ० शितम्मे समुद्रे त्वा स योध्यति विश्वास्त्वमुत्तमाऽग्ने तव श्रवऽउदग्ने तिष्ठ स्वैर्दक्षैर्या ते रुद्र शिवा तनूरघोरासौ यो ऽवसर्पति सऽइषुहस्तै-रभि गोत्राण्यभि प्रवन्त धामन्तेऽग्निर्व्युनज्मि परीतोषिञ्चत बर्हिषदः पितरः पयसा शुक्रमिन्द्रः सुत्रामोद्वयन्तनूपा भिषजेन्द्रन्दुरः कवष्यो नाश्विना गोभिः शैशिरेण तेजोऽसि वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्री त्रिष्टुप् द्यौस्ते शन्ते परेभ्यो मा त्वा तपत्याहि नऽओजो न सुबर्हिषमापश्चिद्दातत्तऽआनो यज्ञं चन्द्रमाऽअप्सु पञ्चनद्यस्त्वमिमा सह स्तोमाऽअसुर्या नाम हिरण्मयेन पात्रेण पञ्च पञ्चाशत् ।।२६।।

अथ चतुष्पदा द्विकम्पः। अपारुन्द्यौरिव भूम्ना व्वनेषु विद्वितीयस्समुद्रे ते चत्वारि ।।२७।।

अथ चतुष्पदा द्विर्जात्यः। प्रथमँव्वसोः पवित्रं तनूपाऽ-अग्ने सन्नः सिन्धुः पवित्रे स्थः स्थिरो भवापेत

व्वीत स दुद्रवत्कन्याऽइव वहतुँ व्वायव्व्यग्ने त्रिर्जात्यो होताऽध्वर्युर्ब्राह्मणोऽस्य सोमो धेनुं त्रिरायु ष्यँवर्चस्यं षोडश ॥२८॥

अथ चतुष्पदामध्ये तकारान्ता: । अ ह्लु तमसि दिवो वा ज्योतिरसि यस्ते द्रप्सस्कन्दति कोऽदात्सोमस्य त्विषि-रस्यग्ने बृहन्हठं० सः शुचिषत्सञ्ज्ञानमसि हिरण्यगर्भ: सँव्वरूचीन्त्वष्टु: प्रो‌यदश्व: किठं० स्विदासीद्विश्व-तश्चक्षुरुत वाजस्य मा सोममद्भ्य: स्वाहा यज्ञं वरुणो यदस्या देवम्बर्हिरिन्द्रन्देवऽइन्द्रश्चतस्रो देवम्बर्हिर्व्व-योधसं देवो नराशठं० सश्चतुर्भिरादित्यैर्नो भारती यदक्रन्दो यमेन दत्तं हिरण्यशृङ्गो यऽउपश्वासय सहस्रशीर्षा वेदाहमेतमद्या देवास्तिरश्चीनो विततोऽ-पाधमत्प्रमन्महे शवसा परं मृत्योस्तच्चक्षुरनेजदेक-मन्यदेव त्रीण्यधिकचत्वारिंशत् ॥२९॥

अथ चतुष्पदा अन्त्ये नकारान्ता: । ये रूपाणि तन्त्वा शोचिष्ठाव रुद्रं स प्रथमऽइडेरन्ते युञ्जान: प्रथमं हस्तऽआधाय प्रतूर्तं वाजिन्त्सँव्वसाथामा त्वाऽऽ-हार्षम्प्रति स्पशो यामिषुं शिवेन वचसा द्रापेऽअन्धसो विश्वकर्मन्हविषा बलविज्ञाय स्थविरऽइन्द्रस्य वृष्णऽ-इन्द्रे मं पञ्चदिशो व्वयन्नाम व्वाजस्य नु यद्दत्तं यत्र धाराऽइन्द्रस्य रूपमायास्त्विन्द्रो व्वरुणस्य विद्वान्क: स्वित्सूर्यऽएकाकी प्रथमं माता च दधिक्राव्णोऽ-अकारिषं पञ्चस्वन्तस्ताम्पूर्वयाऽश्वो घृतेन सर्वे निमेषा यज्ञो देवानामिन्द्रवायू सुसन्दृशेन्द्राऽग्नीऽअपात्पितुन्व-शिवभ्यां पिन्वस्योग्रँल्लोहितेन चत्वारिंशत् ॥३०॥

अथ चतुष्पदा मध्ये नकारान्ताः । पुनर्मनोऽअयन्नोऽ-
अग्निरुपावीरस्युत्क्रामाक्क्रन्ददग्निः सीदत्त्वमयमग्नि-
र्वीरतमो षेऽग्नेष्विन्द्रन्दैवीस्त्रिधा हितमग्निरस्मि
जन्मना नाना हि षमश्विना देवीर्द्वारऽइन्द्रन्देवीस्तिस्रो
द्वारो वयोधसं देवीस्तिस्रो घृतेनाञ्जन्यत्पुरुषँय्यज्ञेन
यज्ञर्ठ० रुचँ ब्राह्ममारोदसी दिवि पृष्टोऽष्टौ व्यक्खयद्ये
नः सपत्क्नाः षड्विंशतिः ॥३१॥

अथ चतुष्पदा अन्ते नकारान्ता मित्रो नो या तऽआदि-
त्येभ्यस्त्वा चतुस्त्रिर्ठ० शत्तन्तवो मा नऽइन्द्र ते
युत्काय सविता शिवो भव दृर्ठ० ह्रस्व देवि दर्ठ०
ष्ट्राभ्यां मलिग्लूनुशिक्क्पावको धरुणेतो जज्ञे वातस्य
जूतिं सहसा जाताँल्लोकम्पृण किर्ठ स्विद्वनं कऽउ सो
या सेनाऽईदृक्षासऽएतादृक्षासऽएतर्ठ० सधस्त्थ सीसेन
तन्त्रं मनसा त्वष्टादधदातऽइन्द्रो दूरात्त्वामग्ने वृणतेऽ-
आजुह्वानऽईडयो यऽइमे तेऽआचरन्ती सुपर्णं व्वस्ते
नाभ्याऽआसीदाकृष्णे प्रवावृजेश्मन्न्वतीरीयते शँव्वातः
क्रव्यादमग्निमेकाधिकत्रिंशत् ॥३२॥

अथ चतुष्पदोत्तराऽऽद्युदात्ताः । सन्त्वम्प्रत, दातत्तमि,
न्नत, माह, त्वन्नो न वै त्वामि, त्त्सत्वन्नश्चित्र,
माम्, प्रतद् वोचे,[1] दन्वित्त्वा ॅ हि मन्द्रे त्वष्टादश ॥३३॥

अथ त्र्यवसानाऽऽद्युदात्ता अग्ने ब्रह्म वसुभ्यस्त्वोर्गस्यु-
द्दिवमत्यन्न्यान्मनस्ते यावान्तम्प्र त्क्नथा विश्वेदेवासऽ-
आतिष्ट्ठेन्द्रमिदुदुत्यम्प्रजापते नादित्त्यै रास्नऽऋचो
नामाश्विनौ च्छागस्य यङ्क्रन्दसी[2] दैव्यावद्धव्यू

१. क्रियापदमिदम् । २. त्रिलोकीवाचकोऽयं शब्दः ।

ब्रह्मणस्पते दृते दृꣳ० ह माऽनाधृष्टा पुरस्ता
द्विश्वासाम्भुवां स्वाहा प्राणेभ्यो लोमभ्यश्चतुर्विंशतिः ॥३४॥

अथ त्र्यवसानाऽऽद्यनुदात्ताः। युष्म्माऽइन्द्रः सवितु-
स्त्वंषा तेऽग्निज्ज्योतिर्व्व्रतङ्कृणुतेन्द्रः प्प्राणोऽयँव्वेनो
मरुत्वाँ २ ॥ ऽइन्द्रमहाँ २ ॥ ऽइन्द्रो यऽओजसा
वाचस्पतिन्ध्रुवसदन्त्वाऽश्विभ्याम्पच्यस्व कुविदङ्ग
विश्वकर्मा त्वा द्वे परमेष्ठी त्वा द्वे स्वाद्वीन्त्वेदꣳ०
हविर्दृष्ट्वा रूपऽऋतावानँ व्वैश्वानरस्य सुमतौ
वैश्वानरो नऽऊतयेऽग्निर्ऋषिर्येमाय त्वा समुद्राय
त्वा समुद्राय त्वा षड्विंशतिः ॥३५॥

अथ त्र्यवसाने कम्पः। सँव्वपाम्युपहूतो द्यौः कम्पो
जात्यः सꣳ० हिताऽस्याकूत्यै प्रयुजे तप्तायनी मे
बृहन्नसि यवोऽसि द्वे माऽपः प्रपर्व्वतस्येमम्मा हिꣳ०
सीद्द्वेऽअन्तरिक्षे निषसाद महाँ २ ॥ ऽइन्द्रो वज्रहस्तो
यस्ते स्तनोऽभीमं सप्तदश ॥३६॥

अथ त्र्यवसाने प्रथमार्द्धोदात्तानि। आ वायो आधा
ये व्विनो ग्रहाऽऊर्ज्जाहुतयो यन्ते देव्यग्निर्मूर्द्धर्वारितो
मूत्रमग्निश्च वैश्वानरस्य सुमतौ नव ॥३७॥

अथ त्र्यवसानान्तोदात्ताः। गन्धर्वस्त्वोपहूताऽइहाग्नेर्वो
विवस्वन्नादित्त्यैजतु दशमास्योऽग्निः पशुरथैतान-
ष्टावासुते दस्रा युवाकवः स्योना पृथिव्यहानि
शमेकादश ॥३८॥

अथ त्र्यवसाने जात्यः। पुरा क्रूरस्य वेदोऽस्यापोऽ-
अस्मानभित्त्यं घृतेनाक्तावुपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽ-

स्यस्मे वः पुरीष्योऽस्यृतꣳ० सत्यम्मधुश्च शुक्रश्चेष-
श्चाग्ने त्वन्नोऽन्तमऽआयुर्यज्ञेन कुविदङ्ग प्प्रजापतये
त्वेमा नु यथेमामधि नोऽपेतऽएकविंशतिः ॥३९॥

अथ त्र्यवसाने द्विर्जात्य[1]ः । कोऽसि महाँ २ । ऽइन्द्रो
नृवदाचर्षणिप्राः सहश्च नभश्च तपश्च पञ्च ॥४०॥

अथ त्र्यवसाने द्वितीयार्द्धोदात्तानि । आदित्यास्त्व-
क्सोम राजन्निन्द्रवायूऽइमेऽइन्द्राग्नीऽआगतमोमासश्च-
र्षणीधृतऽइन्द्र मरुत्वो जवो यः षोडशी स्तोमोऽ-
ग्निꣳ० होतारन्नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो द्विस्त्रया देवा यदापः
प्राणाय स्वाहा बृहस्पतेऽतीन्द्र गोमन्निन्द्रायाह्यग्नि-
र्ऋषिर्गायत्रञ्छन्दः पयसो रेतो विंशतिः ॥४१॥

अथ त्र्यववसाने तकारान्तास्त्वमग्ने व्रतपाऽइदमापो
बृहस्पतिसुतस्य विश्वकर्मन्हविषेन्द्रस्य वज्रोऽस्यामा
क्षत्रस्योल्बन्नाभिर्मेष्टौ ॥४२॥

अथ त्र्यवसाने नकारान्ताः । भद्रो मे सजोषाऽइन्द्रे
हरतिरूद्ध्वो भव यदा पिपेष पञ्च ॥४३॥

अथ त्र्यवसाने प्रथमे द्वितीयान्त[2]मुदात्तानि । उखाङ-
कृणोतु कुतस्त्वं द्विः ॥४४॥

अथ त्र्यवसाने ह्याद्युदात्ताः । एदन्द्याम्मा द्विः ॥४५॥
अथान्त्यावसाने त्वाद्युदात्ताः । मा भेरग्ने दब्धायोऽ-
न्धस्स्थस्वाहा यज्ञँ वरुणस्योत्तम्भनं देवीरापः शुद्धा
वोड्ढ्वंव्वाचन्ते द्वितीयं स्वाङ्कृतोऽसि सोमः पवते
यस्तेऽअश्वसनिर्व्रेशीनान्त्वा वसवस्त्रयोदशाक्षरेण ये

---

१. जात्यः स्वरितविशेषो द्विरुच्चारणीयः । २. द्वितीयान्तानि-इत्युचितम् ।

देवाऽअग्निनेत्रा वसवस्त्वा धूपयन्त्वाकूतिमग्निंव्विष्णोः क्क्रमोऽसि चिदसि तयाऽऽयुर्मे नवविंꣳ० शत्या स्तुवत तन्तुना रायस्पोषेण राज्ञ्यस्यधिपत्न्यसि वञ्चते गणेभ्यो धृष्णवे शम्भवाय पर्णायौजश्च ज्येष्ठ्यञ्च शञ्चो-वर्चाश्म्मा च व्वसु चैका च चतस्रश्च त्र्यविश्चेडेडितो बर्हिरूर्णम्रदाः सुपेशसोषे दैव्या होतारा तिस्रो देवीश्च-तस्रो ऽश्विनौ सरस्वती चत्वार्यग्निः स्विष्टकृतन्त्वामद्य प्राच्यै वाताय नक्षत्रेभ्यस्ताऽउभौ त्र्यवयो गायत्र्यै भूम्याऽआखून्वातं प्राणेन विधृतिनाभ्यैधोऽस्येकाधिका षष्टिः ॥४६॥

अथान्त्यावसाने ह्याद्यनुदात्तानि। इषे त्वाऽनेस्त-नूरिन्द्रघोषस्त्वा रक्षोहणँव्वलगहनं रक्षोहणो वो मित्रस्य माऽऽक्तमने म उशिक्त्वमापये स्वाहैष[1] ते निर्ऋतेऽआविर्मर्याऽऊर्द्ध्वा मारोहाग्निः पृथुः सवित्रा प्रसवित्राऽपान्त्वाऽयम्पुरऽइयमुपरि सजूर्ऋतु-भिरनड्वान्वयः पृथिवी च्छन्दोऽग्निर्देवताऽऽच्छन्दो विराडसि त्रयः प्राणश्च सत्यञ्च तिस्रो रयिश्च व्रीहयश्चाग्निश्च द्वे मित्रस्य चतस्रोऽग्निर्द्वे पष्ठवाट् च त्रिरश्विभ्यान्त्वा प्रथममग्नये स्वाहा हिङ्काराय प्राणायाद्भ्यः पृथिव्यै धूम्रान्वसन्ताय पष्ठवाहो व्विराजे प्रजापतये पुरुषान्मयुः प्राजापत्यः पुरुष-मृगश्चन्द्रमसोर्मशकान्केशैर्मरुता ॐ स्कन्धा नृत्ताय सूतमृतये स्तेनहृदयं पञ्चपञ्चाशत् ॥४७॥

अथान्त्यावसाने ह्यूर्द्ध्वोदात्तानि। एष ते रुद्रभागः स्वराडसि सपत्नहाऽग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसँव्व-

---

१. स्वाहा-एष इति पदच्छेदः।

सवस्त्वा कृण्वन्तु-राज्यसि नृषदे वेट् प्रथमं कृष्णग्रीवा ऽआग्नेयाऽउन्नतऽऋषभः कृष्णा भौमाः प्रथम-द्वितीयोक्ताः सञ्चरा धूम्रा बभ्रुनीकाशाः प्रजापतये च सौरी बलाकाऽएण्यह्नो वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः श्वित्रऽआदित्यानाम्पूषणँव्वनिष्टुना नदीभ्यः पौञ्जिष्टठं सन्धये जारमुत्सादेभ्यः कुब्जम्भायै दार्वाहारम्मन्यवेऽयस्तायँय्यमाय यमम् सरोभ्यो धैवरमक्षराजाय कितवं प्रतिश्रुत्काथाऽअर्त्तनमग्नये पीवानमष्टाविंशतिः ॥४८॥

अथान्त्यावसाने ह्येको जात्यः । कुक्कुटोऽसि जनयत्त्यै त्वाऽग्ने व्रतपतऽएष ते गायत्री ध्रुवोऽसि पृथिवीन्देवाग्निदवँव्वसवस्त्वाऽदितिष्ट्वाऽयन्दक्षिणा सहस्रस्य प्रमा नमऽआशवेऽइमा मे वाजश्च वित्तश्च सुचश्च देवोऽअग्निर्षते स्वाहा काय द्वितीयाग्नये स्वाहाऽऽयुर्यज्ञेनैकस्मै रोहितो धूम्ररोहितः शुद्धबालस्तृतीयोक्ताः सञ्चराः सुपर्णः पार्जन्यः खङ्गो वैश्वदेवोऽग्नेः पक्षतिर्ब्रह्मणे ब्राह्मणं तपसे कौलालमर्मेभ्यो हस्तिपम्बीभत्सायै पौल्कसमेकत्रिंशत् ॥४९॥

अथान्त्यावसाने कम्पः । पृथिवि देवयजन्यदित्त्यै व्युन्दनमग्ने वः समुद्रङ्गच्छ प्रथमः स्वाङ्कृतोऽसि स्वर्णचतुः कम्पाइडस्पदे तनूनपात्सरस्वतीन्नराशꣳ सन्न द्विकम्पो[1] दुरो दिशो व्वाजाय स्वाहा सोमाय कुलुङ्ग इन्द्राग्न्योः पक्षतिरग्नयेऽनीकवतेऽग्नये गायत्राय नर्माय पूँश्चलूं सुमित्रिया नोऽष्टादश ॥५०॥

---

१. द्विरावृत्तः कम्प इत्यर्थः ।

अथान्त्यावसाने कम्पो जात्यः । भूताय त्वा दिवि-
ष्विष्णुर्द्वितीयः सि ँ ह्यसि तेजोऽसि तेजो मयि
धेह्याब्रह्मन्नश्वस्तूपरः शिल्पा वैश्वदेव्यऽएताऽऐन्द्राग्ना
द्वितीयः कृष्णग्रीवाऽआग्नेयः कृष्णग्रीवा दश ॥५१॥

अथान्त्यावसाने द्विर्जात्यः । अस्कन्नमद्याग्रयणोऽ-
सीदमुत्तरादाशुस्त्रिवृत्समुद्रोऽसि नभस्वान्पृश्निस्ति-
रश्चीनपृश्निस्तृतीयः कृष्णग्रीवाऽआग्नेयाऽअग्न्यवा-
पोऽर्द्धमासानामिन्द्रस्य क्रोडो नव ॥५२॥

अथान्त्यावसाने त्रिर्जात्यः । सि ँ ह्यसि मित्रा-
वरुणाभ्यान्त्वा षड्जात्यो मघवे त्वाऽग्नये त्वा मह्यं
चतुरो जात्यः पृथिव्याः सधस्था विवृदसि प्रथमा-
द्वितीयैश्चत्वारो जात्त्या मघवे स्वाहा शादन्दद्भिर्नव ॥५३॥

अथान्त्यावसाने नकारान्ताः । मनो मे प्रथमाग्नयेऽ-
नीकवते वसन्ताय कपिञ्जलानान्त्समुद्राय शिशुमारा-
न्त्सोमाय हꣳसानग्नये कुटरून्त्सोमाय लवानन्हे
पारावतान्वसुभ्यऽऋश्यानीशानाय परस्वतेदश ॥५४॥

अथ निरवसाने ह्याद्युदात्ताः । नमो वऽइन्द्रश्च मरु-
तश्च विश्वेदेवाश्चमसेऽवेष्टा दन्दशूकाद्वयमुदीची-
मारोह मा च्छन्दऽएकया स्तुवतैवश्छन्दो बभ्लुशाय
रोहिताय कृत्स्नायोष्णीषिणे विसृजद्भ्यः सभाभ्यो
गणेभ्यस्तक्षेभ्योऽअश्वेभ्यो ह्रस्वाय वन्न्याय
विंशतिः ॥५५॥

अथ निरवसाने ह्यनुदात्ताः । प्राणाय मे प्रोह्यमाणः
सोमः पूषा पञ्चाक्षरेणात्र्थेतस्त्थः प्रतीचीमारोहमूद्धर्वा

व्वयो नवभिरस्तुवत रश्मिना सत्त्याय प्रतिपदस्यग्नि-
मद्य सूपस्त्थाऽअद्य द्वादश ॥५६॥

अथ निरवसाने कम्पः कृष्णोऽसि मधुमतीर्न्नः परमेष्ठ्य-
भिधीत इति त्रिः ॥५७॥

अथ निरवसाने कम्पो जात्यः । समुद्रोऽस्यग्निरेका-
क्षरेण यवानाम्भागस्त्रिः ॥५८॥

अथ निरवसाने ह्येको जात्त्यः विश्वेदेवा नवभिरस्तुवत
नमो हिरण्यबाहवे नमः कपर्दिने स्तुत्याय व्वात्याय
पार्याय सप्त ॥५९॥

अथ निरवसाने द्विजात्यः । उशिगसि बृष्णऽऊर्मिज्ज्ये-
ष्ठाय विल्मिने ब्रज्याय पञ्च ॥६०॥

अथ निरवसाने त्रिजात्यः । सोभ्याय कूप्याय चतु-
रग्नेर्भागोऽसि वसूनाम्भागोऽसि सिकत्त्याय शुष्क्याय
षट् ॥६१॥

अथ निरवसाने मध्यावसाने द्वितीयशर्मास्यग्ने व्वाज-
जिद्भूरस्याददे रावाऽसि द्विजात्यमिन्द्राय त्त्वा
बृहद्वते पञ्च ॥६२॥

अथ चतुरवसाने ह्याद्युदात्ताः । प्रत्युष्ट्टठं० रक्षऽ-
इन्धानास्त्वा त्र्यम्बकन्धामान्युशम्मासि मऽहिर्भूर्म्मा
पृदाकुरग्ने पवस्वादृश्श्रमस्य व्वाजी कनिक्रदद्देधोऽ-
सीन्द्रस्यौजस्त्थ स्वाहा रुद्रायैकादश ॥६३॥

अथ चतुरवसाने ह्याद्यनुदात्ताः । अग्नीषोमयोरुज्जिर्ति
द्विकम्पाः सजूर्द्देवेना ऍ शुरठं० शुष्ठ्टेऽग्नीषोमाभ्या-
म्मरुत्वन्तँ वृषभमुत्तिष्ठन्नोजसा युवन्तदेवस्याहम्प्रथमो

देवस्य त्वा पृथिव्याः सुपर्णोऽसि विराड्ज्योतिरिमꣳ
साहस्रन्तिस्रोवायोः पूतः पुनन्तु मा पितरः सँव्वत्सरोऽ-
स्यग्निमद्योभयो ऋꣳजवे त्वा हिरण्मयेन पात्रेणेति
द्वाविंशतिः ॥६४॥

॥ इति महर्षियोगियाज्ञवल्क्यकृता मनः स्वारशिक्षा समाप्ता ॥

# प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा

हेरम्बं विघ्नहर्त्तारं प्रणमामि सरस्वतीम् ।
ययोर्न्नमनमात्रेण विघ्नसङ्घो विनश्यति ॥१॥

प्रातिशाख्यं च शिक्षाश्च सम्यगालोच्य यत्नतः ।
वैदिकानां सुबोधाय सम्यक्पाठस्य सिद्धये ॥२॥

सदाशिवतनूजेन बालकृष्णेन धीमता ।
प्रातिशाख्यप्रदीपाख्या शिक्षा सम्यङ् निरूप्यते ॥३॥

अथ वेदाध्ययनप्रकारः । तत्र याज्ञवल्क्यः । प्रणवं प्राक्प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरमासावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान्समारभेत् ॥१॥

हस्तौ तु सँय्युतौ धार्य्यौ जान्वोरुपरि संस्थितौ ।
गुरोरनुमतिं कृत्वा पठेन्नान्यमतिर्भवेत् ॥२॥

ऊरुभागे तृतीये तु करन्न्यस्याथ दक्षिणम् ।
प्रसन्नमानसो भूत्वा किञ्चिन्नम्रमधोमुखः ॥३॥

कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य हस्तदृष्टिर्दृढम्मनः ।
स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः ॥४॥

नाभ्या हन्यान्न निर्हन्यान्न गायेन्न च कम्पयेत् ।
यथादावुच्चरेद्वर्णास्तिथैवैतान्त्समापयेत् ॥५॥

निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे वेदार्थमनुचिन्तयेत् ।
सम्यगुच्चारयेद् वर्णान्हस्तेन च मुखेन च ॥६॥

स्वरश्चैव तु हस्तश्च द्वावेतौ युगपत्स्थितौ ।
हस्ताद् भ्रष्टः स्वराद् भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते ॥७॥
न करालो न लम्बोष्ठो[1] नाव्यक्तो नानुनासिकः ।
गद्गदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान्वक्तुमर्हति ॥८॥
चुलुनौका स्फुटो दण्डी स्वस्तिको मुष्टिकाकृतिः ।
एते वै हस्तदोषाः स्युः परशुश्चैव सप्तमः ॥९॥
अथ करचालनक्रमस्तत्रैव [अङ्गुष्ठस्योत्तरे पर्वे[2]
तर्जन्युपरि यद्भवेत् ।
प्रादेशस्य तु यो देशस्तन्मात्रं चालयेत्करम् ॥१०॥
उदात्तं भ्रुवि पातेन प्रचयं नासिकाग्रतः ।
हृत्प्रदेशेऽनुदात्तं तु तिर्यग्जात्यादिकाः स्वराः ॥११॥
स्वरिते त्र्यङ्गुलं विद्यान्निपाते तु षडङ्गुलम् ।
उत्थाने तु नवाङ्गुल्यमेतत्स्वारस्य लक्षणम् ॥१२॥
तथा च प्रतिज्ञासूत्रे ।
हृद्यनुदात्तो मूर्धन्युदात्तः श्रुतिमूले स्वरित इति ।
अथ स्वरविचारः । तथा चोक्तम् ।
स्वरउच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च ॥ स्वर-
प्रधानं त्रैस्वर्यं व्यञ्जनं तेन सस्वरमिति । अथो-
दात्तानुदात्तस्वरितस्वराणां लक्षणान्युच्यन्ते । तथा
च प्रातिशाख्ये । उच्चैरुदात्तः ॥१॥
ऊर्ध्वभागे निष्पन्नः स्वर उदात्तसंज्ञः स्यात् ।
यथा अग्ना ३ इ । "उदात्तवानुदात्तः" ॥२॥
इत्येवमादयः । उदात्तप्रदेशाः । नीचैरनुदात्तः ॥३॥

---

१. 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा, इति वार्तिकेन अकारस्य तत्परौकारस्य च स्थाने पररूपे ओकारादेशेऽस्य प्रयोगस्य निष्पत्तिः ।

२. पर्वणि इत्युचितम् । पर्वन् शब्दस्य नान्तत्वात् ।

अधोभागे निष्पन्नः स्वरोऽनुदात्तः स्यात्। यथा आर्षेयऽऋषीणाम्। अनुदात्तप्रदेशाः। उदात्ताच्चानुदात्त-ᳪ स्वरितम् ॥४॥

उदात्तादक्षरात्परं व्यञ्जनव्यवहितमनुदात्तमक्षरं स्वरितं भवति। तथा स्वाहा हि स्म। हि ष्म॑। निहितमुदात्तस्वरितपरम् ॥५॥

अनुदात्तमापद्यते स्वरितम् उदात्तपरं स्वरितपरं च। उदात्ते परे यथा स्वाहा सोमा॑य। स्वर्ग्यायेति॑ स्वः ग्याय। प्रसुवेऽश्विनो॑ः। परमेष्ठ्यभिधीत॑ः। स्रुचीवेति॑। स्वरितपरे यथा स्वाहा स्वर्णार्क्कः। इत्येवमादयः। उभयवान्स्वरितः ॥६॥

ऊर्ध्वाधो भागे निष्पन्नः स्वरः स्वरितसञ्ज्ञः स्यात्। यथा स्व॑ः। धान्यमसि। अथ स्वरितस्यैवान्तर्भेदा अष्टौ स्वरा उच्यन्ते। तथा च याज्ञवल्क्यः। अष्टौ स्वरान्प्रवक्ष्यामि तेषामेव च लक्षणम्। जात्योऽ-भिनिहितः क्षैप्रः प्रश्लिष्टश्च तथाऽपरः ॥१३॥

तैरोव्यञ्जनसञ्ज्ञश्च तथा तैरोविरामकः। पादवृत्तो-भवेत्तद्वत्ताथाभाव्य इति स्वराः ॥१४॥

इति। तत्र प्रत्येकलक्षणमुच्यते। तथा च प्रातिशाख्ये। एक पदेनीचपूर्वः सयवो जात्यः। एकस्मिन्पदे नीचपूर्वोऽनुदात्तपूर्वो यकारेण वा सहितो जात्यः स्वरः प्रत्येतव्यः। नीचपूर्व इति सम्भवद्विशेषणम्। अपूर्वोऽपि भवति। नीचपूर्वो यथा। धान्यमसि। कन्याऽइव। अपूर्वो यथा स्वर्द्दैवेषु॑। तथा च याज्ञवल्क्यः। एकपदे नीचपूर्वः सयवो जात्य इष्यते। अपूर्वोऽपि परस्तद्वद्धान्यं कन्या स्वरित्यपि ॥१५॥

उदात्तादयः परे सप्त ।।७।।

उदात्तादयः परे सप्त स्वराः प्रत्येतव्याः । अभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्टतैरोव्यञ्जनतैरोविरामपादवृत्तताथा - भाव्याः । त्रयो नीचस्वरपराः ।।८।।

अभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्टा नीचस्वरपराः । एदोद्भ्यामकारो लुगभिनिहितः ।।९।।

एकारौकाराभ्यामुदात्ताभ्याम्परोऽकारोऽनुदात्तो यत्र लुक् लुप्यते तत्राभिनिहितः स्वरो भवति । यथा तेऽप्सरसाम् । तेऽवन्तु । वेदोसि । स्तुपोऽसि । तथा च याज्ञवल्क्यः । एओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो रिफितश्च यः । अकारो लुप्यते यत्र तं चाभिनिहितं विदुः ।।१६।।

अस्यापवादः । न देशेऽभवत् ।।१०।।
देश इत्ययमेकारः अभवदित्यस्याकारे लुप्तेऽप्यभिनिहितस्वरितो न भवति । यथा देशेऽभवत् । युवर्णौ यवौ क्षैप्रः ।।११।।

इश्च उश्च यू यूवर्णौ उदात्तौ अनुदात्ते स्वरोदयौ यकारवकाराभ्यां यथासंख्येन युक्तौ यदा तदा क्षैप्रवरो भवति । यथा त्रिअम्बकम् । त्र्यम्बकम् । व्वाजी अर्वन् । व्वाज्यर्वन् । नु इन्द्र । न्विन्द्र । द्रुअन्नः । द्र्वन्नः । तथा च याज्ञवल्क्यः । इउवर्णौ यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित् । अनुदात्ते परे नित्यं विद्यात्क्षैप्रस्य लक्षणम् ।।१७।।

इवर्णेऽउभयतो ह्रस्वः प्रश्लिष्टः ।।१२।। ह्रस्व इकार उदात्तः परश्च ह्रस्वइकारोऽनुदात्तस्तयोः परस्पर-

प्रश्लिष्टे प्रश्लिष्टस्वरो भवति। यथा अभि इन्धताम्। अभीन्धताम्। स्रुचीव। तथा च याज्ञवल्क्यः। इकारो दृश्यते यत्र इकारेणैव सँय्युतः। उदात्तश्चानुदात्तेन प्रश्लिष्टो भवति स्वरः ॥१८॥

स्वरो व्यञ्जनयुतस्तैरोव्यञ्जनः ॥१३॥

उदात्तात्पूर्वस्मात्परो यः स्वरो व्यञ्जनयुतः स तैरोव्यञ्जनसञ्ज्ञकः स्वरो भवति। यथा इडे। रन्ते। तथा च याज्ञवल्क्यः उदात्तपूर्वं यत्किंचिद्व्यञ्जनेन च संय्युतः। एष सर्वबहुस्वारस्तैरोव्यञ्जनसञ्ज्ञकः ॥१९॥

उदवग्रहस्तैरो विरामः ॥१४॥

उदात्तावग्रहस्तैरोविरामसञ्ज्ञकः स्यात्। अयं च समस्तपदेषु भवति। अवग्रहवचनात्। अवग्रहाभावे तु तैरोव्यञ्जन एव। यथा गोपताविति गो। पतौ। यज्ञपतिमितियज्ञ। पतिम्। तथा च याज्ञवल्क्यः। अवग्रहात्परो यस्तु स्वरितः स्यादनन्तरम्। तैरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः ॥२०॥

विवृत्तिलक्षणः पादवृत्तः ॥१५॥

स्वरयोरन्तरं विवृत्तिरुच्यते। तया लक्ष्यत इति विवृतिलक्षणः स पादवृत्तसंज्ञो भवति। विवृत्त्या व्यवहित इत्यर्थः। यथा ध्रुवा असदन्। ध्रुवाऽअसदन्। का ईम्। काऽईम्। तथा च याज्ञवल्क्यः। स्वरे च स्वरिते चैव विवृत्तिर्दृश्यते यदि। पादवृत्तो भवेत्स्वारः श्वित्रऽआदित्येति निदर्शनम् ॥२१॥

स्वरयोरन्तरे काले विवृत्तिर्यत्र दृश्यते। स स्वारः पादवृत्तः स्यात् काऽईमिति निदर्शनम् ॥२२॥

उदाद्यन्तो न्यवग्रहस्ताथाभाव्यः ॥१६॥

उदात्तादिरुदातान्तो नीचावग्रहस्ताथाभाव्यसञ्ज्ञकः स्वरो भवति। यथा तनूनप्त्र इति-तनू। नप्त्रे। तनूनपादिति-तनू। नपात्। तथा च याज्ञवल्क्यः। उदात्ताक्षरयोर्मध्ये भवेन्नीचस्त्ववग्रहः। ताथाभाव्यो भवेत्कम्पस्तनूनप्त्रे निदर्शनम् ॥२३॥

केषांचिन्मतेनाष्टमस्तु ताथाभाव्यः। कम्परूपस्य ताथाभाव्यस्य वाजसनेयिनां संहितापाठे निराकृतत्वात्। उक्तं च माध्यन्दिनशिक्षायाम्। औज्जिहायनकैर्माध्यन्दिनमतानुसारिभिः अवग्रहो यदा नीचउच्चयोर्मध्यतः क्वचित् ॥२४॥

ताथाभाव्यो भवेत्कम्पस्तनूनप्त्रे निदर्शनम्। पदपाठे भवत्येव कम्पो नाम स्वरस्तथा ॥२५॥

इत्यष्टौ स्वराः सोदाहरणा व्याख्याताः। ऋजु निहत्य प्रणिहन्यतऽउदात्ते ॥१७॥

ऋजु स्वरितस्वरं निहत्य हस्तमनुदात्तवत्। ततोऽत्वन्तं निहन्यते नीचीक्रियते जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्टा उदात्तो परभूते। यथा स्वः द्यौरिव। स्वर्द्यौरिव। प्रसवे अश्विनोः। प्रसवेऽश्विनोः। नि अत्रिणम्। न्यत्रिणम्। स्रुचि इव। स्रुचीवेति। उदात्त इति कस्मात्। धान्यमसि। व्वैष्णव्यौ। प्रचयस्वरलक्षणमाह। स्वरितात्परमनुदात्तामुदात्तामयमेकमनेकं वा ॥१८॥

स्वरितात्परमनुदात्तमेकमनेकं वाऽक्षरमुदात्तावत्। एकश्रुत्या उच्चारणीयं स्यात्। अयमेव प्रचयः प्रचितः

प्रचो निचित उदात्तमय इति वैदिकैर्व्यवह्रियते।
हस्तं तु नासिकाग्रसम्मितं कृत्वा प्रदर्शनीयः। प्रचयं नासिकाग्रत इति याज्ञवल्क्यशिक्षावाक्यात्। यज्ञपतिः। अद्यऽऋषऽआर्षयः। नोदात्तस्वरितोदयम् ॥२०॥

स्वरितात्परमनुदात्तमुदात्तो स्वरिते वा परे प्रचयं न स्यात्। हर्ठ० ह्रस्व मा। तनूचिम व्विष्णो। सादन्यं व्विदत्थ्यम्। उदात्तवानुदात्तः। स्वरितवान्स्वरितः। यत्र सूत्रद्वयस्य प्राप्तौ सत्यां विप्रतिषेधऽउत्तरम्बलवद्भवति। यथा सूनवेऽग्ने। अद्द्यत्येऽवसे। स्वरविधायकं शास्त्रम्। अथ स्वरसन्धिरभिधीयते।

सर्ठ० हितायाम् ॥१॥

अधिकारोऽयम्। पदान्तपदाद्योः सन्धिः ॥२॥

यदत्र सन्धिकार्यमुच्यते तत्पदान्तपदाद्योः स्यात्।

स्वरे भाव्यन्तस्थाम् ॥३॥

अकण्ठ्यो भावी। इत्यनेन सूत्रेण भावी[1] संज्ञोक्ता। ते भावीसञ्ज्ञका इ उ ऋ ऌ स्वराः स्वरे परे अन्तस्था यवरलाः क्रमश आपद्यन्ते। उदाहरणं यथा पुनाम्यच्छिद्रेण। व्वाज्ज्यर्वा। व्वेत्त्वाज्यस्य। विभूर्म्मात्रा प्रभूः पित्रा। ऌकारोदाहरणं नास्ति संहितायाम्। सन्ध्यक्षरमयवायावम् ॥४॥

सन्ध्यक्षरसंज्ञकाः स्वरा ए ओ ऐ औ स्वरे परे अय् अव् आय् आव् एतानादेशानापद्यन्ते। यथा इडऽएहि। अयादेशे कृते यवयोः पदान्तयोः स्वरमध्ये लोपः ॥५॥

---

१. भाविनी, इत्युचितः पाठः। अथवा 'भावी, इति रूढः सञ्ज्ञाशब्दः भां वेति गच्छति इति विग्रहे भा इत्युपपदे वी धातुः क्विबन्तः।

द्वयोः स्वरयोर्मध्ये विद्यमानयोः पदान्तयोर्यकार-वकारयोर्लोपः स्यात् । सरस्वत्याऽइन्द्राय । व्विष्णो एते इति स्थिते अवादेशे कृते लोपे च पूर्वसूत्रेण प्राप्तेऽग्रिमसूत्रेण निषेधः कृतः । न वकारस्या-सस्थान एकेषाम् ॥६॥

स्वरयोर्मध्ये विद्यमानस्य वकारस्य पदान्तस्य लोपो न स्याद्भिन्नस्थाने स्वरे परे, यथा व्विष्णवे ते । आनन्दनन्दावाण्डौ । असस्थान इति किम् । व्विष्णऽ-ऽउरुगाय । ऊरू पादाऽउच्येते । कण्ठ्यऽऋकारे ह्रस्वम् ॥७॥

कण्ठ्य स्वरऋकारे परे ह्रस्वं स्वरमापद्यते । त्वऽऋ-भुमते । सिं० सवर्णे दीर्घम् । ॥८॥

सिम्सञ्ज्ञकः स्वरः सवर्णे परे पूर्वः परश्च एकं दीर्घमापद्यते । यथा नारातये । स्वाहाग्नये । यौमीदम् । पचन्तूषे । अत्र स्वरे भाव्यन्तस्थामिति प्राप्ते विप्रतिषेध इत्यनेन परत्वादिदमेव भवति । कण्ठ्यादिवर्णऽएकारम् ॥९॥

कण्ठ्यात्पर इवर्णपूर्वः परश्चैकारमापद्यते । जयेन्द्राय । एदम् । उवर्णओकारम् ॥१०॥

कण्ठ्यात्पर उवर्णः पूर्वश्च एकमोकारमापद्यते । इहोर्जम् । प्रोहामि । सन्ध्यक्षरमैकारौकारौ ॥११॥

कण्ठ्यात्स्वरात्परं सन्ध्यक्षर पूर्वं एतौ एकारौकारौ आपद्येते । यथा भ्राजायैष ते । इन्द्रेणैन्द्रम् । ओजिष्ठौजिष्ठः । प्रौक्षन् । समुद्रस्येमँस्त्वेमँस्त्वोद्-मन्निति च । एते निपात्यन्ते । अन्यथा प्राप्तस्य

अन्यथोच्चारणं निपातनम्। यथा अपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्। अपान्त्वेमन्। अपान्त्वोद्मन्। न परकालः पूर्वकाले पुनः। ॥१२॥

जातः परकालो विधिः पूर्वकाले विधौ प्राप्ते सत्यसिद्धः स्यात्। तऽइह श्रुवन्तु। पादाऽउच्येते। अराध्याऽएदिधिषुः पतिम्। रात्र्याऽऋक्षः। अत्र यवयोः पदान्तयोः इत्यस्य परकालत्वात्तस्मिञ्जातं पूर्वकालं यथायथ प्राप्तं सन्धिकार्यं न भवति। आरमृकारोऽपृक्तात् ॥१३॥

अपृक्तात्पर ऋकारः पूर्वश्च एकमारमापद्यते। कण्ठ्य ऋकार इत्यस्यापवादः। यस्यावश्यं प्राप्तौ सत्यां यो विधिरारभ्यते स तस्यापवादः, यथा स्वपनमार्त्यैं। एदोद्भ्यां पूर्वमकारः ॥१४॥

एदोद्भ्यां परोऽकारः पूर्वश्च एकमेकारम् ओकारं वापद्यते। एतत्प्रकरणे यानि विसर्गान्तानि पदानि तेषां "सर्वो[1] अकार ओकार" इत्यनुवर्तमाने "अकारे चे" ति वक्ष्यमाणसूत्रद्वयेन च ओकारान्तत्वम्। उदाहरणं यथा अग्नयेऽनीकवते। अग्ने दब्धायोऽशीतम्। प्रकृतिभाव ऋक्षु। ॥१५॥

ऋक्षु नियताक्षरच्छन्दस्सु मन्त्रेषु एदोद्भ्याम्परोऽकारः प्रकृत्या भवति। एदोद्भ्यामित्यस्यापवादः। यथा गर्भेऽअन्तः। व्वायोऽअस्मिन्। यजुष्षु च ॥१६॥

अनियताक्षरेषु अविशेषेण एकारौकाराभ्याँ परः अकारः पूर्वश्च एकारमोकारं वाऽऽपद्यते। यथा

१. अस्यान्वयश्चिन्त्यः।

अग्रेपुवोऽग्रे । च मेऽपानः । चकारादृक्ष्वपि क्वचित् । योऽसावादित्त्ये पुरुषः सोऽसावहम् । का ध्रुवोती सदना होतारा ज्या स्वधा पृथिवी प्रतिमेमसदन्न-श्यामाकर्मोद्‌र्ध्वमियमवस्तादुतास्तिषु ॥१७॥

कादीनि[1] नव पदानि यथासङ्ख्यम् ईमादिषु नवसु परेषु प्रकृत्या भवन्ति । काऽईम् । ध्रुवाऽअसदन् । ऊतीऽअश्याम । सदनाऽअकर्म्म । होताराऽऊर्ध्वम् । ज्याऽइयम् । स्वधाऽवस्तात् । पृथिवीऽउतद्द्यौः । प्रतिमाऽस्ति । प्रगृह्य ॐ स्वरे । ॥१८॥

प्रगृह्यसञ्ज्ञकं पदं स्वरे परे प्रकृत्या भवति । इन्द्राग्नीऽअपात् । इन्द्रवायूऽइमे । शिप्रेऽअवेपथः । अस्मेऽआरात् । त्वेऽइषः । अमीऽअन्यः । उकारोऽ-पृक्तोऽस्पर्शात् । ॥१९॥

पूर्वेण भावे नियमार्थं व्वचनम् । अपृक्त उकारः स्पर्शात्परत्वाभाव एव प्रकृत्या । एतवाऽउऽअञ्जि । अस्पर्शात्किम् । तद्वन्तिके । सम्वेतद्धामि । न रोदसी मे । ॥२०॥

रोदसी इत्येतद्द्विवचनान्तं पदमपि प्रकृत्या न भवति इमे शब्दे परे । रोदसी मेण्ये ॥ इत्यष्टौ स्वराः सोदाहरणा व्याख्याताः । अथाङ्गुलिभिः प्रदर्शनीय-विषया व्याख्यायन्ते । तत्र व्यञ्जनानामिमे[2] धर्माः सन्ति, ह्येतस्मात्कारणादादौ व्यञ्जनसन्धिरुच्यते । तकारवर्गश्चकारवर्गे चकारवर्गम् ॥१॥

---

१. पूर्वसूत्रे कादीनि नव पठितानि । तानि ईमादिषु परेषु यथासंख्यं प्रकृत्या भवन्ति ।
२. व्यञ्जनानि हल्वर्णास्तेषां धर्मसम्बन्धेन व्यञ्जनसन्धिरिति नामधेयम् ।

तकारादयः पञ्च चकारादि पञ्चान्यतमे वर्णे परे चकारादीन्यापद्यन्ते । अत्र स्थान्यादेशयोर्यथासङ्ख्यं निमित्तकार्यिणोस्तु न "शकारे चे" त्यस्याप्येतत् । सूत्रविशेषत्वेन निमित्तानां षट्त्वात् । योगविभागस्तु तावत एवोत्तरसूत्रेऽनुवृत्त्यर्थः । यच्चाहम् । आच्छ-च्छन्दः । अनूज्जेषम् । शत्रूञ्जयतु । शकारे ॥२॥

शकारे च परे तवर्गश्चवर्गमापद्यते । आदित्या-ञ्श्मश्रुभिः ॥ परश्चास्पर्शपरश्छम् ॥३॥

तवर्गात्परः शकारश्छकारमापद्यते स्पर्शपरो न चेत् । चात्पूर्वश्चवर्गम् । यच्छूद्रे । कूश्माञ्छकपिण्डैः । अस्पर्शपरः किम् । पूर्वसूत्रोदाहरणं बोद्धयम् । नुः ॥४॥

अधिकारोऽयम् । अनुनासिकमुपधा । ॥५॥

अयमपि तथा । चछयोः शम् । ॥६॥

चकारे छकारे च परे नकारः शकारमापद्यते । उपधा चानुनासिकम् । ताँश्चक्रे । जटायाँ अवश्छ-न्त्सि । तथयोः सम् । ॥७॥

तकारे थकारे च परे नकारः सकारमापद्यते । उपधा चानुनासिकम् अश्मँस्ते । पशूँस्तान् । दधन्न्वान्त्स्व वान्यकारे लोपम् । ॥८॥

अनयोर्नकारो यकारे परे लोपमापद्यते । नात्रानु-नासिकोपधा । उक्तं च वसिष्ठशिक्षायाम् । स्वराणा-मानुनासिक्यं प्रतिजानन्ति सर्वदा । वर्जयित्वा तमाकारं यत्र लोपो विधीयते । दधन्न्वा यः । स्ववा यातु । रयिवृधे च । ॥९॥

रयिवृधे परे नकारो लोपमापद्यते । पीवोऽन्ना रयि-
वृधः । नॄन्पकारे विसर्जनीयम् । ॥१०॥

नॄनित्ययं नकारः पकारे परे विसर्जनीयमापद्यते ।
अनुनासिकाचोपधा । नॄःऽपाहि[1] । शत्रून्परि-
धीन्क्रतून्वनस्प्पतीन्त्स्वरे रेफम् । ॥११॥

एतेषां नकारः स्वरे परे रेफमापद्यते । अनुनासिका
चोपधा । शत्रूँ १ ॥ रप । परिधीँ १ ॥ रग्नेर्णु ।
क्रतूँ १ ॥ रनु । एते ह्येकार्द्धमात्रिका भवन्तीति
पाराशरेणोक्तम् । आकारोपधो यकारम् ॥१२॥

आकारोपधो नकारो यकारमापद्यते । स्वरे परे
अनुनासिका चोपधा । याँ २ ॥ ऽ आवहः । अत्र
यवयोरित्यनेन लोपेऽपि न परकालः पूर्वकाले पुनरि-
त्यनेन लोपेऽपि न परकालः पूर्वकाले पुनरित्यनेन
तस्यासिद्धत्वात्प्रकरणान्तरस्थत्वाच्चानुनासिकवर्जनं
न भवति । स्पर्शोऽपञ्चमः स्वरघौ तृतीयम् ॥१३॥

प्रतिवर्गमाद्याः स्वरे घिसञ्ज्ञके च । परे वर्गतृतीय-
मापद्यन्ते । ऋधगित्था । रेडसि । तदिदासम् ।
सङ्क्रमोदाहरणं । अनुष्टुबेवः । ऊर्ग्गसि । राडचन्त्री ।
तस्माद्यज्ञात् । त्रिष्टुब्जगती । अपञ्चमः किम् ।
युङ्ङसि । अस्मिन्यज्ञे । पञ्चमे पञ्चमम् ॥१४॥

अपञ्चमः स्पर्शः पञ्चमे स्पर्शे परे पञ्चममापद्यते ।
वाक् मात्या । व्वाङ्मात्या । यन्मे च्छिद्रम् ।
हश्च तस्मात्पूर्वचतुर्थम् ॥१५॥

अपञ्चमात्परो हकारः पूर्वस्य चतुर्थमापद्यते चात्पूर्व-
स्तृतीयम् । व्वाग्घुतः । समसुस्रोहृदः । अवाड्ढ-

[1] नॄन् पे, इति पाणिनीयसूत्रेणापि अस्य साधुत्वम् ।

व्यानि । अपञ्चमात्किम् । जीमूतान्हृदयौपशेन ।
"अनुस्वारऽ०" रोष्मसु मकारः । ॥१६॥

मकारो रेफे ऊष्मसु च परेष्वनुस्वारमापद्यते । "अनुस्वारस्यऽ०मित्यादेशः शषसहरेफेषु" । तेषामनुस्वारादीनामङ्गुलिभिः प्रकारं[1] दर्शितवान्याज्ञवल्क्यः ।

मुष्ट्याकृतिर्मकारे तु नकारे तु नखग्रहः । ककारान्ते टकारान्ते ङणेऽधोऽङ्गुलिनामनम् ॥१॥

पञ्चाङ्गुल्यं पकारे तु तकारे कुण्डलाकृतिः । ऊर्ध्वक्षेपाच्च योष्मास्यादधः क्षेपाच्च यो भवेत् ॥२॥

एकैकामुत्सृजेद्धीरः स्वरिते तूभयं क्षिपेत् । स्वरितं यद्भवेत्किञ्चित्सवकारोष्मकं ततः । दीर्घं वा यदि वा ह्रस्वं निक्षेप उभयोरपि ॥३॥

जात्ये च स्वरिते चैव यकारो दृश्यते यदि । कर्तव्यन्तूभयोः क्षेपो व्वा ।व्यैरिति दर्शनम् ॥४॥

तथा च लघुमाध्यन्दिनीयशिक्षायाम् । कनिष्ठा[2]मोचनं कुर्यान्नीचे च प्रचये सति । नमः कूप्याय प्रथमो-द्वितीयो जाग्रतस्तथा ॥१॥

तर्जनीमोचनं कुर्यादुदात्ते तु विसर्गके । देवो धर्मस्तथा ह्रस्वे स्वरिते तूभयं क्षिपेत् ॥२॥

अश्वो मर्त्यो भवेल्लक्ष्यं स्वारे दीर्घे कनिष्ठिकाम् । उभयोरपि ह्रस्वे च वकारे स्वरिते सति ॥३।

दीर्घेऽपि चोभयोः क्षेप इति शास्त्रव्यवस्थितिः । अस्यार्थः । मकारे मुष्टिः । नकारे अङ्गुष्ठेन तर्जनी-

---

१. प्रकारमित्युचितः पाठः ।

२. कनिष्ठाया मोचनम् मुष्टितोऽग्रकरणाम् ।

नखग्रहणम् । ककारे टकारे ङकारे, णकारे पदपाठे वृषण्वश्विवत्यादौ च तर्जनीमधो नामयेत् । पकारे पञ्चाङ्गुलिमेलनम् । तकारे कुण्डलाकारः । एते प्रकाराः पदान्तीयेषु सर्वत्र । उदात्तात्परे विसर्गे तर्जन्याः प्रसारणम् । अनुदात्तात्प्रचयाच्च परे कनिष्ठिकायाः प्रसारणम् । दीर्घात्स्वरितात्परे विसर्गे कनिष्ठिकायाः क्षेपः । वकारयुक्ताद्दीर्घादपि परे चोभयोः । यकारयुक्ताज्जात्यस्वरिताद्दीर्घादप्युभयोः । इत्यङ्गुलिप्रदर्शनीयविषया निरूपिताः । अनुस्वार-विषयो व्याख्यायते । अनुस्वारꣳरोष्मसु मकारः ॥१॥

मकारोऽनुस्वारमापद्यते रेफसहितोष्मपरेषु । यथा अपाम् रसेन । अपाꣳ रसेन । त्वाम् शश्वन्तः । त्वाꣳ शश्वन्तः । देवम् सवितारम् । देवꣳ सवितारम् । उरुम् हि । उरुꣳ हि । तथा च प्रतिज्ञासूत्रे । अनुस्वारस्य ꣳ मित्यादेशः शषसहरेफेषु, तस्य त्रैविध्यमाख्यातं ह्रस्वदीर्घगुरुभेदैर्दीर्घात्परो ह्रस्वो ह्रस्वात्परो दीर्घो गुरौ परे गुरुः । अनुस्वारस्य स्थानेꣳ इत्यादेशो भवति शषसहरेफेषु परेष्विति शेषः। यथा त्रिꣳ शत् । हवीꣳषि । पयाꣳसि । दृꣳह स्व । सꣳ रायः । ह्रस्वादक्षरात्परो दीर्घः । गुरौ परे नाम सँय्युक्ताक्षरे परे गुरुर्भवति । क्रमेणोदाहरणानि । दीर्घात्पराद्ध्रस्वो यथा । पृथिव्याꣳ शतेन । यजूꣳषि । ससृत्राꣳ सम् । अङ्क्ताꣳ हविषा । इषाꣳ रयीणाम् । ह्रस्वात्परो दीर्घो-यथा त्रिꣳ शद्धाम । सर्वꣳ षडिति । भूयासꣳ सुगृहपतिः । सꣳ रास्यपोषेण । गुरौ परे गुरुर्यथा । भेषजꣳ श्रिया । दꣳष्ट्राभ्याम् । सोमानꣳ

स्वरणम् । सि ᳲ ह्यसि । ऋकारसंयोगे परे दीर्घ एव भवति न तु गुरुः । उक्तंच कात्यायनशिक्षायाम् । अनुस्वारस्यङ्० कार आदेशश्छन्दसि स्मृतः । ऊष्मरेफेषु परतस्तस्य त्रैविध्यमुच्यते । ॥१॥

ह्रस्वाद्दीर्घो दीर्घाद्ध्रस्वो गुरौ च परतो गुरुः । ऋकारपर ऊष्मान्तो दीर्घाद्दीर्घोऽपि जायते । ॥२॥

तथा चामोघनन्दिनीशिक्षायाम् । अनुस्वारो द्विमात्रः स्याद्वर्ण[1]व्यञ्जनोदये । ह्रस्वाद्वा यदि वा दीर्घाद्देवानाङ्० हृदये यथा । ॥३॥

सङ्० सृष्टजित्सङ्० सृष्टा संयोगे ह्रस्व इष्यते । इत्यनुस्वारविषयः । अथानुस्वारेऽङ्गुलिप्रदर्शनविचारः । तथा च मल्लकविकृतसर्वसङ्ग्रहहस्तस्वरप्रक्रिया ग्रन्थे । दीर्घे तु देशिनी त्याज्या क्षिप्रं स्याद् द्विलके लघौ । ॥४॥

अस्यार्थः । अनुस्वारप्रकरणस्थत्वाद्दीर्घे अनुस्वारे देशिनी प्रदेशिनी त्याज्या निष्कास्या । द्विलके गुरौ लघौ ह्रस्वे च अनुस्वारे क्षिप्रं स्यात् । क्षिप्रं नाम अग्रिमकारिकायामेवोक्तम् । तर्जन्याः पृष्ठसंश्लिष्टमङ्गुष्ठं चाग्रनामितम् । तं क्षिप्रं हि विजानीयात्स्वरविद्भिरुदीरितम् ॥५॥

अयं भावः । लघौ अनुस्वारे गुरौ अनुस्वारे च तर्जन्याः पृष्ठमङ्गुष्ठाग्रेण नामितं कार्यम् । इदमप्यनुस्वारेङ्गुलिक्षेप इति सामान्येनोक्त्वा, अङ्गुष्ठाकुञ्चनं

१. ऋवर्णः परो यस्मात्तद्व्यञ्जनम् । मध्यमपदलोपिसमासे परपदस्य लोपः । पुनः तादृशव्यञ्जनशब्दस्योदयशब्देन सह षष्ठीतत्पुरुषः ।

लघावनुस्वारे त्वपा ॐ् रसम् दीर्घे रङ्गे[1] च तर्जन्याः प्रसारः परिकीर्तितः ।।६।।

इत्यनया दीर्घेऽनुस्वारे रङ्गे च तर्जन्याः प्रसारणं तदन्ये ह्रस्वे गुरौ चानुस्वारेऽङ्गुष्ठाकुञ्चनमिति, भगवता याज्ञवल्क्येन प्रतिपादितेन शास्त्रेणाप्यविरुद्धं भाति । तर्जन्याकुञ्चनं तु बाध्याभावाद्विशेषविहितत्वाच्च भवति । अत एव विद्वांसोऽपि दीर्घेऽनुस्वारे तर्जन्याः प्रसारणम्, लघौ गुरौ चानुस्वारे तर्जनीपृष्ठेऽङ्गुष्ठं नामयन्ति । स्पर्शे परपञ्चमम् ।।३।।

मकारः स्पर्शे परस्य पञ्चममापद्यते । हिङ्काराय । अहङ्खनामि । इषुङ्गिरिशन्तेत्याद्युदाहरणं बोध्यम् । परसवर्णेषत्प्रकृत्या ।।४।।

परस्य वर्णस्य किञ्चित्तत्सदृशो[2] च्चारणीयम् । अन्तस्थामन्तस्थास्वनुनासिकां परसस्थानाम् ।।५।।

अन्तस्थामन्तस्थासु परासु परेण समानस्थानामनुनासिकामन्तस्थामापद्यते । तँय्यज्ञम् । सँव्वपामि । तँल्लोकम् । तकारो ले लम् ।।६।।

तकारो लकारे लकारमापद्यते । आसील्लोकम् । परिचिल्लोकम् । नुश्चानुनासिकम् ।।७।।

नकारो लकारे परे अनुनासिकं लकारमापद्यते । अस्मिँल्लोके । त्रीँल्लोकान् । स्वरश्छकारे चकारेण सर्वत्र ।।८।।

---

१. रङ्गस्य स्वरूपं पारिभाषिके बहुत्र लिखितमस्ति ।

२. तत्सदृशमित्युचितः पाठः ।

स्वर: छकारे परे चकारेणागमिकेन संविधीयते पदादिमध्यान्तेषु । अच्छावदामसि । माच्छन्द: । जगतीच्छन्द: । यस्यातिह्वायसहेति न । ॥९॥

एतेषान्न । सह्छन्दसः । अतिह्वायछिद्रा, यस्य छाया । ङ्नौ क्ताभ्या ँ सकारे । ॥१०॥

ङ्कारनकारौ यथासङ्ख्यम् ककारतकाराभ्यां व्यवधीयेते सकारे परे । प्राङ्ङ्क्सोम: । समुद्रान्त्समसृपत् । उदस्तभाने लोपम् । ॥११॥

उदः पर: स्तभानशब्दीयसकारो लोपमापद्यते । उत्तभान । 'तस्मादित्युत्तरस्यादे'रित्यस्मिन्सूत्रेऽव्यवहितस्येत्युक्तत्वात् । उद्दिव ँ स्तभानेत्यत्र न सकारलोपो भवति । भाव्युपधश्चरिद्विसर्जनीयो, रेफे लुप्यते दीर्घश्चोपधा । ॥१२॥

भाविसञ्ज्ञोपधो रिफितश्च विसर्गो रेफे परे लुप्यते, उपधा च दीर्घमापद्यते । व्वसुभी रुद्रैः । जटायामुदाहरणम् । अन्तारुक्क्म: । नीरपा ँ सि । रुरू रौद्र: धातू राय: । रेफ ँ स्वरधौ ॥१३॥

भाव्युपधो रिफितश्च विसर्ग: स्वरे परे धिसञ्ज्ञके च परे रेफमापद्यते । पृश्निरक्क्रमीत् । व्वायुरनिलम् । अग्निर्मूर्द्धा । त्वष्टुर्जामात: । अहर्जिन्व । "अहरभकारपर" मित्युक्तत्वात् । शुध्यतु शमहोभ्य: । स्वर्द्यौरिव । 'पदादिश्चाजित्पर' इत्युक्तत्वात् । स्वर्ग्याय । 'अनरणे' इत्युक्तत्वात्स्वाय चारणाय च । "अजित्परत्वा" त्प्राप्तस्य निषेध: । कण्ठ्यपूर्वो यकारमरिफित: ॥१४॥

रिफितभिन्नः कण्ठ्यपूर्वो विसर्गो यकारमापद्यते स्वरे परे। यऽइमा व्विश्श्वा। शुष्म्माऽओषधीनाम्। यवयोरिति लोपः। लोपन्धौ ॥१५॥

अरिफितः कण्ठ्यपूर्वो विसर्गो लोपमापद्यते धौ[1] परे। देवा देवैः। अयक्ष्मा मा। भूमेश्चाकारेऽपृक्ते ॥१६॥

भूमिशब्दसम्बन्धी विसर्गो लोपमापद्यते अपृक्ताकारे परे। भूम्याददे। सर्वोऽकार ओकारम् ॥१७॥

ह्रस्वाकारपूर्वो अरिफितो विसर्गः सोपध ओकारमापद्यते, धौ परे। "लोपं धा"[2] वित्यस्यापवादः। देवो-देवैः, देवो वः सविता। अकारे च ॥१८॥

अरिफितो ह्रस्वकण्ठ्यपूर्वो विसर्गः सपूर्वओकारमापद्यते अकारे परे। स्तुपोऽसि। कृष्णोऽसि। स्वोरु हावहश्च रात्र्याम् ॥१९॥

स्वरित्ययं रुहे अहरित्ययं रुहे अहरित्ययं रात्रिशब्दे परे सपूर्वं ओकारमापद्यते। स्वोरुहाणाः। अहो-रात्रयोः॥ चछयोः शम् ॥२०॥

विसर्गश्चछयोः शमापद्यते। इन्द्रश्च। प्रजापतिश्छन्दः। तथयोः सम् ॥२१॥

विसर्गस्तथयोः समापद्यते। कस्त्वा। नमस्ते। अधि-कारऽ० शाकल्यः शषसेषु ॥२२॥

एषु विसर्गो विकारन्नापद्यते शाकल्यमतेन। व्यायव्व्याः श्वेताः। अग्नीषोमयोः षष्ठी। व्वानस्प्पत्त्यः। प्रकृत्त्या कखयोः पफयोश्च ॥२३॥

---

१. 'धि, इति संज्ञाशब्दः।

२. 'लोपं धौ, इत्यस्य सूत्रस्यापवादोऽयमित्यर्थः।

करवयोः पफयोश्च परयोर्विसर्गः प्रकृत्या भवति ।
सिमाः कृण्वन्ति, ततः खनेम । व्वसोः पवित्रम् ।
याः फलिनीः । तस्मिँल्लल्हजिह्वामूलीयोपध्मानीय-
नासिक्या न सन्ति माध्यन्दिनानाम् ॥२४॥

इति पाणिनीयसूत्रैः प्राप्ताः प्रतिषेधाः बोध्याः ।
लुङ् मुदि जित्परे ॥२५॥

जित्संज्ञके परे मुत्सञ्ज्ञके च परभूते विसर्गो लुप्यते ।
अमृतास्तुताः । ऊर्ज्जस्त्थ । उपवसने पीवः ॥२६॥

अयं विसर्गो लुप्यते उपवसने परे । पीवोपवसनानाम्
स ओषधीमयोः ॥२७॥

स इति विसर्गो लुप्यते ओषधीशब्दे इमशब्दे च परे ।
सौषधीरनु । सेमान्नः । व्यञ्जने च ॥२८॥

स इत्ययं विसर्गो लुप्यते व्यञ्जने परे । स ते लोकः
स पर्यगात् । स बोधि । स्य एष च ॥२९॥

स्यः एषः इमौ विसर्गौ लुप्येते व्यञ्जने परे ।
स्यरात्थ्यः । एष ते । एष च्छागः । स्य व्वाजी । एष
स्य । इदं सूत्रद्वयं "तथयोः स" मित्यादीनां बाधकम् ।
स्य व्वाजी स बोधीत्यादौ "सर्वोऽकारः ओकार"
मित्यनेन पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान्निति न्यायेन
"विप्रतिषेधऽउत्तरम्बलवदलोपे" ॥३०॥

इत्युक्तत्वादेतस्य बाधो [1]मध्येऽपवादः प्राप्तः, अलोप
इत्युक्तत्वान्न भवति । अनितावध्याये ॥३१॥

---

१. मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते–नोत्तरान् । अतश्च परस्य तत्राऽपि बलवत्त्वं भवत्येव ।

अधिकारोऽयम् । विधीयमानमागमविकारादिकार्यमितौ परे न भवति । उपस्थितं विना इति परत्वासम्भवात् । स्थितोपस्थितस्य तु ।कविषयत्वादन्तः पदविकारागमविषयोऽयं निषेधः । अध्याये इत्यधिकारोऽवध्यर्थम् । अधिकारः किम् । तवस्तरमिति तवः । तरम् । इत्यादौ "तथयोः स" मित्यादि भवति । अध्याये किम् । गोव्यच्छमिति गो । व्यच्छम् । इत्यादौ 'स्वरे भावी' इत्यादि भवति । अयं निषेधो विकारवतः पदस्यैव स्थितोपस्थिते नान्यत्र तेन रायस्पोष दऽइति रायस्पोष । दे । अत्र । रायः सहस इति सकारो भवति । इतिवचर्च्चायाम्[1] ॥३२॥

पुनरुच्चारितं चर्चा । इतेः परं पदं तत्र इतौ परे यथा न भवति तद्वदेव । ककारपकारयोः सकारम् ॥३३॥

भाव्युपधः षकारम् ॥३४॥

भाव्युपधो[2] विसर्गः षकारमापद्यते । परिशेषात्कण्ठ्यपूर्वः सकारः ककारे च परे । अधिकारोऽयम् । उत्तरसूत्रेषु यथा योग्यमुभयोः सम्बन्धः । आविर्न्निरिड इडाया वसतिर्व्वरिवः ॥३५॥

एतेषां षण्णां विसर्गः ककारपकारयो र्यथायथं सकारं षकारं चापद्यते । आविष्कृणुष्व । अम्बनिष्पर । इडस्पदे । इडायास्पदम् । व्वसतिष्कृता । व्वरिवस्कृणोतु । दिवोऽककुत्पृथिव्योः ॥३६॥

दिव इत्ययं विसर्गः कपयोः समापद्यते ककुत्पृथिवीशब्दौ वर्जयित्वा । दिवस्परि । दिवस्पुत्राय ।

१. चर्चाशब्दार्थः कः इति जिज्ञासायामग्रे उच्यते-पुनरुच्चारितं चर्चा इति ।
२. भाविनी उपधा यस्येत्यर्थः ।

दिवस्पृष्ट्ठे । अककुदित्यादि किम् । दिवः ककुत् ।
दिवः पृथिव्याः । रायः सहस्प्पोषपुत्रयोः ॥३७॥

एतौ यथासङ्ख्यम् पोष पुत्रयोः परयोः सकारमा-
पद्येते । रायस्पोषे । सहसस्पुत्रः । तमसौऽपरस्तात् ॥३८॥

कपयोरयं विसर्गः समापद्यते परस्ताच्छब्दं वर्जयित्वा ।
तमसस्परि । अपरस्तात्किम् । तमसः परस्तात् ।
तमसस्पृथिव्याम् । अद्ध्वनो रजसोरिषस्पृशस्पातौ ॥४०॥

एते चत्वारः पाधातौ सकारमापद्यन्ते । अद्ध्वनस्प्पातु ।
रजसस्पाति । रिषस्पाहि । स ँ स्पृशस्पाहि ॥
अद्ध्वनस्कुर्बिति च ॥४१॥

एतन्निपात्यते । सकमाँ २ ऽ । अद्ध्वनस्कुरु । समान-
पदे च ॥ ॥४२॥

एकपदे विद्यमानो विसर्गः कपयोर्यथायथं सकारं-
षकारं चापद्यते इतौ परे चर्चायां च न । श्रेयस्क्कर ।
तपस्प्पतिः । हविष्कृत् । चतुष्पात् । स्थितोपस्थिते ।
श्रेयः करेति श्रेयः कर । तपः पतिरिति तपः ।
पतिः । जाः पत्यमिति जाः । पत्त्यम् । हविष्कृदिति-
हविः कृत् । चतुः पादिति चतुः । पात् । इत्यादि
भवति ॥ परावसाने ॥४३॥

अवसानस्थिते परिशब्दे परे विसर्गः समापद्यते ।
ओषधयस्परि । अवसाने किम् । हेडः परि ते वृणक्तु ॥
कविः करत्कृधिषु ॥४४॥

एतेषु विसर्गः कृधि शब्दे सकारं षकारं चापद्यते ।
वसुष्कविः श्रेयसस्क्करत् । पुनस्कृधि ॥ कृषीश्च
कृधौ सकारम् ॥४५॥

कृषीरित्ययं विसर्गः कृधिशब्दे सकारमापद्यते। भाव्युपधत्वात्पूर्वसूत्रेण षकारे प्राप्ते विधिः। कृषीस्कृधि ॥ सदो द्यौर्न्नमस्कृतं पितापथेषु ॥४६॥

सद इत्यादीनां त्रयाणां विसर्गः कृतमित्यादौ यथायथं-सं षं चापद्यते! येषामप्सु सदस्कृतम्। उपहूतो-द्यौष्पिता। शर्म्म सप्प्रथा नमस्प्यथे। पतितालव्य-स्वरोदये, पदे च ॥४७॥

तालव्यस्वरान्ते पतिशब्दे पदरूपे परे विसर्गः सकारमापद्यते। तालव्यस्वरोदय इति सम्भवाभि-प्रायम्। ब्रह्मणस्पते। व्वाचस्प्पतये। व्वाचस्पतिम्। पदे किम्। "तस्मिन्निति निर्दिष्ट" इति सप्तमी-निर्दिष्टवर्णविषयम्। अत्र चेदमेव ज्ञापकं पदावयवे-व्यवहितस्यासम्भवात्। यतो जातः प्प्रजापतिः॥ न परुषः परुषि ॥४८॥

परुष इत्ययं विसर्गः परुषि न सकारमापद्यते। "समानपदे चे' ति प्राप्तस्य निषेधः। प्ररोहन्ती परुषः[1] परुषः॥ वाजपतिर्वासऽएदिधिषुरन्तः पर्श व्व्येनान्तः पाश्श्व्र्यमिति च ॥४९॥

कपयोर्व्वाजपतिरित्यादीनां त्रयाणां विसर्गो अन्तः-पर्शव्व्येनेत्यादि पदद्वयसम्बन्धी च न विकारमापद्यते। व्वाजपतिः कविः, "कविः कर" दित्यस्य निषेधः। व्वासः पल्प्पूलीम्। एदिधिषुः पतिम्। अन्तः पर्शव्येन। अन्तः पाश्श्व्र्यम्। "समानपदे चे" ति प्राप्तस्य निषेधः। इति चेति अनुक्तसमुच्चयार्थं-

---

अत्र विसर्गस्य सत्त्वं प्राप्तमनेन निषिध्यते।
उपस्थित इतिशब्दस्तस्मिन् परे सति-इत्यर्थः।

तेन जातः पतिरित्यत्र न सकारः ॥ "अहः पतौ रेफम्, अहरित्ययंविसर्गः पतिशब्दे परे रेफमापद्यते। समानपदेइत्यस्यापवादः । अहर्पतये । स्थितोपस्थिते तु अहः पतयऽइत्यहः । पतये ॥ परश्च मूर्धन्यम् ॥५१॥

अधिकारोऽयम् । परश्चेतितऽआघादनाऽम्बरादित्यस्मात्प्राक् मूर्धन्यमिति तमभिव्याप्य । स्वर्धूः सा ᳪ सह्योः ॥५२॥

स्वः धूः इमौ यथासंख्यं साम सह इत्येतयोः रेफमापद्यते, परश्च मूर्द्धन्यम् । स्वर्षामप्साम् । इतं धूर्षाहौ । "विकारी यथासन्न"—मिति ईषद्विवृतत्वात्षकारः । स्थितोपस्थिते स्वः सामिति स्वः । साम् । धूः सहाविति धूः । सहौ । उकारन् दुर्दे ॥५३॥

दुरित्ययं विसर्जनीयः उकारमापद्यते परश्च मूर्द्धन्यम् । घिसञ्ज्ञकत्वादसोष्मत्वान्निरनुनासिकत्वाच्च उकारः । परिते दूडभः । स्थितोपस्थिते दुर्दभऽइति दुः । दभः । अध्याय इत्युक्तत्वादुपस्थिते "रेफ ᳪ - स्वरधा" विति भवति, स्थिते तु न संहिताया-अभावात् । ओकारमितः सिञ्चतौ सोपधः ॥५४॥

इत इत्ययं विसर्ग पूर्ववर्णसहित ओकारमापद्यते सिञ्चतौ परे परश्च मूर्द्धन्यम् । परीतो षिञ्चता सुतम् । इति विसर्गसन्धिकार्यम् ।

## अथ विसर्गाङ्गुलिप्रदर्शनप्रकारमाह भगवान्महर्षि- याज्ञवल्क्यः ।

हकारो नैव मन्तव्य इति शास्त्रव्यवस्थितिः । इति वचनात्तत्स्वराग्रे तादृशस्वरानुकूलो विसर्ग उच्चारणीयो न हकारसदृश इत्युच्चारणकर्तृशासनाद् व्यवस्था बोध्या । त आघादनाडम्बरात् ॥५५॥

आघाशब्दात्परस्तकारो मूर्धन्य मापद्यते । स चेदाघाशब्द आडम्बरशब्दात्परो न । दार्वाघाटः । जित्सञ्ज्ञकत्वादसोष्मत्वाच्च टः स्थितोपस्थिते तु दार्वाघातऽइति दारु । आघातः । अनाडम्बरादिति किम् । शब्दायाडम्बराघातम् । वनसदोऽवेटो रेफेण ॥५६॥

वनशब्दः सदशब्दे परे रेफेण व्यवधीयते वनशब्दो वेट्शब्दात् परो न चेत् । भुरण्यवो वनर्षदो वायवः । स्थितोपस्थिते वनसदऽइति वन । सदः । अवेटः किम् । अप्पसु षदेवेड्वनसदे । पत्यौ च सकारेण ॥५७॥

वनशब्दः पतिशब्दे सकारेण व्यवधीयते । व्वनस्पतिः शमिता देवः । इदं शाखान्तरविषयम् । अत्र लेखनं तु सकारेणेत्यनुवृत्तिप्रदर्शनार्थः । ऋतावरौ च प्रतिपरयोः ॥५८॥

ऋत अवर एतौ पति परयोः सकारेण व्यवधीयेते । तव व्वायवृतस्पते । तूणवद्ध्ममवरस्पराय । स्थितो-

पस्थिते तु ऋतपतऽइत्यृत । पते । अवरपरायेत्यवर । पराय । तद्बृहतौ करपत्योस्तलोपश्च ॥५६॥

तत् बृहत् एतौ करपतिशब्दयोः प्रत्यययोर्यथासङ्ख्यं सकारेण व्यवधीयेते । पूर्वपदयोश्च तकारलोपो भवति । यथा तत्करान् । तस्कराँ ऽ २ । उत । बृहत् पतिः । बृहस्पतिः । परिकृते षकारेण ॥६०॥

परीत्ययं कृते षकारेण व्यवधीयते । परिष्कृताः शुक्राः । स्थितोपास्थते तु परिकृताऽइति परि । कृताः । चन्द्रे सुशकारेण ॥६१॥

सुशब्दः चन्द्रे परे शकारेण व्यवधीयते । उभे सुश्चन्द्रः । स्थितोपस्थिते सु चन्द्रेति सु चन्द्र । दुधुक्षन्धो दकारम् ॥६२॥

दुधुक्षन्नित्ययं धकारो दकारमापद्यते । बृहतीन्दुदुक्षन् । स्थितोपस्थिते दुधुक्षन्निति दुधु क्षन् । भाविभ्यः सषठं० समानपदे ॥६३॥

भाविभ्यः परः सकार एकपदे विद्यमानः षकारमापद्यते । षात्तथौ मूर्द्धन्यम् ॥६४॥

षकारात्परौ तथौ मूर्द्धन्यमापद्यते । ब्रजङ्गच्छ गोष्ठानम् । परमेष्ट्यभिधीतः । अप्प्स्वग्न्तरा सुषाव । भुवना सीषधाम । दुष्टरस्तरन् । तकारस्य टकारः[1] । जित्संज्ञकत्वात्सोष्मत्वाच्च थस्य ठः[2] । स्थितोपस्थिते तु । गोस्थानमिति गो । स्थानम् ।

---

१. अयमेव नियमः पाणिनितन्त्रे "ष्टुना ष्टुः" इति रूपेण स्मृतः ।
२. पूर्ववदेव ।

परमेस्थीति । परमेस्थी । दुस्तरऽइति दुः । तरः ।
सुसावेति सु । सा वा । सीसधामेति सीसधाम ।
तस्मादित्युत्तरस्येत्यव्यवहितस्य । तेन प्रेषित इत्यत्र तकारस्य मूर्द्धन्यो न । अनुस्वाराच्च तत्पूर्व्वात् ॥६५॥

भाविपूर्वादनुस्वारात्परः सकारः षकारमापद्यते । तपूं ष्यग्ने । पुरोडाशैर्हवीं ष्या । तत्पूर्वात्किम् । वामनां सि । करेफाभ्यां च ॥६६॥

ककाररेफाभ्यां च परः सकारः षकारमापद्यते ऋक्षु । वनर्षदः । अनुस्वारात्ककाराच्च परस्य षत्वं व्याकरणसिद्धम् । अत्र लेखनं तु हिं॰ सीर्ह्हक्सामयोरित्यादिनिषेधस्य वक्ष्यमाणत्वात्प्राप्तिप्रदर्शनार्थम् । नेः सीदतेः । ॥६७॥

नेः परः सदधातोः सकार षकारमापद्यते । एदं बर्हिर्न्निषीदत । ससाद च । ॥६८॥

नेः परः ससादेति सकारः षकारमापद्यते । एतस्य सदधातुजत्वात्स्पष्टार्थम् । निषसाद धृतव्व्रतः । ओकारात्सु । ॥६९॥

ओकारात्परः सुसकारः षकारमापद्यते । मो षू[1] णः । ओश्चापृक्तात् । ॥७०॥

अपृक्तादुकारात्परः सुसकारः षकारमापद्यते । ऊद्ध्र्वऽऊ षु[2] णः । अभेश्च । ॥७१॥

अभेः परः सुसकारः षकारमापद्यते । अभी षुणः । परेश्च सिञ्चतेः । ॥७२॥

---

१. सुञ् इत्यव्ययमेतत् ।  २. पूर्ववदेव ।

परेः परः सिञ्चतेः सकारः षकारमापद्यते । परि-
षिञ्चन्ति । अभेश्च । ॥७३॥

अभेः परः सिञ्चतेः सकारः षकारमापद्यते मित्रा-
वरुणा[1]वभ्यषिञ्चन् । वेय्युदयः । ॥७४॥

वेः परीभूतो यकारपरः सकारः षकारमापद्यते ।
व्विष्याम्म्यायुषो न मध्यात् । युदयः किम् । व्विस्वः
पश्य । हेर्म्मिथोदयः । ॥७५॥

हेः परीभूतो मकारपरस्थकारपरश्च सकारः षकारमा-
पद्यते । अस्ति हिष्म्माते । आपो हिष्ठ्ठ । द्यवेश्च ॥७६॥

द्यविशब्दात्परस्थकारोदयः सकारः षकारमापद्यते ।
मकारस्त्वसम्भवान्न सम्बध्यते । उपद्यविष्ठ्ठ ।
नेस्त्यास्तनोः । ॥७७॥

निशब्दात्परस्त्यास्तन्योर्धातोः सम्बन्धिसकारः षकार-
मापद्यते । निः स्त्यायताम् । निः स्तनि हि इति
स्थिते "लुङ्[2] मुदि जित्परे" इत्यनेन विसर्गलोपे कृते
सस्य षः । आप्यायतान्निष्ट्ठयायताम् । निष्टुनिहि ।
ततक्षौ । ॥७८॥

नि इत्यस्मात्परः सकारः षकारमापद्यते ततक्षौ परे ।
तथयोरिति सस्य षः । स्वधया निष्टतक्षुः । अनोः
स्तुवन्त्याम् । ॥७९॥

अनोः परः स्तुवन्ति सकारः षकारमापद्यते । अनु-
ष्ट्टुवन्ति पूर्व्वथा । दुःष्वप्न्यम् । ॥८०॥

इदं कृतषत्वं निपात्यते । दुःष्वप्न्यर्ठ० सुव । स्थितो
[3]पस्थिते दुःस्वप्न्यमिति दुःस्वप्न्यम् । वन्दारुर्म्माकिः ॥८१॥

---

१. कर्मकारकमेतत् सेकक्रियायाम् । २. लुगिति पदच्छेदः ।
३. इति शब्दस्य संज्ञाशब्दोऽयम् ।

एतयोः सकारः षकारमापद्यते । इह यानि विसर्गान्तानि पदानि तेषां तथयोरिति सत्वे जाते षः । गृणाति व्वन्दारुष्ट्टे । माकिष्ट्टे व्व्यथिरादधर्षीत् । सहेः पृतनायाः । ।।८२।।

पृतनाशब्दात्परः सहेः सकारः षकारमापद्यते । पृतनाषाह्याय च । स्थितोपस्थिते[1] पृतनासह्यायेति पृतना । सह्याय । अभाविपूर्वादप्राप्ते विधिः । सधिरठं० शुरदिति । ।।८३।।

एतेषां त्रयाणां सकारः षकारमापद्यते । अप्स्वग्ने सधिष्ट्ठव । अठं० शुरठं० शुष्ट्ठे । अदितिष्ट्ठे । वायुरग्निरग्नेरेकाक्षरे । ।।८४।।

एतेषां त्रयाणां सकारः एकाक्षरे पदे षकारमापद्यते । वायुष्ट्वा पचतैः । अग्निष्ट्टेऽधिपतिः । अग्नेष्ट्वा तेजसा । एकाक्षरे किम् । अग्निस्तिग्ग्मेन । अग्नेस्तनूः । सकारपरे च । ।।८५।।

भाव्युपधः सकारः सकारे परे एकाक्षरे पदे षकारमापद्यते । अवतत्त्य धनुष्ट्वम् । सकारपरे किम् । सवितुस्त्वा प्रसवे । मातृभिरर्च्चिभिः पायुभिर्व्वरूत्रीः ।।८६।।

एतेषां चतुर्णां सकारः षकारमापद्यते । सठं० सृज्य-मातृभिष्ट्वम् । शिवेभिरर्च्चिभिष्ट्वम् । अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वम् । व्वरूत्रीष्ट्वा । प्रकृत्त्या नानापदस्थे तका । ।।८७।।

---

१. इति-इत्यस्य बोधकमिदम् । अत एवोदाहरणे 'साधिरठं० शुरद् इति'' इत्युक्तम् ।

अधिकारोऽयम् । अनुसन्तनोतु बृहस्पतिसुतस्य सुसमिद्धाय सुसन्दृशमभि सत्वाऽभिसँव्विशन्तु सुसस्याऽ अतिस्थूलम्मुसले पत्नी सँय्याजान् कतुस्थलाञ्जि-सक्क्थयो दिविस्पृशा हृदि स्पृश꣡ सीऋक्सामाभ्या तित्तिरिस्ते सीसेन सीसाः सीसं पशुनि गोसनि प्रतिसदृङ्प्रतिसदृक्षासश्चतुस्त्रि꣡०शत् ॥८८॥

एते षड्विंशत्सकाराः प्रकृत्या भवन्ति । हि꣡० सीरि "त्यत्रानुस्वाराच्चेति" प्राप्तिः । ऋक्सामेति द्वये "करेफाभ्यां चेति" । तित्तिरिस्ते सर्पाणामित्यत्र सकारपरे चेति' अन्यत्र समानपदत्वात् । चतुस्त्रि꣡० शदिति किम् । धर्त्रश्चतुष्टोमः । अत्र "लुङ् मुदीति" विसर्गलोपे 'भाविभ्य' इति षत्वं भवति । वीर्य्यं पुत्रोऽनुसन्तुनोतु । वृहस्पतिसुतस्य । सुसमिद्धाय, सुसम्दृशन्त्वा । अभिसत्वा सहोजाः । देवाऽअभि-सँव्विशन्तु । सुसस्याः कृषीस्कृधि । अति स्थूलं चाति-कृशम् । उलूखलमुसले । शँय्युना पत्नीसँय्याजान् । पुञ्जिकस्थला च कतुस्थला । शितिकक्षोञ्जिसक्क्थः । बृहता दिविस्पृशा । भद्द्र꣡ हृदिस्पृशम् । एन꣡० हि꣡० सीः । ऋक्सामयोः शिल्प्ये । ऋक्सामाभ्या ँ सन्तरन्तः । तित्तिरिब्ते सर्पाणाम् । सीसेन तन्त्रम् । हरिणीः सीसाः । सीसञ्चमे । प्रजासनि पशुसनि । गोसनि । प्रतिसदृङ् । प्रतिसदृक्षासूऽएतन । चतुस्त्रि꣡० शद्द्वाजिनः । ऋकाररेफारुदयश्च ॥८९॥

ऋकारे रेफऽअर् इत्येतत्त्रयपरः सकारः प्रकृत्त्या । तिसृभिरस्तुवत । तिस्रश्च मे । व्वाचो व्विसर्ज्जनम् । पृथिवि दिव्युपरिचर्षणिशकुनियासिभ्यः ॥९०॥

एतेभ्यः[1] षड्भ्यः सकारः प्रकृत्या । पृथिवि सदन्त्वा । दिवि सदन्त्वा । उपरि सदो दुवस्वन्तः । चर्षणी सहाँव्वेत्तु । शकुनि सादेन कूर्म्मान् । अवयासिसीष्ठाः । इतिषत्वप्रकरणम् । ऋषरेभ्यो नकारो णकारं६० समानपदे, स्वरयवहकपैश्च ॥९१॥

ऋकारषकाररेफेभ्यः परः स्वरयकारवकारहकारकवर्गपवर्गव्यवहितोऽपि नकारो णकारमापद्यते समानपदे । तस्मादित्युत्तरस्येत्युत्तरस्येत्युक्तत्वाद्वयवधानेऽप्राप्तवचनादेतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवाये भवति नान्यैः । नृमणाः । पुरीषवाहणः । स्थितोपस्थिते तु नृमनाऽइति नृ । मनाः । पुरीषवाहनऽइति पुरीष । व्वाहनः । प्रवाहनऽइति प्र । व्वाहनः । एतैः किम् । रश्मिमना । रसेन । रुचानः । रथेन । प्रनेति नुदाति हिनोमीनाम् । ॥९२॥

प्रेत्यस्मान्नीनुदधात्वोर्हिनोमिशब्दस्य च नकारो णकारमापद्यते । प्रणय देवाव्व्यम् । प्रणुदानः । प्रहिणोमि । प्रकृत्या पदान्तीयः । ॥९३॥

पदान्तीयो नकारः प्रकृत्या भवति । पूषन् । अक्रन् । पितॄन् । निवनिनसः प्रपीनम् । ॥९४॥

ऋषरेभ्यो निवनि नसः इत्येषां प्रपीनमित्ययं नकारः प्रकृत्या । धूम्रा बभ्रुनीकाशाः । ब्रह्मवनि[2] त्वा क्षत्रवनि ।[3] बार्ध्रीनसस्ते । प्रपीनमग्ने । श्रीमनाऽइत्येके ॥९५॥

---

१. पृथिवि-दिवि-उपरि—चर्षणी-शकुनि-यासि-एते षट् शब्दाः । तेभ्यः परः सकारः प्रकृत्या तिष्ठति । २. ब्रह्मवनिमिति पाठः सम्भाव्यते । ३. पूर्ववदेव ।

एकशब्दो मुख्यवाची । अयं च निपात्यते । श्रीमनाः शतपयाः । इन्द्राग्नी चित्रभानो वार्त्रघ्नन्दुः ष्वप्न्यं ध्रुवयोनिः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्याश्च्चर्मम्रम् ॥९७॥

एतान्यष्टौ निपात्यन्ते । इन्द्राग्न्योरुज्जितिम् । इन्द्रायाहिचित्रभानो सुताः । इन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि । दुःष्वप्न्यर्ठ० सु व । ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिः । ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः । पुरोनुवाक्याभिः । पुरोनुवाक्यायाज्याभिः । साध्येभ्यश्चर्म्मम्नम् । तवर्गे च ॥९८॥

ऋषरेभ्यः परो नकारः प्रकृत्या पवर्गे परे । तृम्पन्तु होत्राः । अववत्रन्देन तालु । क्रन्दते । षादनन्तरऋकारे ॥९९॥

षात्परो नकारः प्रकृत्या ऋकारे परे । उग्रस्त्वेष नृम्णः । निषणाय रथवाहणमिन्द्रऽएणं परिणीयते समिन्द्रणऽउरुष्याणो रक्षा णः षु णः षू णः षु णा सत्त्या स्वर्णा स्थूरिणौ प्रणऽआयूꣳषि । ॥१००॥

एतानि त्रयोदश निपात्यन्ते । निषणाय । रथवाहणम् । इन्द्रऽएणम् । परिणीयते कविः । समिन्द्रणो मनसा । उरुष्याणोऽअघायतः । रक्षाणोब्रह्मणस्पते । भी षू' णऽइन्द्र । अभीषुणः । गोमदूषुणा सत्त्वा । स्वर्णं घर्म्मः । अस्थूरिणौ । निसन्नायेतिनि । सन्नाय । रथवाहनमितिरथ । वाहनम् । इति णत्वप्रकरणम् । दीर्घम् ॥१०१॥

अधिकारोऽयम् । अश्व रश्मि मति सुमति चारय घृणिसेदिमेन्द्रिय धारय चित्रभङ्गुर वयुनाश्वस्य हृदयघुष्यर्ताभ्यवताध्यर्च्चशक्ति पुरुशचि वकारे ॥१०२॥

एते पञ्चविंशति[१] ह्रस्वा दीर्घमापद्यन्ते वकारे परे। अश्वावतीम्। रश्मीवतीम्। मतीविदे। सुमतीवृधः। श्वाविद्भौमी। सुतावतः। चारयावृषन्। सेदिमावयम्। इन्द्रियावान्। धारयाव्वसूनि। चित्रावसो। भङ्गुरावताम्। व्वयुनाविदेकः। अश्वस्याविशस्ता। ऋतावानम्। अभीवर्तः। प्रावतावचः। अधीवासम्। अर्च्चा व्विश्वानराय। शक्तीवन्तो गभीराः। इमाऽउत्त्वा पुरूवसो। स्थितोपस्थिते ते तु अश्ववतीमित्यश्व। वतीम्। रश्मिवतीमिति रश्मिवतीम्। मतिविदऽइति मति। व्विदे। सुमतिवृधऽइति सुमति। वृधः। श्वविदिति श्व। वित्। सुतवतऽइति सुत। व्वतः। घृणिवानिति घृणि। वान्। इन्द्रियवानितीन्द्रिय। व्वान्। चित्रवसोऽइति चित्र। वसो। भङ्गुरवतामिति। भङ्गुर। व्वताम्। व्वयुनविदिति वयुन। व्वित्। हृदयविधऽइति हृदय। व्विधः। ऋतवानमित्यृत। व्वानम्। अभिवर्त्तऽइत्यभि। वर्त्तः। अधिवासमित्यधि। वासम्। शक्तिवन्तऽइति शक्ति। व्वन्तः। पुरुवसोऽइति पुरु। व्वसो। शचीवसो। अन्यशाखीयमिदमुदाहरणम्।

नाश्ववद्धिरण्यात् ॥१०३॥

हिरण्यवच्छब्दात्पर अश्व इति शब्दरूपं वदित्येतस्मिन्परे न दीर्घमापद्यते। हिरण्यवदश्ववत्। अभिविक्ख्येषं व्वीरविश्ववत्सवृत्रवाजयन्तेषु ॥१०४॥

---

१. अश्व-रश्मि-मति-सुमति-चारय-घृणि-सेदिम-इन्द्रिय-धारय-चित्र-भङ्गुर - वयुन-अश्वस्य-हृदय-घुष्य-ऋत-अभि-अवत-अधि-अर्च्च-शक्ति - पुरु-शचि-एते - शब्दास्त्रयोविंशति संख्याका एव सन्ति, न तु पञ्चविंशति। अत उदाहरणदर्शनेन श्व-सुत शब्दयोरपि समावेशः करणीय इति प्रतिभाति।

अभीत्ययं ह्रस्वो विक्ख्येषमित्यादिषट्सु न दीर्घमापद्यते । अभि विक्ख्येषम् । अभि वीरोऽअभिसत्वा । अभि विश्वे गृणन्तः । अभिवत्सन् । अभिवृत्रम् । अभिवाजयन्तः । अश्वस्य व्वाजिन इति च । ॥१०५॥

अश्वस्येति ह्रस्वो वाजिन इत्येतस्मिन्परे न दीर्घमापद्यते । अश्वस्य वाजिन. । इति चेत्येवं विधान्योदाहरणसूचनार्थम् । तेनाधिवक्तेति न दीर्घः । विश्वसहभुवपुषवसुषु । ॥१०६।

नेति नानुवर्त्तते । विश्वेत्ययं ह्रस्वः सहादिषु चतुर्षु दीर्घमापद्यते । व्विश्वासाहमवसे । व्विश्वानराय व्विश्वाभुवे । उत व्विश्श्वापुषम् । गन्धर्व्वस्त्वा व्विश्वावसुः । स्थितोपस्थिते[1] तु । विश्श्वसहमिति विश्व । सहम् । व्विश्वभुवऽइति विश्व । भुवे । व्विश्श्वपुषमिति व्विश्व । पुषम् । व्विश्व व्वसुरिति । विश्श्व । व्वसुः । तिष्ट्ठाद्युदात्तम् । ॥१०७॥

आद्युदात्तं तिष्ट्ठेतिपदं दीर्घमापद्यते । तिष्ट्ठा रथमधियम् । तिष्ट्ठा देवो न सविता । आद्युदात्तं किम् । आतिष्ट्ठ व्वृत्रहन् । प्रणवश्ङ्ग्यासेषु । ॥१०८॥

प्रेत्ययं ह्रस्वो वनादिषु त्रिषु दीर्घमापद्यते । प्रावणेभिः सजोषसः । प्राश्शृङ्गा माहेन्द्राः । प्रायासाय । स्थितोपस्थिते प्रवणेभिरिति प्र । वणेभिः । प्रश्शृङ्गा इति प्र । श्शृङ्गाः । प्रयासायेति । प्र । यासाय । धारयाम धारयाम योजाव सचस्व नुद मोषु जयतोरुष्य रक्ष युज यच्छ मत्सथ पिपृत गायता तु येन नकारे ॥१०९॥

---

१. इतिशब्दे परे तु इत्यर्थः ।

धारयामेत्यादयः षोडश ह्रस्वा नकारे दीर्घमापद्यन्ते। धारयामा नमोभिः। योजान्विन्द्र। अवानो देव्या धिया। स च स्वानः स्वस्तये। प्रणुदानः। मोषूणः मोषु किम्। ऊर्ध्वऽऊषुणः। जयता नरः। उरुष्या णः। रक्षा णः। यजानो मित्रावरुणा। यच्छा नः शर्म। मत्सथा नो व्विश्वम्। पिष्टता निरवद्दयात्। गायता नरः। आतू नः। आतु किम्। तु चेतु नो भवन्तु। येना नः पूर्वे। भव च ॥११०॥

अयं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते नकारे परे। भवा नः। स चावरूत्थ्यवाजस्य पायुषु च ॥१११॥

भवेत्ययं ह्रस्वस्सचादिषु चतुर्षु दीर्घमापद्यते। भवा सचा। भवा व्वाजस्य। भवा पायुः नावनयामि ॥११२॥

अवेत्ययं ह्रस्वो नयामि शब्दे परे न दीर्घमापद्यते। अवनयामि। अपृक्तः सौ ॥११३॥

उकारः सौ परे दीर्घमापद्यते। महीमूषु। रथित-कारनकारयोः ॥११४॥

रथीत्ययं ह्रस्वस्तकारनकारयोर्दीर्घमापद्यते। रथीतमम्। रथीनांव्वाजाम्। स्थितोपस्थिते रथितममिति रथि। तमम्। रथिनामिति रथि। नाम्। श्रथोदारिथशोच-पनय सादयज्जु वृषशत्रु सलक्ष्माघाघारात्यृतभवता यकारे ॥११५॥

श्रथादयश्चतुर्दश ह्रस्वा यकारे दीर्घमापद्यन्ते। मध्यम ऀ श्रथाय। उदारिथा यज। बृहच्छोचा

---

१. 'श्रथ-उदारिथ शोच-पनय-सादय-ऋजु-वृष-शत्रु-सलक्ष्म-आघ-अघ-अराति-ऋत-भवत-एते चतुर्दश शब्दाः, एषामन्त्यस्य ह्रस्वस्य दीर्घो भवति यकारे परे। इति सूत्रार्थः। भवतशब्दस्योदाहरणं न दत्तम्।

स्रविष्ट्ठ्य । पनया सुजम् । सादया स्रजम् । ऋजूयताम् । वृषायमाण । शत्रूयतो हन्ता । सलक्ष्मा । यत् । आघाये । अघायत: । अराहीयत: । ऋतायते । स्थितोपस्थिते तु श्रथयेति श्रथय । ऋजुयतामित्यृजु । यताम् । वृषयमाणऽइति । वृष । यमाण: । शत्रुयतऽइति शत्रु । यत: । अघयत इत्यघ । यत: । अरातियतऽइत्यराति । यत: ऋतयतऽइत्यृत । यते ।

**ववृधवृजो:** ॥११६॥

व इत्ययं वृधवृजोर्दीर्घमापद्यते । वावृधे । प्रवावृजे । स्थितोपस्थिते ववृधऽइति ववृधे । ववृजऽइति । ववृजे ।

अद्यतमं० हकारचकारभवतवृणीमहे देवेषु ॥११७॥

अद्येत्ययं तमित्यादिषट्सु दीर्घमापद्यते । अद्यातमस्य । तमिति किम् । अद्यतेऽअपरम् । अद्या हुवेम । हवमद्या च । अद्या भवत । अद्या वृणीमहे । अद्या देवा: ।

न होतरि ॥११८॥

अद्येत्ययं न होतरि दीर्घमापद्यते । अद्य होतारम् ।

श्रृणुत त्विषि ध्रजि भवत पिबेत स्म्म तिष्ट्ठ रक्षामकारे ॥११९॥

श्रृणुतादि नव ह्रस्वा मकारे परे दीर्घमापद्यन्ते । श्रृणुता मऽइयम् । शष्पिञ्जराय त्विषीमते । व्वातऽध्रजीमान् । इदं शाखान्तरविषयम् । माध्यन्दिनानान्तु दीर्घान्तादेव मतुप् । अत एवात्रान्त:पददीर्घीभाव इति स्थितोपस्थितं[1] न । भवता-

१. स्थितोपस्थिते नेति पाठो युक्तः ।

मृडयन्तः । पिबा मित्रस्य । इता मरुतः । हिष्म्मा मनवे । तिष्ट्ठा महा ँ॑ सि । रक्षा माकिः । स्थितोपस्थिते । त्विषिमतऽइति त्विषि । मते । विश्वदेव्यसोमौ वत्याम् ॥१२०॥

एतौ ह्रस्वौ वतीशब्दे दीर्घमापद्यते । विश्वदेव्यावती । सोमावतीम् । स्थितोपस्थिते विश्वदेव्यवतीति विश्व । देव्यवती । सोमवतीमिति सोम । वतीम् । वत्यामिति किम् । सोमवताम् । उषमहोभिर्न्नक्त मीकारैकारौकारनकारेभ्यः ॥१२१॥

महोभिरित्यादि त्रिभ्य ईकारादिचतुर्भ्यश्च पर उष इत्ययं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते । प्रकरणानुसारादन्त्यस्य व्याख्यानात् । महोभिः उषासा नक्ता । नक्तोषासा । आयतीमुषासम् । देवीऽउषासौ । उपाकेऽउषासा नक्ता । योनाऽउषासा नक्ता । नऽउषासाः अव्यवहितस्यासम्भवाद्व्यवधानेऽपि । स्थितोपस्थिते उषसानक्तेत्युषसा । नक्ता । नक्तोषसेति । नक्तोषसा । उषस मित्युषसम् । उषसावित्युषसौ । उषसऽइत्युषसः एतेभ्यः किम् । अग्रऽउषसाम् । पूरुषोऽवसाने ॥१२२॥

पूरुष इत्ययम्आदिदीर्घो निपात्यते अवसाने चेत् । सनवथ पूरुषम् । अवसाने किम् । उदैत्पुरुषः । पूष्णो जहीमस्तेष्वत्र ॥१२३॥

अत्रेत्ययं ह्रस्वः पूष्ण इत्यादिषु त्रिषु दीर्घमापद्यते । अत्रा पूष्णः । अत्रा ते भद्राः । नरः सप्तऽऋषीन्नस्तऽआहुर्न्नियुद्भिष्षु यत्र ॥१२४॥

यत्रेत्ययं ह्रस्वो नर इत्यादिषु पञ्चसु दीर्घमापद्यते । यत्रा नरः यत्रा सप्तऽऋषीन् । यत्रा नश्चक्रा । यत्रा तऽआहुः । त आहु. किम् । यत्र ते ययुः । यत्रा नियुद्भिः अभिमातिपृतनासु सपत्नधूर्व्विश्वसमत्सु पृतना व्रातेभ्यः सहेः ॥१२५॥

अभिमातीत्याद्यष्टभ्यः सह धातोर्ह्रस्वो दीर्घमापद्यते । अन्त्यस्यासम्भवादनन्त्यस्य । तत्र द्वयोः प्राप्तौ सन्निकृष्टविप्रकृष्टयोः सन्निकृष्टस्येत्यादेः । अभिमातिषाहः । पृतनासु सासहिम् । सपत्नसाही । इतं धूर्षाहौ व्विश्श्वासाहमवसे । समत्सु सासहः । पृतनाषाह्याय च । व्रातसाहाः । स्थितोपस्थिते अभिमातिसहऽइत्यभिमाति । सहः । स । सहिमिति ससहिम् । सपत्नसहीति सपत्न । सही । धूः सहाविति धूः । सहौ । व्विश्श्वसहमिति विश्श्व । सहम् । ससहऽइति स । सहः । पृतनासह्यायेति पृतना । सह्याय । व्व्रातसहाऽइति व्रात । सहाः । उक्क्थाच्च शसेः ॥१२६॥

उक्थशब्दात्परः शसेर्ह्रस्वो दीर्घमापद्यते । उक्क्थशासश्चरन्ति । स्थितोपस्थिते-उक्क्थशसऽइत्युक्क्थ । शसः । एवाच्छचक्रमाथ ॥१२७॥

एतेषां चतुर्णां ह्रस्वा दीर्घमापद्यन्ते । संहिताऽधिकारादवसाने न । एवा नो दूर्व्वे । गिरिशाच्छाव्वदामसि । चक्रमा व्वयम् । अथा नऽइन्द्रः । एवशब्दोऽत्रोपमार्थ एव व्याख्यानात्[1] । अवधारणार्थस्य तु न । तदेव शुक्क्रम् । सऽएव जातः । अवसाने तु तानोऽअच्छ । व्विद्मा सौत्रामण्याम् ॥१२८॥

---

१. एव शब्दस्योपमार्थे हेतुमाह-व्याख्यानादिति ।

विद्मेत्ययं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते सौत्रामणीमन्त्रान्वर्जयित्वा। विद्माते॒ऽअग्ने। असौत्रमण्यां किम्। विद्द्मर्षां २।ऽ उ च न। अधायत्स्मग्नावायुषु ॥१२९॥

अधेत्ययं ह्रस्वो दीर्घमापद्यते यत्स्मग्नावायु एतान्वर्जयित्वा। अधासपत्नान्। अधाह्यग्ने। अय'दित्यादि किम्। अध यत्। अध स्म ते व्रजनम्। अधग्ग्ना: अधव्वायुम्। पिबासोमं पिबासुतस्य स्थामयो भुवो नूरणे शमीष्व मामहानो मामहन्तामशीतम रीरिषो रीरिषत यामयन्ति हि ष्मा ते वर्द्धयारयिँ श्रुधीहवश्चरा: सोम सूयवासिनी श्रोताग्रावाणो धर्षा मानुषः पाथादिवो युक्ष्वा हि गमया तमः सिञ्चता सुतं परीवापऽउक्था शस्त्राण्यत्ता हवीँ ष्याच्या जानु क्षामारेरिहत्क्षामा भिदन्तो रुहेमा स्वस्तये जनयथा च धारयामा पितरा मृधो बोधा मे विचृता बन्धमवता हवेषु शृणुधी गिरो रक्षा तोकं चर्षणीसहां चर्षणीधृतो येनासमत्सु वनेमातऽऋद्धयामा ते शिक्षासखिभ्यस्तत्रारथं दीया रथेनेता जयत वर्द्धया त्वं प्रब्रवामा घृतस्याजगन्था परस्पाररिमाहिपरीतता प्लीहाकर्णशुण्ठाकर्णौ प्रकृतिदीर्घावित्येके नीकाशा अनूकाशे न चक्राजरसम्मिथूकस्तरता सखायः सासह्वानपामार्गोभया दतऽऋतीहमभीषु सुष्टरीमा जुषाणो यजा देवान्येना पावका श्वायन्तो यदी सरमा स्वदया सुजिह्व निषद्या दधिष्व सदतना रणिष्ट न भरा चिकित्वान्त्सादयागविष्टाववाददद्रक्षा चायुनक्सृजा रराणः सादन्यमिति च ॥१३०॥

---

१. पिबा सोमम् पिबासुतस्य, स्थामयो भुवोनू रणो, इत्यादीनि अष्टाधिकसप्तति संख्याकानि रूपाणि कृतदीर्घाणि निपात्यन्ते। यथा–पिबा सोममित्यत्र पिबेत्यत्राकारस्य दीर्घः।

पिबासोममित्यादीन्यष्टसप्ततिरूपाणि कृतदीर्घाणि निपात्यन्ते । यत्र तु पदद्वयपाठस्तत्र यथोक्ते दीर्घः । अन्यत्र तु एकपदस्थः । प्लीहाकर्णशुण्ठाकर्णौ प्रकृतिदीर्घौ । इति चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन यच्छ देवायुवम् । यच्छेति किम् । यज्ञपति देवयुवम् । पुरीततेति विभक्तिरविवक्षिता । पुरीतत् इत्यपि भवति । स्थितोपस्थिते शमिष्वेति शमिष्व । ममहानऽइति ममहानः । मम हन्तामिति मम हन्ताम् । अशितमेत्यशितम् । रिरिषऽइति रिरिषः । रिरिषतेति रिरिषत । सुयवसिनीऽइति सु । यवसिनी । परिवापऽइति परि । वापः । चर्षणि सहामिति चर्षणि । धृतः । पुरिततेति पुरि । तता । पुरितदिति पुरि । तत् । प्लीहकर्णऽइति प्लीह । कर्णः । शुण्ठकर्णऽइति शुण्ठ । कर्णः । बभ्रुनिकाशाऽइति बभ्रु । निकाशाः । अनुकाशेनेत्यनु । काशेन, अश्वयन्तऽइत्यश्व । यन्तः । अयुनगित्ययु । नक् । सदन्यमिति स दन्यम् । देवयुवमिति देव । युवम् । अकारोपधो यकारमिति सूत्र एतदध्यायस्याप्येतदध्यायस्थत्वात् । स्थितोपस्थि ते वृष्ट्टिमानिवेति वृष्टिमान् । इव ॥

स्वरात्संयोगादि द्विरुच्यते सर्वत्र ॥१३१॥

स्वरात्परः संयोगस्यादिवर्णः पदान्तमध्यादिषु द्विरुच्यते । अनुष्ट्टुप्ते । इषे त्वा । आच्च्या जानु । स्वरादिति किम् । श्रुधिश्श्रुत्कर्ण । परन्तु रेफहकाराभ्याम् ॥१३२॥

तु[1] एवार्थः । रेफहकाराभ्यां परं व्यञ्जनमेव द्विरुच्यते न रेफहकारौ । सूर्य्यः । पूर्व्वः । प्रबाह्याय ।

---

१. परन्तु रेफ हकाराभ्यामिति सूत्रघटकः तु शब्दइत्यर्थः निपाता अनेकार्था इति यावत् ।

ब्राह्वोः । रेफहकारयोः प्रत्यक्षश्रुतिनिमित्तत्वेन सामान्यप्राप्तकार्यित्वबाधः । तेन रहभिन्नस्यैवानेन द्वित्वम् । अति ह्रस्वम् । अर्हतः । अत्रैतयोर्न द्वित्वम् । स्वरे परे रेफात्परेषामूष्मणामनेन द्वित्वम् । तत्र रेफस्य एकारसहितोच्चारणविधानाद्रेफधर्माभावात् । दर्शतम् । वर्षा, यत्र तुल्यरत्वं तत्र विधानाभावाद्द्वित्वं भवत्येव । वस्स्वैः । व्वष्य्याय । अत एव पाणिनिना "शरोऽचीति" द्वित्वनिषेधः कृतः । परं रेफहकाराभ्यां व्यञ्जनं तूष्मवर्जितम् । द्वित्वमापद्यते रेफहकारौ तु न कुत्रचित् ॥१॥

ऊष्मान्तस्थाभ्यश्च स्पर्शः ॥१३३॥

च एवार्थो भिन्नक्रमः । ऊष्मभ्योऽन्तस्थाभ्यश्च परः स्पर्श एव द्विरुच्यते न ऊष्मान्तस्थाः । अश्म्मन्नूर्जम् । पूष्णः । हस्ते । दधिक्क्राव्णः । शल्म्मलिः ।

विसर्जनीयाद्व्यञ्जनपरः ॥१३४॥

विसर्जनीयात्परः स्पर्शो द्विरुच्यते व्यञ्जनपरश्चेत् । व्विष्णोः क्क्रमः । हिरण्यपाणिः प्प्रति गृभ्णातु ।[1] व्यञ्जनपरः किम् । न्यङ्कुः । गौरमृगः पिद्वः ।

ङ्नौ चेद्ध्रस्वपूर्वौ स्वरे पदान्तौ ॥१३५॥

पदान्तस्थौ ङकारनकारौ स्वरे परे ह्रस्वपूर्वौ द्विरुच्येते । युङ्ङसि । अक्षन्नमीमदन्त । ह्रस्वपूर्वौ किम् । सुप्राङजः । कुटरूनालभते । नास्वरपूर्वा

ऊष्मान्तस्थाः ॥१३६॥

अस्वरेति पर्युदासः । तेन स्वसदृशस्य वर्णस्य ग्रहणम् । ये ऊष्माणोन्तस्थाश्च व्यञ्जनपूर्वास्ते

---

१. ग्रहधातो र्लोटि प्रथमपुरुषैकवचने इदम्, हकारस्य भकारादेशः, हृग्रहोर्भश्छन्दसि इत्यनेन ।

द्विर्वचनस्य निमित्तं न भवन्ति । व्वर्ष्मन् । पार्ष्ण्या वा । व्यञ्जनेनेति किम् । श्नप्त्रे । यैस्तु परं तैर्न पूर्व्वम् ॥१३७॥

यैर्हेतुभूतैः परस्य द्विर्भावः क्वचिदुक्तस्तैः सह संयुक्तं पूर्वं तद्व्यञ्जनं न द्विरुच्यते । कृत्स्नहृदयेन । सकारस्य ऊष्मत्वात्स्पर्शद्विर्भावस्य निमित्तत्वं तेन संयुक्तं पूर्वस्पर्शः तकारो न द्विरुच्यते । अत्र पूर्व-स्थानेन निषेधः परस्य पूर्वेण । यत्र चोभयतः स्पर्शैः संयुक्ताः शषसाः सह । तत्र नाद्यक्रमो ज्ञेयो नापरो बोधितो बुधैः ॥२॥ प्रथमैर्द्वितीयास्तृतीयैश्चतुर्थाः ॥१३८॥

द्वितीयाः प्रथमैश्चतुर्थास्तृतीयैः सह द्विरुच्यन्ते । परिभाषेयम् । यत्र द्वितीयानां चतुर्थानां च द्विर्भावः प्राप्तस्तत्रेदमुपतिष्ठते । 'वक्ख्याय । शीग्घ्र्याय । परमेष्ठी । विष्फुरन्ती । अन्तः पदेऽपञ्चमा पञ्चमेषु विच्छेदम् ॥१३९॥

पदमध्ये विद्यमानाः पञ्चमभिन्नाः स्पर्शाः पञ्चमेषु यममापद्यन्ते । विच्छेद इति यमसंज्ञा । द्विरुक्क्रमः । अग्ग्निः । व्वार्त्रग्घ्नम् । तनच्चिम । आक्त्नी । व्विदद्ध्राते । सिद्ध्मलम् । पाप्प्मने । अत्र "स्वरा-त्सँय्योगादिरिति" द्वित्वे जाते "विकारी यथासन्न" मिति प्रतिवर्गमाद्यानां जित्सञ्ज्ञकत्वात्प्रथमो यमः । द्वितीयानां जित्सञ्ज्ञकत्वात्सोष्मसञ्ज्ञकत्वात्प्रथमो यमः । द्वितीयानां जित्सञ्ज्ञकत्वात्सोष्मसञ्ज्ञ-कत्वाच्च द्वितीयः । तृतीयानां घिसञ्ज्ञकत्वात् तृतीयः । चतुर्थानां घिसञ्ज्ञकत्वात्सोष्मसञ्ज्ञकत्वाच्च चतुर्थः । एवं चत्वारः । अत एव चत्वारश्च यमाः

स्मृता इति पाणिनीयशिक्षायामुक्तम्[1]। एते ज्ञेयाः। न त्वेषामुच्चारणम्। अशरीरं यमं प्राहुरिति शिक्षायामुक्तत्वात्केवलं ज्ञानमात्रफलम्। नानुस्वारः। ॥१४०॥

अनुस्वारो न द्विरुच्यते। इम ँ स्तनम्। सवर्णे ॥१४१॥

सवर्णे परे व्यञ्जनं द्विर्न भवति। संय्यौमि यन्ते। ऋवर्णे ॥१४२॥

ऋवर्णे परे न द्विरुक्तिर्भवति। अनिष्ट्टतः। ऊष्मान्तस्थाभ्य इति प्राप्तम्। यमे ॥१४३॥

यमे परे न द्वित्वम्। यक्क्ना। अत्र अन्तः पद इति ककारात्परे यमे जाते ककारस्य संयोगादित्वात्प्राप्तं द्वित्वन्न। विसर्जनीयः ॥१४४॥

न द्विरुच्यते। दिवः ककुत्। स्वरात्संयोगादिरिति प्राप्तम्। स्वर्गीये चानुत्तमे ॥१४५॥

उत्तमभिन्ने स्ववर्गीये वर्णे परे द्वित्वन्न। यत् ते। तद् देवानाम्। अनुत्तमे किम्। तन्नः। अवसितं च ॥१४६॥

अवसानगतं व्यञ्जनं न द्विरुच्यते। ऊर्क्। 'परन्तु रेफहकाराभ्यामिति' 'ऊष्मान्तस्थाभ्यश्चेति' वा ककारस्य द्वित्वप्राप्तिः। द्वियकारम् ॥१४७॥

इत्यधिकारः। आप्याय्यमानो यमो रय्यै धाय्या रूपं श्रवाय्यं नृपाय्यं पौरुषेया हृदय्याय सह रय्या निचाय्य सन्ताय्येति च ॥१४८॥

---

१. वर्गाद्ययमत्व, वर्गद्वितीययमत्व, वर्गतृतीययमत्व, वर्गचतुर्थयमत्वेतिरूपेण चत्वारः, व्यक्तिकृतभेदे तु विंशतिर्यमाः बोध्याः।

इमानि दशरूपाणि द्वियकाराणि निपात्यन्ते, चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन रय्या पोषेण। आप्यायमानो यमः। यम इति किम्। आप्यायमानोऽमृताय सोम, रय्यै त्वा। यजेति धाय्या रूपम्। तन्नोगीर्भिः श्रवाय्यम्। व्वर्त्ती रुद्द्रा नृपाय्यम्। पौरुषेय्या गृभः। नमो हृदय्याय च। सह रय्या निवर्त्तस्व। अग्ने ज्ज्योतिर्निचाय्य। शरसि सन्ताय्यमाने। द्विसकारठं० शास्स्वरास्स्वेति ॥१४९॥

इमे द्वे द्विसकारे 'स्वरात्सयोगादिरिति' द्वित्वे प्राप्ते द्विसकारत्वविधानं ज्ञापकम्[1]। सामान्यतः अन्तस्थासु सकारस्य द्वित्वन्न। उक्तं च शिक्षायाम्। सकारस्य द्विरुक्तिर्य्यासा द्वयोरेव नान्यतः। आ च सास्स्वा च रास्स्वेति सकारोऽत्र द्विरुक्तिजः ।१। अतएव केशवेनापि न सोव्योश्चेति सूत्रमकारि। न क्षवृचिश्विसतयेभ्यस्त्रैकम् ॥१५०॥

क्षादिभ्यः सप्तभ्यस्त्र इत्यत्र एकमेव व्यञ्जनं न द्वे। क्षत्रस्य योनिः। वृत्रम्बधेत्। चित्रन्देवानाम्। श्वित्रऽआदित्यानाम्। सत्रस्यऽऋद्धिः। लोके तत्र। सचन्त यत्र पूर्वे। वीध्य्राय वाद्ध्र्यीनसोद्रा[2]श्च[3]राश्चेत् ॥१५१॥

एतेषां त्रयाणां द्वित्वं न प्राणिवाचकाश्चेत् नमो व्वीध्य्राय च। वाद्ध्र्यीनसस्ते मर्त्यै। अपा रुद्रो

---

१. ज्ञापनस्वरूपमग्रेऽनुपदमोवोक्तमस्तिसामान्यत 'इत्यादि'।

२. वीध्य्राय-वार्ध्रीनस-उद्र-एषां शब्दानां -ध-घ-द एतेषां वर्णानां द्वित्वं न भवति, एते प्राणिवाचकाश्चेत्।

३. अत्र चर शब्दः प्राणिवाचकः चरणक्रिया-प्राणिष्येव स्वाभाविकी।

मासाम् । चराः किम् । समुद्राय[1] शिशुमारान् । एतत्प्रकरणं ज्ञानार्थं क्वचिदुच्चारणार्थम् । न व्यञ्जनपरस्यैकस्यानेकस्य वोच्चारणे विशेषोऽस्तीति श्रीभाष्योक्तेः । स्वरोऽक्षरम् । सहाद्यैर्व्यञ्जनै रुत्तरैश्चावसितैरित्युक्तम् । तत्र स्वरयोर्मध्ये यत्रानेकं व्यञ्जनं तत्र किं पूर्वस्याङ्गं किं परस्येति निर्णयार्थ-माह । संयोगादिः पूर्वस्य ॥१५२॥

सँय्योगस्यादिवर्णः पूर्वस्याङ्गम्भवति । इषे त्त्वा । अत्र द्वित्वे द्वौ तकारौ । तत्र प्रथमस्तकारः पूर्वस्य द्वितीयस्तकारो वकारश्च परस्य । यमश्च ॥१५३॥

यमश्च पूर्वस्याङ्गम् । रुक्मः । अत्र ककारो यमश्च पूर्वस्याङ्गं मकार उत्तरस्य । क्रमजं च ॥१५४॥

सँय्योगादेः परस्य द्वित्वे न जातं व्यञ्जनं क्रमजं तच्च पूर्वस्याङ्गम् । पाश्श्र्व्यम् । रेफः एकः शकारः पूर्वस्य द्वितीयशकारवकारयकारा उत्तरस्य । वष्ष्र्याय । रेफः एकः षकारः पूर्वस्य द्वितीयषकार-यकारौ परस्य । बाह्वोः । हकार एको वकारः पूर्वस्य । द्वितीयो वकार उत्तरस्य । तस्माच्चोत्तर ँ स्पर्शे ॥१५५॥

क्रमजादुत्तरं व्यञ्जनं स्पर्शे परे पूर्वाङ्गं भवति । पाष्ष्र्या वा । रफो द्वौ षकारौ पूर्वाङ्गं मकारः पराङ्गम् । यदर्थं पूर्वाङ्गपराङ्गत्वविचारस्तदाह । व्यञ्जन ँ स्वरेण सस्वरम् ॥१५६॥

---

१. समुद्द्रायेति द्वित्वमत्रोचितम्, प्राणिवाचकत्वाभावात् ।

यद्व्यञ्जनं यस्योदात्तादेः स्वरस्याङ्गं तत्तत्स्वरयुक्तं स्यात्। उक्तान्युदाहरणानि। उक्तं च, स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च। स्वरप्रधानं त्रैस्वर्यं व्यञ्जनं तेन सस्वरम् सँय्योगपूर्वा व्यञ्जनान्ता अवसानगताः स्वरा द्विमात्राः ॥१५७॥

द्विमात्रा इति ह्रस्वापेक्षया किञ्चित्कालाधिक्यस्योपलक्षणं न तु दीर्घत्वस्य। उक्तं च शिक्षायाम्। स्वराः संयोगपूर्वा[१] ये व्यञ्जनान्ता[२]स्तथान्तगाः[३]। एषां कालो द्विमात्रः स्यान्न तु दीर्घा हि ते स्मृताः।१। अग्निः। तत्। जातः। तम्। उत। च। इति सामान्यविकाराः। स्वरितवर्जमेकोदात्तं पदम् ॥१५८॥

स्वरितमक्षरम् अस्ति यस्मिंस्तत्स्वरितवत्पदं वर्जयित्वा एकोदात्तं पदं स्यात्। एकः स्वरः पदे उदात्तः स्वरितो वा भवति। उत्सर्गोऽयम्। द्व्युदात्तानि तु वाचकानि वक्ष्यति। अवशिष्टं तु। अनुदात्तम्। ॥१५९॥

अनुदात्तोऽस्त्यस्मिंस्तदनुदात्तं स्वरविशिष्टं स्यात्। सादन्यम्। व्वीर्षम्। अनमीवाः। अनुदात्तमित्यधिकारः। नो नौ मे मदर्थे त्रिद्वयेकेषु ॥१६०॥

नः नौ मे एतानि पदानि अनुदात्तानि स्युः। आ नः। तन्नौ। यन्मे। त्रिद्व्येकेष्विति स्पष्टार्थम्। मदर्थ इत्युत्तरार्थम्। सन्देहे साहचर्यं नियामकमिति

१. अस्योदाहरणम्–अग्निः इति। अत्र गकारनकारयोः संयोगात् पूर्वोऽकारः अथवा संयोगः पूर्वो येषामिति विग्रहेण इकारो द्विमात्रतयोच्चारणीयः।

२. व्यञ्जनान्ता इत्यस्योदाहरणम्—तत् जातः—तम् इति। एषु तकारो विसर्गो मकारश्चान्ते सन्ति।

३. उत - च इति द्वौ अन्त्याकारौ अन्तगा इत्यस्योदाहरणम्।

सर्वादेशस्यैव ग्रहणं तेन मे इत्यादेशविशिष्टस्य न ।
रायो मे । मा च ॥१६१॥

मा इत्येतत्पदं अस्मदर्थे विद्यमानम् अनुदात्तं स्यात् ।
प्रमातिर । मदर्थे किम् मा नो मित्रः । वो वान्ते
त्वदर्थे ।१६२॥

वः वाम् । ते । इमानि पदानि युष्मदर्थे वर्तमानानि
अनुदात्तानि स्युः । देवो वः । सँव्वाम् । मा ते ।
त्वदर्थे किम् । ते नोऽअर्व्वन्त । त्वा च ॥१६२॥

इदमनुदात्तं स्यात् । भूताय त्वा । गन्धर्वस्त्वा ।
पूर्ववाननुदेशः ॥१६३॥

पूर्वोक्तार्थवाचकं यत्पश्चादुच्चारितं पदमनुदात्तं
स्यात् । घासमस्मै । एषाङ्कृणुहि । आस्मिन् ।
पूर्व्ववानिति किम् । अस्म्मै क्षत्राय । एषाम्पशूनाम् ।
आस्मिन्त्सधस्त्थे । असि ॥१६४॥

इदमनुदात्तं स्यात् । व्वेदोऽसि । कृष्णोऽसि । यथा
गृभो भुवोऽग्निभ्यः ॥१६५॥

गृभ इत्यादित्रिभ्यो यथेति पदमनुदात्तं स्यात् ।
जीवगृभो यथा । अक्षिभ्रुवो यथा । अग्गनयो यथा ।
एभ्यः किम् । करद्यथा । गिर्व्वणः ॥१६६॥

इदमनुदात्तं स्यात् । परित्त्वा गिर्व्वणः । अग्ने
घृतेनेति च ॥१६७॥

अग्ने इत्येतत्पूर्वं घृतेनेत्येतत्पदमनुदात्तम् । अग्ने
घृतेन । अग्ने किम् । अङ्गिरो घृतेन । प्रचिकितश्च ॥१६८॥

प्रेत्येतत्पूर्वकं चिकित इत्येतत्पदमनुदात्तम् । प्रचिकितो
मनीषा । एनोऽपापे ॥१६९॥

एन इत्येतत्पदमनुदात्तं पापेऽविद्यमानं चेत् । उदेनम् । मैनाम् । अप्स्वेनत् । अविशेषात्सर्वलिङ्गं गृह्यते । अपापे किम् । एनश्चकृम । इह पूर्वं ॐ श्रुतम् ॥१७०॥

इहेत्येतत्पूर्वश्रुतमित्येतदनुदात्तम् । ममेदिह श्रुतम् । तस्याख्यातत्वादनुदात्तमाख्यातमित्यनेनानुदात्तत्वे सिद्धे विधानं ज्ञापकम् । श्रुधातोराख्यातस्य तेन नानुदात्तत्वम् । तेन वरुण श्रुधीहवमित्यस्य न निघातः । इह किम् । सुवाना श्रुतम् । मन्ये पदपूर्वं० सर्वत्र ॥१७१॥

पदपूर्वम्मन्ये इत्येतदनुदात्तम् । होतारम्मन्ये । सर्वत्रेति यद्वृत्तोपपदाच्चेति निषेधबाधनार्थम् । तम्मन्येयुः । वा च कमुचित्समस्म्भाद्धहस्म्मत्वईम्मर्य्या अरे स्विन्निपाताश्चेत्[1] ॥१७२॥

वा इत्यादयश्चतुर्दशशब्दा अनुदात्ता निपाताश्चेत् । व्वाते वा । अग्निश्च । इमा नु कम् । यऽउसम्भूत्याम् । हृदया व्विधश्चित् । अघायतः समस्म्मात् । आधा ये । दधे ह गर्ब्भम् । हि ष्मात । पीयति त्वोऽअनुत्त्वः । काऽ ईमरे । आविर्म्मर्य्याः । अजारे पिशङ्गिला । कः स्वित् । निपाताः किम् । चिदसि । द्रविणमष्टु यज्ञम् । अन्ये निपाता आद्युदात्ता इति । अथो निपाता आद्युदात्ता इत्युक्तत्वात् । पदपूर्वमामन्त्रितमनानार्थे पादादौ ॥१७३॥

पादादौ अविद्यमानं पदपूर्वं सम्बोधनविभक्त्यन्तमनुदात्तं स्यात्तत्पदमामन्त्रितं च परस्परानन्वितम् ।

---

१. वा-च-कम्-उ-चित्-समस्मात्-घ-ह-स्म-त्व-ई-मर्या-अरे-स्वित्-एते चतुर्दश निपाताः ।

अरातिमग्ने । रोदसी विष्णो । नियुद्भिर्व्वायो । तव पूरुष । पदपूर्व्वं किम् । अग्ने व्व्रतपते । व्वागोऽ-अस्मिन् । पूषन्तव । अनानार्थे किम् । अन्विवहि देवाः । अपादादौ किम् । बृषन्नग्ने । तेनानन्तरा षष्ठ्येकपदवत् ॥१७४॥

आमन्त्रितेन अर्थतोदेशतश्च सम्बद्धं षष्ठ्यन्तमेक— पदवत्स्यात् । व्विश्वासां भुवां पते । उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते । देशतः पूर्वं परञ्च । अत एव न पृथिवी त्यादिनिषेधः कृतः । अनन्तरं किम् । पते त्वमस्य । यस्यौषधीः प्रसर्प्पथ । अत्र यस्येति अङ्गमङ्गमित्यनेन सम्बध्यते । न पृथिवि देवयजन्योषध्या देव भूरेः पवित्रपते पवित्रपूतस्या पान्नपान्नृणान्नृपते सोमाग्नेः सोमेन्द्रस्य सोम सुवीर्यस्य सोम व्विश्वेषान्देवाना प्रजापते यस्य यस्य देवाग्ने तवाग्ने व्वाज स्याग्ने वरुणस्यापोऽअस्म्माकम् ॥१७५॥

एतानि पञ्चदश[1] षष्ठ्यन्तानि नैकपदवत्स्युः । प्रतिरक्षन्निति किम् ।[2] अपान्नपाद्यो वः । सुमङ्गल सत्त्य राजन्विकिरिद्र व्विलोहित दरिद्रनीललोहित श्रेयस्कर भूयस्कराम्बेऽम्बिकेऽम्बालिके शख्ये ब्रह्मार्ठं० शिते मरुतोऽअश्विना यव्व्येगव्ये द्यावापृथिवीऽउरोऽ-अग्ना ३ इ पक्त्नीवँल्लाजा ३ न् शाची ३ न्मी-दुष्ट्टम शिवतम सहस्राक्षशते षुधे व्वसुपते व्वसुदावन् ॥१७६॥

---

१. पूर्वतः पञ्चदश द्रष्टव्यानि । तथा हि-देवराजन्योषध्या देवभूरेः-पवित्रपते पवित्र-पूतस्य-प्रपान्नपान्नृणाम्-नृपते सोमाग्निः-सोमेन्द्रस्य-सोम सुवीर्यस्य-सोम विश्वेषांम्-देवानां अजापते यस्य-यस्य देवाअग्ने तवअग्ने वाजस्य-अग्ने वरुणस्य-आपोऽ-अस्माकम् ।

२. प्रतिरक्षन्निति पदं पूर्वत्र नोपलभ्यते ।

एतान्येको[1]नत्रिंशदामन्त्रितानि नानुदात्तानि । अत्र यानि अपूर्वाणि पादादीनि वा तेषामनुदात्तत्वाभावः सिद्ध एव । अन्येषामनेन निषेधः । इडोत्तराणि नव स्वानोत्तराणि षडग्न्युत्तराणि चत्वारि भगोत्तराणि चेन्द्रोत्तरमे कं० सिनीवाल्युतरं च प्रजापतये ब्रह्मन्निति च ॥१७७॥

इडशब्दादुत्तराणि नव । स्वानशब्दादुत्तराणि षट् । अग्निशब्दादुत्तराणि चत्वारि । भगशब्दादुत्तराणि चत्वारि । इन्द्रशब्दादुत्तरमेकं । सिनीवालिशब्दादुत्तरमेकं, प्रजापतये शब्दादुत्तरे ब्रह्मन्निति । एतानि षड्विंशतिरामन्त्रितानि नानुदात्तानि स्युः । इडे । रन्ते । हव्ये । काम्म्ये । चन्द्रे । ज्योते । अदिति । सरस्वति । महि । व्विश्रुति । स्वान । भ्राज । अङ्घारे । बम्भारे । हस्त । सुहस्त । कृशानो । अग्ने । इन्द्र । व्वरुण । मित्र । देवाः । भग । प्रणेतः । भग । सत्यराधः । भग । इन्द्र । गोमन् । सिनीवालि । पृथुष्टुके । प्रजापतये । ब्रह्मन् । भूतिराद्युदात्तम् ॥१७८॥

अथाद्युदात्ताधिकारः । भूतिरित्येतदाद्युदात्तं स्यात् । भूतिश्च मे । नमो भूत्यै येदम् । कदा नरिष्येम पूर्व्वम् ॥१७९॥

---

१. पूर्वप्रकरणात् इमानि गणनीयानि । तथाहि—सुमङ्गलसत्त्पराजन् विकिरिद्र-विलोहितत-श्रेयस्कर-भूयस्कर अम्बे-अम्बिके-अम्बालिके-शेरव्ये-ब्रह्म-संशिति-मरुतः-अश्विनौ यव्ये-गव्ये-द्यावपृथिवी-उरो-अग्ने-पत्नीवत्-लाजिंन्-शाचिन् मीढुष्टम-शिवतम-सहस्राक्ष शतेषुधे-वसुपते-वसुदावन्-एतानि एकोनत्रिंशत् आमन्त्रितानि अनुदात्तानि न भवन्ति ।

नरिष्येमेत्येतत्पूर्वं कदा आद्युदात्तं स्यात् । नरिष्येम कदाचन । नरिष्येम किम् । कदाचनस्तरीः ।
आमन्त्रितं च ॥१८०॥

सम्बोधनविभक्त्यन्तमाद्युदात्तम् । अग्ने गृहपते । तेनानन्तरेत्येकपदातिदेशात् ऊर्ज्जो नपादित्यत्र ऊर्ज्जः शब्दः आद्युदात्तः । वस्तुत ऊर्ज्जः शब्दस्तु अन्तोदात्तः ऊर्ज्जो नपातम् । पदपूर्वमिति तु एतस्यापवादः । तस्याप्राप्तिर्निषेधविषयश्चात्रोदाहरणम् । कृष्णो[1]
मृगसँय्योगे ॥१८१॥

कृष्णशब्द आद्युदात्तः स्यात् । पशुवाचकस्य विशेषणं न चेत् । कृष्णोऽसि । कृष्णो रात्र्यै । अमृगेति किम् । श्वा कृष्णः । अत्र श्वेत्यस्य कृष्ण इति विशेषणम् ।
व्ययवाँश्चान्तः[2] ॥१८२॥

विकारवानन्तः शब्द आद्युदात्तः स्यात् । परोऽन्तः । व्ययवान्किम् । अन्तर्म्महति । अयमव्ययम् अतो वचनादिकृतो विकारो न । परः प्रधाने । ॥१८३॥

अयमाद्युदात्तः प्रधानवाचकश्चेत् । जातः परोऽन्यः । प्रधाने किम् । परो दिवा । अत्र परशब्दोऽन्यवचनः । मात्रा च परिमाणे ॥१८४॥

मात्राशब्दः आद्युदात्तः परिमाणवाचकश्चेत् । कस्य

१. यद्यपि खण्डाकाररहित एव पाठो लभ्यते । तथापि अकारश्श्लेत्तव्यः । पशुवाचकस्य विशेषणं न चेत् इति व्याख्यानुरोधात् श्वा कृष्ण इति प्रत्युदाहरणदर्शनाच्च ।

२. व्ययशब्दो विकारवाची ।

मात्रा । परिमाणे किम् । व्विभूर्म्मात्रा । इदं मातृशब्दस्य तृतीयैकवचनम् । दक्षिणा च ॥१८५॥

अयमाद्युदात्तः । दक्षिणामारोह । न दशविश्वकर्म्मनिषद्येन्द्रस्य पातु सदः सद्भ्येषु ॥१८६॥

दशेत्यादिसप्तसु दक्षिणाशब्द आद्युदात्तो न । निषद्यादिषु त्रिषु अव्यवहितस्यासम्भवेऽपि[1] निषेधो भवत्येव । तस्मिन्निति वर्णसप्तमीनिर्देशविषयं पदे चेति ज्ञापकात् । दक्षिणा दश । दक्षिणा व्विश्श्वकर्मा । दक्षिणतो निषद्य । दक्षिणतऽइन्द्रस्य । दक्षिणतः पातु । तसिलादि[2]ष्विति पुंवद्भावः : अत्र दीर्घान्तत्वाभावात्पूर्वसूत्रस्याप्राप्तौ निषेधो ज्ञापकः । यत्किञ्चिदवयवभेदेऽपि कार्यं प्रवर्तत एवेति । अत एव "एनोऽपापे"[3] इति अप्स्वेनदित्यत्र भवत्येव । दक्षिणासदः । दक्षिणासद्भ्यः । कर्णः स्वाङ्गे ॥१८७॥

कर्णशब्द आद्युदात्तः स्वाङ्गवाचकश्चेत् । कर्णौ ते दन्ती । स्वाङ्गे किम् । कर्णो गर्दभः । महो नपुं० सके ॥१८८॥

मह इत्येतदाद्युदात्तं नपुंसकलिङ्गं चेत् । महस्त्थ । महश्च मे । नपुंसके किम् । महोऽअग्ग्नेः । अयं पुँल्लिङ्गः । श्रवश्च ॥१८९॥

---

१. दक्षिणतो निषद्येत्यादिषु दक्षिणेत्यस्य पुंवद्भावः । तस् प्रत्ययेन व्यवधानं चेति कृत्वाऽव्यवहितस्यासम्भवः ।

२. तसिलादिष्वाकृत्वसुच इति पाणिनिसूत्रेण (६।३।३५) पुंवद्भावः ।

३. पापभिन्नेऽर्थे वर्तमान एनशब्दोऽत्र गृहीतः । अप्स्वेनदित्यत्र तकारेण भेदेऽपि एनग्रहणेन तस्य ग्रहणं भवत्येव ।

अयं चाद्युदात्तो नपुंसकश्चेत् । तव श्रवः । नपुंसके किम् । श्रवश्च मे । अयं पुंसि । अन्धो वीर्ये ।।१९०।।

अन्धशब्द आद्युदात्तो वीर्यवाचकश्चेत् । अन्धस्स्थ । वीर्ये किम् । अन्धन्तमः । अत्रान्धशब्दो निविडार्थः । एता वर्णे ।।१९१।।

अयमाद्युदात्तो वर्णवाचकश्चेत् । एताऽऐन्द्राग्ग्नाः । एताश्चित्राः । वर्णे किम् । एता मे । रोहितश्च केवलः ।।१९२।।

केवलरोहितशब्द आद्युदात्तः । रोहितो धूम्ररोहितः । केवलः किम् । धूम्ररोहितः ।। यन्त्री राट् ।।१९३।।

यन्त्रीशब्द आद्युदात्तो राट्शब्दपरश्चेत् । यन्त्री राट् । राट्किम् । यन्त्र्यसि ।। ओषधीरनामन्त्रिते ।।१९४।।

अनामन्त्रित ओषधीशब्द आद्युदात्तः । याऽओषधीः । अनामन्त्रित इति किम् । यस्यौषधीः ।। सर्वविश्वमानुषाशा स्वाहा व्वाजः पयो नमः ।।१९५।।

सर्वाद्यष्टशब्दा आद्युदात्ताः । सर्व्वं ष्यत् । यत्र व्विश्श्वम् । धर्षामानुषः । व्विश्श्वाऽआशाः । स्वाहा यज्ञम् । व्वाजश्च मे । पयः पृथिव्व्याम् । नमः पर्णाय ।।

असि शिवा-सुषदा-पयस्वती-यत्ते-मधुमती-र्व्वर्च्चस्वा-नोजिष्ट्ठ-भ्राजिष्ठ्ठ-शुष्मिमणी-भद्द्रवाच्याय-वन्द्यो-मेध्यो-यम-आदित्यस्त्रितः-सोमेन-स्वसेत्येतेषु ।।१९६।।

शिवादिषु सप्तदशसु[1] असिशब्द आद्युदात्तः स्यात् । असि शिवा । असि यत्ते । भागोऽसि मधुमतीर्नः ।

---

[1]. सप्तदशसु शिवादिशब्देषु परेषु असिशब्द आद्युदात्तः स्यात् । शिवा-सुषदा-पयस्वती-यत्ते-मधुमतीः-वर्च्चस्वान्-ओजिष्ठ-भ्राजिष्ठ-शुष्मिणी-भद्द्रवाच्याय-वन्दय-मेध्य - यम-आदित्य-गित-सोमेन-स्वसा-एते सप्तदश शिवादयः ।

असि व्वर्च्चस्वानहम् । अस्योजिष्ट्ठोऽहम् ।
असि भ्राजिष्ट्ठोऽहम् । असि शुष्मिमणी । असि
भद्रवाच्याय । असि व्वन्द्यश्च । असि मेध्यश्च ।
असि यमः । अस्यादित्त्यः । असि त्रितः । असि
सोमेन । असि स्वसा । अत्र 'सन्निकृष्टविप्रकृष्टयोरि'
त्यनेन व्यवहितस्य असिस्योनेत्यसिशब्दस्य
सुषदाशब्दपरत्वेऽपि आद्युदात्तत्वम् । न पयस्वती
सहचरितत्वात्सुषदा चासीति सुषदाशब्दस्य
आद्युदात्तत्वनिमित्तत्वम् । तेनासहचरितस्य स्योनासि
सुषदासि । धनदारत्नधाभ्यां च ॥१९७॥

आभ्यां च परोऽसिशब्द आद्युदात्तः । धनदाऽअसि ।
रत्नधाऽअसि ॥ रायोऽपोषे ॥१९८॥

राय इत्येतत्पदमाद्युदात्तं स्यात्पोषशब्दः परो न चेत् ।
रायो मे । तो तो रायः । अपोषे किम् । रायस्पोषम् ।
न भागमीशिषयोः ॥१९९॥

एतयोः परयोः राय इत्येतदाद्युदात्तन्न । रायोभागम् ।
रायऽईशिषे ॥ त्रिधा बद्धहितयोः ॥२००॥

एतयोस्त्रिधाशब्द आद्युदात्तः । त्रिधाबद्धः ।
त्रिधा हितम् । सुकृतं भूते ॥२०१॥

सुकृतपदमाद्युदात्तं भूतकालवाचकं चेत् । पृथुः सुकृतः ।
भूते किम् । सुकृतं च मे । अयं पुण्यवाचकः ।
द्विरुदात्तानि ॥२०२॥

अधिकारोऽयम् । बृहस्पतिव्र्वनस्पतिर्न्नराशꣳ
सस्तनूनप्त्रेतनूनपान्नक्तोषासोषासानक्ताद्यावा
पृथिवी द्यावाक्षामाक्रतूदक्षाभ्यामेतवाऽअन्वेतवा
इति च ॥२०३॥

चकारादुत्तरसूत्रादनामन्त्रितानीत्यपकृष्यते । अनामन्त्रितानि बृहस्पतिरित्यादिद्वादशपदानि[1] द्विरुदात्तानि भवन्ति । अनामन्त्रितानि किम् । तनूनपात्यथः[2] । बृहस्पतेऽअति । व्वनस्पते व्वीड्ड्वङ्गः । द्यावापृथिवीऽउरो ॥ देवताद्वन्द्वानि चामन्त्रितानि[3] ॥२०४॥

आमन्त्रितानि वर्जयित्वा देवताद्वन्द्ववाचकानि पदानि द्विरुदात्तानि । अग्नीषोमौ । मित्रावरुणौ । देवतेति किम् । दीक्षातपसोः । अनामन्त्रितानि किम् । धेनुम्मित्रावरुणा ॥ इन्द्राबृहस्पतीभ्यामिन्द्राबृहस्पती इति त्रीणि ॥२०५॥

अनयोः शब्दयोस्त्रीण्यक्षराण्युदात्तानि स्युः । इन्द्राबृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यम् । इन्द्राबृहस्पती ऽउरुभ्याम् । सर्व्वमग्ना ३ इ लाजीञ्छाचीनिति त्रिमात्राणि च । ॥२०३॥

अग्ना इत्यादि पदत्रयम् सर्वमुदात्तं स्यात् । त्रिमात्रो ऽस्ति येषु तानि त्रिमात्राणि त्रिमात्रस्वर-विशिष्टानि निपात्यन्ते । अग्ग्ना ३ इ । लाजी ३ न् । शाची ३ न् । प्रणवश्च ॥२०४॥

अयं च सर्वोदात्तस्त्रिमात्रश्च स्यात् । मादयन्तामो ३ म्प्रतिष्ट्ठ । ओं ३ क्रतो ॥ विवेशा ३ इति पूर्वं त्रिमात्रस्वरविशिष्टं निपात्यते । विश्वम्भुवनमाविवेश।

---

१. बृहस्पतिः-वनस्पतिः-नराशंसः-तनूनात्रे-तनूनपात्-नक्तोषासा-उषासानक्ता-दयावापृथिवी द्यावाक्षामा-क्रतूदक्षाभ्याम्-एतवा-अन्वेतवा-एतानि द्वादशपदानि आमन्त्रितभिन्नानि द्विरुदात्तानि भवन्ति ।

२. तनूनपात्यथः, अत्र तनूनपात्पथ इत्युचितम् ।

३. चामन्त्रितानि इत्यस्य स्थाने चानामन्त्रितानि इत्युचितं प्रतिभाति ।

हिरण्यगर्भऽ इत्यध्याये विवेशपदस्य चतुर्वारमेक-
स्मिन्दर्भे पठितत्वात्पूर्वत्वस्य सापेक्षत्वात्तदध्यायस्थ-
स्यैव प्लुतत्वम् । तेनान्यत्र अवराँ २ ।। ऽआविवेश ।
अभिसँव्विवेशेत्यादौ न ।। आसीदितिचोत्तरँव्विचारे ।।२०६।।

विचारे वर्तमानमवसानस्थं आसीदितिपदमनुदात्ता-
विशिष्टं निपात्यते । उपरि स्विदासीत् । विचारे
किम् । स्विक्त्कथासीत् ।। पूर्व्वमन्तोदात्तम् ।।२०७।।

विचारे वर्त्तमानं पूर्वम्मन्त्रमध्यस्थमासीदितिपद-
मन्तोदात्तं स्यात् । त्रिमात्रं च निपात्यते ।
अधःस्विदासी ३ त् । विचारे किम् । का स्विदासीत् ।
अन्तोदात्तमित्यधिकारः । द्वन्द्वञ्चेन्द्रसोमपूर्व्वं
पूषाग्निवायुषु ।।२०८।।

पूषादिषु त्रिषु उत्तरपदभूतेषु इन्द्रसोमपूर्वपदकं
द्वन्द्वमन्तोदात्तं स्यात् । इन्द्रापूष्णोः । इन्द्राग्नी
तमप । इन्द्रवायुभ्याम् । सौमापौष्ठाः ।
अग्निश्चेन्द्रे ।।२०९।।

इन्द्रशब्दे उत्तरपदे सति अग्निपूर्वो द्वन्द्वोऽन्तोदात्तः
स्यात् । ऋक्सामयोः शिल्प्ये । यतो गतौ ।।२१०।।

यत इत्येतत्पदमन्तोदात्तं स्याद् गत्यर्थकं चेत् ।
स्वर्य्यतो धिया । गतौ किम् । यतो जातः प्प्रजापतिः ।।
पायोर्व्विशः ।।२११।।

पायुशब्दाद्विश इत्ययमन्तोदात्तः । पायुर्व्विशः ।
पायोः किम् । दैवीर्व्विशः । आयुरर्य्यमोर्व्व-
श्श्यस्तिभ्यः ।।२१२।।

अर्यमादिभ्यस्त्रिभ्यः पर आयुः शब्दोऽन्तोदात्तः ।
अर्य्यमायुः । उर्व्वशश्यायुः । विधानसामर्थ्याद्-
व्यवधानेऽपि । कृष्णमस्ति । आयोष्ट्वा ।
एभ्यः किम् । आयुर्म्मे । अस्य रोचनासौ-
बोधामेपारम्पुरऽएतारोदिवःकोऽहन्त्वम्महींयईश-
ऽईशानेभ्यः ॥२१३॥

रोचनादिद्वादशभ्यः[1] परोऽस्य शब्दोन्तोदात्तः ।
रोचनाऽस्य । असावस्य पिता । बोधा मे ऽअस्य ।
तमसस्पारमस्य । पुर ऽएतारो ऽअस्य । दिवो
ऽअस्य पृष्ट्ठम् । को ऽअस्य । व्वेदाहमस्य ।
त्वमस्य यन्ता । महीमस्य स्तोत्रे, य ऽईशे ऽअस्य ।
ईशानमस्य ।। प्रत्नाँय्यज्ञस्य हविषः पाहीत्पातं मद्ध्वो
यजमानस्य होतुरजरासो लोकेषु च ॥२१४॥

प्रत्नामित्याद्येका[2]दशसु अस्येत्यन्तोदात्तं स्यात् ।
अस्य प्रत्नाम् । अस्य यज्ञस्योदृचः । अस्य हविष
स्तमना । सुमनाऽअस्य पाहि । अस्येदिन्द्रो वावृधे ।
अस्य यन्ता । अस्य मध्वः पिबत । अस्य यजमानस्य ।
अस्य होतुः प्प्रदिशि । अस्याजरासः । अस्य लोकः
सुतावतः । अनुदात्तमन्यत् ॥२१५॥

उक्तान्यं यदस्येतिपदमनुदात्तम् । कस्त्यस्य विष्ट्ठाः ।
षडस्य व्विष्ट्ठाः । अनुदात्तमाख्यातमामन्त्रितवत् ॥२१६॥

---

१. रोचना-असौ-बोधामे-पारम्-पुर एतारो-दिवः-कः-अहम्-त्वम्-महीम्-यईशे-ईशानम् एते द्वादशशब्दाः ।

२. प्रत्नाम्-यज्ञस्य-हविषः-पाहि-इत्-पातम् यन्ता-मध्वो-यजमानस्य-होतुः-अजरासः-लोकः एते एकादशशब्दाः । अत्र पातमित्यस्य स्थाने 'यन्ता इत्युचितम् । उदाहरणे तस्यैव दर्शनात् ।

तिङन्तमामन्त्रितवत्पदं पूर्वमपादादौ विद्यमानं परस्परान्वितार्थकं चेदनुदात्तम् । पशून्पाहि । हव्यर्ठ० रक्ष । पदपूर्वं किम् । व्यन्तु व्वयः । व्विदेदग्निः । अपादादौ किम् । अरातीः सहस्व । परस्परान्वितार्थकं किम् । व्विष्णो पाहि । पाहि यज्ञम् । परोपावप्रतिपर्य्यन्न्वप्यत्यध्याङ्प्रसन्निर्दु-रुन्निविस्वभि ॥२१७॥

परा । उप । अब । प्रति । परि । अनु । अपि । अति । अधि । आङ् । प्र । सम् । निर् । दुर् । उत् । नि । वि । सु । अभि । एते विंशति[1]रुपसर्गाः । तथा चोक्तम् । विंशतेरुपसर्गाणामुच्चा एका[2]क्षरा नव । आद्युदात्ता दशैतेषामन्तोदात्तमभिस्त्वयम् ॥१॥ उपसर्ग उपसर्गे ॥२१८॥

उपसर्ग उपसर्गे परेऽनुदात्तः । सम्प्रच्यवद्ध्वम् । सम्प्र यात ॥ आम्रेडिते चोत्तरः ॥२१९॥

द्विरुच्चारणे पर उपसर्गोऽनुदात्तः । प्रप्र यज्ञपतिम् । सर्ठ० समित् । कृदाख्यातयोश्चोदात्तयोः ॥२२०॥

उदात्तोऽअस्ति ययोरुदात्तावति कृदन्ते उदात्तावत्या-ख्याते परे उपसर्गोऽनुदात्तः । विभ्राजमानः । सम्भरन्ति । उदात्तयोः किम् । उत्पुनामि । अवधूतम् । नाभ्येकाक्षरश्च स्वरसन्धेयेऽकृति ॥२२१॥

---

१. विंशतिरुपसर्गाः परा-उप इत्यादयो मूले एव दर्शिताः । परन्तु गणनायामेकेनन्यूनता ऽऽस्ति । अतो ज्ञायते यद् ' अय, इत्यस्योल्लेखो न कृतः । सोऽपि लेखनीय स्यात् ।

२. आङ-प्र-सम्-निर-दुर-उत्-नि-वि-सु-एते एकाक्षरा उच्चा-एदात्ताः । अवशिष्टा दश आद्युदात्ताः । अभि-अन्तोदात्तं स्वरं लभते-इत्यर्थः ।

अभिरेकाक्षरश्चोपसर्गः स्वरात्मके उपसर्गे सन्धिमति[1] कृदन्तभिन्ने परेऽनुदात्तो न स्यात्[2]। अभ्या[3]दधामि। अभ्य[4]षिञ्चन्। व्याकरोत्। न्यसीददपिता नः। व्यदधुः। अकृति किम्। एज्याऽइ[5]षः। आ पूतः-आजातः ॥२२२॥

आ इत्ययमुपसर्गः पूतजातयोः परयोरनुदात्तो न स्यात्। आ पूतः। आ जातः॥ अधि नि प्र प्रति श्रितात्रिणं प्रभानवः पचतेषु ॥२२३॥

अधीत्यादयश्चत्वारो यथासङ्ख्ये श्रितादिषु चतुर्षु नानुदात्ताः। अधिश्रिताः। विश्वन्यत्रिणम्। [6]प्रभानवः सिस्रते। प्रतिपचता गृभीषत॥ उज्जेषमावर्त्तेऽआपनीफणत्सर्ठ० सनिष्यदत्सँव्वतं प्रयाणर्ठ०सञ्चरन्तर्ठ०सर्ठ०रभद्ध्वं प्रसितिँ व्विक्क्रमस्वेत्येष्वनु ॥२२४॥

उज्जेषमित्यादिदशसु अनुरनुदात्तो न। अनूज्जेषम्। अन्वावर्ते। अन्वापनीफणत्। अनुसर्ठ०सनिष्ष्यदत्। अनुसँव्वतम्। अनुप्प्रयाणम्। अनुसञ्चरन्तम्। अनुसर्ठ०रभद्ध्वम्। अनुप्रसितिम्। अनुविक्क्रमस्व॥ ओपप्प्रोदात्ते ॥२२५॥

---

१. सन्धिरस्ति अस्येति सन्धिमान् तस्मिन् सन्धिमति, सन्धिं प्राप्येत्यर्थः।
२. स्वरात्मके उपसर्गे कृदन्तभिन्ने च सन्धिमति परे अनुदात्तो न स्यात्।
३. अभि + आ + दधामि इतिच्छेदः।
४. 'अभि + असिञ्चन्, इतिच्छेदः।
५. एजि + आ + इष इतिच्छेदः अत्र इव इति इषेः कप्रत्यये कृदन्तता।
६. प्र प्रभानवः सिस्रते-इत्युचितम् प्रतिभाति।

आ । उप । एतौ उदात्ते प्रशब्दे नानुदात्तौ भवतः ।

आप्रयच्छ । उप प्रागात् । अभि [1]प्रेह्युपसम्प्रयात-
प्रत्यातनुष्वासुषाव ॥२२६॥

अभिप्रेहीत्यादि चत्वारि निपात्यन्ते । प्रकृत्याऽऽ-
ख्यातमाख्यातपूर्वम्— ॥२२७॥

नानुदात्तम् । पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु ॥ उदात्तोऽस्ति यस्मिन्नुदात्तवतः आमन्त्रितात्परमाख्यातन्नानुदात्तम् ।

अग्ने पवस्व । होतर्य्यज । एकान्तरादपि ॥२२८॥

एकपदान्तरितादपि उदात्तवत आमन्त्रितात्पर-
माख्यातन्नानुदात्तम् । ब्रह्मन्नश्वम्भन्त्स्यामि ।
अपिशब्दात्क्वचिदनुदात्तम् । इन्द्रायाहि[2] ।
एतन्निर्णये सम्प्रदाय एव शरणम् । यद्वृत्तोपपदाच्च ॥२२९॥

च अप्यर्थे । यदा यच्छब्देन वृत्तं[3] सम्पादितं यत् यदि यतः यत्र यथा ये इत्यादि सर्वविभक्त्यन्तं यद्वृत्तं तदुपपदम् अर्थतः सम्बद्धं येन पदेन तस्मादपि परमाख्यातन्नानुदात्तम् । अपिना यद्वृत्तादपि । यमाहुः । यत्रऽऋषयो जग्मुः । यतो जातोऽरोचथाः । यथा समुद्रऽएजति । य ऽउपरास ऽईयुः । दूरस्थस्यापि अर्थतः सम्बन्धो ग्राह्यः । तथा चोक्तम्[4] । यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य तत् । अर्थतो ह्यसमानानामानन्तर्य्यन्न
कारणम् ॥१॥ हेश्च्च ॥२३०॥

---

१. अभि-प्रेहि-उपसम्प्रयात-प्रत्यातनुष्व-आसुषाव-एतानि चत्वारि निपात्यन्ते ।

२. "इन्द्र + आयाहि" अत्रेन्द्रेति पदमामन्त्रितम् ।

३. वृत्तमित्यस्यैव विवरणं सम्पादितमिति ।

४. दूरस्थस्यापि अर्थतः सम्बन्धे प्रमाणमुच्यते अस्य येनेत्यादि ।

हिशब्दादुत्तरमाख्यातन्नानुदात्ताम् । आपो हिष्ट्ठ ।
उत्तरे ऽपि ॥२३१॥

हिशब्दे परे चाख्यातन्नानुदात्ताम् । वामुशन्ति हि ।
नेत्[1] ॥२३२॥

अस्मान्निपातसमुदायात्परमाख्यातं नानुदात्ताम् ।
नेत्त्वदपचेतयातै । समनसस्क्करत् ॥२३३॥

समनस इत्यस्मात्परं करदित्याख्यातं नानुदात्ताम् ।
असपत्नाः समनसस्क्करत् ॥ द्वयोः पूर्वं समुच्चये ॥२३४॥

द्वयोराख्यातयोः समुच्चये वर्तमानयोः पूर्वंन्नानुदात्ताम् ।
शर्म च स्त्थो व्वर्म्मच स्त्थः । शञ्च व्वक्ष्व परि
च व्वक्ष्व । समुच्चये किम् । तन्तमिद्धतँ व्वज्ज्रेण
तन्तमिद्धतम् । इति प्रकृतिस्वराः । अर्थः पदम् ॥२३५॥

अर्थोऽस्ति यस्मिन्नर्थवाचकः । अक्षरसमुदायो-
ऽक्षरं वा पदं स्यात्[2] । एषः । सः । तत् । उत ।
त्त्वा । आ । अवतु । तच्चतुर्धा ॥२३६॥

तत्पदं चतुःप्रकारं[3] स्यात् । उक्तं च । क्रिया[1]-
वाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत् । सत्त्वाभि-
धायकन्नाम निपाताः पादपूरणाः ॥२३७॥

अर्पयतु । पाहि । इत्याद्याख्यातम् । परा । उप ।
इत्यादयो विंशतिरुपसर्गाः । देवः । सविता ।
इत्यादीनि नामानि । वा च उते त्यादयो निपाताः ।
पदविच्छेदोऽसर्ठ० हितः ॥२३८॥

---

१. 'न + इत्' इति निपातद्वयम् ।

२. अक्षरसमुदायरूपमक्षररूपं वा पदं चतुर्विधं भवति ।

३. क्रियावाचकमाख्यातमेकम्, उपसर्गो द्वितीयः, द्रव्यार्थकं नाम (प्रातिपदिकम्) तृतीयम्, पादपूरणार्थका निपाताः चतुर्थाः ।

पदे पदे विच्छेदो विलम्बेनोच्चारणं असंहितः । न संहिता यस्मिन्त्सः पदपाठः । धिसञ्ज्ञकेषु विसर्गस्य लोपाद्विसर्गान्तत्वस्वरान्तत्वनिर्णयार्थं सन्दिग्धानि लिख्यन्ते । व्विश्श्वा जद'जयस्पृधः । व्विश्श्वा व्विराजति । इतिपदद्वये ऊष्मान्तं ऊष्मा विसर्गः । अन्यत्र स्वरान्तम् । विश्वा रूपाणि ॥२३९॥

पृथिव्या[2]पदं मन्थीत्यस्मिन्त्स्वरान्तमन्यत्रोष्मान्तम् । इमापदं विश्श्वा । वः । ब्रह्म हरी युक्ता जजान नु कम् । इति सप्तसु स्वरान्तम् । अन्यत्रोष्मान्तम् । इमा रुद्रायेत्यादि । व्विष्णो बभूव नासत्या भिषजा न आवोढं या देवा हविषा नो भृडातः । नोऽअच्छ व्विमुञ्च इत्येतेषु दशसु ता इति स्वरान्तमन्यत्रो-ष्मान्तम् । ताः । नः । हिन्न्वन्तु । हविर्दम्पत्योः साध्यादा इति यथासङ्ख्यं स्वरान्ते अन्यत्र विसर्गान्ते । आशीर्द्दाः । व्वसुभिः ॥२४०॥

व्वरिवोव्विदं ष्षुवमित्यनयोर्धिष्ण्यास्वरान्तमन्यत्र विसर्गान्ते । ऊचिषे । धिष्ण्या ये ॥ मर्त्तो व्वुरीत मर्त्तेष्ष्वग्निः परो मर्त्तास्ते मर्त्ता इति च ॥२४१॥

एतेषु चतुर्षु मर्त्तशब्दोऽयकारः । अन्यत्र मर्त्त्यः । क्रमोक्ता वृत्तिः पदेषु ॥२४२॥

क्रमप्रकरणे उक्ता आवृत्तिः पदपाठे स्यादवसानवर्जम् । तद्यथा । पूर्व्वस्योत्तरसंहितस्य ॥२४३॥

स्थितोपस्थितमवगृह्यस्य ॥२४४॥

१. यद् अजयत् स्पृध इति पाठः संभाव्यते ।
२. सूत्रे पृथिव्यपादमस्ति, व्याख्याने इमापदमुक्तम् । अत्र सम्प्रदायः शरणम् ।

अन्तः पददीर्घीभावे ॥२४५॥

विनामे ॥२४६॥

प्रगृह्ये ॥२४७॥

रिफिते निरुक्ते ॥२४८॥

तत्रावग्रहवतः पदस्य स्थितो पस्थितं स्यात्। ये विधयः स्थितोपस्थितो वेष्टने न भवन्ति ते तत्प्रकरण एव दर्शिताः। कुत्रावग्रहः कर्तव्यस्तदाह। समासेऽव ग्रहो ह्रस्वसमकालः ॥२४९॥

समास इत्यधिकारः। समासेऽव ग्रहो ह्रस्वसमकालः एकमात्राकालो विरामः स्यात्। स च चर्चायां प्रदर्शनीयः सम्प्रदायात्। अन्तः पार्श्व्यमित्यन्तः। पार्श्व्यम्। अनुरूपमित्यनु। रूपम्। व्रतपतऽइति व्रत। पते। पुरोगाऽइति पुरः। गाः। मणिमालऽइति[1] मणि। मालः। ऋक्सामाभ्या मित्यृक्। सामाऽभ्याम्। अवग्रह इत्यधिकारः। तरतमयोश्चातिशयेऽदक्षिणप्प्रत्यासङ्गे ॥२५०॥

समासाभावादारम्भः। अतिशये विद्यमानयोस्तरतमयोरवग्रहः स्यात्। दक्षिणशब्दः प्रतियोगी न चेत्। पूर्णतरमिति पूर्ण। तरम्। पप्प्रितममिति प्रप्प्रि। तमम्। अदक्षिणत्या॑द किम्। द्यावापृथिव्योर्ददिणं पार्श्वं व्विश्श्वेषां देवानामुत्तरमित्यत्रोत्तरमित्येव। अतिशये किम्। कारेतरः। [2]व्वीतमहूतमसूतमगोपातमरत्नधातमवसुधातमाः पूर्व्वेण ॥२५१॥

---

१. अत्र वाल इत्यस्य स्थाने माल इति पाठः सम्भाव्यते।

२. वीतम-हूतम-सूतम-गोपातम-रत्नधातम वसुधातम-एते षट् शब्दाः पूर्वेणावग्रहं प्राप्नुवन्ति-इत्यर्थः।

एते शब्दाः पूर्वेणावगृह्यन्ते। देववीतममिति देव। व्वीतमम्। देवहूतममिति देव। हूतमम्। सुसूतममिति सु। सूतमम्। सुगोपातमऽइति सु। गोपातमम्। सुधातमऽइति सु। धातमः। सर्प्पदेवजनेब्भ्यश्च ॥२५२॥

इदं च पूर्वेणावगृह्यते। सर्प्पदेवजनेब्भ्यऽइति सर्प्प। देवजनेब्भ्यः। तूणवध्ममुत्तरेण ॥२५३॥

इदमुत्तरेणावगृह्यते तूणवध्ममिति तूणव। ध्मम्। रायस्प्पोषदे विजावेति च ॥२५४॥

इमे चोत्तरेणावगृह्यते। रायस्प्पोषदऽइति रायस्प्पोष। दे। विजावेति विजा। वा। बहुप्प्रकृतावागन्तुना[1] पर्वणा[2] ॥२५५॥

बहुपदसमासे पाश्चात्कालिकेन पदेनावग्रहः स्यात्। प्रजापतिरिति प्रजा। पतिः। सुप्प्रजाऽइति सु। प्रजाः। तद्वतिति तद्धिते न्यायसं० हितं चेत् ॥२५६॥

वतीति तन्त्रेण द्विरुच्चारितं तदस्ति यस्मिन्त्सः तस्मिन्मत्वर्थे विद्यमाने तद्धिते वति प्रत्यये च परेऽवग्रहः स्यात्। शास्त्रोक्तसन्धिमत्पदं चेत्। मधुमदिति। मधु। मत्। सँव्वतमिति। सम्। व्वतम्। न्यायसंहितमिति किम्। मरुत्वान्। अत्र "स्पर्शोऽपञ्चम" इति तृतीयः शास्त्रसिद्धोपि न कृतः। अतो न भवति। शस्त्वन्त्राताताषु च ॥२५७॥

---

१. आगन्तुनेत्यस्य विवरणं पाश्चात्कालिकेनेति। पश्चात्काले भवमिति विग्रहे कालाट्ठञ् इति ठञ्प्रत्ययः।

२. पर्वणेत्यस्य विवरणं पदेनेति।

शस् इत्यादिषु चतुर्ष्ववग्रहः स्यात् । ऋतुशऽइत्यृतु । शः । अमृतत्वमित्यमृत त्तत्वम्[1] । देवत्रेति देव । त्रा । ज्येष्ठतातिमिति ज्ज्येष्ट्ठ । तातिम् । धात्वर्थे

यकारे स्वरपूर्वे ॥२५८॥

धातुसञ्ज्ञानिमित्तभूतो यकारः क्यजादिः स्वरपूर्वे तस्मिन्परेऽवग्रहः स्यात् । वृषयमाणऽइति वृष । यमाणः । धात्वर्थे किम् । जायमानः । वा ँ॒ सौ

च भूतकाले स्वरेण ह्रस्वादनुषि ॥२५९॥

स्वरेण[2] तृतीया पञ्चम्यर्थे । ह्रस्वस्वरात्परभूते वांसशब्दे भूतकालार्थे परेऽवग्रहः स्यात्स उषरूपो न चेत् । यक्षिवा ँ॒ सऽइति यक्षि । वा ँ॒ सः । ससृवा ँ॒ सऽइति ससृ । वा ँ॒ सः । स्वरेण किम् । चिकित्वान् । ह्रस्वात्किम् । अन्यशाखीयम् । जिगीवा ँ॒ सः । भूतकाले किम् । सुविद्द्वा ँ॒ सऽइति सु । विद्वा ँ॒ सः । अनुषि किम् । तस्थुषः ।

प्रत्क्नपूर्वविश्श्वेमतु ऽभ्यस्त्था ॥२६०॥

एभ्यः पञ्चभ्यः स्थाप्रत्ययेऽवग्रहः स्यात् । प्रक्त्नथेति प्रक्त्न । था । पूर्व्वथेति पूर्व्व । था । विश्श्वथेति विश्व । था । इमथेतीम । था । ऋतुथेत्यृतु । था ।

ह्रस्वव्यञ्जनाभ्या म्भकारादौ विभक्तिप्रत्यये ॥२६१॥

ह्रस्वाद्व्यञ्जनाच्च परे भकारादौ विभक्तिसञ्ज्ञे प्रत्यये परेऽवग्रहः स्यात् । अग्निभि रित्यग्नि ।

---

१. शस्त्वमितिसूत्रदर्शनेन अमृत । त्वमित्येपावग्रहः सम्भाव्यते न तु अमृत तत्वमिति ।

२. पञ्चम्यर्थे तृतीया उक्ता प्रमाणं नोपन्यस्तम् । यदि हेतौ तृतीया स्यात् तस्याश्च ह्रस्वपदार्थैकदेशे ह्रस्वत्वेऽन्वये सति स्वरहेतुकं ह्रस्वत्वमित्यर्थः स्यात्तदा तृतीया स्वार्थ एव स्यात् । ह्रस्वत्वस्य स्वरवृत्तित्वेन स्वरहेतुकत्वं भवत्येव । प्रायः आधारस्यापि हेतुत्वात् ।

भिः । धावद्भ्यऽइति धावत् । भ्यः । तक्षभ्यऽ-इति । तक्ष । भ्यः । समिद्भिरिति समित् । भिः । ह्रस्वेत्यादि किम् । व्रातेभ्यः । पत्नीभ्यः । विभक्तीति किम् । गर्द्दभः । स्विति चानतौ ॥२६२॥

ह्रस्वव्यञ्जनाभ्यामकृतषत्वे सु इति विभक्तिप्रत्यये परेऽवग्रहः स्यात् हृत्स्विति हृत् । सु । अप्स्वित्यप् । सु । धामस्विति धाम । सु । अनतौ किम् । अग्निषु । स्नुषु । विभक्तीति किम् । अमुम् । ह्रस्वेति किम् । यासु । वर्णसङ्ख्येऽन्यतरतः ॥२६३॥

समास इति मण्डूकप्लुतिन्यायेनानुवर्त्तते मध्ये त्वसम्भवान्न सम्बध्यते । वर्णवाचके सङ्ख्यावाचके च समासे विकल्पेनावग्रहः स्यात् । धूम्रशेहितऽइति धूम्र । रोहितः । पञ्चदशेति पञ्च, दश । त्रयो-दशेति त्रयः । दश । विभाषितत्वात् । त्रिनव-त्रयस्त्रिꣳशाविति त्रिनवत्रयस्त्रिꣳशौ । अत्र न [1]व्यवस्थितविकल्पः । सम्प्रदायानुसारेण पठनीयम् । अनुदात्तोपसर्गे चाख्याते ॥२६४॥

अनुदात्ते उपसर्गे आख्यातपरेऽवग्रहः स्यात् । उप-धावतीत्युप । धावति । सम्भरन्तीति सम् । भरन्ति । गिरि त्रशयोः ॥२६५॥

गिरिशब्दोऽवगृह्यते त्रशयोः परयोः । गिरिशेति गिरि । श । गिरित्रेति गिरि । त्र । इवकाराम्रे-डितायनेषु ॥२६६॥

---

१. अत्र नावग्रहः यतो व्यवस्थितविकल्पः । भावाभावान्यतरविधायकत्वं व्यवस्थित-विकल्पत्वम्, क्वचिद् भाव एव क्वचिदभाव एव भवति । ऐच्छिकविकल्पे तूभयं भवति ।

इवकारादिषु चतुर्ष्ववग्रहः स्यात् । स्रुचीवेति स्रुचि । इव । व्वषट्कारेभिरिति वषट् । कारेभिः । सꣳ० समिति सम् । सम् । प्रायनायेति प्र । अयनाय ।

एकात्समीची ॥१६७॥

एकशब्दात्परः समीची शब्दोऽवगृह्यते । एकम् । समीचीऽइति सम् । ईची । एकात्किम् । समीचीऽइति समीची । उरसा । त्वायवः शंय्यो ब्र्वहिर्द्धाऽस्म्मयुम्मृन्मयीꣳ सुम्म्नयाशुया साधुया धृष्ण्णुया व्विशालमनुया ॥१६८॥

एतान्येकादशपदानि सावग्रहाणि स्युः । त्वायवऽइति त्वा । यवः । शंय्योरितिशम् । योः । बर्हिर्द्धेति बर्हिः । धा । अस्म्मयुमित्यस्म्म । युम् । मृन्मयीति मृत् । मयीम् । सुम्म्नयेति सुम्म्न । या । आशुयेत्याशु । या । साधुयेति । साधु । या । धृष्णुयेति धृष्णु । या । व्विशालमिति वि । शालम् । अनुयेत्यनु । या ।

मृगयुमुभयादतोऽपामार्गकिम्पूरुषमिति च ॥१६९॥

एतानि चत्वारि पदान्यवगृह्यन्ते । मृगयुमिति मृग । युम् । उभयदतऽइत्युभय । दतः । अपमार्गेत्यप । मार्ग्ग । किम्पुरुषमिति किम् । पुरुषम् । अधीवासमित्येके ॥१७०॥

एकशब्दो मुख्यार्थः । एतत्सावग्रहं स्यात् । अधिवासमित्यधि । व्वासम् । प्रतिषेधे नावग्रहः ॥१७१॥

प्रतिषेधवाचिनि पूर्वपदेऽवग्रहो न स्यात् । अरक्षसा । अनिरा । उत्तरेण चाकारेण ॥१७२॥

प्रचिषेधवाचिन:[1] परेणाकारेणावग्रहो न स्यात् ।
अनातताय । अनाघृष्याः । द्वापूर्व्वम् ॥२७३॥

द्वा इति पूर्वम्पदं नावगृह्यते । द्वादश । सङ्ख्या
पूर्वश्चा धा ॥२७४॥

सङ्ख्यावाचकपूर्वपदं धा इत्येतस्मिन्परे नावगृह्यते ।
त्रिधा । सप्तधा । कतिधा । द्वन्द्वानि द्विवचनान्तानि
स्वरान्तपूर्वपदानि ॥२७५॥

स्वरान्तपूर्वपदमेषां तानि द्विवचनान्तानि नावगृह्यन्ते ।
मित्रावरुणाभ्याम्[2] । अग्निषोमौ[3] । स्वरान्तेत्यादि
किम् । ऋक्सामयोरित्यृक् । सामयोः । तद्धिते
चैकाक्षरवृद्धावनिहिते ॥२७६॥

तद्धिते सत्येकाक्षरस्य पूर्वपदस्य वृद्धौ उत्तरपदेना-
व्यवहितायामवग्रहो न स्यात् । सौभाग्यम् । त्रैस्तुत्-
भेनेति त्रै । स्तुभेन । अनिहिते किम् । साम्राज्यमिति
साम् । राज्ज्यम् । एकाक्षरे किम् । आनुस्तुभ-
मित्यानु । स्तुभम् । अञ्चतिसहत्योः परयोर्नावग्रहः
स्यात् । प्राङ् । प्रत्यङ् । ऋताषाट् । कृल्लोपे किम् ।
आच्च्योत्या[4] । अच्य । पृतनासह्यायेतिपृतना ।
सह्याय । अनुरुसुभ्यां कृल्लोपे ॥२७८॥

अञ्चतौ सहतौ च परेऽवग्रहनिषेधो न स्यात् ।
उरुव्यञ्चमित्युरु । व्यञ्चम् । सुसाहमिति सु ।
साहम् । समिदाभ्याँव्वत्सरः ॥२७९॥

---

१. प्रतिषेधवाचिनो नञ्शब्दस्य परेण आकारेणावग्रहोनिषिध्यते ।

२. मित्रेति पूर्वपदमत्र स्वरान्तमिति अवग्रहाभावः ।

३. पूर्ववत् ।

४. आच्च्य इति "आ । अच्च्य" इति पाठो युक्तः । "आच्च्योत्या । अच्च्य" इति पाठो न युक्तः ।

सम्। इदा आभ्यां वत्सरेऽवग्रहो न स्यात्। सँव्वत्सरः। इदा वत्सरः। समिदाभ्यां किम्। परिवत्सरऽइति परि। व्वत्सरः। प्राग्निभ्यामनिन्धौ प्रश्लेषे ॥२८०॥

प्र अग्नि इत्येताभ्यां इन्धधातुभिन्ने परे एकीभावसन्धावग्रहः स्यात्। प्राणः। आग्निद्ध्म्। अनिन्धौ किम्। प्रेद्धऽइति प्र। इद्धः। प्राग्निभ्यां किम्। अपानऽइत्यप। आनः। व्वीद्धयायेति वि। ईद्धयाय। जन यत्त्याऽओषधयो वृषायिषत नहि च नास्मभ्यमजावयो व्वलगम् ॥२८१॥

जनयत्त्या इत्यादीन्यष्टौ नावगृह्यन्ते। जनयत्त्यै त्वा। ओषधयः प्प्रति। भागमावृषायिषत। नहि तेषाममा च न। कदाचन। पावकोऽस्मभ्यम्। उपहूताऽअजावयः। अहन्तँव्वलगमुत्किरामि। समानोऽनश्श्वमेधे ॥२८२॥

समानशब्दो नावगृह्यते। अश्वमेधे न चेत्। ये समानाः। अनश्श्वमेधे किम्। समानऽइति सम्। आनः। तेजोऽसीत्यध्याये एतदारभ्याध्यायचतुष्टयमश्वमेधसञ्ज्ञकम्। व्वायुरसजातः समुद्रोऽहोरात्रे व्विश्श्वानरो व्विश्श्वाहाग्रहायणोऽसपक्त्नागोधागोधूमाऽआशुशुक्षणिन्न्यग्ग्रोधः पुरोडाशः प्प्रावणेभिरशीतमतस्क्करान्नमस्म्मसाश्श्वत्थऽउपस्तिम्मीकिर्विश्श्वामित्रो गोपाप्म्प्रऽउगमङ्गानि कक्षीवन्तमदधात्पवीरवन्नीहारेण प्प्रावृता घनाघनऽईदृङ्क्त्यादृङ्शूघनासः। कुयवङ्कुचरः प्प्रियङ्गवो नीवारा एकादश षोडश। चन्द्रमाऽआयुवो व्व्याग्घ्रोऽनड्वान्गा-

विष्ठि्ठरः कपर्दिने पुलस्तये निषङ्गिणे कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यः पुञ्जिष्टेभ्यो द्वीप्याय नीप्याय किठं० शिलायैलवृदाः शूकाराय शूकृताय चराचरेभ्यः पारावतान्गोलत्तिकाऽऽखुरजगरो व्विपन्न्यवो दाक्षा-यणाऽआयुधठं० सुरामं बृहस्पतिर्वनस्पतिर्नराशठं० सुरभिर्न्नरिष्ठायै ॥२८३॥

एतानि सप्ततिपदानि नावगृह्यन्ते। इदं दिक्-प्रदर्शनार्थम्[1]। अन्यान्यप्येवंविधानि द्रष्टव्यानि। उतम्भनम्। आदिसंशयात्। विशौजाः अन्याय-समासात्। उगणाः। उपसर्गैकदेशलोपात्। पुंश्चलूम्। अनुनासिकोपधत्वात्। अवत्तानाम्। धात्वेकदेशलोपात् इत्यादीनि। तथा चोक्तम्। आदिमध्यान्त लुप्तानि समासान्न्यायभाञ्जि च। नावगृह्णन्ति कवयः पदान्यागमवन्ति च ।१। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन ध्रजीमानित्यत्र नावग्रहः। अत्र सम्प्रदायानुसारेण व्यवस्था। अनितावन्तर्वि-कारागमसम्प्रागुक्ताः ॥२८४॥

इति रहितं पदं मध्यस्थ विकारागमसहितं पूर्व्वमुच्चार्य स्थितोपस्थितं कार्यम्। श्रेयस्कर। श्रेयः करेति श्रेयः। कर। आयुष्पाः। आयुः पाऽइत्यायुः। पाः। ऋतस्पते। ऋतपतऽइत्यृत। पते। अहर्पतये। अहः पतयऽइत्यहः। पतये। दुदुक्षन्। दुधुक्षन्निति दुधुक्षन्। व्विश्पतीवेति च ॥२८५॥

१. वायुरवञ्जात इत्यादीनि सप्ततिपदानि अवग्रहं नाप्नुवन्ति इति यदुक्तम्, तद् दिक्प्रदर्शनार्थम्, अन्यान्यपि ईदृशानि अवग्रहं न लभन्ते। यथा उतम्भवमिति, अनादिपदे संशयोऽस्ति उगणा इत्यत्र उपसर्गावयवस्य तकारस्य लोपः, पुंश्चलूम् इत्यनुनासिकोपधः। अवत्तामित्यत्र धात्वेकदेशलोप इत्यादिहेतुभिरवग्रहाभावः।

इदं च पूर्वमुक्त्वा स्थितोपस्थितं कर्त्तव्यम् । व्विश्प-
तीवोपस्थिते ॥२८६॥

व्विश्प्पतीदमिवे[1] परे प्रकृत्या भवति । उपस्थिते विद्यमानं चेत् । व्विश्प्पती च । विश्प्पतीवेति विश्प्पती । इव । सर्ठ० हितावदवग्रहः स्वरविधौ
परञ्च सर्वश्चेदनुदात्तम् ॥२८७॥

अवग्रहयोग्यं पूर्वं पदं स्वरविधौ संहितावद्भवति परं च सर्वञ्चेत् संहितावत्सर्वमनुदात्तं चेत् । आख-रेस्स्थऽइत्याखरे । स्स्थः । "नोदात्तस्वरितोदय" मिति निषेधात्प्रचयो न । प्रजावतीरिति प्रजा । व्वतीः । अत्रो "दात्ताच्चानुदात्त" मिति वकारस्य स्वरितः वह्नि तममिति वह्नि । तमम् । अत्र "स्वरितात्पर" मित्यनेन तममित्यस्य प्रचयो भवति । स्वरविधौ किम् । धावद्भ्यऽइति धावत् । भ्यः । अत्र संहिताया अभावात् "स्पर्शोऽपञ्चम" इति तृतीयो न । सर्वानु-दात्तत्वाभावे विशेषमाह । इति परस्तिर्य्यङ्ङ्नी-
चान्तोदात्ते मध्योदात्ते पर्व्वणि काण्वस्य वा ॥२८८॥

परमित्यनुवर्त्तते । अन्तोदात्ते मध्योदात्ते वा पदे इतेः परभूते चर्चापदे परो भागस्तिर्यङ्नीचोऽविकृतोऽ-नुदात्तोयस्मिन्नेतादृशः स्यात् । व्विरुरुचुरिति वि । रुरुचुः । सान्तपनेभ्यऽइति साम् । तपनेभ्यः । अत्र पूर्वसूत्रेण रुरुचुरित्यनयोः प्रचये प्राप्तेऽनेनानुदात्त एव
विधीयते । अन्तः पददीर्घीभावे ॥२८९॥

---

१. विश्प्पती-इदं पदम् इवशब्दे परे प्रकृत्या भवति इत्यर्थः अतो विश्प्पती इवेत्यत्र सवर्णादीर्घो न भवति ।

पदमध्यस्थं दीर्घत्वं यस्य पदस्य तस्मिन् स्थितो-पस्थितं स्यात्। मामहन्ताम्। ममहन्ताम् इति ममहन्ताम्। पूरुषः। पुरुषऽइति पुरुषः। इदं पदान्त-स्थत्वाभावोपलक्षणम्। आयुनगित्ययुनक्। अन्तः पदे किम्। पिब सोमम्। पिबा सोमम्। विनामे ॥२६०॥

अन्तः पद इत्यनुवर्त्तते। अन्तः पदे दन्त्यस्य मूर्धन्यभावे सति स्थितोपस्थितं स्यात्। सुषाव। सुसावेति सुषाव। सीषधाम। सीसधामेति सीस। धाम। अन्तः पदे किम्। आपोहिष्ठ। हिस्थ। प्रगृह्ये ॥२६१॥

प्रगृह्ये पदे स्थितोपस्थित स्यात्। द्वेऽइति द्वे। द्यावापृथिवीऽइति द्यावा। पृथिवी। इन्द्रवायूऽइतीन्द्र। वायू। चमूऽइति चमू। अस्मेऽइत्यस्मे। त्वेऽइति त्वे। मे— ॥२६२॥

इत्युदात्तस्य प्रगृह्यत्त्वात्। मेऽइति मे। रायः। उदात्तं किम्। मे व्वरुण। अमीऽइत्यमी। प्लुतमितौ ॥२६३॥

प्लुतमक्षरमितौ प्रकृत्या[१]। एतस्योदाहरणं क्रम-प्रकरणे वक्ष्यते। पदान्तपदाद्योः सन्धिरिति नियमात् प्लुतस्य इतौ परे एकपदस्थत्वा "त्कण्ठ्यादिवर्ण-एकार" मित्यस्य प्रकृतिभावविधानं व्यर्थन्तज्-ज्ञापयति। इतौ पदान्तकार्यम्भवति तेन दुरोण सदिति दुरोण। सत्। इत्यादौ "नान्तः पद" इति निषेधा-भावा "त्स्पर्शोऽपञ्चम" इति तृतीयादि भवति। परेण सन्धिस्तु उभे संहिते आहेत्युक्तत्वात्स्थितस्य भिन्नपदत्वाद्भवति। अपहृतमित्यप। हृतम्।

---

[१] इतौ इति शब्दे परे प्लुतवर्णस्य प्रकृतिभावो भवति-इत्यर्थः। क्रमप्रकरणे अस्योदा-हरणं वक्ष्यति ग्रन्थकृता-इति शेषः।

प्रतिज्ञा सूत्रस्था धर्मा न भवन्ति । प्रतिज्ञासूत्रशेष-भूतायाममोघनन्दिन्या[1] "अवग्रहः पदान्तव" दिति सिद्धेऽपि अवग्रहे पुनर्जकारविधानात्तेन यह्वोऽइति यह्वो । ओकारश्च ॥२९४॥

अयमितौ प्रकृत्या । व्वायोऽइति वायो । "ओकारश्च पदान्ते" इत्यनेन प्रगृह्यत्वे स्थितोपस्थिते सति प्रगृह्यत्वात्प्रकृतिभावे सिद्धे पुनर्विधानं नियमार्थम् इतावेव नान्यत्र । व्विष्णवेते । व्वायविह । अनवग्रहः किम् । गाविष्टाविति गो । इष्टौ । अत्र गोशब्दे स्थितोपस्थिते मा भूत । "उकारोऽपृक्त" इत्यनेन प्रगृह्यत्वात्स्थितोपस्थिते । उकारोऽपृक्तो दीर्घमनु-नासिकम्[2] ॥२९५॥

इतौ परे उ इतिपदं दीर्घमनुनासिकं ऊँ इति रूपमा-पद्यते । इति पदे[3] परे स्थितेऽपि । ऊँ ऽ त्यूँ इति सिद्धम् । अन्तरित्यन्तः । "अनाद्युदात्तमित्युक्तत्वात् । अन्तः । पृथिव्व्यः । सद्ध्यूक्कः । करिति कः । "अनुदात्तमित्युक्तत्वात् । कः । स्वित् । स्वरिति स्वः । स्तभितम् । पदमित्युक्तत्वात्पदावयवे न । राजस्वऽइति राज । स्वः । आवरित्यावः । वरिति वः । "समानर्च्चीत्युक्तत्वात् । सन्तु । वः । अन्तः श्लेषऽइत्यन्तः । श्लेषः । अत्र पूर्वभागेऽवग्रहः पदान्त-वदिति स्थितं प्राप्तं" न त्वितिकरणमित्युक्तत्वान्न भवति । त्रिपदाद्यावर्तमाने सङ्क्रमः ॥२९६॥

---

१. एतन्नामिकायां शिक्षापद्धतौ-इत्यर्थः ।

२. द्वितीयान्तं पदमिदम्, आपद्यते इत्यस्य कर्मत्वमत्र ।

३. पदे इति सप्तम्यन्तमुचितम्, न तु द्वितीयान्तम् ।

त्रिपदादीना पुनरावृत्तौ सत्यां सङ्‌क्रमः, सङ्‌क्रम्यते इति सङ्‌क्रमः[1]। आवृत्तानि पदान्यतिक्रम्याग्रिमपरपदं न कर्त्तव्यम् । अनन्तरे— ॥२९७॥

शब्दतश्चार्थतश्चानन्तर्ये सङ्‌क्रमः स्यात् । शब्दत-आनन्तर्ये गन्धर्वस्त्वा व्विश्श्वावसुरित्यत्र व्विश्श्व-स्यारिष्ट्यै इत्याद्येकदोच्चारितं पुनरिन्द्रस्य बाहुरि-त्यादौ सङ्‌क्रम्यते । अर्थतो मधुश्च माधवश्चेत्यत्रो-च्चारितस्य पदसमुदायस्य शुक्रश्च शुचिश्चेत्यादौ सङ्‌क्रमः । द्विपदैकपदान्यप्यनुवाके ॥२९८॥

द्विपदे एकपदे च एकस्मिन्ननुवाके पुनरावृत्तौ सङ्क्रम्य-ते । अत्राप्यनन्तर इति वर्त्तते तेन याऽओषधीरित्यत्रैक-दोच्चारितस्य या इत्यस्य याः फलिनीरित्यत्रो-च्चारणम् । त्रिरावृत्ते ॥२९९॥

त्रिरावर्त्ततेऽयं सङ्क्रमः[2] स्यात् । व्वाजः । च । मे । प्रसवः । प्रयतिः । मा छन्दः । प्रमा । प्रतिमा । एक-इत्यादि किम् । पवित्रम् । असि । धूः । असि शर्म्म । त्रिरावृत्ते किम् । व्व्रतम् । कृणुत । व्व्रतम् । कृणुत । इषे । त्वा । ऊर्ज्जे । त्वा । गूढे ॥३००॥

द्विरावर्त्तनेऽपि सङ्‌क्रमः स्यात् । गूढं[3] नाम द्विवार-मुच्चारणीयम् । उभयाभिप्रायेण मध्ये एकपदं पठ्यते । यन्ताऽसि यमनः । ध्रुवः । धरुणः । संहितायां द्विरावृत्तस्याप्यसीत्यस्य सङ्‌क्रमो भवति । याः फलिनीरित्यत्र तु याः । च । पुष्पिणीः । अस्य

१. कर्मणि घञ् प्रत्ययः । नोदात्तोपदेशस्येति वृद्धिनिषेधः ।
२. संक्रम इति पारिभाषिकः शब्दः, तस्य तात्पर्यं पूर्वमुल्लिखितमेव ।
३. गूढं नाम द्विवारमुच्चारणीयम्-अत्रैवार्थो व्याख्यातः ।

याशब्दस्य चतुर्वारमुच्चारणीयस्य त्रिवारमुच्चारणात् । अपुष्पा इत्यनेनापि सम्बन्धं द्योतयितुं न सङ्क्रमः । पदसमूहे ॥२०१॥

पदाना बहुवारमुच्चारणे सङ्क्रमः स्यात् । व्वाजश्च मऽइत्यध्याये च मे इतिपदद्वयस्यानुवाकान्तरेऽपि सङ्क्रमः । अपराङ्गे ॥२०२॥

अपरस्याङ्गे अपराङ्गत्वेनैव पुनरावृत्ते सङ्क्रमः स्यात् । स्वाहा यज्ञमिति मन्त्रे स्वाहा द्यावापृथिवीभ्या ᳪ स्वाहा व्वातादित्यनयोः स्वाहाशब्दयोः सङ्क्रमः स्यात् । रमे स्वाहेत्यस्य न सङ्क्रमः । अपराङ्गत्वाभावात् ॥ अस्वरविकारे ॥२०३॥

स्वरभिन्नत्वाभावे सङ्क्रमः स्यात् । सुक्ष्मा[1] चासि प्रथमस्याप्यसि शब्दस्याद्युदात्तत्वात् । शिवा चासीत्यस्यानुदात्तत्वान्न सङ्क्रमः ॥ अलिङ्गविकारे ॥२०४॥

लिङ्गभिन्नत्वाभावे सङ्क्रमः स्यात् । भद्रो नऽइति मन्त्रे भद्रशब्दस्य भिन्नलिङ्गत्वान्न सङ्क्रमः । अग्नेर्भागोऽसीत्यनुवाके नपुंसकस्य स्पृतशब्दस्य सङ्क्रमः । व्वातः । स्पृतः । गर्भाः । स्पृताः । दिशः स्पृताः । इत्येतेषु पुल्लिङ्गत्वस्त्रीलिङ्गत्वान्न[2] सङ्क्रमः । सन्ते पया ᳪ सीति मन्त्रे प्रथमस्य समृशब्दस्य नपुंसकविषयत्वाद्द्वितीयस्य पुल्लिङ्गविषयत्वान्न सङ्क्रमः ॥ असमाने ॥२०५॥

---

१. सूक्ष्मा इति पाठ उचितः प्रतिभाति ।

२. अत्रैकदैव त्वप्रत्यय उचितः । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं प्रत्येकं सम्बध्यते इति न्यायात् ।

असमाने विषये पुनरावृत्ते सङ्क्रमः स्यात् । आयु-
र्यज्ञेनेत्यत्रायुरादेर्यज्ञक्लृप्तेरसमानत्वात्सङ्क्रमः । यज्ञ-
स्य तु यज्ञक्लृप्तेरसमानत्वात्सङ्क्रमः । संहितायाञ्च ॥३०६॥

आर्च्यां च संहितायांपुनरावृत्तौ सङ्क्रमः स्यात् ।
हिरण्यगर्भऽइत्येषः । तम्प्रक्त्नथेत्यादिप्रतीकपठितेषु
सङ्क्रमः कार्यः । एषां मन्त्राणां ब्रह्मयज्ञादौ पठनं
कार्यमिति केचित् । नेत्यपरे ॥ अवसाना[1]र्थम्पुनर्ग्रहणम् ॥३०७॥

समाप्तिद्योतनार्थं पुनरुच्चारणं स्यात् । आकूत्यै
प्प्रयुजे इति मन्त्रे द्वितीयादिस्वाहाकारस्य सङ्क्रमे
पूष्णे स्वाहेत्यत्र न सङ्क्रमः ॥ अधिकारार्थम् ॥३०८॥

पदस्याधिककार्यज्ञापनार्थं च पुनरुच्चारणं स्यात् ।
व्वाजश्चेति मन्त्रे च मे इत्यनयोः सङ्क्रमेऽपि स्व-
रिति स्वः । च मे इत्यत्र रिफितत्वज्ञापनार्थं न
सङ्क्रमः । उत्सर्गश्च ॥३०९॥

पूर्वोक्तस्य परित्यागोऽपि क्वचित्स्यात् । व्यवस्थित-
विषयोऽयम् । च शब्दोऽप्यर्थे । "द्विपदैकपदानीत्यने-
नोक्तः सङ्क्रमः । तदेवाग्निरिति मन्त्रे न भवति ।"
सँहितायां चेत्यनेन विहितः सङ्क्रमः । लोकन्ताऽ
इन्द्रमित्यत्र न भवति । उक्तञ्च । पुनरुक्तानि लुप्यन्ते
पदानीत्याह शाकलः ॥ अलोप इति गार्ग्यस्य काण्व-
स्यार्थवशादिति ॥ अत्र सम्प्रदायानुसारेण निर्णयः ॥
इति पदलक्षणम्[2] ॥ अथ क्रमलक्षणम् । क्रमः
स्मृतिप्रयोजनः ॥३१०॥

---

१. अवसानशब्दस्य समाप्तिरर्थो बोध्यः ।

२. पद-क्रम-जटा-प्रभृतयो वेदे विकृतय उच्यन्ते । इमा अष्टौ भवन्ति ।

संहितायाः पदाना च स्मृतिः स्मरणं प्रयोजनमस्य सः। संहिताया अवसाननिर्णयश्चेत्यादि। एवं प्रयोजनमुक्त्वा तल्लक्षणमाह। क्रम इत्यधिकारः॥ अधिकारपरिसमाप्तेः॥ द्वे द्वे पदे सन्दधात्युत्तरेणोत्तरमावसानादपृक्तवर्जम् ॥३११॥

एतदुत्तरमवसानपर्यन्तं द्वे द्वे पदे संहितया उच्चारयति स क्रमः स्यात्। इषे त्वा। त्वोर्जे। एवं पाहीति पर्यन्तं यत्र सङ्क्रमस्तत्र गलत्पदानि त्यक्त्वाऽग्रिमैः पदैः सन्धानं कर्त्तव्यम्। सङ्क्रमे सन्धिशास्त्रस्याचार्येणाभिहितत्वात्। युनक्ति सः। स कर्म्मे॥ सङ्क्रमे च व्वैष्णवान् ॥३१२॥

वैष्णवानयं मकारः स्वरे परे न यकारमापद्यते सङ्क्रमे चेत्। रक्षोहणो व इति यजुषि व्वैष्णवानव। अव नयामि। अत्र चाकारोपधत्वात् यकारः प्राप्तः। सङ्क्रमे च सर्वत्र ॥३१३॥

यजुष्षु ऋक्षु च एदोद्भ्यां परोऽकारः पूर्वमापद्यते। प्राणश्चम इति यजुषि प्राणोऽपानः। यद्ग्रामे इति मन्त्रे शूद्रेऽर्य्ये। कन्याऽइवेति ऋचि यज्ञोऽभि इत्यादि भवति। अपृक्तवर्जं किम्। उदुत्वा। ऊर्ज्जमावद। अत्र पदद्वये न विरामः एतद्द्वियमक्रमलक्षणमाह। अपृक्तमध्यानि त्रीणि स त्रिक्रमः। ॥३१४॥

पूर्वस्मात्पदादपृक्तं मध्ये उच्चार्य्यं तदुत्तरे विरामः। एवं त्रीणि संहितया उच्चारयति स त्रिक्रमः स्यात्। उदुत्यम्। सोमेनातनच्च्मि। पुनराकारेणोत्तरम् ॥३१५॥

एवं त्रीणि पदान्युच्चार्य पुनराकारेण सहितं तृतीय-

पदमुच्चारणीयं स्यात् । ऊर्ज्जमावद । आवद । वद
त्वया । मोषूणाभीषुणौ च ॥३१६॥

मो षुणः[1] । अभीषुणः । इमौ च त्रिक्रमौ स्याताम् ।
चत्त्वार्य्यपृक्तपूर्व्वे रकारपरे सौ ॥३१७॥

अपृक्त पूर्वे नकारपरे सु[2] इति पदे सति चत्वारि
संहितया उच्चारयितव्यानि स चतुष्क्रम इति शेषः ।
ऊर्ध्वऽऊषुणः । एतादृक्षासऽऊषुणः । गोमदूषुणा-
सत्या । पुनः सुपदेनोत्तरम् ॥३१८॥

एवं त्रीणि वा चत्वारि पदानि उच्चार्य पुनः
सुपदेनान्त्यमुच्चारणीयं स्यात् । अभीषुणः । सु नः ।
नः । सखीनाम् । पूर्वस्योत्तरसंहितस्य स्थितो-
पस्थितमवगृह्यस्य ॥३१९॥

उत्तरेण संहितस्यावग्रहवतः पूर्वपदस्य स्थितोपस्थितं
कर्त्तव्यम् । त्वा समिद्भिः । समिद्भिरङ्गिरः । इति
पूर्वमुच्चार्य । समिद्भिरिति समित् । भिः । इति
पठनीयं पूर्वस्योत्तरसठं०हितस्येत्य "वसाने चेति"
यावदनुवर्त्तते । अन्तः पददीर्घीभावे । मामहन्ता-
मदितिः । ममहन्तामिति ममहन्ताम् । आयुनगिन्द्रः ।
अयुनगित्ययुनक् । विनामे[3] ॥३२०॥

सुषाव । सोमम् । सुसावेति सुसाव । प्रगृह्ये[4] ॥३२१॥

इन्द्रवायूऽइमे । इन्द्रवायूऽइतीन्द्र । व्वायू ।
व्विष्णवेते । व्विष्णोऽइति । उदुत्त्यम् । ऊँऽइत्यूँ ।

---

१. अव्ययमेतत्-सुञ् इति ।
२. सुञ् इत्यव्ययो परे इत्यर्थः ।
३. विनाम-इति संज्ञापदम् ।
४. प्रगृह्य-इति संज्ञापदम् ।

मोषुणः । मोऽइति मो । सु नः । ऊद्‌र्ध्वऽऊषुणः ।
ऊँऽइत्यूँ । सु नः । रिफितेऽनिरुक्ते । ॥३२२॥

अन्तस्ते । अन्तरित्यन्तः । प्रातः सोमम् । प्रातरिति
प्रातः । अवसाने च ॥३२३॥

अर्द्धर्चादेः समाप्तौ विद्यमानस्य स्थितोपस्थितं
स्यात् । पशून्न् पाहि । पाहीति पाहि । हव्यर्ठ०
रक्ष । रक्षेति रक्ष । भुवनमाविवेशा ३ । आविवेशा ३ ।
व्विवेशा ३ इति विवेशा ३ । अत्र "प्लुतमिता"
विति प्रकृतिभावः । यथा समाम्नातं ङ्क्रमावसानर्ठ०
सङ्क्रमेषु ॥३२४॥

सङ्क्रमेषु पूर्वोक्तेषु यथासमाम्नातं क्रमशास्त्रानु-
सारेणावसानं[1] स्यात् । व्विश्श्वधाः परमेण ।
हार्षीच्छतधारम् । अत्र नावसानम् । ध्रुवेण
धर्म्मणा । धर्म्मणेति धर्म्मणा । व्वशाँ २ ऽ अनु ।
अन्विवत्यनु । अत्रावसानं भवति । सङ्क्रमेष्वित्युप-
लक्षणम् । अन्यत्रापि यथासमाम्नातमेव । अधुक्षः
सा, साव्विश्श्ववायुः । व्विश्श्वधायाऽइन्द्रस्य । अत्र
नावसानम् । हव्यर्ठ० रक्ष । रक्षेति रक्ष । यच्छ
न्ताम्पञ्च । पञ्चेति पञ्च । अत्रावसानम् । असन्दे-
हार्थं प्रसङ्गात्क्रमसन्धानानि प्रदर्श्यन्ते । व्विश्श्वधाः
परमेण । हार्षीच्छतधारम् । सहस्रधारन्देवः ।
अधुक्षः सा । व्विश्श्वधायाऽइन्द्रस्य । राध्यतामिदम् ।
एमि कः । तस्मै कर्मणे । व्वाम्प्रत्युष्टम् । अरातयऽउरु ।
एमि धूः । धूर्व्वामो देवानाम् । देवहूतममह्रुतम् ।

---

1. क्रम इति वेदविकृतिः । तत्प्रतिपादकं शास्त्रं क्रमशास्त्रम् ।

हविर्द्धानंव्विष्णुः । हस्ताब्भ्यामग्ग्नये । गृह्णामि भूताय । रश्म्मिभिद्दैंवीः । देवयुर्व्वंयुष्म्माः । स्थाग्ग्नये । अग्ग्नीषोमाब्भ्यान्दैव्व्याय । व्वेत्त्वद्द्रिः । व्वेत्त्वग्निः । शमीष्ष्व हविष्क्कृत् । इहि कुक्कुटः । व्वह द्ध्रुवम् । वधायाग्ग्ने । अन्तरिक्षन्धत्त्रम् । दिवँ व्विश्श्वाब्भ्यः । व्वेत्तु धान्न्यम् । व्व्यानाय दीर्ग्घाम् । रसेन रेवतीः । पुच्च्यन्ताञ्जनयत्त्यै । व्वधः पृथिवि । मौगप । व्वद्ध्ग्यासमररो । स्कन् गायत्त्रेण । जागतेन सुक्ष्मा । माज्जर्म्यनिशिता । माज्जर्भ्यदित्त्यै । पश्श्याम्म्यग्ग्नेः । यजुषे यजुषे सवितुः । त्वा तेजः ।४२। इति द्विचत्त्वारिंशत्क्रम-सन्धानानि प्रथमाध्याये ।१। पतये गन्धर्वः । ईक्षितऽ-इन्द्रस्य । दक्षिणो मित्त्रावरुणौ । अभिशस्त्यै सवितुः । ध्रुवा ध्रुवा । मार्ज्जिम नमः । सचन्तामस्माकम् । अश्न्नाम्म्येतम् । ब्रह्मणा तेन । ऊहाम्म्यग्ग्नीषोमौ । ऊहामीन्द्राग्ग्न्योरिन्द्राग्ग्नी । इन्द्राग्ग्नी व्वसुब्भ्यः । अवताँव्व्यन्तु । मरुद्द्भिरिन्द्रः । तस्मै पोषाय । व्वर्त्तोर्ग्गं । हिमाऽअचारिषम् । व्वेदिषदो ये ।१९। इत्येकोनविंशतिर्द्वितीयाध्याये ।२। उषसा सूर्य्यः । गृहपते पुरीष्ष्यः । पतिवेदनम्मितः ।३। इति त्रीणि तृतीये ।३। चतुर्थे क्रमसन्धानाभावः ।४। पुरूरवा मन्थामि । रजः शया हरिश्शया । देववीतये सिंह० हि । ध्रुवो व्वैष्णवम् । ध्रुवऽऐन्द्रम् । हव्व्यवाहनः श्वात्त्रः । अभूद्यथायथम् । इति सप्त पञ्चमे ।५। षष्ठे न सन्ति । मादयस्वोदानाय । भून्म्महेन्द्राय । इति द्वे सप्तमे ।७। अष्टमे[1] क्रमसन्धानाभावः ।

---

१. अष्टमाध्याये क्रमसन्धानं क्रमात्मिका वेदविकृतिर्न भवति ।

इन्द्रस्य सत्त्यप्प्रसवः। इन्द्रंव्वाजितः। इति द्वे नवमे ।९। दशमे क्रमसन्धानाभावः।१०। जागतेन हस्ते। हिरण्ययीमानुष्टुभेन। इति द्वे एकादशे ।११। परिचिल्लोकम् ।१। इत्येकं द्वादशे ।१२। दिशामि साहस्रम्। गययमूर्णायुम्। उष्ट्रमजः। शरभन्त्वम्। इति चत्वारि त्रयोदशे। अन्तरिक्षँ-व्वायुः। वायुराज्ञी। बृहती नभः। इति त्रीणि चतुर्दशे ।१४। अग्नेरेवः। रथेचित्रो मेनका। असमरथः प्रम्लोचन्ती। अरिष्टनेमिर्विश्ववाची। सुषेणऽउर्व्वशी। शैशिरौ परमेष्ठी। दिवः सूर्यः। दिवन्ध्रुवे। इत्यष्टौ पञ्चदशे।१५। षोडशसप्त-दशयोर्न्न सन्ति ।१६।१७। स्वस्तोमः। रथन्तरँव्वेट् ।१८। इति द्वे अष्टादशे ।१९। एकोनविंशतिमेऽ-भावः।२०। व्वायुर्ज्जाग्रत्। स्वप्ने सूर्य्यः। शूद्रेऽर्य्ये। आपोऽयक्षि। इति चत्वारि विँशतिमे ।२१। एक-विंशतिमेऽभावः ।२१। प्राणाय यत्ते। इति द्वे द्वाविंशे ।२२। चतुष्पदश्चन्द्रमाः। चन्द्रमा रात्रौ। व्वायुः सूर्य्यः। इति त्रीणि त्रयोविंशे ।२३। चतुर्व्विंशतिपञ्चविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशत्त्य-ध्यायेषु क्रमसन्धानाभावः।२४।२५।२६।२७। शुचि-मुष्णिहा। देवौ त्रिष्टुभा। इति द्वे अष्टाविंशे।२८। ऊनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशद्द्वात्रिंशत्त्रयस्त्रिंशच्चतुस्त्रिं-शत्पञ्चत्रिंशत्स्वध्यायेषु क्रमसन्धानाभावः ।२९।३०। ।३१।३२।३३।३४।३५। ऊतिभिः कया। ईक्षामहे। इति द्वे षट्त्रिंशे ।३६। पाहि मधु। स्वाहा रात्रिः। इति द्वे सप्तत्रिंशे ।३७। सरस्वत्यसौ। इत्येकमष्ट

त्रिंशे[1] ।३८। एकोनचत्वारिंशे क्रमसन्धानाभावः ।३९। अविद् द्याँव्विद्द्यायाम् । ओम् ३ क्रतो । स्मर क्लिबे । क्लिबे कृतम् ।४०। इति चत्वारि चत्वारिंशे ।४०। इति पञ्चदशाधिकैकशतं क्रमसन्धानानि ।११५। एभ्योऽन्यत्र संहितावसानानुसारेण पाराशरीयचपलानुसारेण च निर्णयः कर्त्तव्यः । इति क्रमसन्धानानि समाप्तानि । अथोष्मऋकारोपरितनरेफोच्चारणविषयो व्याख्यायते । उक्तं च प्रतिज्ञासूत्रे । अथापरान्तस्थस्यायुक्तान्यहलः संयुक्तोष्म[2]ऋकारैरेकारसहितोच्चारणमेवं तृतीयान्तस्थस्य क्वचित् । अस्यार्थः । अपरान्तस्थस्य रेफस्य अन्यहला असंयुक्तस्य ऊष्मभिर्ऋकारेण संयुक्तस्य एकारसहितं रे इत्युच्चारणं कर्तव्यमिति शेषः । उदाहरणम् । दर्शतमित्यत्र दरेशतमित्ययं पाठो न रेफसहितः । एवमन्यत्र । व्वर्षो व्वर्षीयसि । वर्हिः । निर्ऋते । सकारोदाहरणे षकारोदाहरणमेव । भवति । अयुक्तान्यहल इति किम् । व्वर्ष्ष्याय । १ अत्र मा भूत् । संयुक्तस्येति किम् । ऊर्ज्जे त्वा । एवं संयुक्तासंय्युक्तस्थले तृतीयान्तस्थस्य जकारस्य क्वचिल्लक्ष्यानुरोधेन पूर्वोक्तमेकारसहितोच्चारणं कर्त्तव्यम् । क्वचिदित्युदाहरणानि षत्वपरमिति ज्योत्स्नाकारः । यथा शतवल्शा इत्यत्र वलेशा इत्युच्चारः । सहस्रवलेशाः । उपवल्हामास । अत्रास्मिन्सूत्रे ऊष्मऋकारोपरितनरेफस्य प्राक् एकारसहितोच्चारणं कर्त्तव्यमित्युक्तम् ।

---

१. अष्टात्रिंशे इति पाठो युक्तः । अष्टन्शब्दस्यात्वविधानात् ।

२. श ष स ह–एते चत्वारो वर्णा ऊष्मसंज्ञका उच्यन्ते । यतो हि ऊष्मा वायुरेतेषामुच्चारणे विशेषतः प्रयुक्तो भवति ।

तथा च प्रतिज्ञासूत्रभाष्ये अनन्तयाज्ञिकैर्माध्यन्दिनशिक्षाया वचनं गृहीतम् । तदेवाह । शषसहा यत्र दृश्यन्ते रेफेणाङ्कितमस्तकाः । स्वरभक्तिं प्रयुञ्जीत संय्योगे नैव कारयेत् ।१। अत्रोष्मणामेव ग्रहणं न ऋकारग्रहणम् । तथा च प्रातिशाख्ये । रलावृलृवर्णाभ्यामूष्मणि स्वरोदये सर्व्वत्र । अस्यार्थः । रेफलकारौ ऋलृवर्णाभ्यां ऋलृसदृशश्रुतिभ्यां यथासङ्ख्यं व्यवधीयेते । ऊष्मणि परभूते स्वरोदये स्वरपरे इत्यर्थः । सर्वत्र संहितायां पदे च । गार्हपत्यः । अत्र हकाररेफयोरन्तरापि स्वरभक्तिः सती रेफहकारयोः संय्योगं न विहन्ति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् । शतवल्शः । वल्हामसि । स्वरोदय इति किम् । मृदँव्वस्वैः । पार्श्वतः । दिवो वर्ष्मन् । अश्रुभिर्ह्रादुनीः । अत्रापि ऋकारान्तग्रहणं नास्ति । केवलोष्मणामेव ग्रहणम् । तथा च नवाङ्कसूत्रे । अहल्शल्यूर्द्ध्वरेफस्य सैकारः प्रावच । अस्यार्थः । पदाद्यन्तमध्ये हल्विहीनस्य शलि ऊर्ध्व[1]रेफस्य सैकारः प्रागुच्चारः स्याच्छन्दसि । शल् इति शषसहा ज्ञेयाः । दर्शतमिति न तु सोर्ध्वरेफोच्चारः । ह्वार्षीत् । षकारस्योदाहरणमेव सकारस्य कथं इण्कवर्गाभ्यां परस्य सस्य मूर्द्धन्य इति कृत्वा रेफस्त्विवणमध्ये वर्त्तते तर्हि रेफात्परो यः सकारः स मूर्द्धन्य इति कृत्वोभयोरेकमेवोदाहरणम् । बर्हिषे त्वा । शतवल्शेत्यत्र वलेशेत्युच्चारः । एवमन्यत्रापि । ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्याल्लकारस्यापि प्रक्सैकारोच्चारः । न तु

१. श ष स हानां वर्णानामुपरिवर्तमानो रेफ इत्यर्थः ।

संयुक्तोच्चारः। अह्लिति किम्। यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्। शलीति किम्। ऊर्ज्जे त्वा। अत्रापि ऋकारग्रहणाभाव एतदर्थे केशवी[1]शिक्षायाम्। विह्लशल्यूर्द्ध्वरेफो यः सैकारः प्राक्समुच्चरेत्। अत्रापि ऊष्मणामेव ग्रहणमस्ति। तथा च लघुमाध्यन्दिनीयशिक्षायाम्। रेफो रेकारमाप्नोति शषहेषु परेषु च॥ ददर्श वर्षो अर्ह्णच्च संय्योगं नैव कारयेत् ॥१॥

वर्ष्यन्वर्ष्यायान्तर्ह्येदा चात्रेयं प्रत्युदाहृतिः। लकारोऽपि च सावर्ण्यादिकारसहितो भवेत् ॥२॥

शतवल्शा वल्हामसि तत्र तावदुदाहृतिः। अत्रापि ऋकारग्रहणं नास्ति। तथा च याज्ञवल्क्यशिक्षायाम्। रलाभ्यां पर ऊष्माणो यत्र स्युः स्वरितोदयाः॥ स्वरभक्तिरसौ ज्ञेया पूर्वमाक्रम्य पठ्यते ॥३॥

स्वरभक्तिं प्रयुञ्जानस्त्रीन्दोषान्परिवर्जयेत्। इकारं चाप्युकारं च ग्रस्तदोषं तथैव च ॥४॥

उभयोर्मध्ये हि एकारः सैव[2] स्वरभक्तिः। अत्रापि ऋकारग्रहणाभावः। अमरीशिक्षाऽप्येतदर्थे। रकारोऽथ लकारो वा यत्रोष्मणि स्वरोदये। स्वरभक्तिर्भवेत्तत्र पूर्वमाक्रम्य पठ्यते ॥५॥

ऊष्मणां स्वरभक्तिस्तु द्विर्भावं बाधते यथा। व्वर्षो व्वर्षीयसि ह्वार्षीच्छतवल्शोऽपि सिद्ध्यति ॥६॥

---

१. संज्ञात्वात् पुंवद्भावाभावः। अन्यथा केशवशिक्षायामिति स्यात्।

२. उद्देश्यप्रतिनिर्देश्ययोरैक्यमापादयत्सर्वनाम तत्तल्लिङ्गभाग् भवति-इति नियमेन सैवेत्यत्र स्वरभक्तिरिति विधेयगतस्य स्त्रीलिङ्गस्य ग्रहणमिति भावः।

ऊष्मणामुपरिष्टात्तु रेफो याति रेवर्णताम् । रेफत्वं पुनरायाति यद्यूष्माणोऽन्यसँय्युताः ॥७॥

अत्रापि ऋकारग्रहणाभावः । अत्र सिद्धान्तः । रेकारोच्चारणे भगवता कात्यायनेन प्रातिशाख्यसूत्रे ऊष्मणामेव ग्रहणं कृतम् । तथा च याज्ञवल्क्य-माध्यन्दिनादयः शिक्षाकर्त्तार ऊष्माणामेव ग्रहणं कुर्वन्ति । एकस्मिन्नेव प्रतिज्ञासूत्रे ऋकारोष्मणां ग्रहणमस्ति । अतो वैदिका विकल्प इत्याहुः । तथा च कात्यायनेन प्रातिशाख्यसूत्रेऽप्यादृतं याज्ञवल्क्य-माध्यन्दिनादिभिः शिक्षासु च गृहीतं अनादिसम्प्रदायागतं यन्मतं तत्सर्वैर्वैदिकैर्ग्राह्यमिति स्पष्टं प्रतिभातीत्यलमतिप्रसङ्गेन । अत्र ऋकारोच्चारणे विशेषः । तथा च प्रतिज्ञासूत्रे "ऋकारस्य तु सँय्युक्तासँय्युक्तस्याविशेषेण सर्व्वत्रैवम्" । अस्यार्थः । पदान्तमध्येषु सँयुक्तासँयुक्तस्य ऋवर्णस्य रेकारः स्यात् । सर्वत्र संहितायां पदे च । यथा कृष्णोऽसीत्युच्चारः । ऋत्वियो यतः । अत्र रेत्विय इत्युच्चारः । एवं "ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यमिति" वार्तिकेन ऌकारस्यापि ले इत्युच्चारः । क्लृप्तमित्यत्र क्लेप्तमित्युच्चारः । एतदर्थे केशवीशिक्षा । ऋकार-हल्वियुग्युक्च सैकारश्छन्दसि स्मृतः । इति ऋकारोच्चारणे विशेषः । अथ जकारोच्चारणविषयः । तथा च प्रतिज्ञासूत्रे । "अथान्तस्थानामाद्यस्य पदादिस्थस्यान्यहलसँय्युक्तासँय्युक्तस्यापि रेफोष्मान्त्याभ्यामृकारेण च विशेषेणादिमध्यावसानेषूच्चारणे जकारोच्चारणं द्विर्भावेऽप्येवम्" । अस्यार्थः । अन्त-

स्थानामाद्यस्य यकारस्य पदादौ विद्यमानस्य अन्यहला अन्यव्यञ्जनेन[1] असँय्युक्तस्योच्चारणे जकारोच्चारणं स्यात् । रेफ ऊष्मणामन्त्यो हकारश्च आभ्यां युक्तस्यापि अविशेषेणादिमध्यावसानेषु पदस्य जकारोच्चारणं स्यात् । ऋकारेण युक्तस्य अविशेषेण अन्यहला सँय्युक्तस्य असँय्युक्तस्य वा आदिमध्यान्तेषु जकारोच्चारणम् । क्रमेणोदाहरणानि । यन्ते । युञ्जते । घृताचीर्य्यन्तु हर्य्यत । सूर्य्यः । कृणु ह्यद्ध्वरम् । प्रबाध्याय । सदोऽस्यृतस्य । व्यृद्धयै । पदादिस्थस्येति किम् । अयजन्त । अन्यहलीत्यादि किम् । अस्मिन्न्यज्ञे । एवं पदादिमध्यान्तेषु यकारद्विर्भावे द्वित्वे[2] सति ज्ञेयम् नृपाय्यम् । धाय्या रूपम् । तँ य्यञ्ज्ञम् । जराय्य्वसि । अत्र स्वरात्संयोगादिरिति द्वित्वम् । तथा च याज्ञवल्क्यः । पादादौ च पदादौ च संय्योगावग्रहेषु च । जः शब्दः इति विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः । युक्तेन मनसा तद्वत्त्वायामि तथा परम् । अनूकाशेन बाह्यञ्च योगे योगे निदर्शनम् । उपसर्गपरो यस्तु पदादिरपि दृश्यते ॥ ईषत्स्पृष्टो[3] यथा वियत् पदच्छेदात्परं भवेत् ॥ तथा च कात्यायनशिक्षायाम् । आद्यान्तस्थस्य जोच्चारः पादादौ पठितस्य च । उपसर्गपरो यस्तु तस्य छन्दसि नेष्यते ॥ पदस्याद्यन्तमध्ये स्याद्रहैः सँय्युतस्य च ॥ द्विर्भावेऽप्येवमेव स्यादिति कात्यायनश्रुतिः । उपसर्गात्परस्य न जकारोच्चारणम्

---

१. अन्यहला इत्यस्य विवरणमेतद्, न तु स्वतन्त्रम् ।

२. द्विर्भावे इत्यस्यैवेदं विवरणम् ।

३. अन्तःस्थानां य र ल व इति चतुर्णां वर्णानामीषत्स्पृष्टम् इति संज्ञा भवति ।

यथा अभियज्ञम् । द्विर्भावेऽप्यन्निषेधो न । सँय्यौमि । अत एव नवाङ्कसूत्रे केशवेन सम्पूर्वयोश्चेत्युक्तम् । यज्ञञ्च मानुषाणां तथा च योजान्न्विन्द्र, इत्यत्र पादादिस्थत्वात् । उपसर्गात्परत्वेऽपि जकारोच्चारः । उपयज्ञठं० हविरित्यत्र पादादिस्थत्वाभावाद्य कारत्वमेव । पदादित्वेन सिद्धे पादादौ पुनर्जकारोच्चारणविधानम् । पादादौ च पदादौ चेति याज्ञवल्क्योक्तेः । अतो ज्योत्स्नाकृता स्तुतीरुप यज्ञमेव गृहीतम् । अत एवामरेशीशिक्षायाम् । अनुयोजान्त्विन्द्र ते तु उपयुज्ज्ं विभा तथा । अथो पूर्वकस्य न । उक्तं च । अथ मानसशब्देभ्यो विभाषाऽऽम्रेडिते यवौ । यथा । अथो ये । मा यज्ञम् ! स योजते । मनो न येषु अत्र यकारोच्चारणे विकल्पः । विकल्पविषये सम्प्रदाय[1] एव शरणम् । इति जकारोच्चारणविषयः । अथ वकारोच्चारणविषयः । तथा च प्रतिज्ञासूत्रे । अथान्त्यस्यान्तस्थाना पदादिमध्यान्तस्थस्य त्रिविधं गुरु मध्यमलघुवृत्तिभिरुच्चारणम् । अन्तस्थानामन्त्यस्य वकारस्य अपदादौ मध्ये अन्ते च विद्यमानस्य यथाक्रमम् गुरुमध्यमलधुवृत्या चोच्चारणम् । यथा । व्वायवः । व्वायवृतस्प्पते । तथा च याज्ञवल्क्यः । वकारस्त्रिविधः प्रोक्तो गुरुर्लघुर्लघूतरः । आदौ गुरुर्लघुर्मध्ये पदान्ते तु लघूतरः[2] । सन्धिजौ तु पदान्तीयावुपसर्गपरौ लघु । अथ मासनशब्देभ्यो विभाषाऽऽम्रेडिते यवौ । ये ये पदादिस्थयकारविषये

---

१. गुरुपरम्परा सम्प्रदायस्तत्र यादृशी स्थितिः स्यात्, सैव ग्राह्या ।

२. लघुतर इति पाठो युक्तः । उकारस्य दीर्घीकरणे प्रमाणाभावात् ।

निषेधास्ते वकारेऽपि। अथा वयम्। तथा च माध्यन्दिनशिक्षायाम्। गुरुर्व्वकारो विज्ञेयः पादादौ पठितो भवेत्। व्विभ्राडुदाहृतिर्ज्ञेया सविताऽन्त-र्लघुस्स्मृतः। पदान्ते वै लघुतरस्तव व्वायवृतस्पते। उपसर्गपरो यस्तु स वकारो लघुर्मतः। वो वां वा वै मन्त्रपाठे लघवो गुरवः पदे। तथा चामोघ-नन्दिन्यमरेशिशिक्षयोः। त्वदर्थवाचिनौ वो वां वा वै यदि निपातजौ। आदेशाश्च विकल्पार्था ईषत्स्पृष्टा इति स्मृताः। देवो वः सविता या वाँ व्वातो वेति तथा न वै। अत्रापि सम्पूर्व कस्य वकारस्य द्वित्त्वमेव। यथा सँव्वाम्। इति वकारोच्चारणविषयः। अथ षकारोच्चारणविषयः। तथा च प्रतिज्ञा सूत्रे। अथो मूर्द्धन्योष्मणोऽसँय्युक्तस्य टुमृते[1] सँय्युक्तस्य च खकारोच्चारणम्। अथान्तस्थ-कथनानन्तरं मूर्द्धस्थानस्योष्मणः षकारस्य असँय्युक्तस्य टवर्गं विना अन्यहला संयुक्तस्य च खकारोच्चारणम्। इषे त्वा। विभर्ष्य्यस्तवे। शुष्क्क्याय। टुमृते किम्। प्रत्युष्ट्टम्। श्रेष्ठतमाय। कृष्णः। क्षकारे षकारवत्। अवयवसम्भावनेऽपि मातृकादौ गणनात्। एकवर्णत्वात्। अवयविभागाभावेन खकारोच्चारणम्भवति। ककारयोगे खकारो-च्चारणाभाव इति नियमस्तु न शुष्क्कमित्यादौ विपरीतसँय्योगे ककारयोगेऽपि खकारोच्चारणं भवति। तथा च कात्यायनशिक्षायाम्। असँय्यु-क्तस्य मूर्द्धन्योष्मणः खोच्चारणम्मतम्। टुमृते

१. टु टवर्गम् ऋते इति भावः। टु इति टवर्गस्य संज्ञा।

सँय्युक्तस्यापि कस्य योगे ष एव हि । छन्दसीत्येव खोच्चारो लोके प्रकृतिरिष्यते । इति षकारोच्चारण-इमे सर्वे नियमा ब्रह्मयज्ञादौ अर्थविचारे तु प्रकृत्त्या ये वर्णा स्त एव न त्वर्थभेदः । परसवर्णेषत्प्रकृत्त्या चान्यत्र । शषसहेभ्योऽन्यत्र तु मकारस्य परपञ्चम-विधानात्स्पष्टमुच्चारणे प्राप्ते परस्य वर्णस्य सवर्णो-यः पञ्चमस्तस्येषत्सादृश्येनोच्चारणं स्यात् । तञ्जानन्[1] । इत्यादौ वाजाञ् जयतु इत्यादिवत् ञकारादेर्न स्पष्टमुच्चारणम् । विसर्गेष्वीषद् विरामः । विसर्गेषु नान्तरीयकार्द्धमात्राकालापेक्षया किञ्चिदधि-ककालो विरामः । अवसानं कृत्वाऽग्रिमवर्णोच्चारणं-कार्यम् । व्वसोः पवित्रम् । याः फलिनीः । पदाद्यस्य सँय्युक्ताकारस्येषद्दीर्घता च भवति । परस्यादि-भूतस्य हल्सँयुक्तस्य अकारस्य ह्रस्वस्येषद्दीर्घता च एकमात्राकालापेक्षया किञ्चिदधिककालोच्चारणं स्यात् । व्वसोः पवित्रम् । पदादिस्त्थस्येति किम् । व्वायवः । हल्सँय्युक्तस्य किम् । अनु नः । अकारस्येति किम् । ध्रुवाः । अथ जटाद्यष्टविकृतीनां लक्षणा-न्युच्यन्ते । तत्र विकृतीनां पाठे फलं पङ्क्तिपावन-त्वम् । जटादिविकृतीना ये पारायणपरायणाः । महात्मानो द्विजश्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः पङ्क्तिपावना[2] इत्यादित्यपुराणात् । अन्यान्यपि विष्णुलोकानि फलानि वाराहपुराणपाराशरस्मृत्यादिषु । तासान्ना-मानि प्रदर्श्यन्ते । "जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः । अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा

---

१. तमिति द्वितीयान्तम् । मकारस्यानुस्वारे परसवर्णे च सति ञकारः सम्पन्नः ।

२. जटादिवेदविकृतिज्ञानपूर्वकं ये वेदमन्त्रान् पठन्ति, ते द्विजाः पङ्क्तिपावना इत्युच्यन्ते ।

महर्षिभिः" । तत्र प्रथमत्त्वाज्जटा लक्षणम् । "क्रमं यथोक्तं प्रब्रूयाद्व्युत्क्रमेण क्रमेण च । सलक्षणं सर्वसन्धौ जटा सा प्रोच्यते बुधैः" । अस्यार्थः । क्रमं यथोक्तं द्वित्रिचतुष्क्रमात्मकं पुनश्च तमेव वैपरीत्येन पुनश्च क्रमेण एवं त्रिवारं सर्वसन्धिषु लक्षणयुक्तं पठेत्सा जटा इति तत्त्वज्ञैरुच्यते । व्वायवंस्स्थ स्त्थ व्वायवो व्वायवस्त्थ । इत्यादि । अथ जटायां पठ्यमानान्क्रमान्नामतो निर्दिशति । "अनुक्रमश्चोत्क्रमश्च[1] व्युत्क्रमोऽभिक्रमस्तथा । सङ्क्रमश्चेति पञ्चैते जटायां कथिताः क्रमाः" । व्वायवंस्त्थ । इत्यनुक्रमः स्थस्थ । इत्युत्क्रमः । स्थव्वायवंः । इति व्युत्क्रमः । व्वायवो व्वायवंः । इत्यभिक्रमः । व्वायवंस्थ । इति सङ्क्रमः । इमे पञ्चक्रमा एव पृथक्पृथक् पठनेन पञ्चसन्धिरिति वैदिकैः पठ्यते । "स्वापूर्वांशं पदद्वन्द्वं स्वागर्भे त्रिचतुष्क्रमे । पुनरुक्तमसन्देहार्थं जटात्वं न चार्हति । सु आ इति पदद्वयगर्भं त्रिक्रमे मो षू णः सोमेनानच्मि इत्यादौ तथा चतुष्क्रमे गोमदूषुणा सत्त्या इत्यादौ सु आ पूर्वांशं पदद्वयम् असन्देहार्थं द्विपदत्वभ्रमवारणाय सुनः आतनच्मि । इति पुनरुच्चारितं जटाभावं नार्हति । असन्देहार्थमिति हेतुगर्भं विशेषणम् । यथा उदुत्त्यमित्यादौ द्विपदत्त्वभ्रमवारणाय ऊँ इत्यूँ । इति मध्यस्थस्य वेष्टनम् । तथा इदं न तु क्रमः । अतो जटा न कार्या । अथ माला, सा द्विविधा, पुष्पमाला क्रममाला च । पुष्पमाला लक्षणमाह ।

१. अनुक्रमादीनामुदाहरणानि अग्रे दत्तान्येव सन्ति ।

"माला मालेव पुष्पाणां[1] पदानां ग्रन्थिनी हि सा। आवर्त्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रमव्युत्क्रमसङ्क्रमाः"। सुसमिद्धाय शोचिषे। शोचिषे सुसमिद्धाय। इत्यादि। अथ क्रममाला[2]। "ब्रूयात्क्रमविपर्यासावर्द्धर्चस्यादितोऽन्ततः। अन्तं चादिं नयेदेवं क्रममालेति गीयते।" अर्द्धर्चस्यादितः क्रममन्ततो विपर्यासं क्रमेण पठेत्। अनेन प्रकारेण क्रममन्तं नयेत्। विपर्यासमादिं प्रापयेत्सा क्रममालेति ऋषिभिरुच्यते। त्रिꣳ शद्धाम। धीयतऽइति धीयते। धाम वि। धीयते पतङ्गाय। विराजति। पतङ्गाय वाक्। राजति वाक्। वाग्राजति। वाक्पतङ्गाय। राजति वि। पतङ्गाय धीयते। विधाम। धीयतऽइति धीयते। धाम त्रिꣳ शत्। इत्यादि। अथ शिखा। "पदोत्तरां जटामेव शिखामार्याः प्रचक्षते"। पूर्वोक्तां जटामेव अन्ते एकपदाधिकां शिखां[3] विकृतिं मुनय-आहुः। अन्तश्चरति चरत्यन्तरन्तश्चरति रोचना। इत्यादि। अथ रेखा। "क्रमाद्द्वित्रिचतुष्पञ्चपदक्रममुदाहरेत्[4]। पृथक्पृथग्विपर्यस्य रेखामाहुः पुनः क्रमात्। क्रमेण द्विपदत्रिपदचतुष्पदपञ्चपदक्रमानुक्त्वा प्रतिक्रमे पृथक् पृथक् विपर्यासेन पठित्वा पुनः क्रमं पठेत्तां विकृतिं रेखामाहुः। विद्द्मा ते। ते विद्द्म। विद्द्मा ते। तेऽअग्ने त्रेधा। त्रेधाग्ने ते। तेऽअग्ने। अग्नेत्रेधा। त्रेधा त्रयाणि विद्द्मा

---

१. पुष्पाणां माला इवेत्यन्वयः।

२. क्रममालाया लक्षणमुच्यते- ब्रूयात् क्रमविपर्यासमित्यादिना।

३. जटाया अन्ते एकपदाधिकायाः शिखापदेन व्यपदेशः।

४. रेखानामिकाया विकृतेर्लक्षणमुच्यते क्रमादित्यादिना।

ते । ते विद्म त्रेधा त्रयाणि । त्रयाणि व्विद्म । व्विभृता पुरुत्रा । पुरुत्रा व्विभृता धाम ते । ते धाम । धाम व्विभृता । व्विभृता पुरुत्रा । व्विभृतेति वि । भृता । पु रुत्रेति पुरु । त्रा । व्विद्मा ते ते व्विद्म । व्विद्मा ते । ते नाम परमम् । परमन्नाम ते । ते नाम । नाम परमम् । परमङ्गुहा । यद्विद्म । व्विद्म यद्गुहा परमम् । परमङ्गुहा । गुहा यत् । यद्विद्म । व्विद्मा तमुत्सँय्यतऽआजगन्थ । आजगन्थ यतऽउत्सन्तं व्विद्म । व्विद्मा तम् । तमुत्सँय्यत । यतऽआजगन्थ । आज गन्थेत्या । जगन्थ । अथ ध्वजः । "ब्रूयादादेः क्रमं सम्यगन्तादुत्तारयेदिति । वर्गं ऋचि वा आदेः क्रममन्तपर्यन्तं ब्रूयात् । अन्तात्सम्यग्यथोक्तं क्रममेवोत्तारयेत् । आदिपर्यन्तं पठेत् एवं यस्य पठनं स ध्वजनामा विकृतिः[1] । व्विष्णोः कर्माणि । सखेति सखा । कर्माणि पश्यत । युज्ज्यः सखा । पश्श्यत यतः । इन्द्रस्य युज्ज्यः । यतो व्व्रतानि । पस्पशऽइति पस्पशे । व्व्रतानि पस्पशे । व्व्रतानि पस्पशे । पस्पशऽइति पस्पशे । यतो व्व्रतानि । इन्द्रस्य युज्ज्यः पश्यत यतः । युज्ज्यः सखा । कर्माणि पश्श्यत । सखेति सखा । व्विष्णोः कर्माणि । अथ दण्डः । "क्रममुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्च क्रममुत्तरम् । अर्द्धर्चादिवमुक्तोऽयं क्रमदण्डोऽभिधीयते[2] । क्रममुक्त्वा अर्द्धर्चात् । अर्द्धर्चादिपर्यन्तं

---

१. अष्टानां विकृतीनां मध्ये ध्वजनामकविकृतेर्लक्षणमिदमुक्तम् ।

२. क्रमदण्डस्येदं स्वरूपमुक्तम् ।

पुनः पुनर्विपर्यस्य पुनः क्रमम् अर्द्धर्च्चं समाप्तिपर्यन्तम् पठेत् । एवमुक्तो विकृतिविशेषो दण्ड इत्युच्यते । यजा नः । नो यज । यजा नः । नो मित्रावरुणा । मित्रावरुणा नो यज । "यजा नः । नो मित्रावरुणा । मित्रावरुणा नो यज" । यजा नः । नो मित्रावरुणा । मित्रावरुणा यज । यज । मित्रावरुणा नो यज । यजा नः । नो मित्रावरुणा । मित्रावरुणा यज । यजा देवान् । अनेन प्रकारेण अर्द्धर्चसमाप्तिपर्यन्तं पठेत् । अथ रथः । समेऋचौ गृहीत्वा च रथवच्चलति क्रमः । पादशोऽर्द्धर्च्चशोवाऽपि सहोक्त्या दण्डवद्रथः । ऋचि अर्द्धर्चि पादे वा क्रमविपर्यासौ दण्डवत्सहोक्तौ चेत्स विकृतिविशेषो रथ[1] इत्युच्यते । धानानां रूपम् । सक्तूनां रूपम् । रूपन्धानानाम् । रूपं सक्तूनाम् । धानानां रूपम् । सक्तूनां रूपम् । रूपङ्कुवलम् । रूपम्बदरम् । कुवलं रूपन्धानानाम् । बदरं रूपं सक्तूनाम् । धानानां रूपम् । सक्तूनां रूपम् । रूपं कुवलम् । रूपम्बदरम् । कुवलम्परीवापस्य । बदरमुपवाकाः । परिवापस्य कुवलं रूपन्धानानाम् । उपवाका बदरं रूपं सक्तूनाम् । धानानां रूपम् । सक्तूनां रूपम् । रूपङ्कुवलम् । रूपम्बदरम् । कुवलं परीवापस्य । बदरमुपवाकाः । परीवापस्य गोधूमाः उपवाकाः करम्भस्य । गोधूमाः परिवापस्य कुवलं रूपन्धानानाम् । करम्भस्योपवाका बदरं रूपं सक्तूनाम् । धानानां रूपम् । सक्तूनां

---

१. रथनामिका विकृतिरुक्ता ।

रूपम् । रूपं कुवलम् । रूपम्बदरम् । कुवलं परीवापस्य । बदरमुपवाकाः । परीवापस्य गोधूमाः । उपवाकाः करम्भस्य । परिवापस्येति परिवापस्य । उपवाकाऽइत्युप । वाकाः । गोधूमाऽइति गोधूमाः । करम्भस्येति करम्भस्य । ज्योत्स्नायां प्रकारत्रयेण रथ उक्तः, स तत्रैव द्रष्टव्यः । अथ घनः स द्विविधः । "अन्तात्क्रमं पठेत्पूर्वमादिपर्यन्तमानयेत् । आदिक्रमन्नयेदन्तं घनमाहुर्मनीषिणः"[१] । अतिथिमित्यतिथिम् । बोधयतातिथिम् । घृतैर्बोधयत । दुवस्यत घृतैः । अग्निन्दुवस्यत । समिधाग्निम् । समिधेतिसम् । इधा । अग्निन्दुवस्यत । दुवस्यत घृतैः धृतैर्बोधयत । बोधयता तिथिम् । अतिथिमित्यतिथिम् । इत्यादि । अथ द्वितीयः । शिखामुक्त्वा विपर्यस्य तत्पदानि-पुनः पठेत् । अयं घन इति प्रोक्त इत्यष्टौ विकृतीः पठेत् ।। शिखा पूर्वोक्ता[२]मुच्चारयेत् विपर्यासेन तानि पदान्युच्चार्य पुनः क्रमेण तानि पदान्युच्चारयेत् । अयं घन इत्यृषिभिः प्रोक्तः । दस्रा युवाकवो-दस्रा युवाकवः सुताः । इत्यादि । शेषं ज्योत्स्नादिषु ज्ञेयम् ।। शाके द्व्यभ्राष्टभूमिते शुभे विक्रमवत्सरे ।।
माघे सति सिते पक्षे प्रतिपद्भानुवासरे ।।१।।
प्रातिशाख्यप्रदीपाख्या शिक्षेयं रचिता शुभा ।
गोडशे इत्युपाह्वेन बालकृष्णेन धीमता ।।२।।

---

१. घननाम विकृतिविशेषो द्वैविध्येन व्याख्यातः । वैदिकानां सम्प्रदायेऽस्य महन्महत्त्वं स्वीक्रियते ।

२. दस्रा युवाकव इत्यादिरूपमुदाहरणं घनाख्यस्य विकृतिविशेषस्य ज्ञेयम् ।

श्रीसदाशिवपौत्रेण श्रीप्रभाकरशर्म्मणा ।
कृपया मह्यमादत्ता मुद्रायन्त्रे प्रकाशिता ।।३।।

युगलप्राक्किशोरेण पाठकेनानुजेन च ।
विश्वेश्वरस्य पुत्रेण श्रीव्यासोपाधिधारिणा ।।४।।

सरयूपारिणा सम्यग्वेदविद्यालयस्य च ।
अध्यापकेन छात्राणां शीघ्रं सम्बोधनाय च ।।५।।

शिक्षासंग्रहमध्ये तु ह्येतस्याः सग्रहः कृतः ।।
एतदग्रे तु वेदस्य श्रीमाध्यन्दिनशाखिनः ।।६।।

परिभाषाख्यसूत्रं तु श्रीमद्रामस्य निर्मितम् ।
तदग्रे सूत्रशेषस्य कारिका सुप्रकाशिका ।।७।।

अथ वेदपरिभाषासूत्रशिक्षां व्याख्यास्यामः ।।

इषे त्वा ।१। अनुवाकः । पदानि ।। ३५ ।। शुठिघस्वः[1] ।१। व्वसोः पवित्रम् ।३।४२। घाढझाचा[2] ।२। अग्ने-व्व्रतपते ।७।१०६। ञैभातङ्मी ।३। पवित्रे स्त्थः ।२।५४। ङीण[3]डाडी । शर्म्मासि ।३।९३ । जीवतिदः ।१३। धृष्टिरसि ।२।४४। घीच[4]छड ।२। धिषणाऽसि ।२।३६। गूघा[5]गङिः ।७। सँव्वपामि । डगेन चक्षि ।२। आददे ।५।१०२। ञाभुठुधीः ।७। अनिशितोऽसि ।३।५१। ङजङञजिः ।७। ऋचः ।३१। अनुवाकाः ।१०। पदानि ।।६१४।।

कृष्णोऽसि ।६।१२४। ढीवादिप् ।१२। अग्ने व्वाज-जित् ।३।६५। चुढाचीपूः ।१। मयीदम् ।५।१०।

---

१ परिभाषासूत्रमित आरब्धम् ।
२. परिभाषासूत्रमेतत् । ३. परिभाषासूत्रमेतत् ।
४. परिभाषासूत्रमेतत् । ५. परिभाषासूत्रमेतत् ।
६. एवमेवाग्रिमाणि बहूनि परिभाषासूत्राणि सम्प्रदायद्वारा ज्ञेयानि ।

झौघाझयौ ।५। अग्नीषोमयोः ।५।१२२। ठासाढुपूः ।२। अग्ने दब्धायो ।४।७९। छोटमटाङः । सँव्वर्चसा ।४।८९। जीवङ्केतूः ।४। अग्नये कव्यवाहनाय ।६। जोङ्वीठडुः ।१। ऋचः ।३३। पदानि ॥६६८॥

समिधाग्निम् ।४।३६। गूचाङ्छिः ।३। भूर्भुवः ।४। ५० घौडाजिचे । अग्निज्ज्योतिः ।२।३७। गेमगअः ।१। उपप्रयन्तः । २६।३६७। ले ।१४। स्वः सुप्रजाः ।३।४२। घाणिणाझी ।४। गृहा मा ।३।५३। ङानीझाजा ।२। प्रघासिनः ।५।७२। छाभिढाछुः ।१। पूर्णा दर्व्वि ।२।३३। गिकङघः ।१। अक्षन्नमीमदन्त ।६।६८। चैधीचिजा ।४। एष ते ।७।८९। झोमाफदो ।४। ऋचः ।६२। अनुवाकाः ।१०। पदानि ।८।५६। एदम् ।२। चादिछाठी ।४। वृत्रस्यासि ।४।४५। घुत्तजघेः ।३। आकूत्यै प्रयुजे ।१२।३६। गूजगिखः ।३। ऋक्क्सामयोः शिल्पे ।२।४७। घ्रेटघीगुः ।५। व्रतं कृणुत ।६।१३६। डूलुथुधूः[१] ।५। एषा ते ।५।७७। छेथजटि ।४। व्वस्व्यसि ।३।६३। चिणाडूछाः[२] ।३। एष ते ।२।५५। डुन्नर्डिडिः[३] ।३। शुक्रन्त्वा ४।८१। जणुजिठी[४] ।२। आदित्यास्त्वा ८।१४०। डौशुनार्धं[५] ।६। ऋचः ३७। अनुवाकाः ।१०। पदानि ॥७४२॥

अग्नेस्तनूः । डीताजज ।२। आपतयेत्त्वा ।४।१०८। औरिनिदिः ।५। तप्तायनी मे ।२।४८। घैङघचे ।४।

---

१. परिभाषासूत्रमेतत् सम्प्रदायेन स्वरूपमस्य विज्ञेयम् ।

२. परिभाषासूत्रमेतत् सम्प्रदायेन स्वरूपमस्य विज्ञेयम् ।

३. परिभाषासूत्रमेतत् सम्प्रदायेन स्वरूपमस्य विज्ञेयम् ।

४. परिभाषासूत्रमेतत् सम्प्रदायेन स्वरूपमस्य विज्ञेयम् ।

५. पूर्ववत् ।

इन्द्रघोषस्त्वा ।३।४८। घेगाटछू ।४। युञ्जते मनः ।८।१५७। णोज्ञर्दशै ।२। नारिरसि ।४।७४। छीधिघिदं ।४। यवोऽसि ।५।८१। जफाठाडी ।८। व्विभूरसि ।४।७८। छौंछिवणच् ।२। ज्योतिरसि ।५।१०४। ञीवोडानेः ।३। उरु व्विष्णो ।२।५४। ङीटिचटा । ऋचः ।४१। अनुवाकाः ।१०। पदानि ॥८०६॥

अग्ग्रेणीरसि ।५।८८। ञैत्रझठुः ।५। उपावीरसि ।४।८८। जैमिजाठ ।४। माहिः ।६।११२। टावायिवौः ।३। सन्ते ।३७१। छभातटैः ।५। समुद्रं गच्छ ।२।५७। डे०नागिटा ।४। हविष्मतीरिमाः ।२।३५। गुथीखगः ।३। हृदेत्वा ।५।५०। जौसुटथु ।६। रावाऽसि ।८।११७। थेसुणीभै ।२। ऋचः ।३५। अनुवाकाः ।८। पदानि ॥६५८॥

व्वाचस्पतये ।३।५१। ङोदजाडी ।२। उपयामगृहीतोऽसि ।२।३०। खौटछिखाः[1] ।१। आवाहो ।२।४। गौटछीछ[2] अयँव्वाम् ।२।३३। गिचघडा[3] । या वाम् ।१।१३। किअगङ। तम्प्रत्नथा ।४।६१। झशीनतोः[4] ।५। अयँव्वेनः ।३।६६। चूयाथटाः ।३। यो देवासः ।३।५३। ङिठङत्रा ।२। इन्द्रायत्त्वा ।१।२६। स्वोगचछी। मूर्द्धानन्दिवः ।२।४२। घाठाङ्णीः ।१। यस्ते ।१।२५। घुजघघुः ।१। प्राणाय मे ।३।३५। गुरुन्वघाः ।३। मघवे त्वा ।१।१५। कुखकअः ।३। इन्द्राग्नी-

१. परिभाषासूत्रस्यास्य स्वरूपं सम्प्रदायतो ज्ञेयम् ।
२. परिभाषासूत्रस्यास्य स्वरूपं सम्प्रदायतोज्ञेयम् ।
३. परिभाषासूत्रस्यास्य स्वरूपं सम्प्रदायतोज्ञेयम् ।
४. एवमेवाग्रेऽपि ।

ऽऽआगतम् ।१।१३। किगरवाङ । आघ ।१।१४। ओमासश्च्चर्षणीघृत: ।१।१० औचकक । श्रृणुता मे ।१।९। ओकअगा । इन्द्रमरुत्व: ।१।२२। खाघाखक । मरुत्वन्तम् ।१।१७। केकगाङ: । मरुताम्त्वा ।१।३०। इइअक: ।१। सजोषाऽइन्द्र ।१।१९। कोचिघरव: । मरुत्वाँ ।२। ऽइन्द्र ।१।२०। कौभाछाई । यओयज्ञा ।१।६। ओगाकाअ । उडच्युम् ।६।१८२। भालठीफे: ।३। ऋच: ।४६। अनुवाका: ।२५। पदानि ।७८८। आदित्येभ्यस्त्वा ।४।७०। चौतीचिजे ।२। त्वाम-मद्य ।२३५। गुण्ङाच ।२। सुशर्म्मासि ।१।६। ओगगआ: । बृहस्प्पतिसुतस्य ।२।५१। ङणिमाठे: ।१। हरिरसि ।३४५। घुतिथघि: ।३। समिन्द्र ।६।१११। टरैधानी । उरुठं० हि ।४।८७। जैपिणिते ।२। एजतु दशमास्य: ।५।७१। छभठथा: ।१। आतिष्ठ ।१।१८। केकाकारव: ।१। युक्ष्वाहि । किखगख । इन्द्रमित् ।।१२।। काखकाङा । यस्मान्न ।२।४३। धिठपङची:[१] ।१। अग्ग्ने पवस्व ।१।२३। खिगकिङा ।२। अदृश्र-मस्य ।१।२३। खिचाअघ: ।१। आजिग्घ्र ।२४६। घचगगि:[२] ।५। विवनऽइन्द्र ।११७। केङाखक । त्वाच-स्प्पतिम् ।९।१९। कोङङगा[३] ।१। विवश्वक र्म्मन्ह-विषा ।१।१७। केङाखङ । अग्ग्नये त्वा ।४।५२। ङाखीअटे । इह रति: ।३।६७। चेतुछणै: । परेमेष्ट्ठ्य-भिधीत: ।१०।१७५। थुम्ध्यैम्नीमौ । ऋच: ।५७।

---

१. इमानि सर्वाणि वेदपरिभाषासूत्राणि ।

२. एषां स्वरूपज्ञाने सम्प्रदाय एव शरणम् ।

३. एषां स्वरूपज्ञाने सम्प्रदाय एव शरणम् ।

अनुवाकाः ।२२। पदानि ।१०१६। देवसवितः ।४।७६। छोधयाम्णि ।२। इन्द्रस्य व्वृष्णः । युज्येदनौः ।३। देवस्याहम् ।९।१।६२। ताय्या शिञ्ज्रौ ।४। आपये स्वाहा ।३।६८। चैथजैछा ।४। व्वाजस्येमम् ।८।१२३। ठिफीणिशुः ।५। अग्निरेकाक्ष रेण ।४।७२। छाभूरथू। एष ते ।४।६६। चून्माराधीः ।१। सविता त्वा ।१।४३। घिङ्घाड । ऋचः ३६ । अनुवाकाः ।८। पदानि ।७२८। अपो देवाः ।४।५६। डून्मीडडः ।१। सोमस्य त्विषिः ।५।८६। जोषपिठी ।४। अवेष्टा दन्दशूकाः ।६।१०७। ञेवटुवौ ।४। सोमस्य त्वा । ।७८। छैढीजठै ।४। मित्रावरुणयोस्त्वा ।५।६२। ज्ञादिनिदैँ ।४। स्योनाऽसि ।४। चेवातज्ञ ।४। सवित्त्रा प्प्रसवित्त्रा ।१।२४। खिगगाञ । अश्विभ्याम्प-च्च्यस्य ।४।६५। चुटाटठू । ऋचः ।३२। अनुवाकाः ।८। पदानि ।५७८। युञ्जानः प्प्रथमम् ।६।१३४। डीसिदारो[1] ।६। प्रतूर्त्तंव्वाजिन् ।१५।२१९। पोन्वोऽ-यीग्यूँः[2] ।१। अङ्गिरस्वत्खनामि ।१०।४४। टीच्चे-र्धंलै[3] ।४। अपो देवीः ।१२।२०९। नोन्दोशुन्र्थी[4] ।६। आपो हि ।११।१५८। शौन्विनाद्धु ।१२। अदितिष्ट्वा ।३।६४। चीपज्ञजी ।८। आकूतिमग्निम् ।१७। ५०। वोर्स्वीञ्जीम्यै ।४। ऋचः ।७८। अनुवाकाः ।७। पदानि ।११७८। दृशानो रुक्कम्मः ।१ ।३९७। वेहेवाङ्वोर्व्यीः ।५। टीच्चेर्धंलै ।४। अपो देवीः

---

१. एतादृशानि सूत्राणि परिभाषारूपाणि सम्प्रदायतो ज्ञेयानि ।

२. एतादृशानि सूत्राणि परिभाषारूपाणि सम्प्रदायतो ज्ञेयानि ।

३. एतादृशानि सूत्राणि परिभाषारूपाणि सम्प्रदायतो ज्ञेयानि ।

४. एतादृशानि सूत्राणि परिभाषारूपाणि सम्प्रदायतो ज्ञेयानि ।

।१२।२०। नोन्ध्वोशुन्थौं ।६। आवो हि ।११।१५८। णौन्विनाङ्धु ।१२। अदितिष्ट्वा ।४।७४। छीपझजी ।८। आकूतिमग्निम् ।१७।२४०। वौर्स्वींत्रीम्यैं ।४। ऋचः ।७८। अनुवाकाः ।७। पदानि ।११२८। दृशानो रुक्मः ।१६।२९७। येहेवाङ्वाव्याः ।५। दिवस्परि ।१०।१८२। दान्यूलुर्ज्यैं: ।१। उदुत्वा ।५।१७२। थाह्यमृफः ।७। अपेत ।१५।२३३। विस्पिहो स्वी । असुन्न्वन्तमयजमानम् ।११।२१७। याऽओषधीः ।२७।३५१। स्यव्यौम्लौ ।१२। मा मा ।१५।१२२। प्रव्रहृध्यैं: ।११। ऋचः ।०८। अनुवाकाः । पदानि ।१६७३। मयि गृह्णामि ।१३।२३२। वान्ध्मुवुन्मौः ।३। ध्रुवाऽसि ।११।१७२। थावालैर्तः ।९। मधुव्वाताः ।९।१२५। टुथ्नौघड ।८। सम्यक् स्रवन्ति ।८।१२४। ठीषोऽहू ।४। इमम्मा ।६।१२। ज्ञाती जण्मु[1] ।२। अपान्त्वा ।१।२०। कौईकक:[2] ।६। अयम्पुरः ।५।१०९। ओर्म्नसुर्फम्[3] । ऋचः ।३। अनुवाकाः ।६। पदानि ।८०७४। ध्रुवक्षितिद्ध्रुवयोनिः ।५।६२। ज्ञाथटिताः ।५। सजूर्ऋतुभिः ।२।३८। गैदझङती । मूर्द्धा व्वयः ।२।४३। घिदातर्चा । इन्द्राग्नीऽअव्व्यथमानाम् ।३।३५। गुङङिच्छुः ।३। आयुर्म्मे ।६।७९। छोमछजो आशुस्त्रिवृत् ।१।४१। घड्यवगिः । अग्नेऽर्भागः ।३।५६। ङोध्रढवीः ।१। एकया स्तुवत ।४।७८। छेध्धिलिङा । ऋचः ।२६। पदानि ।४६५। अनुवाकाः ।८। अग्ने जातान् ।५।१६ इ । रश्मिमनासत्याय

१. ईदृशपरिभाषासूत्राणां विषये पूर्वमेवोक्तम् ।
२. ईदृशपरिभाषासूत्राणां विषये पूर्वमेवोक्तम् ।
३. ईदृशपरिभाषासूत्राणां विषये पूर्वमेवोक्तम् ।

।४।८०। छौतिर्थठि ।२। राज्ञसि ।५।८७। जेअडुदः।२। अयं पुरः ।५।७५। छुलामाघे ।६। अयमग्निः ।२४। २०। षोहव्यीर्वैथर्च्यो ।४। येन ऋषयः ।७।१२०। ठौज्मेदिले: ।१। तपस्तपस्यः ।४।६२। चाटाः । ऋचः ।५४। अनुवाकाः ।७। पदानि ।८३३। नमस्ते ।२३३। विशर्म्नंमूषूशे ।४। हिरण्यबाहवे ।५।६५। चुञ्चफयी । उष्णीषिणे ।५।४३। घिघ्नरर्के । तक्षभ्यः ।५।४२। घाटधञः ।१। ज्येष्ठाय ।५।४१। घअतअ । स्रुत्याय ।४।३५। गुरवझक ।२। शम्भवाय ।१।७। एगङख । पार्याय ।५।४६। घोटदकु । द्रापेऽ-अन्धसः ।७१।१८८। दात्मीहामैः ।७। ऋचः ।६३। अनुवाकाः ।६। पदानि ।७०३। अश्मन्नूर्ज्जम् ।९। घोटदकु ।६।१५४। णीन्यधलु[१] ।६। नमस्ते ।५।६३। चिपिडछ्राः ।३। अग्निस्तिग्मेन ।७।१५४। ठिसेर्धूपैः ।२। चक्षुषः पिता ।८।४६। ढुसीथीक्युः ।१। आशुः शिशानः ।१३।२८१। त्नस्त्न्वौचिर्मोः १३। उदेनम् ।१४।२०८। नैल्विज्युर्लेः ।१। क्रमद्ध्वमग्निना ।१३।२०९। नोष्मुविभ्नौः ।१। शुक्रज्योतिश्च ।७।७२। छान्दुलाछोः ।१। इमर्ठ०स्तन ।१३।२०८। नैन्हैमून्र्यो ।४। ऋचः ।९२। अनुवाकाः ।६।१४६५। व्वाजश्च ।४६५। ङलेछाजा । सत्त्यं श्रद्धा ।४।४८। घैदसमी । ऊर्क् सूनृता ।४।४८। घैमजतु । अश्म्मा ।३०३। गिणरवच । अग्निरिन्द्रः ।२०। कौटअक । अ ᳫँ शूरश्मिः ।५८। ङैम्पथिक्ि । एका तिस्रः ।४।४१। घनार्माइ । व्वाजाय स्वाहा ।३०।३०। खौचङधूः ।१।

१. परिभाषासूत्राणि एतानि । पूर्वमेवैषां स्वरूपज्ञानविषये उक्तम् ।

व्विश्श्वेऽअद्य ।६।१०१। अनिटाणि ।६। ऋताषाट् ।११।१२१। ठश्रीदछू ।२। अग्निग्नयुनज्मि ।७।१०७। अग्रित्ताणिः ।५। यदाकूतात् ।८।१।११४। टिलोयार्द्धीः ।१। व्वार्त्रहत्याय ।८।१२०। ठिज्यिढमिः । ऋचः ।६९। अनुवाकाः ।१३। पदानि ॥९००॥

स्वाद्वीन्त्वा ।६।१५१। णहिताद्रे ।६। देवायज्ञम् ।२।२३५। बुध्न्वेम्व स्र्वी ! सुरावन्तम्बर्हिषदम् ।१७।२२७। केह्मीशीर्म्वी ।६। उदीरताम् ।१३।१२२। भाम्त्वौद्रिले[1] ।१२। आच्च्या जानु ।१०।१७८। थँश्रोधिफौः[2] ।३। सोमो राजा । जदणोर्फ[3] । सीसेन तन्त्रम् ।१६।२८२। लात्व्रोमीऽर्न ।२। ऋचः ।९३। अनुवाकाः ।७। पदानि ॥३७६॥

क्षत्रस्य योनिः ।१२।१६०। दौध्म्यीषूर्नी[4] ।६। यद्देवाः ।६।१०६। ञोमीडीर्मीः[5] ।७। अध्यादधामि ।६५। ज्ञनानाच्छायिः ।१। यो भूतानाम् ।३।४२। घादिठउ[6] ।१। समिद्धऽइन्द्रः ।११।१७२। दात्कौहुछेः[7] ।३। आयातु ।८।१३६। डोध्मूषीर्फी ।११२। समिद्धोऽअग्निः ।१२।१५४। णीलीणूप्रि ।२। अश्श्विना । २।४८। ढैञ्यीफाहिः ।१। अश्श्विना तेजसा ।११।१०४। ञीञ्यधाणे । ऋचः ।८१। अनुवाकाः ।६। पदानि ॥१६४॥

---

१ परिभाषासूत्राणि एतानि । पूर्वमेवैषां स्वरूपज्ञानविषये उक्तम् ।
२. परिभाषासूत्राणि एतानि । पूर्वमेवैषां स्वरूपज्ञानविषये उक्तम् ।
३. परिभाषासूत्राणि एतानि । पूर्वमेवैषां स्वरूपज्ञानविषये उक्तम् ।
४. इमानि परिभाषासूत्राणि । एषां विषये पूर्वमुक्तम् ।
५. इमानि परिभाषासूत्राणि । एषां विषये पूर्वमुक्तम् ।
६. इमानि परिभाषासूत्राणि । एषां विषये पूर्वमुक्तम् ।
७. इमानि परिभाषासूत्राणि । एषां विषये पूर्वमुक्तम् ।

इमम्मे ८।११८। टैप्वाढाब्ना ।४। समिद्धोऽअग्निः ।
।११।६८। झौम्नोमीर्छं । वसन्तेनऽऋतुना ।६।४४।
घीतछघ । होतायक्षत् ।१२।१४८। भैम्वीघुश्न्वं ।२।
अश्विनौ छागस्य ।६।१४६। ढ्स्फिमर्ही ।६। देवम्बर्हिः
।१४।२८६। लोम्र्यान्णेर्काः ।६। ऋचः ।५७।
अनुवाकाः ।६। पदानि ॥६४२॥

तेजोऽसि ।:।८०। छौफुटथ ।२। अपाम्मोदाय ।१।६
ओअअक ।१। हिङ्काराय ।२।५४। ङीअवङी ।
हिरण्यपाणिमूतये ।९।८४। जीधादप् । व्विभूम्मात्रा ।
९।३७। नेथचडः ।१। काय कस्म्मै ।१।२४। खीक-
झख । आब्रह्मन् । घापिजन्वः ।१। चक्षुषे श्रोत्राय
।९।१४। ईअअः ।१। प्राच्च्यै दिशे ।१।९। ओअअः ।
अद्भ्योव्वाब्भ्यः ।१।१२। काझखआ । व्वाताय
१।१८। कैखङखि । इन्द्राय पृथिव्यै ।१।९। ओख-
कआ । नक्षत्रेब्भ्यो नक्षत्रियेब्भ्यः ।१।२४। खीन-
चखाः ।१। परिप्लवेब्भ्यः ।१।३। इग[1]कअ । असवे
व्वसवे ।१।१५। कुअचक । इषायोर्ज्जाय ।।।२।
आअ[2]लअ । स्वः स्वाहा । १।४। ईककाअ[3] प्राणोऽ-
पानः ।१।५। ङङचका । एकस्मै द्द्वाब्भ्याम् ।१।६।
ऊकगक ।१। ऋचः ।२६। अनुवाकाः ।१६। पदानि
।४४१॥ प्रजापतये त्वा ।१।२३। खिगागख । यः
प्प्राणतः ।१।२३। श्व्वङ्थकाः ।१। युञ्जन्ति
ब्रद्ध्नम् ।८।१०८। ऐभीछतै ।२। वायुष्ट्वा ।
५।६३। झिडमुडाझैं ।६। अम्बेऽअम्बिके । ३।४४।

१. एषां परिभाषासूत्राणां विषयेऽपि पूर्ववदेवार्थव्यवस्था ज्ञेया ।
२. एषां परिभाषासूत्राणां विषयेऽपि पूर्ववदेवार्थव्यवस्था ज्ञेया ।
३. एषां परिभाषासूत्राणां विषयेऽपि पूर्ववदेवार्थव्यवस्था ज्ञेया ।

घीतठाठ ।२। उत्सक्त्याऽअव ।१२।४४। ठीरुटार्भूः।१। गायत्री त्रिष्टुप् ।५।५६। ङ्हृटके: ।३। कस्त्वा ।६।८४। जुयछ्जि ।१२। किँ स्वित् ।६१०७। ञेयिञुते ।४। काऽईम् ।८।१३८। डैडयणीवि ।२। सुभूः स्वयम्भूः ।२।२३। खिझघचाः । ऋचः ।५७। अनुवाकाः ।११। पदानि ।८४४। अश्श्वस्तूपरः ।१०।५६६। तोहृक्म-लङ् । धूम्म्रन्वसन्ताय । ।१०। ११६ । दृहृञटिः ।१। समुद्राय शिशुमारान् ।१०।१३७। हेर्हृयार्डे । मयुः प्राजापत्यः ।१०।१९२। धह्लिलयू । ऋचः ।४०। अनुवाकाः ।४। पदानि ।५१४। शादन्दद्भिः ।५।४०। गौठिझाणि । व्वातम्प्राणेन ।१।४१। घचा-डादि । मशकान्केशैः ।९। खेघीचता । अग्ग्नेः पक्षतिः ।१३३। गायच्छ । मरुता ँ स्कन्धाः ।१।२४। खीगगाङ । पूषणम्बनिष्टुना ।१।२२। खाङ[1]चढः । इन्द्रस्य क्रोडः ।६।३५। गुजेङ[2]ज्ञा । विधृतिन्नाभ्या ।१।२६। खज[3]गङा । यस्येमे । खेझछाशे । आनः ।१०।१६१। थश्मीभाद्भिः ।७। मानः ।८।१४८। ठैत्रियार्भाः ।३। यदश्श्वस्य ।८।६३८। डैभफास् ।३। यत्तो ।६।१९४। ञियठुदे ।२। इमानु ।१।३०। खौझ-गिङी ऋचः ।४४। अनुवाकः ।१५। पदानि ।९।१२।। अग्ग्निश्च ।१४।२१८। पैम्लोङ्विभूः ।१०। उच्चाते ।११।१३६। उड्प्राधितो ।४। ऋचः ।२५। अनुवाकाः ।२। पदानि ।३५४। समास्त्वा ।९।१७३। थिध्रीरवो ।४। ऊद्र्ध्वाऽअस्य ।१२।१३७। डेब्धढ्ये ।४। पीवोऽ

१. परिभाषासूत्राणामेषां स्वरूपाणि सम्प्रदायगम्यानि ।
२. परिभाषासूत्राणामेषां स्वरूपाणि सम्प्रदायगम्यानि ।
३. परिभाषासूत्राणामेषां स्वरूपाणि सम्प्रदायगम्यानि ।

अन्ना ।१२।१७७। थन्हर्वणै ।४। अभित्त्वा ।११।१६५। तुम्पिपाशो: ।३। ऋचः ।४४। अनुवाकाः ।४। पदानि ।६५२। होतायक्षत् ।११।१२४। टिष्णुषुम्न ।२। देवम्बर्हिः । टोथेभीर्त्युं ।२। समिर्धानम्महत् ।१३। ११८२। टैभान्योष् । देवम्बर्हिः ।२।४१। घछदत्ति । ऋचः ।३६। अनुवाकाः ।४। पदानि ।४२७। समिद्धोऽ अञ्जन ।११।१६६। धूंच्ह्रोन्हलुः ।९। यदक्रन्दः ।१३। २३२। वाराम्वीमुन्देः ।५। समिद्धोऽअद्यः ।१२।२०२। नर्कावीकु ।८। केतुङ् कृण्वन् ।२४।४४१। श्रश्टलैर्ध्वे- र्स्वेर्ष्वि ।१२। ऋचः ।६०। अनुवाकाः ।४। पदानि । ।१०७१।। व्विश्वानि देव ।४।६१। चचडयो[1] । तपसे कौलालम् ।१६।३५८। ज्योकुस्ल[2]हस्ल्यु ।८। ऋचः अनुवाकाः ।२। पदानि ।४११। सहस्रशीर्षा पुरुषः ।१३।२३७। फोर्ल्पिदर्षि ।१। अद्भ्यः सम्भृतः । ञुलु[4]टिपै । ऋचः ।२२। अनुवाकाः ।२। पदानि ३३० । तदेव ।७।१०। म्निज्ञयत्रैभि ।१।१५। णोशूफीच्युः ।३। ऋचः ।१६। अनुवाकाः ।२। पदानि २६२। अस्या जरासः ।१४।२०३। नाहुसीर्ध्नुः।५। आपश्चित् ।१२।१४९। दोदूर्द्वायुर्हं ।४। व्विभ्राड्बृहत् ।१२।२००। धौप्नौंभीक्थाँ ।१०। प्रवावृजे ।१०।१५३। णिम्नतोशु ।२। प्रवायुम् ।१३।१८०। थौथ्योलुडेमीः ।७। प्रवीरया ।१२।१८९। दौथ्र्य्यैरुठुः ।३। आनः ।१३।१९२। धाम्यायूर्से ।६। ऋचः ।८७। अनुवाकाः

---

१. ईदृशसूत्रविषयिका चर्चा पूर्ववदेव ।
२. ईदृशसूत्रविषयिका चर्चा पूर्ववदेव ।
३. ईदृशसूत्रविषयिका चर्चा पूर्ववदेव ।
४. ईदृशसूत्रविफयिका चर्चा पूर्ववदेव ।

।७। पदानि ।१३०५।। यज्जाग्रतः ।१०।१४७। डेशुभिण्युं ।१२। पञ्चनद्यः । १०।१६७। तेश्चिपाशे ।६। सोमो धेनुम् ।१०।१६३। तिथेनूशै ।४। आरात्रि ।९।१६२। ताम्पिविलोः ।५। पूषन्तव । १०।१४९। ढीम्न्मेड्वेः ।३। न तत् ।८।१४६। ढूम्बोधर्द्री ।५। ऋचः ।५७। अनुवाकाः ।६। पदानि ।९३४। पेतः ।६।३६। डोग्रोठियः ।१। अपाघम् ।८।१३४। डीनिज्यू ।४। ऋचः ।१८। अनुवाकाः ।२। पदानि ।२७३। ऋचँव्वाचम् ।८।९८। झज्वाझाढु ।१०। द्यौः शान्तिः ।१५।७३। छिपाढाणे ।४। ऋचः ।१३। अनुवाकाः ।२। पदानि ।१७२। नारिरसि ।३।३६। गूझगिरवाः ।१। यमाय मखाय ।१०।१६२। ता ष्वीनील्ह । ऋचः ।१२। अनुवाकाः ।२। पदानि ।१९८। सरस्वत्यसौ ।६।७५। छुणडिछी ।३। यमायाङ्गिरस्वते ।१०।१२३। ठिमीतियीः ।३। क्षत्रस्य त्वा ।७।१०७। जशाषीणो ।१। ऋचः ।२३। अनुवाकाः ।२। पदानि ।३०४। स्वाहा प्राणेभ्यः ।६।४८। जै ध्रिणद् । उग्रश्च्च ।७।९१। झमीलाघु ।२। ऋचः ।१३। अनुवाकाः ।२। पदानि ।१७१। ईशा व्वास्यम् ।८।१३२। डाशोडिर्धीः ।१। अन्धन्तमः ।६।७९। छोणडिषे । ऋचः ।१४। अनुवाकाः ।२। पदानि ।२११। इतिश्री पण्डितसिद्धेश्वरसूनुना पण्डितरामचन्द्रविरचिता वेदपरिभाषा शिक्षा समाप्ता । अथ वेदपरिभाषाकारिका[1]शिक्षा सटीका प्रारभ्यते । श्रीरामं सद्गुरुं याज्ञवल्क्य कात्यायनं तथा । नत्त्वा पदानां वक्ष्यामि लक्षणं चतुरक्षरैः ।१।

---

१. वेदपरिभाषाशिक्षासमाप्त्यनन्तरं वेदपरिभाषाकारिकानामिका शिक्षा सटीका प्रारभ्यते ।

अनुवाकेऽनुवाके चाम्नाये माध्यन्दिनीयके । परिभाषो-
च्यते हल्युक् वलो वा स्वरोऽक्षरम् ॥२॥

अनयोरर्थः । श्रीराममुपास्यदेवतां विद्याप्रदं सद्गुरुं शाखाप्रणेतारं याज्ञवल्क्यं, सूत्रकारं कात्यायनं च नत्वा नमस्कृत्य माध्यन्दिनीयके माध्यन्दिनशाखायां अनुवाकेऽनुवाके प्रत्यनुवाकं तस्मिन्ननुवाके पदानां चतुरक्षरैः अक्षरचतुष्टयेन लक्षणनिर्णयं वक्ष्यामि। कथयिष्यामि । तत्र परिभाषोच्यते । हलिति[1] व्यञ्जनसंज्ञा । व्यञ्जनयुतं गुइत्यादि तद् अक्षरसञ्ज्ञं ज्ञेयम् । पदसङ्ख्याऽऽदिमेन स्याद्द्वितीयेन विसर्गनौ ।
सावग्रहं सेतिकारं तृतीयेन तुरीयतः ॥३॥

मान्तं क्वादिहलन्तं च सितुसेन्तं विसर्गतः । एकरूपं
तु विषमं तदभावे समन्न वा ॥४॥

अनयोश्चार्थः । आदिमेनाक्षरेणानुवाकपदसङ्ख्या ज्ञेया । द्वितीयेनाक्षरेण सावग्रहकेवलेतिकारसहितपद-सङ्ख्या । चतुर्थेनाक्षरेण मान्तकटतपङणान्तपद-सङ्ख्या ज्ञेया । सितुसेन्तमिति सर्वान्ते विसर्गश्चेत् । तेन सिशब्दान्तं तुशब्दान्तं च एकरूपं एकसङ्ख्या-बोधितं च विषयं जातं बोध्यम् । यथा प्रथमाध्यायस्य पञ्चमेऽनुवाके शर्म्मासीत्येतस्मिन् सिशब्दान्तानि अष्टौ तुशब्दान्तानि पञ्च मिलित्वा त्रयोदश ।१३। विषमसङ्ख्या वा । तद्बोधकः जिवतिट्: । इति विसर्गो लिखितः । कति विषमाणीति निर्णयार्थम् । अङ्कोऽपि यथा तत्रैव १३ तदभावे यत्र विसर्गो न

---

[1] हलिति हकारादिलकारान्तवर्णानां प्रत्याहाररूपा संज्ञा, व्यञ्जनपदेनापि एषां वर्णानां बोधो भवति ।

लिखितस्तत्र समानि अथवा न सन्ति। तयोर्निर्णयार्थं यत्र समानि तत्राङ्क एव लिख्यते। यथा प्रथमाध्याये द्वितीयानुवाके व्वसोः पवित्रमित्येतस्मिन् घाढमचा इत्यक्षरान्ते तत्र स्यन्तमेकं त्वन्तकमेकमिति मिलित्वा द्वयम्, सः अङ्क एव लिखितः। अधुना संख्यानिर्णयार्थं स्वराणां व्यञ्जनानां च सङ्ख्या नियमक्रमं चाह।

ककारादिहकारान्तास्त्रयस्त्रिंशद्धलः स्मृताः। सङ्ख्यापूर्तिस्तु नैकेन सँय्योगं तत्र कारयेत् ॥५॥

अस्यार्थः। ककारमारभ्य हकारपर्यन्तं त्रयस्त्रिंशद्व्यञ्जनानि यस्मिन्नक्षरे यद्व्यञ्जनं लिखितं तस्य या सङ्ख्या सैव तदक्षरबोध्यस्य ज्ञेया। गकारे त्रयः। चकारे षडित्यादि। यथा प्रथमानुवाके "गु" इत्यत्र गकारेण त्रयः। "ठि" इत्यत्र ठकारेण द्वादश। यत्र तु एकेन व्यञ्जनेन सङ्ख्या पूरणन्नास्ति तत्र सङ्ख्यापूर्तिपर्यन्तं व्यञ्जनानां सँय्योगं कृत्वा लेखनीयम्[1]। यथा द्वितीयाध्यायस्यान्तिमेऽनुवाके। अग्नये कव्यवाहनायेत्यत्र जोङ्वीठङुः इत्यत्र द्वितीयाक्षरे ङकारेण पञ्च वकारेण एकोनत्रिंशन्मिलित्वा चतुस्त्रिंशत्सङ्ख्या ज्ञातव्येति।५। ऋ लृवर्ज्या अकाराद्या औकारान्ताः स्वराः आद्ये द्वितीयादिषु तु नवैवाकारवर्जिताः ॥६॥

अस्यार्थः। स्वरास्तु[2] ऋलृवर्ज्या इत्यकारादयः औकारान्ताः अआ इई उऊ एऐ ओऔ इति प्रथमाक्षरे स्वरा ज्ञेयाः। यथा प्रथमाध्यायस्य प्रथमानुवाके "गु"

१. पूर्वसूत्राणां व्याख्यानस्य शैली अत्र बोध्यते।

२. स्वेन राजन्ते इति स्वराः। स्वपदेउपपदे राजधातोर्डप्रत्यये सति स्वरशब्दस्य निष्पत्तिः।

इत्यत्र ङकारेण पञ्च । द्वितीयाद्यक्षरत्रये तु अकारं त्यक्त्वा आकारमारभ्य एकादि नवपर्यन्ता गणनीयाः । यत्र तु अकारस्तत्र शून्यम् । यथा प्रथमानुवाके "ठि" इत्यत्र इकारेण द्वौ । तथा तत्रैव "घ" इत्यत्र अकारेण शून्यमभाव इत्यर्थः ।६। नवाधिकेतूपरिस्थरेफेण दश वा नरवाः । एकोनविंशत्यधिकेऽनुस्वारात्तिथयः स्मृताः ॥७॥

अस्यार्थः । यत्र तु स्वरेषु नवापेक्षयाऽधिकसङ्ख्या अपेक्षिता तत्र तदक्षरस्योपरि रेफबोधिका कुण्डली[1] लेखनीया । तया दशसङ्ख्या ज्ञातव्या । यत्र यत्रैका कुण्डली तत्र दशैव । यत्र विंशतिः । यथा तृतीयाध्यायस्य चतुर्थेऽनुवाके उपप्रयन्त इत्यत्र चतुर्थाक्षरे "ह्रि" इत्यत्र रेफेण दश इकारेण द्वौ मिलित्वा द्वादश । कुण्डलीद्वयं तु सर्वग्रन्थमध्ये स्थलद्वये लिखितं तत्र विंशतिः । यथा चतुर्विंशतितमेऽध्याये तृतीयानुवाके समुद्रायेत्यस्मिन् ङे । ह्रिपङ्गी इत्यत्र द्वितीयाक्षरे तथा एकत्रिंशेऽध्याये सहस्रशीर्षेति-प्रथमानुवाके "फौत्विर्द्दृर्षिः" इत्यत्र चतुरे इति । एकोनविंशतीति । स्वररेफौ मिलित्वा एकोनविंशतिस्तदपेक्षयाऽधिकसङ्ख्या । यत्रापेक्षिता तत्रोपरि अनुस्वारो लेखनीयस्तेन तिथयः पञ्चदश ज्ञेयाः । यथा द्वादशेऽध्याये षष्ठे या ओषधीरित्यनुवाके इत्यत्र चतुर्थेऽक्षरेऽनुस्वारेण पञ्चदश औकारेणाष्टौ मिलित्वा त्रयोविंशतिरित्यर्थः ।७। अधुना केन प्रकारेण सङ्ख्याज्ञानम् । प्रकारमाह दशघ्ने हल्युते नाचा

---

१. पञ्चदशसु अष्टानामेषां योगे सति त्रयोविंशति र्भवति ।

पदसङ्ख्याऽऽदिमेऽक्षरे । द्वितीयादित्रिष्ठहृल्भिर्वि-
सर्गोऽवग्रहश्च सः ॥८॥

अज्भिर्न्नातं सेतिकारं क्रमात्कादिहलन्तकम्। अस्यार्थः। अच् इति स्वरसञ्ज्ञा। आद्येऽक्षरे दशभिर्गुणितो यो हल् व्यञ्जनन्तेन[1] युक्तो योऽच् स्वरस्तेन[2] या सम्पन्ना सा पदानां सङ्ख्या। यथा प्रथमाध्यायस्य नवमेऽनुवाके आददेऽद्ध्वरकृतं इत्यत्र "आमुधुधी" अत्र प्रथमाक्षरं आ तत्र हल् अकारो दश स दशघ्नः शतं अच् आकारः द्वे मिलित्वा द्वयधिकं शतम् ।१०२। सा पदसङ्ख्या। द्वितीया इति। द्वितीयाक्षरस्थ-व्यञ्जननेन विसर्गसङ्ख्या। तृतीयाक्षरस्थव्यञ्जनेना-वग्रहसंख्या। चतुर्थाक्षरस्थव्यञ्जनेन मान्तपद-सङ्ख्या। तृतीयाक्षरस्थव्यञ्जनेनावग्रहसङ्ख्या। चतुर्थाक्षरस्थव्यञ्जनेन मान्तपदसंख्या। द्विती-याक्षरस्थस्वरेण नान्तपदसङ्ख्या। तृतीयाक्षरस्थ-स्वरेण निरवग्रहसेतिकारपदसङ्ख्या। चतुर्थाक्षरस्थ-स्वरेण कटतपङणान्तपदसङ्ख्या। यथा तत्रैव द्वितीया-क्षरं "भु"। इति व्यञ्जनं भकारः। चतुर्विंशतिस्ता-विसर्गाः। स्वरः उकारः अकारादिगणनया चत्वा-रस्तावन्तो नकाराः तृतीयाक्षरं "ढु" इति तत्र व्यञ्जनं ढकारश्चतुर्दश तावन्तोऽवग्रहाः[3]। स्वर उकारश्चत्वारस्तावन्तो निरवग्रहा इतिकाराः। चतुर्थाक्षरं धी इति तत्र व्यञ्जनं धकार इत्येकोन-विंशतिः। तावन्तो मकाराः। स्वर ईकारस्त्रय

---

१. हलित्यस्य व्याख्यानभूतमिदम्।

२. अजित्यस्य व्याख्यानरूपमेतत्।

३. पारिभाषिकोऽयं शब्दः।

स्तावन्ति ककारादिव्यञ्जनानि । इति बोध्यम् ।८। विसर्गः पदमध्यस्थः पद्यान्तश्च पदान्तगः ।९। पद्यान्तं च पदान्तं च व्यञ्जनं सितसेन्तकम् । कटौ तपौ ङणनमा हलः पद्यपदान्तगाः ।१०। सार्द्धैकपद्यस्यायमर्थः । अत्र संख्यागणने विसर्गः पदमध्यस्थः । धूः सहाविति पद्यमवग्रहस्तदन्त्यः इतिकरणोत्तरे तत्रैव धूः । सहौ । पदान्तगो व्वायव इत्यादिस्त्रिविधोऽपि ग्राह्यः ।९। व्यञ्जनं तु पद्यान्तं बृषण्वसूऽइति वृषण् । व्वसू इति । अवग्रहान्तो णकारः पदान्तमवर्धयत् इति तकारः । एते सङ्ख्यागणने ग्राह्ये । तथैव सितुसेन्तमपि । पदान्ते यातुधानाऽइति यातु । धानाः । पदान्ते पुनातु इत्यादिकम् । विषमसमगणने द्वे अपि ग्राह्ये । कटाविति । कटतपा ङणनमाः । एते अष्टावेव हलः पद्यान्ते च सन्ति । "प्रथमोत्तमाः पदान्तीया अच् औ 'इति प्रातिशाख्यसूत्रात् । इयञ्चतुर्वर्णयुता निर्णीय[१] परिभाषिका । सौकर्यदात्री पाठस्य पदवेदस्य कारिका ॥११॥

**इतिश्रीमत्पण्डितसिद्धेश्वरसूनुना पण्डितरामचन्द्रविरचिता वेदपरिभाषाकारिकाशिक्षा व्याख्यानयुता समाप्ता ।**

---

१. तद्विषये स्वरूपादिनिर्णयं कृत्वेत्यर्थः ।

# अथ यजुर्विधानशिक्षा ॥

अथातो मन्त्राणामनुष्ठानकल्पनं वसिष्ठादिभिर्ब्रह्मर्षिभिरनुष्ठितमनुव्याख्यास्यामो नान्यद्ब्राह्मणस्य कदाचिद्धनार्जनक्रिया विद्यते होमानां यज्ञानां वैषाऽवश्यं क्रिया, किन्तु मन्त्राहुतिवीर्यज्ञानं विद्याधनानां यजुर्वेदैरुपदिश्यते क एते मन्त्रा य एते मन्त्रा ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरस उभयात्मका मन्त्रा देवताभीष्टा वा परा द्रव्यसंस्कारकाश्चेति य एते द्रव्यसंस्कारपरास्ते तत्रैवपयोगिनो ये पुनर्देवताभिज्ञानाश्च फलं तेषां ॐ सर्वार्थत्वमभिसन्धायाऽऽराधितानां च फलाऽऽदानऽआज्ञानसाधितानां फलदर्शनान्मन्त्रलिङ्गदर्शनाच्च विनियोगान्तरं वक्ष्यामस्तत्र कर्मकरणे तुलापुरुषचान्द्रायणकृच्छ्रातिकृच्छ्रादिभिः पूतशरीरेण कर्मापेक्षया द्वादशरात्रठं० षड्रात्रं त्रिरात्रमिति च कर्मणां कर्माङ्गानि कार्याणि सर्वमन्त्राणां पूर्वमेव लक्षणमयुतठं० सहस्रमिति च सिद्ध्यपेक्षया कार्याणि कर्मावसाने च फलावाप्तिर्ब्रह्मवारिणा भवितव्यठं० सरहस्ये कल्पाश्च सिद्धयो भावज्ञातव्याश्चेति ॥१॥ अथ सर्वत्र चोङ्कारपूर्वाभिर्महाव्याहृतिभिराज्याहुतिसहस्रं जुहुयात्सर्वदेवताऽऽराधने समर्थो भवति, तेजस्वी भवत्यथ यथेष्टं कर्मकारणठं० समेताभिरौदुम्बरसमिधो जुहुयात्पशवन्नकामो दधि पयो वा शान्तिकामोऽपामार्गस्तुण्डुनानर्कं समिधो हिरण्यकामोऽन्नाद्यकामो जातीपुष्पाणां युग्मशो ग्रथितानामखण्डितानां धृताक्तानामयुतं जुहुयात्कामी मुष्टिभिस्तिलतन्दुलं जुहुयात् ग्रामकामोऽपाऽपामार्गकामः कर्कोटकान्वशीकर्तुकामोऽभिचारार्थं विषरुधिराक्ता गिरिमालुव्याधिघातकसमिधो जुहुयाद्विषरुधिराक्ता विभीतकसमिधो जुहुयाद्राजा वश्यो भवति क्रोधान्वितो जनमरणे क्षये वा सर्वान्व्रीहीञ्जुहुयादुपशाम्यति दूर्वाव्रीहिभिर्यत्प्रतिकृतित्रयं जुहुयात्स राजा वशीस्यात्सर्वव्रीहिभिः प्ररूढैर्जुहुयाद्बहुशो भवन्ति दूर्वामायुष्कामः पुष्पाणि वसुकामो वा सकुशाग्रं ब्रह्मवर्चस[1]कामो भस्मतुषकण्टककाण्डान् प्रत्यङ्गिरे काकोलूकपक्षहोमो विद्वेषणे चन्द्रग्रहे कपिलाघृतठं०[2] सहस्रसंख्याताभिर्हुतठं० स्रुवेणैव वचामालोड्याऽसुना[3] ऽभिमन्त्रितां कृत्वा पिबेत्परममेधावी भवति पुत्रकामो मासमादित्याऽभिमुखः प्रतिदिनं पुरुषसूक्तमयुतं जपेत् पुत्रंल्लभते यद्यदिच्छेत्तदर्थमपि

---

१. ब्रह्मणो वर्चं इति ब्रह्मवर्चसम्, ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चस इति सूत्रेणाकारप्रत्यये सति अदन्तोऽयं सम्पद्यते ।

२. कपिलायां गोः घृतम् ।

३. अमुना—पूर्वोक्तेन मन्त्रेण ।

याज्ञिकद्रव्यं जुहुयात्तत्तदवश्यठं० सम्पद्यते ।।२।। इत्यनादिष्टोऽयुतहोमः । ओङ्कार-पूर्विकया गायत्र्या च पृथग्युक्तानि सर्वाणि कर्माणि कर्तव्यानि सर्वकामप्राप्त्यर्थोऽयं मन्त्रः सर्वफलसिद्धिदः सर्वकामद इत्यनादेशेऽयुतहोमऽओंकारेण गायत्र्या पृथगुक्तानि कर्माणि भवन्ति, सर्वमन्त्रगणस्याऽप्येष विधिर्द्विषतो वधोऽसोत्यनेनैकादशाङ्गुलां लौहीं खादिरीं वा सूची ॐ सहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा शत्रुगृहे निरवनेदुद्वसति भुवनं, भुवपतये स्वाहेति मन्त्रत्रयस्य प्रतिमन्त्रं महाव्याहृतिवत्कर्म । सूर्यस्त्वेति परा रक्षा प्रत्यङ्गिरं च कर्म । देवं वर्षयितुकाम उदुम्बरबिल्ववेतसवारणानां समिधो दधिमधुघृताक्ताज्जुहुया-द्व्यन्तु[१] व्ययऽऽश्त्यावहशब्दश्च प्लुतः कार्यश्चक्षुष्पाऽइति बल्वनेन मन्त्रेणापहतचक्षु-रुदके प्रविश्याहोरात्रं जपेदनपहतचक्षुर्भवति ।।३।। उपप्रयन्तऽइत्यनुवाकेन महान-साग्निमुपसमाधाय प्रत्यृचमन्नमन्वहं जुहुयादन्नवान् भवति । तनूपाऽग्नेऽसीति रुजा ग्रस्तो दूर्वामयुतं जुहुयाद्रुजा मुच्यते । सत्त्वमग्नऽइति नवभिर्ऋग्भिर्गोष्ठे गा उपतिष्ठेत, तावत् संख्या भवन्ति गाव, इहै वेति यान्धेनुमिच्छति तस्या एव पतितं गोमयं गृहीत्वा दधिमधुघृताक्तं जुहुयात्तां धेनुं ल्लभेदमोघं कर्मेत्याचक्षते । मह्त्रीणामिति त्र्यृचं पथि ग-च्छञ्जपेत्क्षेमेण गच्छति । सुप्रजा इति महाव्याहृतिवत्कर्माभिचारवर्जं, पुष्टिकर्मसु चैष ते रुद्रेति पूर्वार्द्धेन गवेधुकतण्डुलान्जुहुयाद्धनकामो वीरक्रमेण शतपुष्पीं क्रीत्वा जुहुयात्तन्मूल्यठं शतगुणमुत्पद्यते द्वितीयार्द्धेन मूषकशलभोत्पाते क्षेत्रमध्ये बलिं निवेदयेत्पिष्टपूरिकासुरामा ॐ सादिभिरुपशाम्यति ।।४।। द्विपदचतुष्पदानामुपसर्गे भेषजमसीति दधिमधुघृतं जुहुयाच्छान्तिर्भवति त्र्यम्बकमित्यृचार्द्धेन शान्तिकामः पुष्टिकामो वा धान्यव्रीहिसमिधो जुहुयात् त्र्यम्बकमिति कन्याना ॐ सौभाग्यकामानां पतिकामानां भगकामानां वा सर्वाभिस्त्रीभिराज्यहोमः पुरुषस्य कन्याकामस्यानेनैव होमः कन्यानामग्रहणं कृत्तिवासा इति भयेषु जपेदभयं भवति जपेन सर्वोत्तरवादी भवति लोकश्च वचनविधेयो भवति त्र्यम्बकमित्युगुभयेन धत्तूरकपुष्पाणां घृतप्लुतानां चतुष्पथे शून्यायतने वाऽग्निमुपसमाधाय शतसहस्रं जुहुयात् साक्षाद्भगवन्तं त्र्यम्बकं पशुपतिं दृष्ट्वैव तेनेत्युपतिष्ठते ह्युपस्थानान्तेऽभीष्टान्कामाँल्लभतऽएतेनैव गुग्गुलधूपो दीपश्च नवनीतेनाथ भगवन्तन्त्र्यम्बकं पश्यति चेत्सुवर्णरजतमिश्राणां भाजनानां ॐ सहस्रं ल्लभते ।।५।। आकूत्याऽइत्यष्टौ स्रुवाहुतीर्जुहुयाद्राजकुलेभ्यो भयन्न भवत्यन्वहं जुहुयात्का ॐ स्यभाजनाना ॐ शतंल्लभते तिलाहुतीनामयुतं जुहुयाद्गोत्रे ह्यापदो च भवन्त्यकाले न कश्चिन्म्रियते । चिदसीति सहस्रं जपेत्सर्वोत्तरवादी भवति लोकश्च वचनविधेयो भवत्यग्नेस्तनूरिति व्रीहितण्डुलान्पयोऽयुतान्त्सहस्रं जुहुयात्सर्वातिथि-र्भवति । युञ्जते मनऽइति वैष्णवानुवाकं जप्त्वा सायंप्रातः प्रयुञ्जानो दीर्घायुर्भवति भयमन्यत्रापि न भवति । दिवो वा विष्णऽइति महाव्याहृतिवत्कर्म । विष्णो रराट-

१. दधिमधुघृताक्तामिति पाठो नोचितः । समिधः इत्यस्य विशेषणतायां बहुवचनान्तं पठनीयम् ।

२. तावती संख्या यासां ता इति । बहुव्रीहिः ।

मित्ययुतं जप्त्वाऽष्टसहस्रं जुहुयात्पातालेऽपि भयन्न भवत्ययन्नोऽअग्निरिति रात्रौ शरीरमायुधञ्चात्मानं चाभिमन्त्र्य सङ्ग्रामे प्रविशेज्जयो भवति ॥६॥ इदमापः प्रवहतेत्यप्सु निमज्य जपेदहोरात्रोषितो यावज्जीवकृतात्पापात्प्रमुच्यते । देवा ऽ॑ शो इति व्याधिघातकराजिकाऽभिरभिचारो युक्त्वा हि केशिनेत्युपश्रुतिरहोरात्रोषितो भूत्वोपश्रुतिं कुर्याज्जुहुयादग्नऽआयू ऽ॑ ष्यग्ने पवस्वेति ब्रह्मवर्चसकामः स्याज्यहोमऽ-उदुत्त्यमिति ब्रीहितण्डुलान्पयसा सँय्युक्ताञ्छतसहस्रं जुहुयात्सर्वातिथिर्भवति । चित्रन्देवानामिति महाव्याहृतिवत्कर्म । विनऽइन्द्रेति यस्मादधिको भवितुमिच्छन्ब्रह्म-वर्चसेन विद्यया धनेन यशसा वा तस्य नामग्राहं जपेदधिको भवत्यनेनैवाज्याहुतीर्जुहु-याद्दासमिथुनँल्लभते । विश्वकर्मन्हविषेति यामेव कन्यामिच्छति तस्या नामग्राह-मायसी ऽ॑ सूचीं द्वादशाङ्गुला ऽ॑ सहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा तस्याऽएव गृहद्वारे निरव-नेन्न म्रियते न चान्यस्मै प्रदीयते ॥७॥ प्राणाय मऽइत्यवकाशान्नित्यं तपेत्तेजस्वी भवति निरुजश्चाजिघ्रेति सहस्रं धुक्ष्वाऽग्नौ समिधो[१]दुम्बरगोमयहोमः पशव्यं कर्म गोमयेन गोः प्रकृतिं[२] कृत्वा देवसवितरित्यन्नभाग्भवति । वाजस्येममिति । सप्तभि-र्ऋग्भिराज्याहुतिसहस्रं जुहुयाद्यज्ञादन्यत्र यज्जुहोति तच्च मूल्यं सहस्रं गुणमुत्पद्यते, तदक्षय्यं भवत्यग्नेऽअच्छेति सहस्रजिन्नाम्न्युदुम्बरयवतिलधान्यापामार्गतण्डुलाञ्जु-हुयाद्धनकामो वीरक्रयेण शतपुष्पीं क्रीत्वा जुहुयात्तन्मूल्यसहस्रगुणमुत्पद्यते । उदुम्बर-समिधमयुतं जुहुयात्सुवर्णमुत्पद्यते । गोरोचनामष्टसहस्राभिमन्त्रितां कृत्वा ललाटे तिलकं कुर्यात्सर्वजनप्रियो भवति । सोमꣳ राजानमिति मासं पौर्णमास्या ऽ॑ सम्वत्सरꣳ सोममुपतिष्ठेत ब्राह्मणायाग्रं दत्त्वा भुञ्जीत क्षिप्रꣳ सोमयाजी भवति । प्रनोयच्छ-त्वित्यन्नकामो होमद्रव्याणि जुहुयादयुतमर्यमणमित्यादित्याभिमुखः प्रतिदिनं काममभि-सन्धाय जपेत्क्षिप्रमेव लभते ॥८॥ एष ते निर्ऋतऽइति मा ऽ॑ सङ्गृहीत्वा जम्बुकास्थि वा शूर्पे न्यस्य चतुष्पथेऽह्नो रात्रोषितः शिरसि सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा क्षिप्रं क्षिप्त्वाऽ-प्रेक्षमाणो गच्छेद्यावत्क्रीतं तावदष्टगुणं भवत्यनेनैव तुषकण्टकहोमो गृहान्नैर्ऋत-स्थानं गत्वाऽभिचारेण होमविधानेनाग्निमुपसमाधाय शतसहस्रं जुहुयाच्छत्रुकुल-मुद्धरति विषरुधिराक्तैर्ग्राममुद्धरति राजानं नगरंव्वोत्सादयितुकामो वैकङ्कत-कण्टकानां तीक्ष्णतैलाक्तानां विषरुधिरेण कटुतैलाक्तानां समृद्धद्विगुणꣳ शतसहस्रं जुहुयाद्धोमान्ते नदीं प्रस्रवणं वा गत्वा कपिलागोमयेन लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य पञ्चगव्येन स्नापयेद्रुद्राध्यायं जप्त्वा गुह्यकैः कर्त्तुं गीतिर्भवति ह्यमोघं कर्मेत्याचक्षते ॥९॥ देवस्यत्वेत्यभिचर्यमाणः स्रुवेणापामार्गं तण्डुलाञ्जुहुयात्स्रुवं च तस्मिन्देशऽआगमने च प्रतिमन्त्रमेते च प्रत्यङ्गिरोऽपो देवाऽइति देवं वर्षयितुकामऽओदुम्बरबिल्ववेतस-वारणान्दधिमधुघृताक्ताञ्जुहुयात्प्रजापते न त्वदिति महाव्याहृतिवत्कर्म । रुद्र

---

१. समिधा—उदुम्बरगोमयाभ्यां सम्पाद्यो होम इत्यर्थः अथवा समिद्रूपमुदुम्बरकाष्ठं गोमयं चेत्यर्थे समिदुदुम्बर इति पाठो युक्तः ।

२. प्रतिकृतिमिति पाठः संभाव्यते । प्रतिकृतिः चित्रादि ।

यत्तऽइति पालाशसमिधो जुहुयात्सुवर्णमुत्पद्यतेपायसं जुहुयाद्घृतमधुमिश्रमर्थप्रदमेवा-पामार्गौदुम्बरवारणानाममावास्यायामेतत्कर्म ॥१०॥ हर्ठ० सः शुचिषदिति त्रिरजो-मन्त्रोनाभिमात्रमुदकमवतीर्यादित्याभिमुखः शतसहस्रं जपेदुपपातकेभ्यो मुच्यते द्विगुणेन महापातकी[1]भ्यश्चतुष्कृत्वा सर्वान्वेदानवाप्नोति चत्वारि शृङ्गेत्यार्षभो मन्त्रः सकृदभ्यसनादेव पूज्यो भवति द्रुपदादिवेति त्रिरन्तर्जले जपेदहोरात्रोषितो विपापो भवत्यथ महापातकसँय्युक्तः पञ्चगव्याहारो गोष्ठेऽग्निमुपसमाधाय गोमयेनानुलिप्ताङ्गोऽयुतं जप्त्वाऽष्टसहस्रं जुहुयाद्विपापो भवत्युद्वयमिति पाप-प्रणाशिन्यादित्योपस्थानं कुर्यात्पापन्नाशत्यादित्यस्य सायुज्यमतोयादुदुत्यं चित्र-न्तच्चक्षुरित्याऽभिमुखो जपेदनेनाहोरात्रकृतं दुष्कृतमपहरति[2] देवा यज्ञमिति ब्राह्मणानुवाकं जप्त्वा ब्रह्मलोके महीयते। सुरावन्तमिति चतुर्ऋचेन पौर्णमास्या ॐ संव्वत्सरर्ठ० सोममुपतिष्ठेत ब्राह्मणायाग्रन्दत्त्वा भुञ्जीत क्षिप्रर्ठ० सोमयाजी भवत्यश्विनोर्भैषज्येनेति देवताऽभिषेकं कुर्याद्देवाऽइति त्र्यृचं कूष्माण्डर्ठ० हिरण्य-गर्भो यः प्राणतोब्रह्म यज्ञानं महीद्यौरुपश्वासयाग्नेनय या ते धर्म यमाय स्वाहे-त्यष्टर्चं जप्त्वा सुरापानाद् ब्रह्महत्यायाः प्रमुच्यते। पितृभ्यः स्वाधायिभ्यऽइत्यनु-वाकशेषेणोत्तरेणानुवाकेन पितॄणामक्षय्यतृप्तिर्भवति वसन्तेनऽऋतुनेत्याज्याहुति-सहस्रं जुहुयात्सविता वरदो भवति ।११॥ इति यजुर्विधानशिक्षायां प्रथमोऽ-ध्यायः ॥१॥

शिवो भवेत्यग्न्युत्पाते सर्वव्रीहि[3]रसवतीः समिधः सहस्रं जुहुयादुपशमयति द्रन्नऽऽइत्यौदुम्बरसमिधो जुहुयाद्धनकामः परस्याऽइति वैकङ्कतीर्जुहुयाद्रक्षणे परम-स्याऽइत्यौदुम्बरीर्जुहुयादर्थसिद्धये। याः सेनाऽइति दुग्धमानीय तितौ जुहुयाद् दस्युभयं न भवति। प्रतिकृतिं जुहुयाद्रक्षायै द ॐ ष्ट्राभ्यामित्युग्रभयं जप्त्वा सर्व-भयं नश्यति। नृशकण्टकहोमो द्विषन्मोहनाय व्यवहारेष्वन्नपतऽइत्यन्नं जुहुयादन्न-मुत्पद्यते सर्वोपकरणमिश्राणामन्नाद्याहुतीनां त्रिकटुकेनाभ्यज्य चतुष्पथे शून्यायतने-ऽग्निमुपसमाधाय सहस्रं जुहुयाद्ग्राम्या व्रीहयोऽक्षय्या भवन्ति ।१॥ सुप[4]र्णोर्णोऽसी-त्यृगुभयस्य महाव्याहृतिवत्कर्म नमः सुतऽइति निगडबद्धो व्यसनस्थो वा जपेन्नि-गडान्मुच्यते। नमो भूत्याऽइति वीरक्रमेण शतपुष्पीं क्रीत्वा जुहुयाच्छतशो मूल्य-मुत्पद्यते। कामङ्कामदुघऽति कामधुङ्नाम्न्या चतुष्पथेऽहोरात्रोषितः करीष-

---

१. महापातकेभ्य इति पाठो युक्ततरो भाति।

२. रित्यादित्याभिमुखो जपेत्-इति पाठो भाति।

३. सर्वान् व्रीहीन् रसवतीः (आर्द्राः) समिधश्च। सर्वव्रीहिपदेन सर्वप्रकारको व्रीहयो ग्राह्या इति संभाव्यते।

४. सुपर्णोऽसि-इति पाठो भाति।

तप्तायां भूमौ सहस्रं घृतम्मा ᳩ सेन जुहुयाद् ग्रामॅल्लभेदथ वा सुवर्णशतं गोशफे-नाज्याहुतिसहस्रं जुहुयाद् गोकामोऽन्यच्च महाव्याहृतिवत्कर्म । सजूरब्दऽइत्या-हुतिसहस्रं जुहुयाद्गोकामः ॥२॥ याऽओषधीरित्यनुवाकेन वचामालोड्याभिमन्त्र्या-रोपणं कृत्वेन्दुग्रहे शुद्धामुत्पाद्य त्रिरात्रोषितस्ताम्रभाजने संस्थाप्य कपिला-घृतेनालोड्य पञ्चदशधाऽभिमन्त्र्य चन्द्रं दृष्ट्वा पिबेत् पयसा मासं भुक्त्वा श्रुतिधरो भवति, याऽओषधीरिति द्वाभ्यामोषधीरभिमन्त्र्य पाययेदगदो भवति । शतॅव्वऽइत्याम्रसमित्पर्णफलानि जुहुयादारोग्यकामऽआयुष्मान्भवत्योषधीः प्रति-मोदध्वमिति बीजवापनं कुर्यान्निष्पन्नसस्यो भवत्योषधीरितीति मातृनाम्न्योदुम्ब-रतिलयवापामार्गहोमो गोहिरण्यकामोऽश्वत्थेवऽइत्यश्वत्थसमित्पर्णहोमो गोधनकामः पुरुषनाम्नी चैषा यत्रौषधीः समग्मतेति रक्षोघ्नी यज्ञेऽन्यत्रापि राक्षसपिशाचाडाकिन्यादिभीतस्याज्यहोमोऽश्वावतीरित्यरिष्टनाम्न्या शान्त्यर्थे पयोऽन्नं व्रीहींश्च जुहुयादुच्छुष्माऽइति बन्धनस्थो जपेन्मुच्यतेऽइष्कृतिरित्यात्म-निष्कृत्यर्थेहोमोऽति विश्वाऽइत्यात्मशरीरे पावनाय जपहोमौ रक्षणाय च यदिमा-ऽइति व्रीहिहोमोऽधनाशाय धान्यप्रतिकृतिनाऽभिचारे वशीकरणे च यस्यौषधीरिति स सर्पनाम्नाऽत्मपावनाय च यवहोमोऽभिचारे, साकॅय्यक्ष्मेति यस्मिन्काष्ठे चाष उपविशेत्तदादायाष्टशतसहस्रमभिमन्त्र्य – शत्रुगृहे निखनेदुद्वसति शत्रुगृहं क्षिप्रं निखनेत्कुष्ठी भवति चाषपत्रेण सहस्राभिमन्त्रितेन गृध्रपत्रेण वा प्रतिकृतौ मर्मसु विद्धो म्रियते, ऽअन्यावऽइति वचो नाम्न्याऽऽरोग्यकामो हस्तेनान्नं गृहीत्वा भुक्त्वा रोगात्प्रमुच्यतेऽस्या ऋगक्षरसङ्ख्ययाऽष्टसहस्राभिमन्त्रितां ब्राह्मीं वचां वा प्राश्नी-यात्परममेधावी भवति । तथा च चत्वारो वर्णा वश्या भवन्ति । याः फलिनी-रिति द्वाभ्या ᳩ सर्वौषधीमिश्रेणोदकेन सहस्राभिमन्त्रितेनात्मानं स्नापयेद्याव ज्जीवकृतात्पापात्प्रमुच्यते ॥३॥ मुञ्चन्तु मेति रहस्यो मन्त्रः सर्वोपद्रवनाशकऽ आतुरमालभ्याष्टसहस्रस्तिष्ठञ्जपेत्सर्वोपद्रवाञ्छमयति शत्रुभये चयमाणः करम्भा-हुतीना ᳩ रक्षणाय तानि द्रव्याणि जुहुयाद्यावज्जीवमन्नान्यक्षय्याणि भवन्ति, याऽओषधीरित्यृगुभयेनौषधीमूलमुद्धरेत्कर्णे निधाय सर्वजनप्रियो भवति । याश्चेद-मिति राजिकाभिः प्रतिकृतिंकृत्वाऽभिचारद्रव्यहोमोऽभिचारजपहोमश्चानेनैव पालाशपत्रजालपाशग्रथितात्स न लोष्ठप्रक्षेपऽआत्मरक्षा शिखाबन्धश्चेति । नाशयित्री बलासस्येति तुषलवणभस्ममिश्राणामन्नद्याहुतीनां त्रिकटुकेनाभ्यज्य चतुष्पथे शून्यायतने वाऽग्निमुपसाधाय[1]शतसहस्रं जुहुयात्कृष्णाष्टम्यामारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशीन्तावदुत्सादनं रात्रौ सङ्गृह्यया[2]रिणिधनमुपयाति मा वऽइत्यने-नातुरमियाद्द्वेष्यशान्तिं करणे पयोऽन्नम्व्रीहीन्वा जुहुयादोषधयः समिति सार्व-

१. उपसमाधाय इति पाठो भाति । उपसमाधानम्-सम्यक्स्थापनम् ।

२. निधनमिति पाठो युक्तः णत्वविधायकसूत्रस्यात्राप्राप्तेः ।

कामिकया वा महाव्याहृतिवत्कर्म । त्वाङ्ग धर्वाऽइति पापरोगमोचनाय होमः सहस्वमऽइत्यादिवशीकरणे पयोऽन्नं व्रीहीन्वा जुहुयात् ॥४॥ मा वा हिꣳसीदित्यभिचर्य्यमाणऽआज्यं जुहुयाच्छान्तिर्भवत्यभ्यावर्तस्वेति वल्मीकवपामादायायुतं तिलतन्दुलाञ्जुहुयात्क्षेत्रं च जातसम्यँल्लभते । दधि मधुघृतं जुहुयाद्ग्रामँल्लभतेऽग्ने तवेत्यन्नं जुहुयाद् वृद्धिर्भवति, इष्कर्तारमिति मधुलवणहोम स्त्रीपुरुषाणां सौभाग्यकामः स्त्रीपुरुषयोरनिच्छतो दधिमधुघृतं जुहुयात्प्रीतिर्भवत्यृतावानमिति व्रती भूत्वाष्टसहस्रमाज्याहुतीर्जुहुयात्सिद्धवाग्भवत्याते वत्सऽइति तथैव कुर्याद्धनविद्याबन्धनकामस्तुभ्यन्ताऽअग्निः प्रियेषु स्वस्ति नऽइति त्रिभिः पलाशसमिधां दधिमधुघृताक्तानामयुतं जुहुयात् कार्षापणानाꣳ सहस्रमुत्पद्यते सिद्धे शतम् ॥४॥ प्रातर्दिने दिने द्रप्सऽइति दधिशरमयुतहोमः । पशुपुष्टिकामस्य च नमोऽस्त्विति घृतपायसं नागस्थाने जुहुयात्सुवर्णमुत्पद्यते । याऽइषवऽइति बिले प्रविष्टꣳ सर्पन्दृष्ट्वा तत्रैवाज्याहुतिसहस्रं जुहुयात्सुवर्णशतद्वयमुत्पद्यते सिद्धे तदर्द्धं नष्टे सुवर्णममोघं कर्मेत्याचक्षते कोटरावास्थितस्याप्येवं विधिरिष्यते । कृणुष्व पाज इति प्रत्यङ्गिरे जपेदुदग्नऽइति शत्रोर्नामग्राहे तुषकण्टकराजिकासर्षपाणां विषरुधिराक्तानां जुहुयादन्ते वयो भवति । शत्रोः क्रुद्धस्य जपेत्तुषकण्टककणसर्षपान्वा जुहुयाद्वशीकरणम् ॥६॥ काण्डात्काण्डादिति द्वाभ्यां दूर्वाप्रवालानामयुतं जुहुयाद् ग्रामे जनमरणमुपशाम्यति द्विगुणेन नगरे त्रिगुणेन देशे मधुमान्नऽइत्यष्टौदुम्बराञ्जुहुयाद्धनकामोऽपाङ्गम्भन्निति देववर्षयितुं कामऽउदुम्बरबिल्ववेतसवारणानां पूर्ववद्दधिमधुघृताक्तानामयुतं जुहुयान्महावृष्टिर्भवत्यग्निर्देवतेति यवमुष्टिसहस्रं जुहुयादप्रतिहतवाक्यो भवत्यग्ने जातानित्यृचोभयेन महाव्याहृतिवत्कर्म, द्वितीयोत्तरार्द्धर्चमयम्पुरऽइत्यनेनाभुवा न पद्मे वा व्याहृतं कर्मेत्याचक्षतेऽथ वशीकर्तुमिच्छन्पलाशाश्वत्थापामार्गबिल्ववेतसमावाँसकशाखोदकसमिधो दधिमधुघृताक्ता[1]ञ्जुहुयात्सर्वे वर्णा वश्या भवन्ति ॥४॥ अथ राज्यकामः पद्मकुमुदसौगन्धिकोत्पलादीनि भगवतो महेश्वरस्योभयतश्चन्दनाक्तानि शिरसि शतसहस्रमारोपयेत्सहस्राक्षस्य श्रीरुपेयाद् भ्रातृ[2]व्यात्पुरुषाद्वोराद्वा विरुध्यते, त्रिगुणेन साक्षादुपतिष्ठतेऽप्यमित्राणां वेति अश्वत्थराजवृक्षसमिधाप्येष एव विधिर्देवस्य दक्षिणायां मूर्तौ सघृतं गुग्गुलुमष्टसहस्रं जुहुयात्षट्सहस्राणि वा न व्याहृतं कर्मेत्याचक्षते यथा सिद्धे महानसेऽग्नावष्टसहस्रं जुहुयाद्द्रव्यमव्यवच्छिन्नमक्षय्यं भवति । मा नो महान्तमिति तिलाहुतीनामयुतं जुहुयाद्गृहे बालानां परिजनस्यारोग्यं भवति मानस्तोक्या पृथगुक्तानि कर्माणि भवन्ति ॥५॥ नमो

---

१. दधिमधुघृताक्ता इति सन्तः स्त्रीलिङ्गीयोऽयं शब्दः, तथैव समिध इति शसन्त विशेषणता सम्भवेत् ।

२. भ्रातृव्यात् शत्रोः, भ्रातृव्यान् भवत्ने इति सूत्रेण व्यन प्रतारः ।

हिरण्यवाहव इति षड्भिरनुवाकैः कटुतैलाक्तान् राजसर्षपाञ्जुहुयाच्छत्रुमुत्साद-यति फट्कारेण देवस्योपरि मालायामधः शिरसमवलम्ब्य शस्त्रेण शिरसि रुधिरꣳ स्राव्य स्नायेत्त्रिकटुकेनाभ्यज्य देवं कराङ्गुलिनखेनौत्ताड्य शत्रोर्नाम स्मरञ्जपेत्सर्वबलꣳ शत्रुमुत्सादयेदेवं कृत्स्नं ग्रामं नगरं वैकाह्ना राजानमहोरात्रेण ब्राह्मणमर्द्धेन क्षत्रियं त्रिभागेन वैश्यꣳ षड्भागेन शूद्रꣳ स्त्रियं वा व्याहृतं कर्मेत्याचक्षते ॥६॥ अथ वशीकर्तुमिच्छन्पालाशाश्वत्थापामार्गवैकङ्कतविल्ववेतसोशीरादीन्प्रतिवर्णं प्रतिमन्त्रं दधिमधुघृतक्षाराक्तानामयुतं जुहुयात्क्रमशो वर्णचतुष्टयं वशमानयत्यथ राज्यकामः कुमुदसौगन्धिकनीलोत्पलादीन् पूर्वकल्पेनारोपयेत् साक्षाच्छ्रीर्भगवती तूपतिष्ठते, नमः सिकत्यायेति कलशमभिमन्त्र्याष्टशतेन राजानꣳ स्नापयेत्सर्वविनायकेभ्यो भयं न भवति, रोगाभिभूतं स्नपयेन्मुच्यते सर्वरोगैर्नमो वः किरिकेभ्य इति तिलाहुतीनामयुतं जुहुयात्कार्षापणꣳ सहस्रमुत्पद्यतेऽपामार्गसमिद्भिः सुवर्णग्गुगुलुप्रतिमानां क्षुरेणोत्कृत्याष्टसहस्रं जुहुयादलङ्कृतां कन्यां लभते. ऽथवा सुवर्णशतं गोशफेनैकादशसहस्रमाज्यहोमात्तावत्यो गावः स्युस्तिलतन्दुलानाꣳ शतसहस्रेण सर्वसमृद्धस्य तिलयवधान्यशतपुष्पमयीं प्रतिकृतिं कृत्वा जुहुयाद्राजमान्यवश्यौ स्यातामुत्पलपद्मानाꣳ शतसहस्रेण स्वरूपिणो राजलक्ष्मीर्भवति। चणकमितानां गुग्गुलुगुटिकानाꣳ शतसहस्रं जुहुयात्स्फीतसामन्तराजीं प्राप्नोति देवस्य दक्षिणायां मूर्तौ विल्वसमिद्भिर्महाराज्यं, महाचतुष्पथे वल्मीकमृदा गोमयेन लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य रुद्राध्यायेनाभिमन्त्र्याष्टतय्या[1] पायसमन्वहं बलिमुपहरेद्भूतेभ्यो भूतिकामो देवस्य दक्षिणस्यां मूर्तौ बचाफलमर्द्धं वा सूक्ष्ममपिष्ट्वा ताम्रभाजने न्युप्य कपिलाघृतेनालोड्य प्रादेशिन्याष्टसहस्रमभिमन्त्र्य पिबेदप्रतिहतवासः स्याद्वाक्सिद्धश्चौदुम्बरसमिद्भिर्दध्यक्ताभिर्महागोस्वामी स्यान्न च गावः क्षीयन्ते विल्वफलैर्घृताक्तैः सुवर्णमसिद्धे रजतमेतेनैवौदुम्बरामलकीहरीतकिबिभीतका व्याख्याताः ॥७॥ अन्तर्धानमिच्छन्पर्वतशिखरमारुह्य कणभुवः स्रोताञ्जनं सहस्रमभिमन्त्र्य देवस्य हस्ते निवेद्य तावज्जपेद्यावद्धूमायते पूर्णे शतसहस्रे ब्रह्मघ्नयापि ज्वलत्यूष्मायमाणे सर्वलोकवशीकरणं धूमायमाने पादप्रसारित्वं ज्वलिते चाकाशगामित्वꣳ रुद्ररूपी शशांकप्रभः समुद्रान्तां पृथिवीं पर्यटेद्रुद्रस्यानुचरोभवति। पद्मपुष्पाणाꣳ सुरभिचन्दनाक्तानां घृतपूर्णाक्तानां वा चतुष्पथे शून्यायतने वाऽग्नमुपसमाधाय शतसहस्रं जुहुयात्स्वयमेव श्रीरुपतिष्ठतेऽनेन यथेच्छति तथाकरोति। द्रापेऽअन्धसऽइत्याज्यं जुहुयाद्वासाꣳ स्यक्षयाणि भवन्ति ॥८॥ इमा रुद्रायेति तिलाञ्जुहुयादयुतमयाचितं धनं स्यान्महारोगोपघाते दूर्वाप्रवालैर्गतायुर्दीर्घायुर्भवत्यऽथ जनशान्तिपुष्टिकामो दधिमधुघृतपायसं जुहुयान्महाग्रहभूतपिशाचादिभ्यो मोक्षयति। वैकङ्कतपलाशसमिद्भिर्घृताक्ताभिरयुतं-

१. इष्टदेवतायैइति पाठः सम्भाव्यते।

जुहुयादाभिचारिकभयं न स्यात्महाजनेनाभिभूयमानस्तुषां जुहुयाच्छाल्मली-वैकङ्कत्यौदुम्बरीयवतिलानां चायुतं जुहुयाद्वश्ये गवामुपघाते गोष्ठमध्येऽग्निमुपस-माधाय वैकङ्कतसमिधो जुहुयाच्छान्तिर्भवति यावन्तश्चतुष्पदास्तेषामेष विधि-र्जनमरणेक्षये वाऽयुतं तिलाञ्जुहुयाद् गृहग्रामनगरमध्येऽग्निमुपसमाधाय सुप्तजनेषु चतसृषु दिक्षु देवबलीन् दत्त्वा बलिभोरक्षितः कर्म कुर्यादोदनघृततिलपिष्टमा-षान्नपरमा[१]न्नकृशरा[२]दीनिदेवबलिमुपहरेत् सर्वरक्तपुष्पाणाठं॰ रक्तचन्दनाक्तानां घृतपूर्णानां चतुष्पथे शून्यायतने वाऽग्निमुपसमाधाय शतसहस्रं जुहुयादुर्वशी-प्रतिमां[३]कन्यां लभतेऽथ सुवर्णशतमयमग्निः सहस्रिणऽइति महाव्याहृतिवत्कर्म गवाठं॰ शान्तिर्भवति गोशफेनाज्याहुतिसहस्रं जुहुयाद्गोशतं लभेदनेनैव समिद्धो-मो हिरण्यपशुकामस्य सहस्रस्येति महाव्याहृतिवत्कर्म महाव्याहृतिवत्कर्म ॥१॥ इति यजुर्विधाने द्वितीयोऽध्यायः ।२। नमस्तऽइति चतसृभिः प्रत्यृचं यवगोधूमगवेधुकजा[४]तिलान्वा दधिमधुघृताक्तानेकाहं जुहुयाद्धान्यं बहु भवत्येकादशरात्रेण जनमरणमुपशाम्यति पञ्चदशरात्रेण वा राष्ट्रोपद्रवं-[५]विठं॰शतिरात्रेण देशोपद्रवं मासेन पृथिव्युत्पातं गवामुत्पाते गोष्ठेऽग्नि-मुपसमाधाय वैकङ्कन्तसमिधामयुतं जुहुयाच्छान्तिर्भवति द्विगुणेन महाशान्ति-र्भवति ॥१॥ अध्यबोचदिति सर्वत्र रक्षा कर्तव्या। उरगेभ्यश्च सर्ष-पान्त्सप्तभिर्मन्त्रितान्कृत्वा चतुर्दिक्षु क्षिपेत्सर्वत्र रक्षा कृता भवति। पथि गच्छञ्जपेत्क्षेमेण गच्छति। सर्षपैर्ब्रह्मराक्षसभूतप्रेतपिशाचादिभ्यो मोक्षयति। तः सर्षपैः स्कन्दग्रहादिभ्यः शिखोपारजप्याभितो विहाय रात्रौ स्वपेद्रोगभयं न भवेत् सर्वरोगशमनायौषधमभिमन्त्र्य प्राशयेदुदकेन सर्वसत्वानांठं॰ सर्षपैः सर्पाणां भस्मना सर्वभूतानां ॐ स्तनमण्डलबन्धादग्निहोमेन लोहेन त्रिश-तठं॰ सहस्रामभिमन्त्र्य नागहृदि क्षिपेत्सकुलबान्धवो नागो नाशं गच्छति। ताल-शब्देन भस्मनाऽतीवस्तम्भोत्सादनं करोति। २॥ असौ यऽइत्यृग्द्वयेनाहोरात्रयो-रादित्यमुपस्थायाक्षय्यमन्नं भवति। एवं दधिदुग्धघृतेन स्नपयेद्रोगान्मुच्यते सविता प्रसन्नो भवति। वर्षति वाऽतसीपुष्पाणामयुतं जुहुयादवश्यो वश्यो भवति सविता वरदो भवत्युदकसक्त्वाहारो वेतससमिधां गुडक्षीराक्तानामयुतं जुहुया-द्भगवानादित्यो महावृष्टिं प्रमुञ्चति। नमोऽस्त्विति घृतपायसठं॰ स्थण्डिलमुपाल-

---

१. परमान्नं पायसं सम्भाव्यते।

२. कृशरम् द्विदलमिश्रिततण्डुलान्नं "खिचड़ी, इति भाषायाम्।

३. उर्वश्या इव प्रतिमा यस्यास्ताम्, उर्वशीसदृशीमिति यावत्।

४. गवेधुकजान् तिलान् वा-इति पाठः सम्भाव्यते।

५. राष्ट्रस्योपद्रवो यस्मात् कर्मणस्तत्।

६. सविता इति पाठो भाति।

प्यार्कप्रस्तरपद्मप्रस्तरे वा कृष्णाष्टम्यामारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशी ॐ सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा निवेदयेत्कार्षापणानां ॐ सहस्रमुत्पद्यते सिद्धेशतम् ॥३॥ प्रमुञ्चेति षड्भिरायुधान्यभिमन्त्र्य सङ्ग्रामोपनीताः शत्रवः पलायन्ते न चाभिमुखास्तिष्ठन्ति दर्भकण्टकानामयुतं जुहुयादनामिकाङ्गुलिनखेनोत्पाट्य शत्रोर्नाम स्मरन्जपे[१]त्सबलर्द्धं० शत्रुमुत्सादयेद्ग्रामं नगरं वैकेनाह्ना राजानं प्रभूतशस्त्रवन्तं क्षत्रियं दिवसविभागेन चतुर्थेन वैश्यं षड्भागेन शूद्रर्छं० स्त्रियं रक्षाभूतेभ्यो रुद्रेभ्यः पलाशपुटेष्वेवमर्द्धमासेन जनमरणमुपसंयतीछन्तेनान्यन्नैः शान्तिषु यथोक्तेन वशीकरणमभिचारश्च शान्तिर्भवति ॥९॥ या ते रुद्रेति जीर्वोर्णायाः प्रतिसरर्छं० सहस्राभिमन्त्रितमेकादशग्रन्थियुतं बालानां गुर्विणीनां च हस्ते बध्वा ताश्च सुखेन वर्द्धते धनिकधारणिकेभ्यो भयं न भवति परि नऽइति वटप्ररोहसमिधोऽयुतं जुहुयादायुष्मन्तः पुत्राऽउत्पद्यन्ते मीढुष्टमेति महाभये चोरभयेऽग्निभये प्राणसर्छं० शये सङ्कटे वा मनसा जपेत् क्षेमेणागच्छत्यायाति च विकिन्द्रेति महाजनविरोधे राजा वा प्रत्यनीकपरिक्षतः सर्वव्रीहीञ्जुहुयात्सर्वे भग्नमनसः शत्रवः पलायन्ते सहस्राणीति महाजनमरणे राजोपद्रवे वा शाल्मलिविकङ्कत्यौदुम्बरसमिधोयवतिलाम्वैकादशकृत्वोऽभिमन्त्र्य शतसहस्रं जुहुयात्कृशरापायसेन भूतेभ्यश्चेद्विडालमा ॐ सेन राक्षसान्मुच्यतेऽसङ्ख्यानीति रक्तवासा रक्तोष्णीषो रक्तमाल्यानुलेपनो देवमभ्यर्च्य श्मशाने एकवृक्षे नदीपुलिने चतुष्पथेऽरण्ये वैकादशशरानर्कमूलपरिवेष्टितान्महाजातैलाक्ताञ्छ्मशानाग्नौ प्रदीप्ते प्रक्षिपेद्दशर्चेनैकादशाभिमन्त्रितेन तद्भस्मना शत्रोः प्रतिकृतिं कृत्वोरसि कटुतैलेनाभ्यज्य दक्षिणभूभागेऽवस्थाप्य एकैकेन सहस्राभिमन्त्रितेन शरेणैकादशसु प्राणायतनेषु विध्येदास सहस्रयोजनगर्तर्छं० शक्रलोकगतं वा शत्रमुत्सादयेद्देवासुरयक्षगन्धर्वरक्षोभूतपिशाचादौ शान्त्यर्थं देवं घृतक्षीरेण स्नापयेद्रुद्राध्यायेनाभिमन्त्र्य मानस्तोक इति वा घृतमधुपायसमयुतं जुह्यादधोदेशमधिष्ठाप्य कर्पटगृहादिषु मध्यतऽएषऽएव विधिरुत्पादने फट्कारेण सर्वकर्माणि कारयेत् ॥१०॥ नमोऽस्तु त्रिकेण मध्याह्ने तुषकण्टकाञ्जुहुयात्सर्षपान्वाऽहरहर्महाप्रत्यङ्गिरेऽष्टौ देवयोनयः सपिशाचाश्चरन्ति निशाचरा शृण्वन्ति ये यातुधानास्ते सर्वे भस्मीभवन्त्यथ प्रदीप्तेऽग्नौ स्वकेशानालुप्य जुयाद्राक्षसशूलहस्तऽउपतिष्ठते यदुच्यते तत्करोति अथवा ग्राममुत्सादति ॥११॥

अथ वा कृत्यामुत्पादयितुकामो रक्तवासा रक्तोष्णीषो रक्तमाल्यानुलेपनो देवमभ्यर्च्य श्मशानाङ्गारेषु लोहकीलान्प्रादेशमात्रान्महातैलाक्तानाञ्छतसहस्रं जुहुयादुत्तिष्ठति रक्ताङ्गी रक्तनेत्रोर्ध्वकेशी कृत्या तां क्षिप्रमेव रुधिरमांसेन पूर्णमात्रेण तर्पयेद् यथा कर्तारमेव हिनस्ति सा त्वरितापितेति नामकटूतिकाम्वधिष्यामीति वक्तव्यामुकं व्यापादयस्वेति सा तूर्णं बधमुत्पादयति यामाज्ञापयति

१. जपेदिति पाठो युक्तः ।

त्रैलोक्यावस्थितमप्युत्सादयत्यथत्रैकैकस्य शारीरस्य ग्रामे गृहे नगरे वा व्याहृतं कर्मेत्याचक्षतेऽथ प्रयोगः शाकयावकपयोभक्षो द्वादशरात्रमुपोष्य लघुभ्यो लघूनि गुरुभ्यो गुरूणि सहस्रेषु महत्सु-महान्ति तुलापुरुषचान्द्रायणमध्यतऽएष एव विधिः कल्पग्रहणेत्वाचार्यमभिवाद्यावलम्ब्य पठेन्न चैवान्यथा पठेदिति न चैवान्यथा पठेदिति ॥१२॥

इति यजुर्विधाने तृतीयोऽध्यायः ।३। परस्यात्मरुजङ्ं सङ्क्रामयितु मच्छन्कर्तुं शिलां कृत्वा कुम्भेनोदकपूर्णेन सहस्राभिमन्त्रितेन।त्मानङ्ं स्नापयेदश्मन्नूर्ज्जमिति प्रदक्षिणं परिहृत्य कुम्भे शिलां कृत्वा शत्रोर्नामग्राहं यं द्विष्मऽइति निरस्येत्कुले सर्वरुजस्तस्य सङ्क्रामन्ति । विश्वतश्चक्षुरिति महाव्याहृतिवत्कर्म देवस्य दक्षिणायां मूर्तौ मधुघृतपायसाक्तानां पद्मानाङ्ं सहस्रं जुहुयात् स्थण्डिलमुपलिप्यार्कप्रस्तरे कृष्णाष्टमीमारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशीं सप्ताहं सुवर्णं लभते यो न। पितेति महाव्याहृतिवत्कर्म ॥१॥ आशुः शिशानऽइत्यनुवाकेनाप्रतिरथेन रथमायुधमात्मानं चाभिमन्त्र्य सङ्ग्रामे प्रविशेज्जयो भवति । चौरमहिषव्याघ्रसिङ्ंहराक्षससर्पादिभयेषु मनसा जपेत्क्षेमं भवति । यमिच्छेत्स्तम्भयितुं तमनेन स्तंभयेदुदेनमित्युदुम्बरसमिदाज्यहोमः प्रजापशुपुष्ट्यर्थे सूर्यरश्मिरित्यर्कसमिद्धः सुवर्णमुत्पद्यते, विमानऽइति द्वयोर्महाव्याहृतिवत्कर्म मध्यन्दिने समुद्रगां नदीं गत्वा द्वीपमध्येऽग्निमुपसमाधाय घृताक्तानां कृष्णतिलानाङ्ं शतसहस्रं जुहुयाद्विमानैश्चन्द्रवर्णैः समारूढाः सर्वालङ्कारभूषिताः सपरिच्छदाश्चाप्सरसऽआगच्छन्ति, तत्र सर्वालङ्कारणानि वासाꣳसि मुक्त्वा विवासस[1] स्वानि गुह्यायतनानि दर्शयन्तो जले क्रीडन्ति. यदि तानि[2]दृष्ट्वेन्द्रियविकारो भवेद् देवपदं ददति तदा तस्मैं अथ दृढव्रतोऽग्रे महानीक्षमाणस्तावज्जपेद्यावदुदकमुत्तीर्य वासाङ्ंसि परिधाय यावन्ति दिव्यैः सुगन्धचन्दनैरङ्गानि विलेपयन्ति, पाणौ गृहीत्वा विमाने समारोपयन्ति, तासाꣳ सर्वाधिपतिर्भवति, ताभिः सह लोकं गच्छति यं भोजं कामयते तं कुरुते मध्यन्दिने चोदुम्बरतिलैर्यवधान्यापामार्गहोमः सोऽर्थप्रदानाय देवकन्यां पश्यति, कन्याऽइवेत्यर्घं दद्यादनेनैव विधिना महाव्याहृतिवत्कर्म प्रतिदिनमित्याज्याहुतिसहस्रं जुहुयात्प्राचीमनुप्रदिशमित्याज्यसहस्रं जुहुयाद्द्विपदचतुष्पदकामो ऽग्ने सहस्राक्षेति सहस्रनाम्ना पृथगुक्तानि कर्माणि भवन्ति ॥२॥ ताꣳ सवितुरिति सहस्रधारया गोमयङ्ं सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा संलिप्तशरीरः स्नायाद्यावज्जीवमस्य गावो न क्षीयन्ते दुह्यमानायास्तस्या नाम गृहीत्वा परिवेषणे कृत्वोदकमवतीर्य तावज्जपेद्यावन्मुक्तो धेनुं लभते शमीसमिधो जुहुयाद् वृषभादिकङ्ं शतंलभतेऽथवा गोशफेनाज्यं जुहुयाद्गोशतं लभेदेतेनैव हस्त्यश्वमहिषजीविका व्याख्याताः । घृत-

---

१. विगतं निर्गतं वासो यासां ता विवाससः ।

२. तानि-गुह्यायतनानि दृष्ट्वेति वाक्यार्थः ।

दुग्धाहुतीनां वारणेन[१] स्रुवेणाष्टसहस्रं जुहुयाद्धोमान्ते दशमहिषीर्लभते । विधेमत-ऽइति वैकङ्कतीभिः सर्वसमृद्धः स्यात्प्रेद्ध इति दध्यौदुम्बरीभिःसमिद्भिर्दध्यक्षत-मयुतं जुहुयाद् गृहेऽन्नमक्षय्यं भवति ॥३॥ सप्ततऽइत्याहुतिसहस्रेण तेजस्वी भवत्यु-दुम्बरापामार्गातिलतण्डुलैः सप्तदशसहस्राणि जुहुयात्सप्तसुवर्णं लभेत्सर्वकामिकी याऋक् सकृदुदुम्बरपात्रेण पूर्णाहुतिहोमेन यं[२] लभते । महावाते श्रुक्रज्योतिरिति-सप्तवारं जपेच्छान्तिर्भवति । इन्द्रं दैवीरिति जातिकालिकानां ॐ सुरभिचन्दना-क्तानां घृतपूर्णानां ॐ चतुष्पथे शून्यायतनेऽग्निमुपसमाधा यशतसहस्रं जुहुया-त्सर्वालङ्कारभूषितां कन्यां लभते ॥४॥ इम ॐस्तनमिति समुद्रगां नदीं गवोदक-मवतीर्यायुतं जप्त्वाऽष्टसहस्रं जुहुयाद् ग्रामं लभते घृतधारयाऽर्कपुष्पाणि वा सुप्रवि-श्य अयुतं जुहुयादुदुम्बरपत्राणां सवत्सां गां लभते । जपेद्धेनुं लभते । घृतंमिमिक्षऽ इत्येकादशभिराज्याहुतिसहस्रं जुहुयादप्सु प्रविश्य जपेद् गोभयं न भवति । वाज-श्चेति सप्तभिः पावमानैराज्यं जुहुयादप्सु जपेदक्षिरोगो नश्यति । पशुकामस्यैवं व्रीहयश्चेति सर्वव्रीहीन्पयसा शतसहस्रं जुहुयाद् ग्राम्यव्रीहयोऽक्षय्या भवन्ति च पुष्पाणि ॥५॥ विश्वेऽअर्येति महाव्याहृतिवत्कर्मवाजो नऽइति त्रिभिर्व्रीहीञ्जुहु-यादयाचितेन धनमाप्नोति । सम्मेति पयोदधिमधुघृतमिश्रान्सर्वव्रीहीञ्जुहुया-द्वर्षति ॥६॥ ऋताषाडिति षड्चेनाज्जाहुतिसहस्रं जुहुयाद्वर्षति । स नो भुवन-स्येति गृहवास्तुभ्यऽआज्याहुतिसहस्रं जुहुयाद्वास्तुदोषैर्न लिप्यते । याग्तऽइति सौभाग्यकामो जपेद्वटप्ररोहसमिद्भिः पुत्रकामो दिवो मूर्द्धेति महाव्याहृतिवत्कर्म मूर्धन्नित्यप्स्वहोरात्रं प्रविश्य जपेदहोरात्रं वर्षतीदर्ढ ॐ हविरित्यात्मनस्त्वो जोवलवृद्धे पयसाहोमऽइन्द्रियविकलो जपेत्पूर्णेन्द्रियो दीर्घायुः प्रजावांश्च स्यादग्नऽआयूॐषी त्याज्यं हुत्वा शत्रुगृहे प्रविश्य जपेन्मित्रमिवोपचर्यतेऽपांफेनेनेति जपकामो लाजा-ञ्जुहुयादाज्यं वा यो भूतानां त्रातारमिति च महाव्याहृतिवत्कर्म महीमूषु तृचेन नावमारोहेत्क्षेमेण तरति ॥७॥ हिरण्यपाणिमूतयऽइत्यर्क समिद्भिरयुतं जुहुयात्सु-वर्णमुत्पद्यतेऽजीजनऽइति रहस्यो मन्त्रऽएतेन नागावंशमुपयान्ति । लौहं त्रिशूलर्ढ ॰ सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा दक्षिणपादेनाक्रम्य पयोदधिमधुघृतैरयुतं हुत्वा विकृतरूपा-स्त्रयऽउत्तिष्ठन्ति किमस्माभिः कर्तव्यमिति बदन्त्योऽभिरूचिकामेन ताऽआज्ञापयेत् । नमोऽस्तु सर्पेभ्यऽइति तिसृभिरर्घं दद्यादग्न्यागारे गोमयलिङ्गं प्रतिष्ठाप्य पञ्च-गव्येन संस्नाप्य दक्षिणतः शूलं निखनेत्पुनः सहस्रं जपेत्पूर्वमेवैतत् ॥८॥ गणानां त्वेत्यौदुम्बरतिलयवापामार्गधान्यादिहोमार्थप्रदश्चतुष्पथे वैतद्वशीकरणे पिचुमन्द-पत्रैर्हुत्वात्र्यम्बकप्रतिकृतिं वल्मीकमृदा कृत्वोऽच्चैर्यन् माठंसमाषौदनमपूपतिल पिष्टकपरमान्नफलपुष्पादिभिर्बलिमुपहरेद्वक्रतुण्डस्यैतानि कर्माणि भवन्ति सर्व-समृद्धः स्याद् गायत्रो त्रिष्टुबिति पञ्चभिः शङ्खेनाज्याहुतिसहस्रं होमात्सिद्धिः ।

१. धारणेनेति पाठो भाति । प्रक्षरणशीलेन स्रुवेणेत्यर्थः धधातुल्युडन्तः ।
२. सर्वमिति पाठः संभवति ।

महानाम्न्यऽइति खादिरस्रुचा तैलतिलं निष्कृष्याऽष्टसहस्रं जुहुयाद् बधबन्धान्मुच्यते वैकङ्कतकण्टककटुतैलविषरुधिराक्तानां द्विगुणं शतसहस्रं हुत्वा सगणं राजानमुत्सादयति ।९॥ अथ वशीकर्तुमिच्छन् शिखां परिजप्य विल्वकण्टकान्हुत्वा राज्ञो मन्त्रभेदं जनयेत्सर्वत्र मध्यमकृच्छ्रो गायत्र्या लक्षं वेन्द्रस्य क्रोडऽइत्युदरमभिमन्त्र्य रात्रौ स्वपेदुदरविकारो न स्याद्विधृतिमित्याज्याष्टसहस्रं भूमिलाभाय जुहुयाज्जुम्बकायेति वरुणकृदपोमन्त्रोऽश्वमेधावभृथैर्युक्तो ब्रह्महत्यायाः प्रमुच्यते। सकृदन्तर्जले जप्तः[1] संवत्सरकृत ॐ स्तेथमतिहरत्यानो भद्राऽइत्यनुवाकं ८० सततं जपेदायुष्मान्भवति। भद्रं कर्णेभिरिति जपेत्पूर्णेन्द्रियो दीर्घायुश्च। यद्वध्यमिति जप्त्वा नावसीदति ॥१०॥ इति यजुर्विधाने चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ अग्निश्चेत्यवश्यं जपेत्, वशमानयति। सकामानिति परेण व्यवहारे जपेत् सिद्धिर्होमादक्ष[2]य्यौ तुल्यौ॥ यथेमामिति क्षिप्रं कर्मारम्भे [3]सिद्धिः। प्रियो देवानामिति महाव्याहृतिवत्कर्म। बृहस्पतेऽअतीति धनाय जपेदग्निर्ऋषिरिति तिलान् अयुत ॐ स्रुवेणोद्यम्य गार्हस्थ्यं न क्षीयते, धान्यमक्षय्यं स्यात्। समास्त्वेति नवर्चेन् पायसाहुतीनामयुतं जुहुयाद्गोष्ठमध्येऽग्निमुपसमाधाय गोमयेना दीप्ययावतीमिच्छति तावतीं हुत्वामणिपिता[4]धेनुर्लभते॥१॥ समास्त्वेति वह्नं ज्वलितमग्निमभिष्टुयात्समिद्धं ततोऽन्यत्रापि शत्रवो विद्रवन्ति। सञ्चेति वैकङ्कतीभिर्यशः[5] दधिमधुघृतै सौभाग्यम्, त्वामग्नऽइति तुषकण्टकैः शत्रुनाशः, अयुतमाज्येन जपऽइहैवेत्यन्ना[6]ज्येन हुत्वा श्रियं विन्दति। क्षत्रिणेति जयायाज्यं हुत्वा नामग्राहमतिनिहऽइत्याग्निमुपहृतार्चिः परैरवरुद्धोऽनवरुद्धः स्यादनाधृष्यऽइयाग्निं प्रज्वाल्योल्कामण्डलं वध्वा भयं नाशयति। बृहस्पते सवितरिति दधिमधुघृतैर्हुत्वा सुभगः स्यात्कन्यादानसमो १०००० जपेद्यावज्जीवं सौभाग्यं भवत्यमुत्रभूयादित्यायुः कामो दूर्वानभिशस्ततुषाञ्जुहुयात् ॥२॥

ऊर्ध्वाऽअस्येति वैकङ्कतीभिः शत्रुभयं नश्यति। जातीकष्टकैर्वचन विधेयश्च। तनूनपादसुरऽइति न्यग्रोधमूलेऽग्निमुपसमाधायाशोकपुष्पाणां घृताक्तानां ॐ शतसहस्रं हुत्वाऽसुरकन्यां पश्यति। दृष्ट्वाऽनुवाकशेषेन दद्यादग्निमुखे दिव्यर्ट७ सुवर्णं प्रयच्छति। नचेत्तूष्णीमनुगच्छेद्भयान्निवर्तते। बिलप्रवेशनकाले पाणौ गृहीत्वा

---

१. 'जपतः, इति पाठो भाति। जपधातुः तन् प्रत्ययान्तः।
२. आद्यादित्वात्तसिः। जपेनेत्यर्थः।
३. कर्मारम्भे क्षिप्रं सिद्धिरित्यन्वयः।
४. मणिपिहिता धेनूर्लभते-इति पाठो भाति।
५. 'शः, इति प्रथमान्तम्।
६. अत्र वाक्ये पाठस्त्रुटितः।

प्रविशति। त्रिरात्रोषितस्तत्स्वामी भवति। राये न्वित्यनुवाकशेषं निवाते जपेद्वातो वात्येकया च तिसृभिर्घृतं जुहुयाद्वातरोगान्मुच्यते ॥३॥

अभित्वेत्यप्स्वहोरात्रं जपेद्वर्षति। कया नऽइति माषौदनं तिलमिश्राणामन्नानां त्रिकटुकेनाभ्यज्य चतुष्पथे शून्यायतनेऽग्निमुपसमाधाय शतसहस्रं जुहुयाद्धोमान्ते चित्राङ्गदो विद्याधरराजो दिव्यꣳ सुवर्णराशिं ददाति ॥४॥

ऊर्जो निपातमिति दधिमधुघृतैरापद्भ्यो मुच्यते। संवत्सरोऽसीत्याज्यमष्टसहस्रं हुत्वा यावज्जीवमारोग्यं स्यात्। प्रेताऽइति मधुतिलाच्छतसहस्रं जुहुयात्सुवर्णमुत्पद्यते। न च कश्चिदभिहर्ता भवति ॥५॥

केतुं कृण्व[1]न्नित्यानुवाकेन रथं शस्त्रमायुधमात्मानं चाभिमन्त्र्य सङ्ग्रामे प्रविश्य जपेज्जयो भवति। धन्वनागेति धनुर्वेदमन्त्रः स्वाध्यायाद्यावद्रणदीक्षितः क्षत्रियो भवति। सा च दीक्षा त्रिविधा गोब्राह्मणदेवस्वाम्यात्मनां हितायेत्यात्मानं सन्नह्यतऽइति मर्माणि तऽइति कवचं परिधत्ते धन्वने धनुर्योजयेत्तेऽआचरन्ती इति विस्फुरणं वक्ष्यन्ती वेदिति ज्याभिमर्शनमहिरिवेति हस्तवेष्टनमभिमन्त्रयते बह्वीनां पितेति तूणं कलापमभिमन्त्र्य परिधत्ते। सुपर्णमिति नैर्ऋत्यां दिश्येकमिषुं क्षिपेद पऽउपस्पृश्य वनस्पते वीड्वङ्गऽइति रथमालभ्य युञ्जन्तीत्यश्वयोजनमसि यमऽ इतिबन्धनमाशुः शिशानऽइत्यनुवाकेनालभ्य विष्णोः क्रमऽइत्यारुह्य जङ्घन्तीत्यश्वताडनमक्रन्ददित्युत्सर्जमाने जपेद्याः सेनाऽइति परसैन्याभिमुखꣳ रथं बाहयेद्रथे तिष्ठन्नित्यवस्थापयेत्। स दुन्दुभ[2]ऽइति दुन्दुभेस्ताडनमहिरिवेतीषुं गृह्णाति यत्र बाणाऽइति दिक्षु नयेद्यदक्रन्दऽइतिरथं वाहयेत्तदेवमाविध्याविध्य शस्त्राणां चालनमेवयुध्य[3]मानेऽपराजितो भवति। शक्रेणापि युध्येत् ॥६॥

यमेन दत्तमित्यश्वानभिमन्त्रयेच्छान्तान्पुनस्त्रीणितऽइत्यश्वग्रन्थीन्मोचयेन्महाँऽ२ऽ॥ इन्द्रऽइत्यासनमिन्द्रोवृत्रमिति रथं वृतस्त्वमिति योधात्सहसामभिभाषयेत्तान्प्रतिजपेत्स्समिद्धायेत्याहवनीये समिधमादधाति न तद्रक्षाꣳसीत्याज्याहुतीनामयुतं जुहुयात्, क्षत्रियाणा क्षत्रत्राणाय गतायुरपि दीर्घायुर्भवति शंनो देवरित्युपस्थाय प्रविशेदेषा रणदीक्षा। ब्राह्मणोऽपि प्राणसꣳशये शस्त्रमाददीत यमेन दत्तमित्यश्वं सकृदाज्याहुतीनामयुतं जुहुयाच्चतुरश्वर युक्तꣳरथं लभतेऽसि यमऽइति मधुतिलाञ्जुहुयात् देवमनुलेपना दभिरर्चयेद् विपापो भवति। ब्रह्मघ्नमपि लक्षहोमेन तारयेत्समिद्धोऽअद्येति होमकाले देवतानामाह्वानमग्नये गायत्रायेति सार्वकामिकं चरुं कुर्यात् ॥७॥

---

१. इत आरभ्य युद्धक्रियाऽऽरभ्यते, युद्धे जयविधिश्च वर्ण्यते।

२. स दुन्दुभ इति मन्त्रेण दुन्दुभेस्ताडनं कार्यम्।

३. एव युध्यमानेऽपराजितो भवति-इति पाठो भाति।

विश्वानि देवेति महाव्याहृतिवदादित्यमुदयऽउपतिष्ठेद्विपापो भवत्युदकसक्त्वा[१]हारो मासमेकमन्वहꣳसहस्रं जपेद् ब्रह्महत्यादेरपि मुच्यते। विभक्तारमिति सप्तम्यां कुशपुष्पमालां कृत्वौदुम्बरं समिधो यावच्छुष्यति, यावत्पुष्पाण्यार्द्रकेशस्य साहस्रिकं कर्म महानर्थो जायते। गोशफेनाज्याहुतिहोमोर्गाकामायमध्याह्नन्नपिण्डं सहस्राभिमन्त्रितं निवेदयेदक्षय्यम नं स्याद्वने बुभुक्षित आदित्याभिमुखो जपेत्सर्वतो भोजनं लभते ॥८॥

सहस्रशीर्षेति महाव्याहृतिवद्वेदाहमित्यप्सु प्रविश्याहोरात्रं जपेदामध्याह्नाद्वर्षति। यो देवेभ्यऽइति रुचमिति रोचनाम्न्या महाव्याहृतिवच्छ्रीश्चेति कुमुदसौगन्धिकोत्पलान्युष्य हुत्वा श्रीमान्भवत्युत्तरनारायणेनादित्योपस्थानं कामं नामग्रहणं च यथेष्टं कामꣳ सर्वत्र सिद्धं कर्म सदसस्पतिमिति चन्द्रग्रहे निराहारो वचां ब्राह्मीं वा सहस्राभिमन्त्रितां पिबेत्परममेधावी स्यात्। य मेधामिति जपेदिदंमऽ इति च श्रीकामो नित्यम् ॥९॥

अस्या जरामऽइत्यग्निमुपतिष्ठेद्वरदो भवति। तेजस्वीव द्वयोर्महाव्याहृतिवत् त्रीणि शताग्ने शर्द्धेति त्रिमधुरैः सौभाग्यं प्रवोमहेऽइति भूमिकास्तिलतण्डुलैरिन्द्रो वृत्रमित्यत्र पुष्ट्याऽआयुषऽआज्यमाहुतऽइत्यौदुम्बरीभिर्धनकामो बिभ्राडित्यनुवाकꣳ सततं जपेत्प्रजाकामस्तेजस्वी निरुजश्चानऽइडाभिरित्यौदुम्बरोभिः पशुकामो यदद्येति वासकादिभिर्वशीकरणम्। तिजकेन तत्सूर्यस्येति चक्षुष्मान् भवति। वण्महानिति महाव्याहृतिवच्छायन्तऽइवेति तिलान्पुष्पाणि वा हुत्वा वास्तुपे शतपुष्पी वा सुभगः स्यात् ॥१०॥

आकृष्णेनेत महाव्याहृतिवत्कर्म करवीर[२]पुष्पाणि १०००० हुत्वा तप्तसुवर्णं लभेद् दरिद्रश्चेन्द्रवायूऽइन्द्राग्नी मित्रावरुणेति देवताह्वानं सिद्धयेऽग्नऽइन्द्रास्मे रुद्राऽ इति वारुण्या गच्छेत्क्षेमं भवत्यर्वाञ्चऽइति घृतेन सर्वभयनाशनं मित्रꣳहुवऽइति घृतꣳ हुत्वा शिष्टं पिबेन्मेधावी स्याददब्देभिरिति लाजाभिर्हिरण्यं गावऽउत्पेति दधिमधुघृतैः पशुपुत्रसमृद्धिकामऽउपनोऽनुत्तमेति चेमाऽउत्वेति पावकाय प्रतिकर्मास्याजरासऽइत्यध्यायेन सर्वदेवताराधनं कुर्यात्। प्रतिदिनं काममेकैकं लभतेऽध्ययनेन मासात् ॥११॥

यज्जाग्रतः षड्भिः शिवसङ्कल्पेन मानससमाधिः पितुन्विति शत्रुनाम ग्राह्याभिचाराणि जुहुयात्कर्मषट्कं सिध्यन्म्रियते पञ्चनद्यऽइति पद्मपुष्पाणि रक्तचन्दनघृताक्तानि लक्षं हुत्वा साक्षात्पद्ममालिनीं पश्यति यावज्जीवं धनं प्रयच्छतीष्ट समृद्धि च। सिनोवालीति प्रजाकामोऽन्नं जुहुयात् अन्वदित्यायुष्ये वटारोहौदुम्बरदूर्वाश्च त्वन्नऽइति पुत्रपशुरक्षार्थमाज्यं जुहुयादुत्तानामवेति सद्योजातमात्रवत्सावलीढायां वा जिह्वा उपस्पृशेदगावऽअक्षय्या भवन्ति। इडयास्त् वेविति गोशफे-

१. उदकमिश्रितसक्तुपानेन मासमेकम् अन्वहं सहस्रं जपेत्-ब्रह्महत्यादेरपि मुच्यते।
२. करवीरपुष्पाणि-कनैल पुष्प-इति हिन्दी भाषायां प्रसिद्धिः।

नाज्याहुतिसहस्रं जुहुयात् धेनुशतँलभते। त्वमग्ने प्रथमऽइति नित्यमग्निं सुनुयात्। सर्वसमृद्धो भवति। प्रवो महऽइति षड्चेन पितॄनर्चयेत्प्रजाकामऽआहुतिसहस्रं जुहुयाद्गोशतं लभते। देवेनेति यद्धनमिच्छेत्तावर्ति स व्रीहीञ्जुहुयात्प्रभुत्वं लभते। सोमो धेनुमिति सोमचन्द्रग्रहेऽनुदितमुपतिष्ठेत्तन्मासे क्षेममौदुम्बरीभिर्हुत्वा हिरण्यप्राप्तिः स्यात्। अष्टौ वीति महाव्याहृतिवद्धिरण्यपाणिरिति चाभिचारवर्जमादित्योपस्थानर्ठ० हिरण्यहस्तऽइति सर्षपानभिमन्त्र्य रक्षार्थो भवति। ये ते पन्थाः क्षेमेण गच्छति, क्षेमकारिण्युभा पिबतमिति रूपकामोऽश्विनौ स्तुयादुस्तदिति प्रातर्दिवा स्वस्त्ययनमनाद्यं च पुत्रार्थी द्रव्यहोमस्तदर्थं महाव्याहृतिवत्प्रातर्जितमिति च यदा बध्नन् इति हिरण्यर्ठ० सहस्राभिमन्त्रितं दक्षिणहस्ते बध्नीयात्सर्वेषां पापचक्षुषां दृष्टिदोषमपोहति। न च राजा[१] विरुद्धमाचरेत्प्रियदर्शनो भवति ॥१२॥ इति यजुर्विधाने पञ्चमोध्यायः ॥५॥

परं मृत्यविति बालानां गुर्विणीनां ॐ हस्ते सूत्रबन्धो भूतप्रेतादि नाशयति। जपहोमौ च प्रौढगर्भे गर्भस्रावे बन्ध्यात्वे च मृतवत्सामृतौ मार्ठ सपललापूपजाङ्गुलिकारण्यमांसपयोदधिमधुघृताक्तमन्नं निवेद्य सर्वकामिकमन्त्रर्ठ० हुत्वा शेषभुग् जप्त्वा मैथुन[२]मुपेयाद्गर्भस्तिष्ठति। प्रथमे पतिते आवाहनं, द्वितीये तर्पणं, पञ्चमे गर्भस्तिष्ठेदमोघं कर्मापाद्यमित्यपामार्गहोमः, सर्वदुरितदुःख स्वप्ननाशनऽआयुष्मानित्याज्यमायुष्ये रक्षायाऽइमं जीवेभ्यऽसीतालोष्ठर्ठ० सहस्राभिमन्त्रितं चतुर्दिक्षु क्षिपेद् दुष्टभयं न स्यात्परीमऽइति शिखाबन्धी मण्डलबन्धश्चात्मरक्षार्थाय वशीकरणे तुषहोमो महाभये जपेदभयं भवति। राजानमभीक्ष्य जपेद वश्यो[३]भवति। हन्तुमागच्छन्तं दृष्ट्वा जपेत्प्रणमति भक्षपुष्पफलादीनि दद्याद्वश्यार्थे च स्योना पृथिवी ति महाव्याहृतिवत्कर्म। १॥

ऋचं वाचमितीन्द्रियविकलो जपेत्पूर्णेन्द्रियो भवति। यन्मऽइति कर्म समाप्तौ दोषपरिहारार्थञ्जपेत्। इन्द्रो विश्वस्येति द्विपदचतुष्पदां शान्तिः, क्षीरहोमाच्छान्तिर्भवति। शन्नोमित्रऽइति जनमरणे चोपसर्गाभिचारेषु ज्वरादिरोगे स्वाध्यायसमाप्तौ व्रीहिहोमः शान्त्यै विषमग्रहे तत्समिद्धोमः द्यौः शान्तिरित्यभिचारवर्ज्यं सर्वकर्मसिद्धिर्यतो यतऽइति जपेदभयकारिणी ॐ सुमित्रियानऽइति जलमञ्जलिनादाय दुर्मित्रियाऽइति द्वेष्यं प्रति निक्षिपेत्तमुत्सादयति। तच्चक्षुरिति जपेदारोग्याय पुष्ट्यै ॥१२॥

यमाय त्वा जपेदन्वहर्ठ० सर्वसमृद्धो विदितश्च स्यात् ॥२॥

---

१. राजा तद्विरुद्धं न आचरति-इति भावः।

२. गर्भधारणे तद्विनाशाभावे चायमुपाय उक्तः।

३. यं राजानमोद्दिश्य जपेत्, स राजा वशीभूतो भवति।

अनाधृष्टेति पञ्चचतुर्भिः पयोदधिघृतमधुतिलैर्जुहुयाद्यथासङ्ख्यमायुः प्रजा-पुष्टिधनतेजस्कामो विभ्यऽइति निमित्ते जपेद्धतो दिवऽइति बुद्धिभ्रंशनाशनी हृदे त्वेति मतो ग्लानौ कर्मसमृद्धिः पिता नऽइति महाव्याहृतिवत् ।।३।।

इडऽएहीति यामेव धेनुमिच्छेत्तस्या नाम परिजप्य गोस्वामीति शब्दं वदेत्त-स्यैवापतति गोमयेन गोः प्रतिकृतिं कृत्वा तन्नाम्ना बध्वा सव्येन गृहीत्वा पयोद धिमधुघृतं जुहुया त्तामेव धेनुं लभते। यस्ते स्तनऽइति सर्वक ाणि सिद्धयन्ति। स्वाहा सूर्यस्येति वृष्टिकामः पयो जुहुयात् सद्यो वर्षति। समुद्रायेति वातनामानि जपेद्वातो वाति दिवि धाऽइति दधिसहस्रं हुत्वा सविता प्रसीदति। व्रीह्यादिभिः पुष्टर्वार-णैर्वृष्टर्वेतप्तगुडक्षीरैरतैलाक्ताभिः[१] सहस्रं जुहुयात् स्वाहा रुद्रायेति रहस्यो मन्त्रः गवेधुकतण्डुलान् जुहुयाद्धनकामः ।।४।।

स्वाहा प्राणेभ्यऽइति महाव्याहृतिवत्कर्म तं ग्रामे कुर्यान्मनसः काममिति श्रीनाम्ना सर्वाभ्युदयसिद्धः[२] फलति। गोशफेनाज्यहो १००० मेन[३] गोलाभः। गोमयहोमेन सिद्धिरुग्रश्चेति विमुखाख्यो मन्त्रः सर्वकामप्रदो गोपशुमरणे गोष्ठे वैकङ्‌ १०००० कतीर्हुत्वा शान्तिः। उग्रंलोहितेनेत्येकादशयजुर्भिर्द्रव्यकामवर्जं महा-व्याहृतिवत्प्रतिदिनमेकादशचरून्प्रतिमन्त्रं निर्वपेदेकादशैव धेनवऽउत्पद्यन्तऽएवमन्ये-ष्वपि कामेषु हुत्वाऽध्यायशेषेणादित्यमुपतिष्ठेत्तेनास्य कर्मणां फलमाप्नोति। अग्नेर्नयेति नमस्कारोक्तिरग्निस्तुतिरातननो वा कर्मसमाप्तौ समाधौ च हरणम-येनादित्योपस्थानमोमित्येकाक्षरस्य परब्रह्मणो नामधेयं वेदारम्भे समाप्तौ च जपहोमादिषु शान्तिपुष्टिकर्म चैतप्रयुज्यतऽएतद्विदित्वा सर्वविद्भवत्येतदुपास्यरवि-सिद्धिभाग्भवति, कल्याणतरो भवति। एतत्कर्मफल[४]प्रतिपादकं पूर्वकर्मफलाभावाद-भावक्तरय कर्मणः स वेदफलयुक्तस्य कर्मणो नास्ति नैव फलमिति तच्छक्त्य-पेक्षयाऽमुष्मिँल्लोके कृतस्य कर्मणः फलठं० हि सम्पत्तिः प्रत्ययं च न च विद्याधर-पादप्रसारितधनानां जनपूर्वत्रर्णरसेषु नास्ति यज्ञविरोधित्वादित्यनेनैव प्रकारेण सर्वे मन्त्राः प्रकीर्तिताः ये नोक्तास्ते च सर्वे यशस्कराऽअथ वा सर्वमन्त्राणां विस्तरेण पृथग्विधानं विस्तरेण पृथग्विधानमिति ।। ।।

**इति श्रीयजुर्वेदवाजसनेयसंहितायजुर्विधाने षष्ठोऽध्यायः ।।६।। समाप्तोऽयम् ।।**

१. तैलाक्तैरिति पाठ उचितः, वेतप्तगुडक्षीरैरित्यस्य विशेषणत्वात्। अथवा वेतप्तगुडक्षीरै-राहुतिमिस्तैलाक्ताभिरिति योजना विधेया।

२. सर्वाभ्युदयसिद्धिः फलति-इति शोभनः पाठः।

३. आज्यहोमेन १००० सहस्रसंख्यकेन गोलाभ इति योजना।

४. इतआरभ्य यज्ञविरोधित्वादित्यन्ते ग्रन्थे पाठ त्रुटितः प्रतीयते, अतोऽन्वययोजना साधु-तरा न प्रतीयते।

# अथ स्वराष्टकशिक्षा

श्री हरिः । ओम् साम्ब । अऽइऽउऽऋऽऌऽएऽऐऽओऽ-
औऽइत्यष्टौ स्वराः । पदान्तपदाद्योः सन्धिः । पदान्त-
पदाद्योर्य्यऽएकः प्राणयोगः स सन्धिसञ्ज्ञः स्यात् ।
न परकालः पूर्वकाले । पुनः पूर्वकालसन्धिः विधाने
परकालसन्धि न प्राप्नोति । एकम् ॥१॥

अऽआमपरे ॥ तव अयम् । तवायम् ॥२॥

एकारमिवर्णे । तव इदम । तवेदम् ॥३॥

ओकारमुवर्णे तवऽउरुस्तवोरुः ॥४॥

आऽअमृकारे ॥ स्वाहाऽऋषभम् ॥ स्वाहर्षभम् ॥५॥
ऐकारमे[1] ऐपरत्वे ॥ तवऽएतत् ॥ तवैतत् ॥ तवऽ-
ऐश्वर्यम् ॥ तवैश्वर्य्यम् ॥ ॥
औकारमोऽऔपरत्वे[2] ॥ तवऽओजः । तवौजः ॥
प्रऽऔक्षन् । प्रौक्षन् ॥७॥

इर्य्यं स्वरे ॥ व्वाजीऽअर्वन् ॥ व्वाज्ज्यर्वन् ॥ विऽ-
ऊर्णुषे ॥ व्यूर्णुषे ॥ असिऽऋतस्य ॥ अस्यृतस्य ॥८॥
इरि[3]मिवर्णे ॥ विऽइत ॥ व्वीत ॥९॥
उर्व्वं स्वरे ॥ नुऽइन्द्र । न्विन्द्र ॥१०॥

---

१. ए-ऐ इत्युभयोरन्यतरपरत्वे अकारस्य एकारैकारयोरन्यतरस्य ऐकारभावो भवति ।
२. अकाराद् ओ औ-इत्यनयोरन्यतरपरत्वे उभयोः स्थाने औकारादेशो भवति ।
३ इः इवर्णे परे द्वयोरीकारो भवति । अत इरीमिवर्णे इति पाठः कार्यः ।

उरुमुवर्णे[1] ।। अनु ऽउत् ।। अनूत् ।।११।।

ऋकारो रेफ ॐ् स्वरे ।। धातृ अ ॐ् शः ।। धात्रॐशः ।।१२।।

ऋवर्णऽऋकारमृवर्णे ।। होतृऽऋकारः ।। होतृकारः ।।१३।।

एकारोऽय ॐ् स्वरे ।। अग्ने ऽआयाहि ।। अग्न[2]ऽआयाहि ।।१४।।

ओकारोऽव ॐ् स्वरे ।। विष्णोऽएते ।। विष्णवेते ।।१५।।

ऐराव ॐ् स्वरे ।। भूम्यैऽआखन् ।। भूम्याऽआखन् ।।१६।।

औ राव ॐ् स्वरे ।। उभौऽइन्द्रौ ।। उभाविन्द्रौ ।।१७।।

ओपराकारो लोपम्[3] ।। अदब्धायोऽअशीतम् ।। अदब्धायोऽशीतम् ।।१८।।

तत्राद्यलक्षणम् ।। एपराकारो लोपम् ।। तेऽअवन्तु तेवन्तु ।।१९।।

वो लोपमुऽओऔषु[4] । उभौऽउ ।। उभाऽउ ।। उऽओऽऔष्विति किम् । पलंक्यावहोरात्रे ।२। इत्यनन्तकृताच्सन्धिः ।।

अथ स्वरप्रकरणम् ।। उदात्तानुदात्तस्वरितप्रचयाः स्वराः ।।१।।

अतास्त्र उदात्तः ।। ।।

यथा । शम् । प्र । नु । द्वितीयस्य । यथा । अधो रक्तोऽनुदात्तः ।। रुद्रऽईडे ।।३।।

तृतीयस्य च यथा ।। उपरि रक्तस्तिर्यग्रक्तो वा स्वरितः । स्व ÷ । स्व ÷ । स्व ÷ ।।४।।

---

१. अत्रापि उरूम् वर्णे इति पाठः कार्यः ।

२. यकारलोपोऽपि बोध्यः ।

३. ओकारात्परोऽकारो लोपं प्राप्नोति–अदब्धायोऽशीतम् ।

४. वो-वकारस्य लोपो भवति-उ-ओ औषु परेषु । उभौ उ इत्यत्रावादेशे कृते वकारो लोपं गतः ।

न्युब्ज पराऽअताम्राऽउदात्ता: । स्वाहा । स्वर्णार्क: ॥५॥

चतुर्थस्य च यथा । स्वरितपराऽअताम्रा: प्रचया: । त्र्यम्बकँय्यजामहे ॥६॥

स्वरित: पञ्चधा ॥ जात्याभिनिहितक्षैप्रप्रश्लिष्ट-भेदात् । एकपदे नीचपूर्व्वेऽपर्व्वो वा यवान्यतर युक्तो जात्य: । धान्यम् । स्वं ÷ ॥७॥

उदात्तादेशे रचोऽभिनिहितस्वरितो भवत्यकारलोपे सति । तेऽअवन्तु । तेवन्तु । वेद: असि । वेदोऽसि ॥८॥

उदात्तऽइऽउस्थाने यवयो: परोऽनुदात्त: क्षैप्र: । यु_योद्ध-यस्मत् । नुऽइन्द्र । न्विन्द्र ॥९॥

उदात्तानुदात्तयोर्ह्रस्वयो: स्थानेऽइकार: प्रश्लिष्ट: ॥ विऽइत । व्वीत ॥१०॥

अनुद त्तपूर्वजात्यादयश्चत्वार: पितृदानवद्धस्तम् ॥ वायव्यै ऽ: ॥ भुव: स्व ÷ ॥ ते ऽवन्तु ॥ वेदोऽसि ॥ अभ्यभि ॥ योजान्विन्द्र ॥ दिवीव ॥११॥

अनुदात्तपूर्वजात्याद यश्चत्वारो मनुष्यदानवदुदात्ते ॥ भूर्भुव:ऽ स्वद्यौं:ऽ ॥ सदन्यमिति ॥ रुद्रेभ्यो ये न्त-रिक्षे ॥ स्तपोस्यूर्णम् । यु_योद्धयस्मत् ॥ अप्स्व-न्त:' । दिवीवेति ॥१२॥

अनुदात्तऽउदात्तस्वरितयो: । येभि ॥ स्वर्ण येऽभि ॥ सोऽहम् । याव न्त रिक्षम् । व्वीदम् । स्वंस्तभित ॐ स्तंभित ॐ स्व_: स्व स्तभितम् ॥१३॥

अननुदात्तपूर्वजात्यादयश्चत्वार: कर्णमूलेऽउदात्त-स्वरितपरत्वाऽभावे ॥ न्यङ् ॥ स्वं ÷ ॥ तेंऽवन्तु । सोंऽस्मि ॥ त्र्यम्बकम् न्विन्द्र ॥ व्वीं त ॥१४॥

उदात्तात्परानुदात्त ॲ स्वरितम्। इषे त्वा ॥१५॥
नोदात्तस्वरितपरत्त्वे। इषे त्वोर्ज्जे। ईशा वास्यम्।
स्वरितादनुदात्तानां प्रचयः। व्वायवस्थ ॥१६॥
नोदात्तस्वरितपरत्त्वे। व्वायवस्थ देवः। व्वास्यमिदम्॥१७॥
उदात्तवानेकी ह्युदात्तः। प्रऽअर्प यतु। प्रार्प्पयतु ॥१८॥
उदात्तान्निहितस्वारः स्वरितात्प्रचयो भवेत्।
उदात्तात्स्वरितात्पूर्वो नान्यऽआपद्यते स्वरः। इति
स्वराङ्कुशः। कुचैलिनं[1] दन्तम[2]लोपधारिणम्बह्वाशन-
न्निष्ठुरभाषिणम्। सूर्योदये चास्तमये च शायिनञ्जहाति
लक्ष्मीरपि चक्रधारिणम्। अथ हस्तप्रक्षेपलक्षणम्।
अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्तऽउदाहृतः। स्वरितः
कर्णमूले स्यान्नासाग्रे प्रचयस्स्मृतः।३। इषे त्वा।
वायवं स्थ। उदात्तादनुदात्ते तु वामाया भ्रुवऽआर-
भेत्। इषे त्वोर्जे। उदात्तात्स्वरिते चैव क्रमाद्दक्षि-
णतो न्यसेत्।४। इषे त्वा। इत्यनन्तकृत स्वराष्ट-
कम्।२। कटतपा गडदबानशि। ऊर्क् असि।
ऊर्ग्गसि। सम्राट् असि। सम्राडसि। उत्त्वयम्।
उद्वयम्। त्रिष्टुप् इति। त्रिष्टुबिति।१। कटतपा
ङणनमाः पञ्चमे। व्वाक् मनः। वाङ्मनः। व्वट्
महान्। व्वण्महान्। तत् मित्रस्य। तन्मित्रस्य।
अनुष्टुम्मात्या।१। तदनाश्च जञाः शचवर्गयोः
तत् चित्रम्। तच्चित्रम्। तत् जुषस्व। तज्जुषस्व।
आदित्यान् श्मश्रुभिः। तो लँल्ले। परिचित्।
लोकम्। परिचिल्लोकम्।४। अनुनासिको लँल्ले।

---

१. कुत्सितवस्त्रधारिणम्।

२ दन्तानां मलाः, तदुपधारिणमित्यर्थः। एतेन ज्ञायते-यद् वस्त्रं विकृतं मलिनं न धारणीयम् दन्तधावनमवश्य कर्तव्यम्।

तान् लोकान् । ताँल्लोकान् ।५। ह्रस्वपरङ्नौ द्विर्भाव ँ स्वरे । दध्यङ् ऋषिः । दध्यङ्ङृषिः । अश्मन् । ऊर्जम्[1] ।६। नः शञ्चच्छयोः पूर्वश्चानुनासिकम् । अहीन् च । अहीँश्च ।७। नः सन्तथयोः पूर्वश्चानुनासिकम् । तान् । त्वम् । ताँस्त्वम् ।८। मः परपञ्चम ँ स्पर्शे । व्रतुङ्कृणत । व्रतञ्चर्[4]रिष्यामि । अपाम्फेनेन ।९। ङ्णौ क्ताभ्या ँ सकारे । ङ्णौ कागमतागमौ प्राप्नुतः सकारे । प्राङ्सोमः । प्राङ्क्सोमः । त्रीन् समुद्रान् । त्रीन्त्समुद्रान् ।१०। मोऽनुनासिकयवलान्यवलेषु । सम् । यौमि । सँय्यौमि । तम् व्वः । तँव्वः । तम् लोकम् । तँल्लोकम् ।११। मः ँ कारं शषसहरेफेषु । सं० शिवम् । हवी ँ ष्या । सं० शिशाधि[2] । सं० सः[3] । अपा ँ रेता ँ सि ।१२। झयः परः शश्छसि । तत् । शुक्रम् । तच्छुक्रम् ।१३। झयः परो हः चतुर्थम् । भिषक् । होमः । भिषग्घोमः । तत् । हविः । तद्धविः । सम्राट् होमः । सम्राड्ढोमः ।१४। स्वरपरसँयोगादिर्द्विः । इषे त्वा इषे त्त्वा ।१५। रहाभ्याम्परः । सूर्य्यम् बाह्यम् ।१६। स्पर्शश्चोष्मान्तस्त्थाभ्यः । व्वायवस्थ । व्वायवस्त्थ ।१७। इत्यनन्तकृतो हल्सन्धिः । अपरविसर्गऽ उ ऽ अहशोः । शिवः । असि । शिवोऽसि । देवेभ्यः । हविऽः । देवेभ्यो हविः ॥१॥

---

१. अश्मन्नूर्जम् इति परिष्कृतं रूपं त्रुटितम् ।

२. सं० हि शाधि-इति पाठः प्रतिभाति ।

३. अयं शब्दः सं० हि शाधि इत्यतः पूर्वं पठनीयः स्यात्, उदाहरणक्रमानुरोधेन ।

४. स्वरपरो यः संयोगस्तस्यादेर्द्वित्वं भवति, अतः त्वा इत्यत्र तकारस्य द्वित्वम् ।

५. अत्र थस्य द्वित्वे आद्यस्य तकारः ।

अपरो लोपमऽआपरत्वे । देवाः ऽ । अत्रं । देवाऽअत्रं ।
देवाःऽआशाः । देवाऽआशाः ॥२॥

अपरो लोपमा परत्त्वे । देवःऽआशाःऽ । देवऽ
आशाः ॥३॥

आपरो लोपर्छ॰ हशि । देवाःऽ । हसन्ति । देवा
हसन्ति । ॥४॥

अआपरो लोपमिचि । देवाःऽ । इह । देवऽइह ।
अग्न्याः । इन्द्राय । अग्न्याऽइन्द्राय ॥५॥

रेफत इच्यरश्च रेफमशि । सवितःऽ जजान । सवितर्-
र्ज्जजान । अग्निःऽ एकाक्षरेण । अग्निरेकाक्षरेण ॥६॥

रेफजेच्यरौ लोपर्छ॰ रेफे पूर्व्वश्च दीर्घम् । प्रातःऽ-
रात्रिः । प्राता रात्रिः- । रुरुः- रौद्रःऽ । रुरू रौद्रःऽ ॥७॥

स्यसऽएषविसर्गो लोपं व्यञ्जने । एषः' स्यः' । एष
स्यः' । स्यः' । रात्थ्यः' । स्यरात्थ्यः' । सः' । नऽः ।
स नः- ॥८॥

सः ते । सस्ते । नमः- ते । नमस्ते ॥९॥

तच्छपरत्वे शम् । व्वाजः- च । व्वाजश्च ॥१०॥

लोपङ्खर्प्परे शरि । अन्धऽः स्थ । अन्ध स्त्थ ॥ ११॥

इति विसर्गसन्धिः । अऽइऽउण् ।१। ऋ लृ क् ।२।
ए ओ ङ ।३। ऐ औ च् ।४। ह य व र ट् ।५।
ल ण् ।६। ञ म ङ ण न म् ।७। झ भ ञ् ।८।
घ ढ ध ष् ।९। ज ब ग ड द श् ।१०। ख फ छ ठ थ
च ट त व् ।११। क प य् ।१२। श ष स र् ।१३।
ह ल् ।१४। अज्झीनं परेण संयोज्यम् ।

॥ इति स्वराष्टकं सम्पूर्णम् ॥

# क्रमकारिकाशिक्षा

॥ श्रीगणेशाय नमः ।

प्रणम्याद्यं दिनमणिं योगीश्वरशिरोमणिम् ।
सर्वज्ञं याज्ञवल्क्यं तच्छिष्यं कात्यायनम्मुनिम् ॥१॥

सर्वं याजुषमन्त्राणां वेदे वाजसनेयके ।
क्रमावसानविषयां कारिकामारभामहे ॥२॥

श्लोके विन्द्वादिरहितः प्रतीकेषु न दुःसहः ।
प्रत्येकं प्रथमा षष्ठी सप्तम्युक्तश्च कल्पते ॥३॥

पदानामानुपूर्व्येण क्रम एषः प्रवर्तते ।
गणान्तानां क्रमो नास्ति इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥४॥

न वेष्ट्याश्च द्विवेष्ट्याश्च त्रिवेष्ट्याश्च तथा परे ।
चतुर्व्वेष्ट्यो मध्यवेष्ट्यः पञ्चवेष्ट्य इतीरितः ॥५॥

अवग्रहो[1]ऽनुवाकान्ते[2] अर्द्धर्चान्ते ऋचां तथा ।
यजुषां वाक्यावसानेष्विति साधारणो विधिः ॥६॥

प्रत्यक्षं याज्ञवल्क्यं[3] श्रीशम्भुमिश्रविनिर्मिता ।
क्रियतां क्रमितैः कण्ठैः कारिका रत्नमालिका ॥७॥

ह्रस्वपूर्वो ह्यनुस्वारो दीर्घानुस्वारभाग्भवेत् ।
द्विशः परश्चेन्न तथा क्रमकाले तु वाजिनाम् ॥८॥

---

१. पदस्य विभज्यान्वारंभ नमवग्रह उच्यते ।
२. पञ्चषादिमन्त्राणां समूहोऽनुवाक उच्यते ।
३. याज्ञवल्क्यमतं प्रत्यक्षं कृत्वेत्यर्थः ।

ओ म् । इषेत्वेत्ययमध्यायो ह्यनुवाकान्तवेष्टनः ।
गायत्रेण त्रिवेष्ट्योऽत्र पुरा क्रूरत्रिवेष्टनः ॥९॥

देव सवितस्त्रिवृदद्व्येकमेषा ते तु द्विवेष्टनः ।
एतन्ते द्व्येकता त्वग्नीषोमयोरनुवाकवृत् ॥१०॥

अग्ने दब्धायऽएकत्वन्देवागातुविदे द्विवृत् ।
सम्बर्ह्योदिषट्कैकामुरुविष्णो द्विवेष्टनः ॥११॥

ततोऽसिद्धे त्रिचतुष्कैकं संव्वर्चेति द्विवेष्टनः ।
यज्ञसञ्चेत्येकतात्वेऽग्नये कव्येति न वेष्टनः ॥१२॥

षेरू द्विवृन्नमो द्वैकमाद्यन्तोर्ज्जरूपोर्द्विवृत् ।
समिधाद्यष्टसु द्विवृदग्निर्ज्ज्योतिः षडेकता ॥१३॥

इन्द्रः पञ्चादिवेष्ट्यः स्यात्समिदं पञ्चवेष्टनः ।
उपप्रषट्स्वपि द्विवृत्तनूपात् सप्तकैकता ॥१४॥

उपस्त्वा पञ्चसु द्विवृदिडऽएह्यन्तवेष्टनः ।
सोमानाद्यष्टसु द्विवृत् परिते दूडभस्त्रिवृत् ॥१५॥

भूर्भुवः स्वोनुवाकैक्यं प्रघासीति द्विवेष्टनः ।
यद्ग्रामेत्यन्तवेष्ट्यः स्यान्मो षूणेति द्वयोर्द्विवृत् ॥१६॥

अवभृथेत्यन्तवेष्ट्यः पूर्णादर्व्यष्टसु द्विवृत् ।
एष तैका[1] त्र्यम्बकयोर्द्वयोर्द्विवृत्परोऽन्तवृत् ॥१७॥

वाजिनीत्वाजो द्विवेष्ट्यो वाज्यहम्पञ्चकैकता ।
एदमादित्रिषु[2] द्विवृन्महीनां युगलैकता ॥१८॥

आपो द्विवेष्टनः स्वाहा यज्ञमित्यन्तवेष्टनः ।
आकूत्यै प्रयुजे त्रिवृद्विश्वो देवस्य तु द्विवृत् ॥१९॥

१. एव तैषः-इति पाठः संभाव्यते ।
२. एवभादिषु-इति पाठः संभाव्यते ।

ऋक्सामयोश्चतुष्कैक्यं व्रतं कृणु सप्तैकता ।
त्वमग्नेव्रतपाद्द्विवृद्रास्स्वे[1] पञ्चान्तवेष्टनः ॥२०॥
एषा ते पञ्चकैकत्वं वस्व्यादिश्चतुरैकता ।
एष ते युगलैकत्वमभित्यन्त द्विवेष्टनः ॥२१॥
प्रजाभ्यस्त्वाऽन्तवृच्चन्द्रम्प्रथमाद्ध्र्यान्तवेष्टनः ।
सम्मेऽर्द्धंशुक्रन्तपसन्तन्वादिचतुरेकता ॥२२॥
प्रतिपन्थान्द्विवेष्ट्यः स्याददित्यास्त्वक् द्विवेष्टनः ।
वनेषु युगयोर्द्विवृद्दु स्रावेतं युगैकता ॥२३॥
नमो मित्रस्य तु द्विवृद्वरुणस्य त्रिवृत्परः ।
अग्नेस्तनूर्युगैकत्वं भवतन्नो द्वयोर्द्विवृत् ॥२४॥
आपतयेत्वेन्द्रघोषस्त्वाऽनुवाकान्तवेष्टनः ।
युञ्जतेति त्रिषु द्विवृद्देवश्रुतयुगैकता ॥२५॥
विष्णुत्वादित्रिषु द्विवृद्विष्णोरराटमन्तवृत् ।
आददे पञ्चकैकत्वं यवोऽसि चतुरैकता ॥२६॥
परि त्वा गिर्वणो द्विवृदिन्द्रस्य स्यू रथान्तवृत् ।
विभूरस्यानुवाकैक्यं ज्योतिर्वेष्टचतुष्कवान् ॥२७॥
अग्ने नय द्वयोर्द्विवृद्देव सवितस्त्रयैकता ।
अत्यन्यान्त्रितयैकत्वमयं हि त्वा द्विवेष्टनः ॥२८॥
अग्रेणीरन्तवृद्या ते त्रिषु द्विवृत्परोऽन्तवृत् ।
उपावीरश्च मनस्ते यत्ते त्वेत्यनुवाकवृत् ॥२९॥
समुद्रादिचतुष्कैक्यमिदमापो द्वयोर्द्विवृत् ।
अग्नेर्वस्त्वन्तवेष्ट्यः स्यादमूर्यास्तु द्विवेष्टनः ॥३०॥
हृदे त्वा युगलैकत्वं शृणोत्वग्निर्द्विवेष्टनः ।
देवीरापस्त्रयैकत्वं यमग्ने पृत्स्वति द्विवृत् ॥३१॥

---

[1] त्रिवृद्रास्स्वे इति पाठो भाति ।

आददे सप्तकैकत्व त्वमङ्गेति त्रिवेष्टनः ।
वाचस्त्रैक्यं चोपयाम द्वयैक्यमावार्या च द्विवृत् ॥३२॥

इन्द्रवायूऽअयं वां च राया यावां त्रिवेष्टनः ।
तम्प्रत्नाद्यर्द्धयोर्द्विवृत्त्वन्तशुक्रैषतेऽन्तवृत् ॥३३॥

अच्छिनस्य चतुर्षु द्विवृदयं वेनस्त्वमध्यमः ।
एष तेऽत्यन्तवेष्ट्यः स्थाद्ये देवासो द्विवेष्टनः ॥३४॥

आग्नेयत्रैक्यमिन्द्राय द्वैक्यं मूर्द्धा द्विवेष्टनः ।
उपाᳬशोरन्तवेष्ट्यः स्यादपो देवा द्विवेष्टनः ॥३५॥

वृष्णऽऊर्मिस्त्रयैत्कत्वं सविता त्वनुवाकवृत् ।
सोमस्य त्विषिर्य्यमैक्यं सधमादी द्विवेष्टनः ॥३६॥

क्षत्रस्योल्बं त्र्यैक्यं अवेष्ठाश्चतुष्कान्तवेष्टनः ।
ऊर्द्ध्वामारोह चद्यर्द्धवर्जं विद्याद्द्विवेष्टनः ॥३७॥

द्विवृत्सोमस्य त्विषिर्हिरण्यरूपौ त्रिवेष्टनः ।
सोमस्य त्वाऽन्तवेष्ट्यः प्रपर्वतस्य त्रिवेष्टनः ॥३८॥

प्रजापतयेति द्विवेष्ट्यो रुद्र यत्वन्तवेष्टनः ।
इन्द्रस्य त्वान्तवृन्माते द्विवृदग्नयऽअन्तवृत् ॥३९॥

हᳬसो द्विवृच्चे यदसि स्योनासि चान्तवेष्टनः ।
निषसाद द्विवेष्ट्योऽभिभूरादिचतुरैकता ॥४०॥

सवित्रा द्वैष्ट्यमश्विभ्यां युग्मं युग्मं त्रिवृद् द्विवृत् ।
युञ्जानः सप्तसु द्विवृदाददे युगलैकता ॥४१॥

हस्तादि चतुर्षु द्विवृत्प्रतूर्वं युगलैकता ।
अन्वाग्न्येकादशा नद्विवृत्पृथिव्याः सधस्थास्त्रिवृत् ॥४२॥

---

१. त्र्यैक्यामिन्द्राय-इति पाठो भाति ।
२. द्वयैष्ट्यमिति पाठो भाति ।

अपां पृष्टन्द्वयोर्द्विवृत्सँव्वसाथाँ त्रिवेष्टनः ।
त्वामग्ने पञ्चदशसु द्विवृत्त्रिवृद् वृषाग्नि ते ॥४३॥
ओषध्येकादशानाद्विवृन्मखस्य शिरोन्ततः ।
कृत्वाय सा द्विवेष्ट्यः स्याद् वसवस्त्वाऽन्तवेष्टनः ॥४४॥
अदितिष्ट्वा युगं कत्वम्मित्रस्य युगलन्द्विवृत् ।
उत्थाय बृहतीति द्वावाकूतिन्त्वन्तवेष्टनः ॥४५॥
मा स्वादिषु च सर्वेषु द्विवृदन्नपते त्रिवृत् ।
द्विबृद्दृशानोऽध्यायद्विसुपर्णोऽसि नवैकता ॥४६॥
चिदसीत्यन्तवृद्यन्ते सञ्ज्ञानञ्च त्रिवेष्टनम् ।
द्विवृन्मयि ह्यनुवाको ध्रुवासि चतुरैकता ॥४७॥
काण्डादिति चतुर्षु द्विवृद्विराड्ज्योतिस्त्रयैकता ।
अषाढाद्यास्तथैकोनविंशतिस्युर्द्विवेष्टनः ॥४८॥
इमम्मा स्यात्रिवृदेकशफं पशुमिति द्विवृत् ।
सहस्रमूर्णायुमजो ह्यन्तवर्ज्जं द्विवेष्टनः ॥४९॥
त्वं यविष्ठ द्विवेष्ट्यः स्यादपान्त्वेत्यन्तवेष्टनः ।
नवायं पुरो न वेष्ट्यो ह्यन्त्याम्यर्धं विना द्विवृत् ॥५०॥
ध्रुवक्षितिश्चतुर्ष्षु द्विवृददित्यास्त्वा त्रिवेष्टनः ।
सजूर्म्मूर्द्धा वयश्चेति ह्यनुवाकान्तवेष्टनः ॥५१॥
इन्द्राग्नी स्याद्द्वि[1]वृद्विश्वकर्मा त्वा युगलैकता ।
आद्य मूर्धाऽशुरग्नेभागैंकयेत्यनुवाकवृत् ॥५२॥
अग्ने जातां द्विवृन्त्रिवत्सहसाऽग्नेः पुरीषन्द्विवृत् ।
एवादिरश्मिना राज्ञी चायम्पुरश्चानुवाकवृत् ॥५३॥
अग्निर्मूर्द्धाऽनुवाको द्विवेष्ट्योऽत्रान्तत्रिवेष्टनः ।
येनऽऋषयोऽनुवाको द्विवृत्पञ्चान्तवेष्टनः ॥५४॥

१. स्याद् द्विवृत्-इति पाठो भाति ।

प्रोधद्विवृत्त्वन्तबर्जमाणे हि द्विपरोऽन्तवृत् ।
नमस्ते चानुवाकेषु सप्तस्वाद्यो द्विवेष्टनः ॥५५॥

अनुवाकान्तवृत्षट्सु द्रापेअन्धाष्टसु द्विवृत् ।
दशास्मिन्महतीत्याद्याः सर्वे चैवान्तवेष्टनाः ॥५६॥

अस्मन्नूर्ज्जमिदन्द्विवृदिमामेति त्रयैकता ।
समुद्रसप्तसुद्विवृन्नमस्ते ह्रसे विवृत् ॥५७॥

ये देवादिषु च द्विवृदाजुहानोऽन्तवेष्टनः ।
ता ॐ सवितुः पञ्चसु द्विवृत् शुक्रज्योत्यनुवाकवृत् ॥५८॥

द्विवृदिम ॐ स्तानुवाकऽएताऽअर्षति तत्त्रिवृत् ।
वाजादयोऽनुवाकाः स्युरनुवाकान्तवेष्टनाः ॥५९॥

द्विवृद्वाजस्यानुवाकः पयः पृथिव्यान्तु विवृत् ।
ऋताष्टकैक्यं रुचन्नोद्वर्योद्विवृत्परीतान्तवृत् ॥६०॥

विषु ह्यऽग्नि युनज्म्यादिष्वनुवाकेषु च द्विवृत् ।
स्वाद्वोन्त्रित्परीतीद्विर्व्वायोस्त्रि द्विः पुनाति ते ॥६१॥

त्रिब्रह्मक्षत्रन्नाना द्विगघर्द्धान्ति वृदाश्विनम् ।
मोदार्द्धयुक्तन्तेजोऽन्त वृघाव्याघ्रादिषु द्विवृत् ॥६२॥

षड्विंशतिषु मन्त्रेषु स्यात्पितृभ्यः स्वधान्तवृत् ।
अक्षन्द्वादशसु द्विवृदिमठः हविरिति त्रिवृत् ॥६३॥

उदीरतादिषु द्विवृत् क्रमस्यैव तु वेष्टनम् ।
त्वयाचिवेष्टयः प्रथमाद्वैक्यं लोमानि च द्विवृत् ॥६४॥

शूद्द्रोर्ववर्ज्जेय्यद्देवाध्यायः सर्वार्धवेस्टनः ।
स च शूद्रेय्यंमन्त्रः स्यादम्ययम्पितृपदे द्विवत् ॥६५॥

इमम्मेत्र्यादिषु द्विवृद्धोता यक्षत्सु चान्तवृत् ।
त्रिवृत्पूर्वाश्विनौ छागाद्यन्तवृत्तदनन्तरम् ॥६६॥

त्रिवृत्पराश्विनौ छागो वनस्पत्यग्निचान्तवृत् ।
देवम्बर्ह्यादिषु द्विवृद्देवो ह्यत्यन्तवेष्टन: ॥६७॥
अग्निमद्य च सूपस्था त्वामद्येति त्रयैकता ।
तेजोन्तवृदिमाद्विवृदभिधा युगलैकता। ॥६८॥
नद्विवृद्यो अर्वाग्नयेऽन्तवृद्धिङ्कारानुवाकवृत् ।
हिरण्यपाण्यादिना वार्जाजनश्चद्विवेष्टन: ॥६९॥
कायादयोऽनुवाकस्यानुवाका ह्यन्तवेष्टन: ।
हिरण्यगर्भेत्यध्याये प्रजापतयऽअन्तवृत् ॥७०॥
य: प्राणतोद्विवृच्चन्समास्तदत्यन्तवेष्टन: ।
युजन्तीतित्रिषुद्विवृद्वसवोयुगलैकता ॥७१॥
स्विच्चतुर्षु वायुष्ट्वा पञ्चसु स्याद्द्विवेष्टन: ।
अग्नि: पशुर्म्मध्यवर्ज्जन् द्विवृदत्राम्यैकता ॥७२॥
उत्सक्थ्यादानुवाकेषु पञ्चसु स्याद्द्विवेष्टन: ।
अश्वस्त्वारभ्य चत्वार: सोमाद्यध्यांतिमेकता ॥७३॥
रोहितादूर्द्ध्वसमायुक्त: शितिरन्ध्रोऽन्तवेष्टन: ।
शुद्धवालश्च प्रभृत्यवदित्याद्धान्तिमेकता ॥७४॥
वृद्धयुक्तफलग्वाग्नि द्वैक्यं शिल्पास्तथान्तवृत् ।
सप्तमूर्द्धानुवाकेषु मन्त्राणामन्तवेष्टनम् ॥७५॥
शादं चैवानुवाकानान्नवकं चानुवाकवृत् ।
पञ्चमूर्द्धानुवाकेषु विवृदिमानुक द्विवृत् ॥७६॥
अग्निश्चेतित्रिवृद्द्विवृद्न्तरेषु त्रिषु त्रिवृत् ।
वैश्वानरं चैवविद्यादग्निरुक्थेन चान्तवृत् ॥७७॥
वैश्वानरस्य मुमतावादय: षड्द्विवेष्टन: ।
द्विवृत्समास्त्वेत्यऽध्यायश्चापश्चिदन्त्यवेष्टन: ॥७८॥

सँव्वत्सरोऽसि द्विवृदत्यन्वाकोऽनुवाकवृत् ।
होतायक्षदेकादशपूर्वश्चैवा परो द्विवृत् ॥७९॥

देव बर्हिरपरो द्विवृच्छुचमुष्णिहमात्रिका ।
ऊर्ध्वतोऽर्द्धगणान्तेषु तत्तन्मन्त्राःशतान्तवृत् ॥८०॥

द्विवेष्टमिन्द्राय वयोधसऽइत्यन्तयोर्द्वयोः ।
समिद्धोऽञ्जन्नध्याये मन्त्राः सर्वे द्विवेष्टनाः ॥८१॥

अन्त्यानामनुवाकानां त्रयाणामनुवाकवृत् ।
द्विवृदस्याजराध्यायौ बृहन् निदिति चान्तवृत् ॥८२॥

द्विवृद्यज्जाग्रतोऽध्यायोद्युभिरक्तुभिरन्तवृत् ।
विश्वानि च विभक्तारं द्विवृदन्ये तु वेष्टनाः ॥८३॥

सहस्रशीर्षा मन्त्रेषु चतुर्विंशतिषु द्विवृत् ।
न तस्य त्रिवृदेषो इयेनद्यौर्दशसु द्विवृत् ॥८४॥

त्रिवृद्युभिरहोभिस्तु द्विवृद्वायुः पुनाति च ।
सवितात्रिवृदन्येद्विवृत्स्योना पृथिवी द्विवृत् ॥८५॥

ऋचँव्वाचन्त्रिवृद्यन्मेऽन्तार्द्धवर्ज्जं द्विवेष्टनः ।
ऊतिभिः सहितः कया त्वमादिचतुर्षु द्विवृत् ॥८६॥

अहानिशन्त्रिवृद्देवीरभिष्टयऽइति द्विवृत् ।
द्यौः शान्तिरन्तवेष्ट्यः स्याद्दृते दृꣳह त्रिवेष्टनः ॥८७॥

ज्योक्तेऽन्तवृन्नमस्तेऽस्तुयतस्तच्चक्षुश्च द्विवृत् ।
आददे देवि देव्यश्चेतीन्द्रैक्यं प्रैत्विति द्विवृत् ॥८८॥

मखस्याश्वस्य नवैक्यं यमाय त्रितयैकता ।
द्विवृद्गर्भोऽनुवाकस्तुविश्वासान्त्यं विना त्रिवृत् ॥८९॥

आददे चतुष्कैकं यस्ते द्विवृत्परोऽन्तवृत् ।
समुद्रायतद्वित्र्यैक्यं यमायेति द्विवेष्टनः ॥९०॥

विश्वाऽआशाः पञ्चकैक्यं स्वाहा पूष्णेऽनुवाकवृत् ।
अभिमन्तु द्विवृद्याते चतुष्कैक्यमृचि द्विवृत् ॥६१॥
यावतीत्यनुवाकैक्यन्त्विषः सँव्वृगथान्तव्वत् ।
स्वाहाप्राणानुवाकानामष्टानामनुवाकवत् ॥६२॥
आयामाय युगैकत्वं समायेत्यन्तवेष्टनः ॥६३॥
ईशावास्यमिदं सर्व्वं द्विवेष्ट्यं सर्वसम्मतम् ॥६४॥

॥ इति क्रमकारिका शिक्षा समाप्ता ॥

# पाणिनीयशिक्षा

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।
शास्त्रानुपूर्वं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः ।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाचऽउच्चारणे विधिम् ॥२॥

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाऽः शम्भुमते मताऽः ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताऽः स्वयम्भुवा ॥३॥

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥४॥

अनुस्वारो विसर्गश्च ᳲकᳲपौ चापि पराश्रितौ ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारःप्लुत एव च ॥५॥१॥

आत्मा बुध्या (२) समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥६॥

मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।
प्रातः सवनयोगं तच्छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥७॥

कण्ठे माध्यँदिनयुगं मध्यमन्त्रैष्टुभानुगम् ।
तारं तातीय सवनं शीर्षण्यं जगतानुगम् ॥८॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।
वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥९॥

स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयात्नानुप्रदानतः ।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तं निबोधत ॥१०॥२॥

---

१. सम्भवतोमतः । इति क पुस्तक पाठः

२. समत्थ्यारीन् (२) इति ख पुस्तक पाठः ॥

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुप्त इति कालतो नियमा अचि ॥११॥
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्तऽऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥१२॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥१३॥
ओभावश्च विवृत्तिश्च शषस रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥१४॥
यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपर पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥१५॥
हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तस्थाभिश्च संय्युतम् ।
औरस्यं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंय्युतम् ॥१६॥
कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ।
स्युर्मूर्द्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः ॥१७॥
जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठो वः स्मृतो बुधैः ।
एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥१८॥
अर्द्धमात्रा तु कण्ठ्यस्य ह्येकारैकारयोर्भवेत् ।
ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥१९॥
संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् ।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥२०॥४॥
स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम् ।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥२१॥
अनुस्वारयमानां च नासिकास्थानमुच्यते ।
अयोगवाहा विज्ञेयाऽआश्रयस्थानभागिनः ॥२२॥

अलाबुबीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्यस्वरानुगः ।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्नोः शषसेषु च ॥२३॥

अनुस्वारे विवृत्त्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रौकारवकारयोः ॥२४॥

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ ५॥५॥

यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्राँऽइत्यभिभाषते ।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खेअराँ इव खेदया ॥२६॥

रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नोग्रसेत्पूर्वमक्षरम् ।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात्पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥२७॥

हृदये चैकमात्रस्तु अर्द्धमात्रस्तु मूर्धनि ।
नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैव द्विमात्रता ॥२८॥

हृदयादुत्करे तिष्ठन्कांस्येन समनुस्वरन् ।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम् ॥२९॥

मध्ये तु कम्पयेत्कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् ।
सरङ्गं कम्पयेत्कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥३०॥६॥

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥३१॥

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥३२॥

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥३३॥

शङ्कितम्भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।
काकस्वरं शिरसिगन्तथा स्थानविवर्जितम् ॥३४॥

उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्त-
म्बिलम्बितङ्गद्गदितंप्रगीतम् ।
निपीडितं ग्रस्तपदाक्षरञ्च
वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥३५॥

प्रातः पठेन्नित्यमुरः स्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
मध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसङ्कूजितसंनिभेन ॥३६॥

तारन्तु विद्यात्सवनं तृतीयं
शिरोगतन्तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसाम्बुभृतस्वराणां
तुल्येननादेन शिरः स्स्थतेन ॥३७॥७॥

अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेमिस्पृष्टाः शरः स्मृताः ।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥३८॥

यमोऽनुनासिका नह्रौ नादिनो हझषः स्मृताः ।
ईषन्नादा यण्जशश्श्वासिनस्तु खफादयः ॥३९॥

ईषछ्वासाँश्चरो विद्याद्गोर्धामैतत्प्रचक्षते ।
दाक्षीपुत्रः पाणिनिना येनेदं व्यापितम्भुवि ॥४०॥८॥

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥४१॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥४२॥

उदात्त ख्याति वृषोङ्गुलीनां
प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा ।
उपान्तमध्येस्वरित धृतं च
कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ॥४३॥

उदात्तप्रदेशिनीं विद्यात्प्रचयं मध्यमाङ्गुलिम् ।
निहितं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ।।४४।

अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तमिति नवपदशय्या ।।४५।।

अग्निः सोमप्रवोवीर्यं हविषा
स्ववृंहस्पतिरिन्द्रावृहस्पती ।
अग्निरित्यन्तोदात्तं सोमइत्याद्युदात्त प्रेत्युदात्तं व-
इत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम् ।।४६।।

हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् ।।
वृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिन्द्रावृहस्पती इति व्युदात्तम् ।।४७।।

अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः ।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ।।४८।।

चाषस्तु वदते मात्रा द्विमात्रं त्वेव वायसः ।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रकम् ।।४९।।

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् ।
न तस्य पाठे मोक्षोस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ।।५०।।

सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाध्यायं सुव्यवस्थितम् ।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ।।५१।।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।।५२।।

अवक्षर ह्यनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम्
अक्षताः शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ।।५३।।

हस्तहीनस्तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।
ऋग्यजु सामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ॥५४॥

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।
ऋग्यजुःसामभिःपूतो ब्रह्मलोके महीयते ॥५५॥

शङ्करः शाङ्करीं प्रादाद्दाक्षीपुत्राय धीमते ।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ॥५६॥

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ॥५७॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः ।
तमश्चाज्ञानजम्भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥५८॥

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ॥५९॥

त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां
यदहः पठेत्प्रयतश्च सदा द्विजः ।
स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमान-
तुलं च सुखं समश्नुते दिवीति दिवीति । श्लोकः ॥६०॥

अथशिक्षामात्मोदात्तश्च हकारं स्वराणाम् यथा
गौत्यचो स्पृष्टोदात्तं चाषस्तु शंकर एकादश ॥

॥ इति वेदाङ्गनासिका शिक्षा समाप्ता ॥

# शिक्षाप्रकाशः

ज्योतिर्व्याकरणं छन्दः कल्पशिक्षानिरुक्तयः ।
नेत्रास्यपदोर्नःकर्णाः यस्य तं सततं नुमः ।। १ ।।

व्याख्याय पिङ्गलाचार्यसूत्राण्यादौ यथायथम् ।
शिक्षां तदीयां व्याख्यास्ये पाणिनीयानुसारिणीम् ।। २ ।।

ज्येष्ठभ्रातृभिर्विहितो व्याकरणेऽनुजनुस्तत्र भगवान् पिङ्गलाचार्यस्तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते । अथ शिक्षामिति । वैदिकधर्मानुष्ठानात्पुरुषो निःश्रेयसार्थफलवान् इत्येष वैदिकः सिद्धान्तः । अतिगूढार्थस्य वेदस्याज्ञानान्नानुष्ठातुं शक्यो वेदमार्गः । अतः साक्षात्कृतधर्मभिर्वेदार्थयोनिष्कृष्यार्थार्थिसुखबोधाय विद्यास्थानानि प्रवर्त्तितानि । तानि शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषं धर्मशास्त्रं पुराणं न्यायविस्तरो मीमांसादीनि । तथा च याज्ञवल्क्यः—

**पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।**
**वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।। इति च ।।**

तथा हि शिक्षा स्वरवर्णोच्चारकं शास्त्रम् । कल्पो वेदविहितकर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम् । व्याकरणं शाब्दबोधकमम्लेच्छत्वकारकं शास्त्रम् । निरुक्तं पदविभागमन्त्रार्थदेवतानिरूपणार्थशास्त्रम् । छन्दोगायत्र्यादिछन्दसां ज्ञानशास्त्रम्, पुराणं स्थित्युत्पत्तिप्रलयादिसूचकं शास्त्रम् । न्यायविस्तरः प्रमाणैरर्थपरीक्षाशास्त्रम् । मीमांसा वेदवाक्यार्थविचारशास्त्रम् इति । तावच्छिक्षायां यथोदितस्वरवर्णोच्चारणम् । अज्ञाने प्रत्यवायस्मरणात् । यतः—

**मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।**
**स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।। इति ।।**

अत्यावश्यकज्ञातव्यत्वे बृहद्देवतायां शौनकः ।

**स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगार्थमेव च ।**
**मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ।। इति ।।**

अङ्गिनो नित्यत्वादेषामपि नित्यत्वमुत्सर्गतः सिद्धम् । ग्रन्थादौ मङ्गलायागादथशब्दोमङ्गलार्थऽआनन्तर्यार्थो वा । व्याकरणाध्ययनान्तरं चतुर्भिर्वाचः पदैः परापश्यन्तीमध्यमावैखरीसञ्ज्ञैरात्मनो वर्णोत्पत्तिज्ञापकं कियत्तदनुवादरूपं शिक्षाध्ययम् । शिक्ष्यतेऽनया बालेभ्यो ह्रस्वदीर्घप्लुतोदात्तानुदात्तस्वरितोरःकण्ठशिरोजिह्वामूलदन्तनासाः स्थानानि यया ताम् । यथा पाणिनेरिदं "वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धमिति" वृद्धसंज्ञाया "वृद्धाच्छः" तस्याऽऽयनेत्यादिनेयादेशः । पाणिनीयं मतं तथा प्रोच्चारयिष्यामि । न तु तन्मतं शास्त्रादिविरोधि भविष्यतीत्याह । यथोक्तमिति । तद्यथा लोकवेदयोः शरीरकर्तृकश्रुत्योरुक्तं शास्त्रानुपूर्वं गुरुपरम्पराप्राप्तं जानीयात् । शङ्करः शाङ्करीं प्रादादिति तदुपरिष्टाद् व्याख्यास्यामः । "यऽइव लौकिकाः शब्दास्त एव वैदिकास्त एव तेषामर्था इति" महाभाष्योक्तेः । अत्र स्वरवर्णोच्चारणमभिधेयं सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते इति । यथा च महाभाष्यम् । एको वर्णः सम्यग् ज्ञातः स्वर्गे लोके कामधुग्भवतीति प्रयोजनम् । एतत् ज्ञानाभिलाषुका अधिकारिणो व्याकरणे तु गोशब्दो 'गातेर्डोसंतोऽत्र' जिह्वामूलकण्ठोष्ठजातो गोवर्ण इति विभेदाच्छिक्षारम्भ इति । अत्रानुष्टुप्छन्दसि विषमं चेत्यधिकृत्यावातन्रं वक्त्राधिकारे पथ्यावक्त्रं श्लोकवृत्तम् । पादस्यानुष्टुब्वक्त्रम् "न प्रथमात्स्तौवाऽन्यत्" । चतुर्थात् । प्रथ्यायुजोज् । युग्मपादस्य चतुर्थाद्विस्माज्जगणोऽवश्यं चेत् इति लक्षणात् । उदात्ते निषादगान्धारावित्यत्र प्रथमो भुरिक् । अनुष्टुप्पादः । द्वितीयः खण्डोऽनुष्टुप्पादः । उत्तरार्द्धं पूर्ववत् ऊनाधिकेनैकेन निचद्भुरिजौ । द्वाभ्यां विराङ्राजाविति लक्षणसूत्रात् ॥१॥ सुबुद्धीनामादिवर्णोच्चारात्कण्ठादिस्थानज्ञानं भविष्यति किमर्थोऽयमारम्भ इत्याशङ्क्याह । प्रसिद्धमिति पाणिन्यादिभिः प्रसिद्धाक्तमसांप्रतदर्शभिरविज्ञातमव्यक्तं व्यक्तीकरिष्यामि । वाचोवर्णजातस्योच्चारणे उद्गिरणे विधिं विधानम् । अत्यंताप्राप्तौ विधिः । स चात्र प्रयत्नानुप्रदानादौज्ञेयस्तम् ॥२॥ तावदुच्चारणादिज्ञानाय वर्णान्सङ्ख्याति । त्रिषष्टिरिति । प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तस्मिन्प्राकृते शूरसेन्यादौ संस्कृते प्रकृतिप्रत्ययादिविभागैः संस्कारमापादिते तस्मिन् । गीर्वाणवाण्यां त्रिभिरधिकाः षष्टिरथवा चतुर्भिरधिकाः षष्टिर्वर्णाः स्वयंभुवा प्रोक्ताः प्रोदिताः स्थानप्रयत्नानुप्रदानकालैः सम्भवतः सम्भूते राजन्मताज्ञाताः ॥३॥ताननुक्रमेण गणयन्दर्शयति । स्वराइति प्राचां सञ्ज्ञा । स्वर्यतेः शब्दार्थस्य करणेऽच् । विंशतिः एकश्च । तेऽकारकारावि उ ए ओ ऐ औ एते ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदिता "ऊकालोज्ऽझ्रस्वदीर्घप्लुत" इत्यतेनैकद्वित्रिमात्रा एच उदात्तानुदात्तस्वरिता इति प्रत्येकं त्रिविधधर्मास्तुल्यकाला ऋ ऌकार युक्ता एकविंशतिसंङ्ख्यापूरकाः । यथा अ१ आ२ आ३ इ१ ई२ ई३ उ१ ऊ२ ३ ऊ३ ऋ१ ॠ२ ॠ३ एते चत्वार

स्त्रिगुणिताः द्वादशाक्षरा ह्रस्वाभावात् दीर्घत्वंप्लुतत्वं यथा। ए२ ए३ ओ२ ओ३ ऐ२ ऐ३ औ२ औ३ एतेऽष्टौ। ऌवर्णो न दीर्घ इति स्मरणात् ह्रस्व-एकः। अत्रोदात्तादिधर्मा अच्येवोदात्तश्चैतेन व्याख्यातः।

**"उच्चस्वरो नीचस्वरः स्वरः स्वरितऽएव च,**
**व्यञ्जनान्यत्र वर्तन्ते तत्र तिष्ठति स स्वरः।**

इति नारदः। तत्रोदात्ते विनिषीदन्ति सर्वेऽस्मिन्स्वरा इति निषादः, नावा-गन्धवहो वा वायुर्नाभेः शीर्षगो यस्योच्चारणेऽथवा यस्मिन्प्रगीते गावस्तुष्यन्तीति गान्धारस्तौ, अनुदात्ते नाभेः कण्ठशीर्षसमाहत ऋषभवद्दर्छतीति ऋषभः। षडपिस्वराननतिक्रम्य सन्धीयते स धैवतस्तौ। एते वक्ष्यमाणातिस्वरितोद्भवाः। नासाकण्ठोरस्तालुजिह्वादन्तेभ्यो जातो गणनया पञ्चसङ्ख्यापूरकइति वा पञ्चमः। हृदुदरः समाश्रितो नाभिं प्राप्तः स मध्यमस्ते उदात्तादिभ्यऽएवैषां प्राधान्यभेदेनोदात्तो व्याख्यातः।। स्पर्शानां पञ्चविंशतिः पञ्चभिरधिका-विंशतिः। स्पृष्टानुप्रदानधर्मत्वात्स्पर्शास्तेषां सङ्ख्या। तेषां पंचवर्गाः कु चु टु तुपवः। च पुनः यादयोऽष्टौ स्मृतास्ते यर ल व श ष साः। स्वरा अस्पृष्टप्रयत्नाः य र ल वास्तु किंचित्स्पृष्टाः, त्वो नेमऽइत्यर्द्धस्येति यास्कः। शेषाहलोऽनुक्ताः स्पृष्ट आचार्यैः प्रोक्तास्ते स्पर्शाः स्पृष्टप्रयत्नाः च पुनश्चत्वारो यमाः कुं खुं गुं घुं इति।

अथानन्त्याश्चत्वारस्ते सयमास्ते कुं खुं गुं घुं इत्यन्त संयोगेऽन्त्यपूर्वोऽन्त्योत्तरे व्यवधान-वर्जिते तत्र यमा वर्तन्ते न सन्देह इति, "अनन्तसंयोगे मध्ये यमः पूर्वगुण इत्यौद-व्रजिरपि" नारदश्च।

**अनन्त्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यन्त्यश्च परतो यदि,**
**तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेद्वर्णः पूर्ववर्णयोः।**
**वर्गान्त्याञ्छषसः सार्द्धमन्तस्थैश्चापि संयुतान्,**
**दृष्टवा यमा निवर्तन्ते आदेशिकमिवाऽवगाः।।**

अयमपि वर्णागमो विधीयतेऽस्माच्छास्त्रात्। चत्वारश्च यमा इति वर्णान्तरत्वेनोपदेशः संयोगशास्त्रात्। तत्र संयोगस्त्रिविधो गौतमेन दर्शितः। अयं त्रिविधः संयोगपिण्डो भवत्ययस्पिण्डो दारुपिण्डस्तथोर्णापिण्डश्चेति। यमसहितमयस्पिण्डं दारुपिण्डमन्तस्थैर्युक्तं, यमान्तस्य वर्जं तूर्णा-पिण्डमिति।।" अन्तस्थयमसंयोगे विशेषो नोपलभ्यते इति च।

**अशरीरं यमं विद्याद्विशेषः पिण्डनायकः इति।**

यथा पलिक्क्नीरिति ककाररूपः पूर्ववर्णसवर्णो यथासंङ्ख्यः। प्रथमस्तकारस्तेनायं वर्णक्रमः। ककारयमककाररूपकरानकारईकाराः अन्तर्वत्क्नीत्यादि। चख्ख्नतुरित्यत्र खकाररूपः। अग्ग्निरित्यत्र गकाररूपः। जघ्घ्नतुरित्र घकाररूपः यज्ज्ञइत्यत्र जज्ञाः। अत्र चवर्ग तृतीयो जस्तस्य संख्या सवर्णो जुंकारसमावेशः। वर्णक्रमे यकार जकार पूर्ववर्ण वर्गसङ्र-व्यसवर्णं यम गकार जकाराः वर्गान्त्यानिति किं उदग्ङ्चक्। त्वन्तस्थैरिति किं काध्र्मन्। श्रृक्षु॥४॥ अनुस्वार इति। "मोऽनुस्वारः" स्वारमनुभवतीत्यनु-स्वारः। विविधं सृज्यत इति विसर्ग ऊष्मापरसंज्ञस्तौ। अलाबुनस्तुम्बीफलस्य या वीणा तन्निर्घोषो दन्तमूल्यो दन्तमूलस्थानीयः स्वरानकारादीननुलक्षीकृत्य प्राप्तो-ऽन्वर्थसञ्ज्ञः स्वरानुगतो यथा तथा नित्यं हरशषशेषु प्रत्येकं परेषु कर्तव्यः। नारदोपि आपद्यते मकारो रेफोष्मप्रत्ययेष्वनुस्वारः। यवलेषु परसवर्णस्पर्शेषु परेषु चोत्तमापत्तिमिति।" अनुस्वारद्वयग्रहणं चतुःषष्टिसङ्ख्यामास्कन्दरति। अनुस्वारो विसर्गश्चेति पाठात्। स च यथा सुराष्ट्रदेशजाता स्त्री सानुनासिकं रंङ्ग अराँ इति वाद्यमान कंसपात्र शब्दानुकारिणमभिवदति तद्वत् रंङ्ग द्वितीय-मनुस्वारं जानीयात्। लौकिकं प्रदर्श्य मन्त्रवर्णोदाहरणमाह—"खे अराँ इव खेदयेति।" अचि नियमत्वादनुस्वार ऋक्षु गणितो विकल्पादृक्षुज्ञेयं। तथा अनु-स्वारो व्यंजनं वा स्वरो वेति ऋकपादे शोनकोवतेः। दृश्यते च "हंसः शुचिष-" "त्सोमानं स्वरण" मित्यादावनुदात्तत्वमिति। विसर्गस्याष्टविधा गतिः। उकार-भावः पुरोहितं, यदि कदाचिद् ष्मर्णो विसर्गादन्यत् विसर्गात् विना ओभावप्रसंधाने गुणकृत्यं, ऊष्माणस्तु सत्वरुत्वोत्वगुणत्वेऽतिपरे उत्वमत्रोष्मणो भावात्केवलं गुणवत्वे उभयोरुदाहरणयोः सादृश्ये चिन्त्यते। उकारादिर्थस्य तत्पदं यस्य तत्ता-दृशं स्वरान्तम् ओभावान्तं ज्ञेयं व्यक्तम्। त्वोतः। प्रोतः। अत्रोकारान्तं स्वरान्तं तत्र विसर्गान्तमिति। अतएव पदकालेऽवग्रहः। विवृत्तिर्विवृत्तिभावः। यऽइन्द्र। शष-सानांभावः। रेफएव। रकारभावः। दुशशर्ठ्न्सनिष्यध्माणः। अपास्सोमं। उषर्वसूयवः। जिह्वामूलमुपध्मा चेति। ᳲ क ᳳ पौ पराश्रयौ। त्रितःकूपे। असौ यः पन्थाः। अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलोपध्मानीया अयोगवाहा आश्रयस्थान-भागिनो यमाश्रितास्तस्य स्थानं भजन्तीत्यर्थः। दुस्पृष्टश्चेतीति। ईषत्स्पृष्टोन्तस्थ-सधर्माळ्हकारप्लुतः एवकारो दीर्घभेद व्यावर्तकः। चकारात् ह्रस्वसंगतः। कार्य: अनुस्वारादयो ळ्ह्प्लुतान्ताः पञ्च षड् वा। एवमेते त्रिषष्टिः चतुःषष्टिःर्वा व्या-ख्याताः॥५॥ वर्ण संख्यां विधाय सम्प्रति वर्णोत्पत्ति वक्तुमुत्पादायितुर्विवेक-मुद्यमं चाह। आत्मेति। अतनशीलः शरणशीलोवाऽदनशीलो वात्रयोदशेन्द्रिया-तीतः। "कर्मात्मा तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैषऽआत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूर्द्धोवाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यऽइति विज्ञायते"। एवमेष

संप्रदायोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतीरूपं सद्यस्त्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते इत्येवं क एषामुच्चारयितेति प्रश्नस्योत्तरमात्मेति छान्दोग्यश्रुतौ प्रतिपादितो बुद्ध्याख्येनेन्द्रियेण अर्थान्प्रयोजनानि निश्चित्य मनऽइन्द्रियेण अर्थान्प्रयोजनानि निश्चित्य-मनऽइन्द्रियं वक्तुं योजयति। प्रेरयति तन्मनः कायान्तर्वर्त्तिनं जाठराग्निं प्रेरयति। सोऽयमग्निर्मारुतं वायुं प्रेरयति ।६। मारुतस्त्विवति। सवायु-रूर्ध्वगत्योरसि हृद्देशे चरन्मन्द्रं स्वरम्। "स्फायितंचीत्यादिना मन्देरक्प्रत्ययः"। जनयत्युत्पादयति। तं स्वरं प्रातःसवनयुक्तं गायत्रं छन्द आश्रितं जानीयात्। मन्द्रया वाचाप्रातः सवनमिति सवनमिति सोमयज्ञः कल्पः ।७। तं मारुतं कण्ठ् माध्यन्दिनसवनयुक्तं मध्यमस्वरयुतं त्रिष्टुप्छन्दस्कं जानीयात्तं शीर्षण्यं शीर्ष्णि भवं "शीर्षं छन्दसीति" शिरसः शीर्षभावः तत्र भवं तृतीयसवनयुतं जगतीछन्दस्कं जानीयात् ।।८।। सोदीर्ण इति। स वायुरुदीर्णो जनयते। संहितायामित्यधिकृत्य"। "सोऽचिलोपे चेत्पादपूरणमिति" सलोपे गुणः। तथा—

**यासां मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ति त्रिषष्टि-**
**वर्णानन्तः प्रकटकरणैः प्राणसङ्गप्रसूती।**
**तां पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां**
**वाचं वक्त्रेकरणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये ।। इति ।।**

तथा च मन्त्रवर्णः। चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति इति ।।९।। तेषां वर्णानां वक्ष्यमाणो विभागः पञ्चप्रकारः स्मृतः। तमेव दर्शयति। स्वरत इति। उदात्तषड्जमन्द्रादिभ्यः कालत उच्चारात्स्थानादष्टविधात् प्रयत्नादस्पृष्टादेः अनुप्रदानतोऽनुनासिकादेः। अनुप्रदानान्युपरिष्टाद् व्याख्यास्यामः, तत्सर्वं वक्ष्यमाणं नितरां जानीत १०/११/१२/अष्टाविति। निगदोऽयम्। १३/१४/१५/ हकारमिति। वर्गाणां पञ्चमैर्ङञणनमैश्च पुनन्तस्थैर्यरलवैः संयुक्तं हकारम् औरसम् उरःस्थानीयं तं विजानीयात्। असंयुतं केवलं हकारं कण्ठ्यमाहुः।१६। कण्ठ्यावहाविति। अहौ अवर्णहकारौ कण्ठ्यौ स्याताम्। पुनर्हग्रहणं-स्पष्टार्थं इवर्णश्चवर्गो यकारश्शकारश्चैते तालव्याः। यत्स्थानस्वरान्वितं यद्यत् स्थानीयं तत्तत्स्वरस्थानार्द्धमधिकं ज्ञेयम्। अत्राकारोऽनुबन्धो वर्णगणं-बोधयति। चुटूइतिवत्। उवर्णपवर्गावोष्ठ्यौ। ऋवर्णष्टवर्गो रकारः षकारश्च-मूर्द्धन्याःस्युः। ऌवर्णस्तवर्गो लकारः सकारश्च दन्त्याः।१७। तु पुनर्जिह्वामूले

कवर्गः आचार्यैरन्यैश्च प्रोक्तः । "अथ षष्ठ ऊष्मा जिह्वामूलीयाः प्रथमश्च वर्गइति शौनकोक्तेः । वकारे । धीमद्भिर्दन्तोष्ठाभ्यां जातो दन्तोष्ठ्यः स्मृतः । अनुसारस्त्विति । अनुस्वारो नासिक्यो ज्ञेयः । एतेन द्वावपि व्याख्यातौ । वर्गाणां पञ्चमाः ङञणनमा नासिक्याः । अपिशब्दात्स्ववर्गस्थानीया अपि । कण्ठतालुभ्यां जाताविवर्णोवर्णो स्मृतौ । ओवर्णोवर्णौ कण्ठोष्ठाभ्यां जातौस्मृतौ । अत्रोपदेशरूपत्वान्न सन्धिः । अइउणितिवद् । तत्र विविनक्ति । एकारौकारयोस्त्वर्द्धमात्रा कण्ठस्य भवेत् । अन्या त्वर्द्धमात्रोक्तस्थानस्य । इकारोकारनुत्तर्वर्तमानौ ए ऐ क्रमेण विवृतसंवृतप्रयत्नौ ज्ञेयौ । उपध्मानीय इति व्याख्यातः । ऊष्मणामिति । हशषसानामचां विवृतं करणं प्रयत्नं स्मृतं शिष्टैः । तेभ्योज्सोएङो एओसञ्ज्ञौ विवृतप्रयत्नौ ताभ्यां ऐ औ विवृतौ ततोऽपि ताभ्यामपि च पुनराकारो विवृताख्यः । व्याख्यातमन्यत् । /१८/१९/२०/२१/ निवोधानुप्रदानतइति । अनु पश्चात् प्रदानं स्वस्वस्थानादन्यस्थानमुच्चारणभेदेन प्रदीयते तत्तस्मात्शिष्य निबोध जानीहि । अमोऽनुनासिका इति । इति अ इ उण् । ऋलृक् । ए ओ ङ् । ऐ औ च् । हयवरट् । लण् । ञ म ङ ण न म् । ऐतेऽमोऽनुनासिका हर्वर्जिताः । ह झ भ ग ढ धाः नादिनः नादानुप्रदानाः । य र ल व ज ब ग ड दाः, ईषत्किंचिन्न्यूननादिनः किंचित्न्यूननादानुप्रदानाः । र व फ छ ठ थाः श्वासिनस्तु । श षसाद् किंचिन्न्यूनश्वासान्जानीयात् । एतद्गोर्वाचो धाम स्थानाचार्याः प्रचक्षते । प्रौक्षेभ्योऽध्यापकमुपदिशन्कूपदेशकं निंदति । कुतीर्थादिति अननूचानातीर्थाद्गुरोः । "निपाठागमयो-स्तीर्थमृषिजुष्टे जले गुराविति नामलिङ्गानुशासने । प्राप्तं दग्धं भस्मवद्गतरसं अपगतवर्णम् अयथोदितस्थानवर्णं च भक्षितं आदराद्घुष्टं तस्य घोषयितुः परिमोक्षो नास्ति । कस्य पापाहेरिव । हन्तुरिव किल्विषान् मोक्षोनास्तीति । स्तौति च । सुतीर्थादिति । सुगुरोः प्राप्तमभ्यस्तं सुसंप्रदायिब्रह्मवेदाख्यं राजति शोभते न कराल इति । नकारो नानुनासिकपदादग्रे योजनीयः । यथेति । पतनं च भेदश्च तौ ताभ्यां भीता व्याघ्री श्वापदजातिस्त्री यथा पुत्रान् बालान्दंष्ट्राभिर्न पीड्येत् तद्वद्वर्णान् ब्रूयादिति । एवमिति । एवं नाव्यक्ताः । । न पीडिताश्च वर्णाः प्रयोजनीयाः । सम्यक् स्थानप्रयत्नादिविधिना यथोक्तेन प्रयोगेण ब्रह्मलोके प्रयोक्ता पूज्यते, किं पुनर्भूतले इति भावः, एवं सम्यग् ज्ञातः स्वर्गकामधेनुर्वर्णः स्यादित्यर्थः, अभ्यासार्थइति । द्रुतां विलम्बितां मध्यमामभ्यासाद्यर्थे कुर्यात् । व्याख्यातमन्यत् । शङ्करइति । शं सुखं म्लेच्छत्वादि रोगाणां शमनं करोतीति-

शङ्करः शिवः शङ्करणशीलां शब्दशास्त्रविद्याम् । दाक्षी दक्षस्यापत्यं "तस्यापत्यमित्यण् टिड्ढाणञित्यादिना ङीप्" तस्याः पुत्राय धीमतेऽति-सुबुद्धये प्रादात् । कोसावित्याङ्काक्षायामाह । दाक्षीपुत्र इति । यः पाणिनिः । पाणिनियुवाऽपत्यम् । "अत इञ्" येन पाणिनिना इदं प्रत्यक्षं शब्दशास्त्रं व्याहृत । उक्तं । तस्मैपाणिनये नमः पूर्वेण सम्बन्धः । पाणिनेय-इति पाठे शुभ्रादित्वं कल्प्यम् । रत्नभूतमिति स्पष्टम् । त्रिनयनमभिमुख-निःसृतामिति । निरन्तरं द्विजो वेदाधिकारी सावधानः सदा निरन्तरं यः पठेत् । स पशुपुत्रकीर्तिमान्भवति । दिविसुखमतुलं समश्नुते भुनक्ति । स्वर्गे व्याप्नोति वा । द्विर्वचनं शिक्षाध्यायसमाप्त्यर्थम् । विकृतिछन्द-स्यर्द्धं सममपरवक्त्रवृत्तमर्द्धं समात्प्रर्द्धे इत्यधिकृत्य, अपरवक्त्रं "नौर्लोग् जीज्याविति" लक्षणसूत्रात् । इति शिक्षाप्रकाशः समाप्तः ।

# सटीका नारदीशिक्षा

श्रीगणेशाय नमः

**प्रणम्य परमात्मानमृक्सामस्वरविग्रहम् ।**
**मुनिना नारदेनोक्तां शिक्षां व्याख्यातुमिष्यते ।।**

अथ सामसंहिताध्ययनादनन्तरमत इति संहिताध्ययनात् क्षिप्रं सर्वेषां शास्त्राणामृक्सामगतानां निश्चयं सम्यक्स्वरूपप्रतिपत्तिवेद-मयोच्यमानं जानीयादिति भगवान्नारदः सामान्येन शिष्यं प्रत्याह—सामान्यभूत-ओंकारगतस्वरूपः उच्चनीचविशेषे उच्चतरे उच्चतमे नीचे नीचविशेषे नीचतरे नीचतमे च स्थानाभिव्यञ्ज्यमानः स्वरान्यत्वं नानास्वरतां प्रतिपाद्यत इत्यर्थः ।

अथवा सर्वेषां वाग्भिर्निश्चयमिति वा पाठः कथयामीति पूर्वपठित-शिक्षामाहारयिष्यते मन्त्रब्राह्मणवाक्यानि ऋगादिस्वराणां विवेक उच्यते ।

**अथातः स्वरशास्त्राणार्थः सर्वेषां वेदनिश्चयम् ।**
**उच्चनीचविशेषाद्धि स्वरान्यत्वं प्रवर्त्तते ।। १ ।।**

उच्चनीचं तथा स्वरान्यत्वमित्युक्तं तच्च ऋग्विषये उदात्तस्वरितश्रुतिलोपे नान्तरत्वं व्यवधानम् ।। २ ।।

**आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम् ।**
**कृतान्ते स्वरशास्त्राणां प्रयोक्तव्यं विशेषतः ।। २ ।।**

तद्यथा "तत्सवितुर्वरेण्य" मित्यादिश्रुतिलोपेन "मतन्मेबोच" इत्यादि-सामसत्तिः, तिलोपेनान्तरं व्यवधानं जानीयात् स्वरव्यवधानं गाथां जानीयात् । धियो यो नः प्रचोदयादि" त्यादि, एतावत्स्वराणामन्तरं व्यवधानं सर्वत्र बोद्धव्यम् शिक्षाया अपरिज्ञाने ऋगादौ सम्यक् स्वरो न परिज्ञात इत्याह ।। ३ ।।

**एकान्तरस्वरो ह्यृक्षु गाथासु ह्यन्तरःस्वरः ।**
**सामसु त्र्यन्तरं विद्यादेतावत्स्वरतोऽन्तरम् ।। ३ ।।**

ऋक्सामयजुर्लक्षणानि यज्ञाङ्गानि याज्यास्तोत्रकरणमन्त्रादीनि तेषां सम्यक्स्वरूपा परिभवतीति ।। विरुद्धः स्वरो ज्ञाने विस्वरैः स्वरादिवैगुण्येन

केवलन्देवतायाः सांमुख्यं न भवति यावद्विरुद्धाचरणं तावत्प्रत्यवायो-भवतीत्याह ॥ ४ ॥

**ऋक्सामयजुरङ्गानि ये यज्ञेषु प्रयुञ्जते ।**
**अविज्ञानाद्धि शास्त्राणां तेषां भवति विस्वरः ॥ ४ ॥**

मिथ्येति न शास्त्रानुसारिणः प्रयुक्तः, न तमर्थमाहेति वदन्नाह अथवा-प्यस्या संनिन्धिपरंनिष्प्रयोजनमर्थाभिधानं स वाक्लक्षणो वज्र इव वज्रो यजमानं निषिद्धावरणाद्यजमानं हिनस्त्येव यथा—इन्द्रशत्रुः स्वरस्यापराधात् प्रयोक्तारं हिनस्ति इन्द्रशत्रुर्मेघ उच्यते इन्द्रः शब्दः शातयिताऽस्येति बहुव्रीहौ "प्रकृत्या पूर्वपदमित्याद्युदात्तं" पदमितरथा इन्द्रस्य शत्रुरिति षष्ठीसमासे समासान्त-इत्यन्तोदात्तं स्यात् इन्द्रस्य परमेश्वरस्य शत्रुर्न सम्भवतीति विरुद्धार्थता स्वरान्तरं प्रसज्यते अतः स्वराद्यवधारणे यत्नः कार्यः, स्वरादिवैगुण्येन न च केवलं कर्मणि वैगुण्यमदृष्टदोषश्च । यावद्दृष्टेऽनादिदोष योग इत्याह ॥ ५ ॥

**मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।**
**स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः[१] स्वरतोऽपराधात् ॥ ५ ॥**

मन्त्रो यजमानस्य आयुरादीन् रुषति विनाशयतीत्यर्थः, स्वररूपं त्रिषु स्थानेष्वभिव्यज्यत इत्युच्यते ॥ ६ ॥

**प्रवीणः स्वरवर्णाभ्यां यो विमन्त्रः[२] प्रयुज्यते ।**
**यज्ञेषु यजमानस्य[३] रुषत्यायुः प्रजां पशून् ॥ ६ ॥**

आयुरादीन् रुषति विनाशयतीत्यर्थः, स्वररूपं त्रिषु स्थानेष्वभिव्यज्यत इत्युच्यते ॥ ६ ॥

**उरः कण्ठः शिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये ।**
**सवनान्यान्हरेतानि साम वाप्यर्थतोन्तरम्[४] ।**

---

१. तैतिरीयशाखीयकृष्णयजुःसंहितायां द्वितीयाष्टके काण्डे वा पञ्चप्रपाठके द्वितीया-नुवाके प्रथमपञ्चाशत्यां "स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्वेति" यजुषि इन्द्रस्यशत्रुरुच्चरितव्यः । प्रयुक्तस्तु "प्रकृत्या पूर्वपदमित्यनेनाद्युदात्तः स्वरो भवत्यतद्रन्द्रो घातको यस्येति बहुव्रीह्यर्थः सम्पद्यने इति भावः । प्रदर्शितञ्चैतत्पा-तञ्जले महाभाष्ये पस्पशाह्निके शब्दानुशासनस्य मुख्य-प्रयोजनकथनावसरे "दुष्टः शब्दः इप्युपक्रमेग । इदं पाणिनीयशिक्षायां पञ्चाशत्तम-सङ्ख्याकं पद्यं, शुक्लयजुः प्रातिशाख्यस्योव्वदभाष्येऽपि लिखित-मिति ॥

२. वैमन्त्र इति "ख" पुस्तकपाठः ।

३. दृशस्यायुरिति "ग" पुस्तकपाठः ।

४. साम्नि चाप्यधरोत्तरे इति "ख" पुस्तक पाठः ।

नीचमध्यमोत्तरया उरसि कण्ठे शिरसि चाप्यभिव्यज्यते उरसि वक्षःस्थाने शब्दोच्चारणं प्रातःसवनमुच्यते, नीचैरुच्चारितं प्रातःसवनशब्दस्येत्यर्थः, कण्ठस्थाने मध्यमेन स्वरेणोच्चारणं माध्यंदिनं सवनम्, शिरोलक्षणे स्थाने उच्चैरभिव्यज्यमानं शब्दजातं तृतीयसवनं, साम्नोऽपि सप्तस्वरात्मकस्याधरोत्तर आदावेव सम्भवः स्वर सप्तकता कण्ठग्रीवा इति भेदेन निर्देशः, सामवाप्यर्थेतोन्तरमिति न सम्बद्धः नित्यो नैमित्तिको होमः स्थण्डिले वालुकामये ॥ करोन्मितेऽस्थलारोधे चतुरस्रसमन्ततः इति पाठः ॥ ऋग्यजुःसामान्येऽपि स्थानत्रये स्थितानीत्याह ॥ ७ ॥

**उरः सप्तविचारठं० स्यात्तथा कण्ठस्तथा शिरः ।**
**न च सप्तोरसि व्यक्तास्तथा प्रावचनो विधिः ॥ ८ ॥**

सप्तानां स्वराणां विचरणं विचार इति सप्तविचारमुरः मन्द्रातिस्वारयोरुरसि नसम्यक् अभिव्यक्तिर्यथेतरत्रेति प्रवचने अध्ययने भवोविधिरध्यापनकाले च गम्यते अनभिव्यक्तावपि मानसेप्रयोगे उपांशुप्रयोगे च वर्णस्वरयोरनाख्यानो भवत्येव साम्नि सर्वात्मना स्वराणाभवधारणं प्रवर्तते। तदनुसारेण ऋग्यजुषामुदात्तादिस्वरप्रवृत्तिरित्याह ॥८ ॥

**कठकालापप्रवृत्तेषु तैत्तरीयाह्वरकेषु च ।**
**ऋग्वेदे सामवेदे च वक्तव्यः प्रथमः स्वरः ॥ ९ ॥**

कठादिशाखासु ऋग्वेदे सामवेदे च ऋग्यजुषां सामिकस्वरः प्रवर्तते स्वरिते प्रथम-स्वरानुसारेण पाठोऽवधार्यते प्रथमस्वरद्वितीय-स्वरौ ऋग्वेदेऽनुक्रियमाणावधार्यते । क्रुष्टप्रथमस्वरसमुदायानुकारश्च लौकिके व्यवहारे प्रवर्तय -इत्याह ॥ ९ ॥

**क्रुष्ट उच्चः मध्यमः प्रथमः स्वरः ॥ १० ॥**

**ऋग्वेदस्तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते ॥**
**उच्चमध्यसत्घात्स्वरो भवति पार्थिवः ॥ १० ॥**

तृतीयादिषु स्वरानुसारेह्वरकाणां वा पाठः द्वितीयाद्यनुकारेण तैत्तिरीयाणां साम्मि तु सप्तस्वरा भवन्तीत्याह ॥ १० ॥

तृतीयप्रथमकुष्टान् कुर्वन्त्याह्वरकाः स्वरान् । द्वितीयाद्याँस्तु मन्द्राँ ताठं० स्तैत्तिरीयाश्चतुरः स्वरान् ॥ ११ ॥

छन्दोगानां वाजसनेयिनां च ब्राह्मणो गाथास्वरौ प्रथमद्वितीयौ भवत इत्याह ॥ १२ ॥

**प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थकः ॥**
**मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार[1] एतान्कुर्वन्ति सामगाः ॥ १२ ॥**

**द्वितीयप्रथमावेतौ तांडिभाल्लविनाऽं स्वरौ ॥**
**तथाशातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम् ॥ १३ ॥**

ताण्डपञ्चविंशादिकं ब्राह्मणं कोथुमादयो ऽधीयन्तः इति तांडिनः भाल्लविनः छन्दोगा एव वाजसनेयिनाम् ॥ १३ ॥

**एतेविशेषतः प्रोक्ताः स्वरावै स्वरा वैदिकाः ॥**
**इत्येतच्चारितऽं सर्वऽं स्वराणाऽं सार्ववैदिकमिति ॥ १४ ॥**

सर्ववेदेषुभवं चरितं स्वरितम् ॥ १४ ॥

इतिप्रथमकाण्डिका। अथद्वितीयकाण्डिका। अथछन्दोगानां सामगाने आर्चिके च स्वरनिरूपणं विशेषतः क्रियते ॥

ऋक्सामलक्षणस्य निराकांक्षात्प्रभूतार्थं सामस्वराणां महतायत्नेनाधिगमात्तदुपास्यश्राव्यं, उत्तमं वेदाङ्गवेदस्वरूपविपयत्वात्सामगतं स्वरादिनिरूपणं तावत्क्रियते भामार्थं सामध्यविदार्च्चिकस्य ॥ १ ॥

**सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा ॥**
**अल्पग्रन्थं प्रभूतार्थं श्रव्यं वेदाङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥**

तानरागस्वरग्राममूर्छनानां तु लक्षणम्।
पवित्रं पावनं पुण्यं नादेन प्रकीर्तितम् ॥ ३॥

**शिक्षामाशिजातीनामृग्यजुःसामलक्षणम् ॥**
**नारदीयमशेषेण निरुक्तमनुपूर्वशः ॥ ३ ॥**

पवित्रंयावदुक्तमनुपूर्वशः, अनयोर्भाष्यं त्यक्तम् ॥ ३ ॥

**सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामामूर्छनास्त्वेकविंऽं शतिः ॥**
**ताना एकोनपञ्चाशदित्येतत्स्वरमण्डलम् ॥ ४ ॥**

स्वरणां समूहो मण्डलं तस्य नाम्ना निरूपणं क्रियते श्लोकानुरोधात्क्रमोन विवक्षितः ॥ ४ ॥

**षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा ॥**
**पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः ॥ ५ ॥**

---

१. युतानिति "ख" पुस्तकपाठः।

षड्जानुसारेण कदाचित्स्वरः प्रवर्तते कदाचिन्मध्यमानुसारेण गान्धारानुसारेण वा अतएव ग्रामत्रयमेव प्रधानमुखेनेतरेषामवधारणा एकदेशोयावदधिकदेशेन यथा जनपदादेर्ग्रामत्वं गान्धारानुसारेण तु मनुष्यलोके स्वरावस्थानेन स्फुटमुपलभ्यत इत्याह ॥ ५ ॥

**दीप्तायुतास्वरश्रुतिविशेषपरैव ग्रामाणां ग्रामरागाः,**

**रागप्रकार अवधारयन्त इत्याह ॥**

**षड्जमध्यमगान्धारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः ।**

**भूर्लोकाज्जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः ॥ ६ ॥**

परस्परस्वराणां तननात्तानाः विचित्रेण मध्यमादनंतरङ्गाधारतः षड्जः तत्र ऋषभ इत्येव प्रकारेण स्वराणां प्रयोगे मध्यमग्रामेविशंतिस्ताना भवन्ति तथा षड्जग्रामेचतुर्दश, गान्धारग्रामे पञ्चदशेत्येवं एकोनपञ्चाशदुच्यन्ते तानाः ॥७॥

विंशतिर्मध्यमग्रामे षड्जग्रामेचतुर्द्दश ॥ तानान् पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्राममाश्रितान् ॥ ८ ॥

**स्वर्गान्नान्यत्र गान्धारो नारदस्य मतं यथा ।**
**स्वररागविशेषेण ग्रामरागा इति स्मृताः ॥**

**विंशतिर्मध्यमग्रामे षड्जग्रामे चतुर्द्दश ।**
**तानान् पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्राममाश्रितान् ॥ ८ ॥**

या च बलानाम अथैताः सप्तेति सन्धयः ॥ ८ ॥

**नन्दो विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती मुखा ।**

**बला या चाथ विज्ञेया देवानां सप्तमूर्छना ॥ ९ ॥**

स्वराणां समुच्छ्रयणादूद्ध्वर्वमुच्छ्रयणात्प्रेरणं मूर्छना प्रतिग्रामं स्वरसप्तकभावनादेकविंशतिर्भवति नन्दीविशालेति देवापेक्षयामूर्छनासप्तकमुक्ता न तु ग्रामाषड्ज ऋषभा ऋतश्च ग्रामत्रये देवानां सप्त तथा पितॄणामृषीणां च सप्त नन्दी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती सुखावला वा इत्यर्थानुसारेण न संज्ञाः देवतानामर्थं चेत्यागमन एनावगन्तव्यं यया स्वरवर्णनिर्देशः ॥ १० ॥

**आप्यायिनी विश्वसृता चन्द्रा हेमा कर्पादिनी ।**
**मैत्री वार्हती चैव पितॄणां सप्त मूर्छनाः ॥ १० ॥**

**षड्जेतूत्तरमन्द्रा स्यादृषभे चाभिरुद्गता ।**
**अश्वक्रान्ता तु गान्धारे तृतीया मूर्छना स्मृता ॥ ११ ॥**

मध्यमे खलु सौवीरा हृष्यका पञ्चमे स्वरे।
धैवते चापिविज्ञेया मूर्छना तूत्तरायता ।। १२ ।।

सप्त उत्तरमन्द्राभिरुद्गताऽश्वक्रांता सौवीरा रुष्यका उत्तरायता रजनीति षड्जादिस्वरगताः सप्तऋषिसम्बन्धिन्य उक्ताः देवमूर्च्छनानां मनुष्या- इत्याह ।। ११ ।। ९३ ।।

निषादाद्रजनीं विद्यादृषीणांठं० सप्तमूर्छनाः।
उपजीवन्ति गन्धर्वादेवानांठं० सप्तमूर्छनाः ।। १३ ।।

पितृणां मूर्छना सप्त तथा यक्षा न सठं०शयः।
ऋषीणां मूर्छनाः सप्त यास्त्विमा लौकिकाः स्मृताः ।। १४ ।।

उतरमन्द्रादिका या मूर्छना ऋषीणां सप्तता लौकिका इति षड्जादिभिः सप्तभिः स्वरैरुच्चार्यमाणैर्देवादयः परितुष्यन्तीत्याह ।। १३ ।।

षड्जः प्रीणाति वै देवानृषीन् प्रीणाति चर्षभः।
पितृन्प्रीणातिगान्धारो गन्धर्वान्मध्यमः स्वरः ।। १५ ।।

देवान् पितृन्नृषींश्चैव स्वरः प्रीणाति पञ्चमः।
यक्षान् निषादः प्रीणाति भूतग्रामं च धैवत इति ।। १६ ।।

इति प्रथमे द्वितीयाकण्डिका ।।

लौकिकं च वैदिकं उ गानं दशगुणयुक्तं तु वेदिकार्यमित्युच्यते ।।

गानस्य तु दशविधा गुणवृत्तिस्तद्यथा रक्तं पूर्णमलङ्कृतं प्रसन्नं व्यक्तं विक्रुष्टठं०श्लक्ष्णठं० समठं० सुकुमारं मधुरमिति गुणाः।

गानस्य तु दशगुणाः। रक्तादीनां परस्परविवेकेन स्वरूपनिर्देशः क्रियते ।।1।।

तत्र रक्तं नाम वेणुवीणास्वराणामेकीभाव रक्तमित्युच्यते ।। ३ ।।

वंशवीणापुरुषमवराणामभेदे सति या रंजना तदुक्तं गानम् ।। १ ।।

पूर्णनाम स्वरश्रुतिपूरणाच्छन्दः पादाक्षर संयोगात्पूर्णमित्युच्यते ।। २ ।।

स्वरो मध्यमादिस्वरविशेषः स्वरश्रुत्योरनयोः करणं पूरणं छन्दसः पादानामक्षराणि च संयोगात्स्फुटमुच्चारणात्पूर्णम् ।। २ ।।

अलङ्कृतं नामोरसि शिरसि कण्ठयुक्तमित्यलङ्कृतम् ।। ३ ।।

कण्ठयुक्तं प्रथमे स्थाने यदवस्थितं तं नीचैरुरसि स्थितं क्रियते शिरसि चोच्चैर्वाणी क्रियते तदलङ्कृतं भवति ।। ३ ।।

प्रसन्नं नामापगतगद्गदनिर्विशङ्कं प्रसन्नमित्युच्यते ।। ४ ।।

कण्ठनिष्पीडनेनोच्चारणं गद्गदमपगतं यत्रैता निर्गता विविधा शङ्का यत्र तत्प्रसन्नं श्लोकमन्तर्गतानां पदादीनां गीत्याऽवधारणं सम्यगवधारणात् व्यक्तं गानमित्याह ।। ४ ।।

व्यक्तं नाम पदपदार्थप्रकृतिविकारागम-लोपकृत्तद्धितसमास-धातु-निपातोपसर्गस्वर-लिङ्गवृत्तिवार्तिक-विभक्त्यर्थ-वचनानार्ठ० सम्यगुपपादने व्यक्तमित्युच्यते ।। ५ ।।

पदस्यार्थानुसारेण प्रकृतेर्धातोः प्रातिपदिकस्य दृष्टावधारणा वृत्त्यादिका विकाराः, असुगित्याद्यागमउपधादिलोपः, कृत्तद्धितप्रत्ययाः इयं प्रकृतिश्चायं धातुरयं निपातभागोऽयमुपसर्ग भागइति विवेक्तव्यं द्वंद्वतत्पुरुषादयः समासाः स्वर उदात्तादिः स्त्रीपुंनपुंसकानि लिङ्गानि सामान्येनावधारणार्थं, वृत्तिः ऊहापोहवशेनार्थावधारणं वार्तिकं कर्तृकर्माद्यवधारणंविभक्त्यर्थः। एकद्विबहुत्वावगमो वचनम् एवं परिज्ञाने व्यक्ततावगमः ।। ५ ।।

विक्रुष्टं नामोच्चैरुच्चारितं व्यक्तपदाक्षरमिति विक्रुष्टम् ।। ६ ।।

उच्चैरुच्चार्यमाणेऽपि पदाक्षराणां स्फुरता यत्र भवति नाव्यक्तत्वं तद्विक्रुष्टम् ।। शोभनया त्वरितादिकमावृत्यावर्त्त इति ।।

श्लक्ष्णं नामाद्भुतमविलम्बितमुच्चनीचप्लुतसमाहारहेलतारवोपनयानादिभिरुपपादनादिभिः श्लक्ष्णमित्युच्यते ।। ७ ।।

अतश्च ह्रस्वमेकमात्रं दीर्घं द्विमात्रं दीर्घाच्च विषम्य कार्यमितिसामर्थ्यादुक्तंभवति हेलया सहवेलया तस्य द्रुताया वृत्तेरुपनयतः सम्पादनम् आदिग्रहणेन मध्यमाया विलम्बितायाश्च ग्रहणं तच्च स्फुटवाचपुटाच्चत्तत्पिता पुत्रीयतयात्मवृत्तयो गीते उच्यते ।। ७ ।।

अत्त्वरितं गानमद्रुतं विशुद्धं समविलम्बितं उच्चनीचप्लुतानां समाहरणं अत्रनोच्चं नातिनीचं प्लुतं त्रिमात्रं वा ।।

स्वरस्यापूरणं प्रक्षेप आवायः निर्वापो न्यूनताकरणं तेषामावापनिर्वापप्रदेशानां प्रत्यन्तरेषु व्यवहितस्थानेषु समासनं प्रक्षेपो न व्युत्क्रमेणातिसमं गानं भवति ।। ८ ।।

समं नामावापनिर्वापप्रदेशठ्ठ० प्रत्यन्तरस्थानानाठ्ठ० समासः सममित्युच्यते ।। ८ ।।

मृदुभिः पदाद्युच्चारणैर्युक्तं न कठिनैः कुहरणमव्यक्तानां वर्णानां कण्ठनिष्पीडनेनोच्चारणम् ।। ९ ।।

सुकुमारं नाममृदुपदवर्णस्वरकुहरणयुक्तठ्ठ० सुकुमारमित्युच्यते ।। १० ।।

ललिताः प्रहर्षिताः मुखाद्ये निःसृताः पदाक्षरगताः गुणास्तैः सुखकरं गानम् उपसंहरति पूर्वोक्तम् ।। १० ।।

मधुरं नाम स्वभावोपनीतललितपदाक्षर गुणसमृद्धं मधुरमित्युच्यते ।।१०।।
एवमेतैर्दशभिर्गुणैर्युक्तं गानं भवतिएतद्विपरीता गीतिदोषा उच्यन्ते भवन्ति चात्र श्लोकाः ।।

शङ्कितस्य च भीतस्य च गानंशङ्कितं भीतं क्षुम्यं गानमुद्घृष्टमव्यक्तमस्फुटं नासिकास्थानप्राधान्येनगानमनुनासिकं कण्ठस्थाननिष्पीडनेन गानं काकस्वरमत्युच्चैरपरिपूर्णं गानं शिरसि गतं एकस्थानविषयस्य गानस्यानेकस्थाने योगात् स्थानविवर्ज्जितं यस्मिन्पर्वणि यत्स्वरितं विहितं तस्या विरामाद्विस्वरं गानमध्ये चित्तव्याक्षेपाद्विरसंपर्वणामप्राप्त व्यवधानकरणं च विश्लिष्टं प्लुतस्य शीघ्रं ह्रस्वदीर्घयोश्च विलम्बितं पातनं विषमाहतं ।। वर्णस्वरादि वैषम्येन गानं व्याकुलं वृत्तिनाम नियमेन प्रवृत्तं तालुहीनम् ।।

शङ्कितं भीतमुद्घृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।। काकस्वरठ्ठ० शिरसिगतं तथा स्थान विवर्जितम् ।। ११ ।।

विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम् ।। व्याकुलं तालुहीनं च गीतिदोषाश्चतुर्दश ।। १२ ।।

समपदच्छेदमधुरोच्चरूपं गानं चतुष्प्रकारं गानं कर्त्तव्यमित्याचार्यादिमुख्येनोच्यते न तु समादीनां विकल्पः, विक्रुष्टं तु न निपातमितरग्रहणात् वर्णस्वर छन्दोमन्त्रसमाधिष्ठात्र्यो देवता भवन्ति तासां चेच्छावशेनाधिष्ठानापेक्षया शरीरग्रहणे पद्मपत्रादिरूपता भवतीत्यागमादवधार्यत इत्याह ।। १३ ।। तृतीया कण्डिका ।। ( ९ )

**आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदन्तु पण्डिताः ।।**
**स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ।। १३ ।।**

पञ्चमस्योत्कर्षान्मध्यमषड्जयोश्च ग्रामत्वाद् ब्राह्मणमुत्कर्षसामान्यात् ऋषभ-धैवतयोश्च बलयोगात् क्षत्रियत्वं, गान्धारस्य मध्यमादेव रोहाद्वैश्यता। निषाद-स्यावरोहाद्वैश्यत्वं शूद्रत्वं च प्रतिपाद्यते, दुःखवाडवोस्य मध्यमस्य लक्षणमेवमर्थात् क्रियते यथास्वर सन्निवेशेन ग्रामवैचित्र्यं लौकिके गाने एवं स्वरसन्निवेशे वैचित्र्यात् सामगानमस्य लक्षणमेवममर्थं क्रियतेऽनन्तप्रभेदं भवतीति ॥ १ ॥ ३ ॥ ४ ॥

पद्मपत्रप्रभःषड्जऋषभं शर्कपिंजरः ॥
कनकाभस्तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसप्रभः ॥ १ ॥

पञ्चमस्तु भवेत्कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः।
निषादः सर्ववर्णः स्यादित्येताः स्वरवर्णताः ॥ २ ॥

(१) इति तृतीयखण्डः। इति "ख" पुस्तकपाठः सर्वत्रबोध्यः।

पञ्चमोमध्यमः षड्जइत्यत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः।
ऋषभो धैवतश्चापीत्येतौ क्षत्रियावुभौ ॥ ३ ॥

गान्धारश्च निषादश्च वैश्यावर्धेन वै स्मृतौ।
शूद्रत्वं विद्धि चाद्र्धेन पतितत्वान्न सर्ठ०शयः ॥ ४ ॥

ऋषभादनन्तरं योऽसौ षड्जस्तेनधैवतसहितः पञ्चमसहितो यत्र गानं मध्यम-रागे मध्यमस्य ग्रामे तं निषादं षांडवं जानीयात् गान्धाराभावात्षांडवं स्वरपञ्चकेन गीयमानस्य मध्यमस्योदितत्वेन लक्षणं क्रियते ॥ ४ ॥

ऋषभोत्थिताः षड्जहतो धैवतसहितश्च पञ्चमो यत्र।
निपतति मध्यमरागे तन्निषादर्ठ० पाण्डवं विद्यात् ॥ ५ ॥

मध्यमरागइत्यनुवर्तते मध्यमे पञ्चमस्य विरामे गान्धारः तत ऋषभस्ततो निषादः मध्यम इति क्रमः पुनर्मध्यमलक्षणमुच्यते ॥ ६ ॥

यदि पञ्चमो विरमते गान्धारश्चान्तरस्वरो भवति।
ऋषभो निषादसहितस्तं पञ्चममीदृशं विद्यात् ॥ ६ ॥

मध्यमप्रारम्भेगान्धारस्याधिपत्यमाधिक्यं यदा भवति निषादस्यगमनागमनं च पुनः पुनरुच्चारणाद्धैवतस्य च दौर्बल्यं सकृदुच्चारणं षड्जऋषभे पञ्चागां सामान्येनावस्थानं तदा मन्यमग्रामो भवति षड्ज ग्रामस्य लक्षणं क्रियते ॥ ७ ॥

गान्धारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः।
धैवतस्य च दौर्बल्यान् मध्यमग्राममुच्यते ॥ ७ ॥

षड्जप्रारम्भे निषादस्य लाधवेनोच्चारणं गान्धारस्य चाधिकेनोच्चारणं तैवहस्य च कम्पनपातनं स्वरान्तराणामनन्तरं यथारुचि गानमेवं षड्जग्रामो भवति षड्जग्रामरागलक्षणं क्रियते ।। ८ ।।

**ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गान्धारश्चाधिको भवेत् ।**
**धैवतः कंपितो यत्र षड्ज ग्रामं तु निर्दिशेत् ।। ८ ।।**

षड्जप्रारम्भे चतुःश्रुतिक एव निषादो यदा भवति तदापञ्चमस्थं परमुपर्य-वस्थितं तं साधारितं सदृशंश्रुतिकैशिक संज्ञं गीतकं खवतीति मध्यमे ग्रामरागे लक्षणं च श्लोकद्वयेनोदाहरणं तथा क्रियते ।। ९ ।।

**अन्तरस्वरसंयुक्ता काकलिर्यत्र दृश्यते ।**
**तं तु साधारितं विद्यात्पञ्चमस्थं तु कैशिकम् ।। ९ ।।**

पूर्वोक्तकैशिकं यदा सर्वैः स्वरैर्भाव्यते, योज्यते मध्यमादुपकम्यते मध्यमे च न्यस्यते तत्र स्थाप्यते यदा कैशिकमध्यमो ग्रामरागोभवतीति मध्यमग्रामादुत्पन्नस्य काकतिरेव श्रुतिको निषादो भवति पञ्चमस्य प्राधान्यं पुनः पुन रुच्चारणं शेषाणि स्वरान्तणि सामान्येन वर्त्तन्ते तदामध्यमग्राम संभवं कैशिकं कश्यपऋषि राह वीणादि सहितं हस्ताङ्गुलि चातुर्येणाभ्यस्तं स्फुटं यदा च तं भवति तदनुसारेण सामस्वराधि-गमः सम्यग् भवति निवचनेन प्रणिगद्यते ।। १० ।।

**कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समन्ततः ।**
**यस्मात्तु मध्यने न्यासस्तस्मात्कैशिक मध्यमः ।। १० ।।**
**काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु ।**
**कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसम्भवम् ।। ११ ।।**
**गेति गेयं विदुः प्राज्ञा धेतिकारूप्रवादनम् ।**
**वेति वाद्यस्य सञ्ज्ञेन गान्धर्वस्य विरोचनमिति ।। ११ ।।**

गन्धर्वेभ्य आगतं गान्धर्वं तस्याक्षरोपलक्षितार्थप्रतिपादनेन विरोचनं विशेषतो रोचनमुद्दीपनं भवति राशब्देन गानं लक्ष्यते "धकारेण वकारेण वैणिकस्य प्रवादनं" चातुर्येण हस्ताङ्गुलिधारणप्रवादनपदेन कथिते वकारेण वादनं लक्षितम् ।। १२ ।।

चतुर्थीकण्डिका । लौकिके गाने स्वराणां मध्यमादिस्वरशब्दैर्व्यवहारत्रयं प्रायेण सर्वेषां सर्वस्य स्वरभावतो, वैदिके तु पञ्चमनिषादानां क्वचिदेव भवेद्ध—

स्ताङ्गुलिनिवेशनेन च सम्यगवधारणात्प्रथमादि सञ्ज्ञा। अङ्गुलिनिवेशनं च स्वराणां क्रियते।

**यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।**
**यो द्वितीयः स गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ॥ १ ॥**

**चतुर्थः षड्जइत्याहुः पञ्चमोधैवतो भवेत्।**
**षष्ठे निषादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः ॥ २ ॥**

वेणुर्वंशः स्वपरिज्ञानार्थमुच्यते ॥ २ ॥

**षड्जं वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभः।**
**अजाविके तु गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥ ३ ॥**

**पुष्पसाधारणे काले कोकिलो वक्ति पञ्चमम्।**
**अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥ ४ ॥**

रम्भन्ति उच्चारयन्ति पुष्पाणां नाम जातीप्रभृतीनां साधारणो भवकालो वसन्तः तत्र वसन्तेबहून्युच्चावचानि पुष्पाणि सम्भवन्ति प्राधान्येन कण्ठादिस्थानतः षड्जादीनामित्याह ॥ ३ ॥ ४ ॥

**कण्ठादुत्तिष्ठते षड्जः शिरसस्त्वृषभः स्मृतः।**
**गान्धारस्त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः ॥ ५ ॥**

**उरसः शिरसः कण्ठादुत्थितः पञ्चमः स्वरः।**
**ललाटाद्धैवतं विद्यान्निषादर्छं० सर्वं सन्धिजम् ॥ ६ ॥**

मुखेनानुगता नासिका अनुनासिकायां भवोऽनुनासिक्यः उरस उत्थितः मध्यमः स्वरः ललाटादुत्पन्नं सर्वेभ्य- कण्ठादिभ्यः सन्धिभ्यो जायत इति सर्वसन्धिजं विद्यात् कण्ठादिभ्य उत्पाद्यमाना, षड्जादयोऽन्यानपि स्थानानि गुणत्वेन स्पृशन्तीत्याह ॥ ५ ॥ ६ ॥

**नासां कण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्ताँश्चसर्ठं०श्रितः**
**षड्भिः सञ्जायते यस्मात्तस्मातषड्ज इति स्मृतः।**
**ऋषभः शिरस उत्पद्यमानः कण्ठमपि स्पृशतीत्युच्यते ॥ ७ ॥**

**वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।**
**नर्दत्यृषभवद्यस्मात्तस्मादृषभ उच्यते ॥ ८ ॥**

गान्धारः शिरसोनासिकाप्रदेशादुत्पन्नः कण्ठमभि स्पृशतीत्याह ॥ ७ ॥ ८ ॥

**वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः ।**
**नाना गन्धवहः पुण्यो गान्धारस्तेन हेतुना ॥ ९ ॥**

शीर्षशब्देन नासिकोच्यते नासयागन्धानानहतीति नासागन्धवहो नासिक्यो-गान्धारो वायुस्तन्निमित्तस्वरोगान्धारः पुण्यशोभनः उरस उत्पन्नोहृदयं नाभिं च स्पृशति मध्यम इत्याह ॥ ९ ॥

वायुः समुत्त्थितो नाभेरूरो हृदि समाहतः । ना—

वतिनिषादस्यागमनागमनं च पुनः पुनरुच्चारणाद्धैवतस्य च दौर्बल्यं सकृ-दुच्चारणं षड्ज ऋषभे पञ्चानां सामान्येन स्थानं तदा समध्यमग्रामो भवति षड्ज-गामस्य लक्षणं क्रियते ॥ ७ ॥

**ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गान्धारश्चाधिको भवेत् ।**
**धैवतः कंपितो यत्र षड्जग्रामं तु निर्दिशेत् ॥ ८ ॥**

षड्जारम्भे निषादस्य लाघवेनोच्चारणं गान्धारस्य चाधिकेनोच्चारणं धैवतस्य च कंपन पातनं स्वरान्तराणामनन्तरं यथा—रुचि गानमेवं षड्जग्रामो-भवति षड्जग्रामराग लक्षणं क्रियते ॥ ८ ॥

**अन्तरः स्वरसंयुक्ता कार्कलियत्र दृश्यते ।**
**तं तु साधारितं विद्यात्पञ्चमस्थं तु कैशिकम् ॥ ९ ॥**

षड्जारम्भे चतुः श्रुतिक एव निषादो यदा भवति तदा पञ्चनस्य परमुपर्य-वस्थितं साधारितं सदृशं श्रुतिकैशिकसञ्ज्ञं गीतकं भवतीति मध्यमे ग्रामरागे लक्षणं च श्लोकद्वयेनोदाहरण तथा क्रियते ॥ ९ ॥

**कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समन्ततः ।**
**तस्मात् तु मध्यभे न्यासस्तस्मात् कैशिक मध्यमः ॥ १० ॥**

**कार्कलिदृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु ।**
**कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसम्भवम् ॥ ११ ॥**

पूर्वोक्त कैशिकं यदा सर्वैः स्वरैर्भाव्यते योज्यते मध्यमादुपक्रम्यते मध्यमे च न्यस्यते तत्र स्थाप्यते तथा कैशिकमध्यमो ग्रामरागो भवतीति मध्यमग्रामादुत्पन्नस्य काकलिरेव श्रुतिकोनिषादो भवति पञ्चमस्य प्राधान्यं पुनः पुनरुच्चारणं शेषाणि स्वरान्तराणि सामान्येन वर्त्तन्ते । तदा मध्यमग्रामसंभवं कैशिकं कश्यपऋषिराह

वीणादिसहितहस्ताङ्गुलि चातुर्मेद्याभ्यस्तं स्फुटं यदा च तं भ भवति तदनुसारेण ग्रामस्वराधिगमः सम्यग् भवतीति निर्वचनेन प्रतिपाद्यते ।। ११ ।।

गेति गेयं विदुः प्राज्ञाधेतिकारू प्रवादनम् ।
वेतिकाद्यस्य सञ्ज्ञेयं गान्धर्वस्य विरोचनमिति ।। ११ ।।

गन्धर्वेभ्य आगतं गान्धर्वं तस्याक्षरपोलक्षितार्थप्रतिपादनेन विरोचनं विशेषतो रोचनसुद्दीपनं भवति । ग शब्देन गानं लक्ष्यते, धकारेण वकारेण वैणिकस्य प्रवादनं, चातुर्येण हस्ताङ्गुलिधारणं प्रवादबपदेन कथिते वकारेण वादनंलक्षिम् ।। १२ ।।

चतुर्थी कण्डिका । लौकिके गानेस्वराणां मध्यमादिस्वरशब्देर्व्यवहारः । अयं प्रायेण सर्वेषां सर्वस्य स्वरभावात् वैदिके तु—पञ्चमनिषादानां क्वचिदेव भवेद् हस्तांगुलि निवेशनेन च सम्यगवधारणात्प्रथमादिसञ्ज्ञा अङ्गुलिनिवेशनं च स्वराणां क्रियते ।

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः ।
यो द्वितीयः स गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ।। १ ।।

चतुर्थः षड्ज इत्याह पञ्चमो धैवतो भवेत् ।
षष्ठे निषादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः ।। २ ।।

वेणुर्वंशस्वरपरिज्ञानार्थमुच्यते ।। २ ।।

षड्जं भवति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभम् ।
अजाविके तु गान्धारः क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ।। ३ ।।

पुष्पसाधारणे माले कोकिला वक्ति पञ्चम् ।
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ।। ४ ।।

रमन्ति उच्चारयन्ति पुष्पाणां नानाजाति प्रभृतीनां साधारणो भवकालोवसन्तः तत्र वसन्ते बहून्युच्चावचानि पुष्पाणि सम्भवन्ति प्राधान्येन कण्ठादिस्थानताषड्जादीनामित्याह ।। ४ ।।

कण्ठादुत्तिष्ठते षड्जः शिरसस्त्वृषभः स्मृतः ।
गान्धारस्त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः ।। ५ ।।

उरसः शिरसः कण्ठादुच्छ्रितः पञ्चमः स्वरः ।
ललाटाद्धैवतं विद्यान्निषादं॰ सर्वसन्धिजम् ।। ६ ।।

मुखेनानुगता नासिका अनुनासिकायां भवोऽनुनासिक्यः उरस उत्तिष्ठते मध्यमः स्वरो ललाटादुच्छ्रितः सर्वेभ्यः सन्धिभ्योजायत इति सर्वसन्धिजं विद्यात् कण्ठादिभ्य-उत्पाद्यमानाः षड्जादयोऽश्चानपि स्थानानि गुणत्वेन स्पृशन्तीत्याह ।। ६ ।।

**नासां कण्ठमुरस्तालुजिह्वदन्तार्ठ० श्च सर्ठ० श्रितः ।**
**षड्भिः सञ्जायते यस्मात्तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ।। ७ ।।**

ऋषभःशिरस उत्पद्यमानः कण्ठमपि स्पृशतीत्युच्यते ।। ७ ।।

**वायुः समुत्थितो[1] नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः ।**
**नर्दत्यृषभवद्यस्मात्तस्मादृषभ उच्यते ।। ८ ।।**

गान्धारः शिरसो नासिका प्रदेशादुत्पन्नः कण्ठमपि स्पृशतीत्याह ।। ८ ।।

**वायुः समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्ष समाहतः ।**
**नासागन्धावहः पुण्यो गान्धारस्तेनहेतुना ।। ९ ।।**

शीर्षः शब्देन नासिकोच्यते नासया गन्धानावहतीति नासागन्धावहो नासिक्योगान्धारो वायुस्तन्निमित्तस्वरोगान्धारः पुण्यशोभनः उरस उत्पन्नो हृदयं नाभिं च स्पृशति इत्याह ।। ९ ।।

**वायुः समुच्छ्रितो नाभेरुरोहृदि समाहतः ।**
**नाभिं प्राप्तो महानादो मध्यमत्वर्ठ० समश्नुते ।। १० ।।**

नाभेरधस्थात् उत्क्रान्तात् मध्ये च स्थानादुच्चनीचमदस्थानाच्च मध्यमत्वं कण्ठादिभ्य उत्पन्नो नाभिहृदयस्पर्शनात् पञ्चमस्थानः पञ्चमेत्याह ।। १० ।।

**वायुः समुत्थितोनाभेरूरोहृत्कण्ठशिरोहतः ।**
**पञ्चस्थानोत्थितस्यास्य पञ्चमत्वं विधीयते ।। ११ ।।**

निषादस्य सर्वसन्धिजत्वाद्धैवतस्य मुख्यतया ललाटजत्वेऽपि सर्वसन्धि-स्पर्शात्-षड्जस्य षट्स्थानत्वं शेषाः स्वराः गौणेन मुख्येन च रूपेण पञ्चस्थानानि स्पृशन्तीत्याह ।। ११ ।।

**धैवतं च निषादं च वर्ज्जयित्वा स्वरद्वयम् ।**
**शेषात्पञ्चवरार्ठ०स्त्वन्यान्पञ्चस्थानोच्छ्रितान्विदुः ।।१२।।**

पञ्चस्थानस्थितत्वेनसर्वस्थानानि धार्यन्ते ।

---

१. सच्छ्रित इति पाठश्चतुर्षु स्थानेषु पाठो बोध्यः ।

अतो न षड्जस्य पञ्चस्थानत्वमेव स्वाध्यायादौ षड्जादिस्वरगानान्यग्न्यादि-रूपतामात्मनि चिन्तयेदित्युच्यते ।

अग्निगीतः स्वरः षड्ज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते ॥ १३ ॥

**सोमेन गीतो गान्धारो विष्णुना मध्यमः स्वरः ।**

**पञ्चमस्तु स्वरो गीतो नारदेन महात्मना ॥ १४ ॥**

धैवतश्च निषादश्च गीतो तुम्बुरुणा स्वरौ ।

**अधिष्ठात्र्यो देवता उच्यन्ते ।**

**आद्यस्यदैवतं ब्रह्मा षड्जस्याप्युच्यते बुधैः ॥ १५ ॥**

तीक्ष्णदीप्तिप्रकाशत्वादृषभस्य हुताशनः ।

आधोमध्यम गम्भीरं स्वरूपश्च । तीक्ष्णदीप्तिप्रकाशत्वादग्निदैवतत्व-मृषभम् ॥ १५ ॥

गावः प्रगीते तुष्यन्ति गान्धारस्तेन हेतुना, ॥ १६ ॥ श्रुत्वा चैवोपतिष्ठन्ति सौरभेया न सर्ठ०शयः ॥

गौर्देवता गान्धारस्य गान्धार इति स विहितं करंतीति गान्धारः गान्धा-रोच्चारर्णन च सौरभेया गाव उपतिष्ठन्ति गोदेवताप्रसादात् ॥

**सोमस्तुपञ्चमस्यापि दैवतं ब्रह्मराट्स्मृतम् ॥ १७ ॥**

**निर्ह्रासो यश्च वृद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत् ॥**

सोमश्चन्द्रमाः ॥ ब्रह्मराट् ब्राह्मणानां राजा पञ्चमस्य दैवतम् सोमस्य यथा कृष्णपक्षे निर्ह्रासः शुक्ले च वृद्धिरित्येवं षड्ज मध्यमगतस्य पञ्चमश्योच्चगीतीत्वा-दवृद्धिः स्वरस्यासम्भवात् हानिर्ह्रासः उत्तरस्थानवति सोमसाधर्म्यं अतिसन्धीयते तस्मादेताम्पूर्वोच्छितान्त्स्वरान् ॥ १८ ॥

**तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्वं विधीयते ॥ १८ ॥**

**निषीदन्ति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना ॥**

**सर्वाठ्ं०श्चाभिभवत्येमंयदादित्योऽस्य दैवतमिति ॥ १९ ॥**

मध्यमादीनां पूर्वोच्छितानां पूर्वमुत्पन्नानामतिसन्धानां निचारणाद्वाउतो धैवतः निरोधाकरणात्पिवन्तीति यथादित्यो ग्रह नक्षत्राणि रुणद्धि एवं निषादे निषी-दन्ति अन्तर्भवन्तीव स्वरास्तत्र पर्यवसानेन चाभिभवोऽपसारणमिव क्रियते सूर्येणैव ज्योतिषां आदित्योऽस्य धैवतस्य निषादस्य दैवतमित्यर्थः एवं लौकिके वैदिके च गानसाधारणीयं न लक्षणमुक्तमिदानीं सामविशेष उच्यते । पञ्चमीकण्डिका ॥

दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु ।
सामिकी गात्रवीणा तु तस्याः शृणुत लक्षणम् ॥ १ ॥

उकारो व्याहृतयः सामसावित्री चपच्छोंद्वर्चस ऋक्स इति सामसावित्री वाध्यायी वेदस्यारम्भकाले प्रयोक्तव्येत्युच्यते ॥ १ ॥

गात्रवीणा तु सा प्रोक्ता यस्यां गायन्ति सामगाः ।
स्वरव्यञ्जनसंयुक्ता अङ्गुल्यङ्गुष्ठरञ्जिता ॥ २ ॥

हस्तौ सुसंयुतौधार्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ ।
गुरोरनुकृतिं[1] कुर्याद्यथाज्ञानमतिर्भवेत् ॥ ३ ॥

प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीतव्याहृत्तीस्तदनन्तरम् ।
सावित्रीं चानुवचनं ततो वृत्तान्तमारभेत् ॥ ४ ॥

व्याहृत्यनुवचनस्य पश्चादनुवचनं स्वाध्यायं यथावत्तनस्यानं वृत्तान्तंहस्ताङ्गुलीषु स्वरारोपणं सम्यग्गीत्यवधारणार्थं कर्तव्यमित्याह ॥ ४ ॥

प्रसार्य चाङ्गुलीः सर्वा रोपयेत्स्वरमण्डलम् ।
न चाङ्गुलिभिरङ्गुष्ठमङ्गुष्ठिनाङ्गुलीः स्पृशेत् ॥ ५ ॥

हस्तेन चैव तन्वीरङ्गुलीः स्पृशेत् ॥ ५ ॥

विरला नाङ्गुली कुर्यान्मूले चैनां नसठं० स्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठाग्रेण ता नित्यं मध्यमे पर्वणि स्पृशेत् ॥ ६ ॥

पूर्वोक्तं विशिष्यते अङ्गुष्ठस्याग्रेण संहतानामङ्गुलीनां यन्मध्यमं यत्र तत्र संस्पर्शः कार्यः ॥ ६ ॥

मात्रद्विमात्रवृद्धानां विभागार्थं विभागवित् ।
अङ्गुलीभिर्द्विमात्रं तु प्राणैः सव्यस्य दर्शयेत् ॥ ७ ॥

त्रिरेखा यत्र दृश्येत सन्धितत्रविनिर्दिशेत् ।
स पर्व इति विज्ञेयः शेषमन्तरमन्तरम् ॥ ८ ॥

यत्रान्तरं तु सामस्त्वृक्षु कुर्यात्तिलान्तरम् ।
स्वरान्मध्यमपर्वसु सुनिविष्टान्निवेशयेत् ॥ ९ ॥

प्रथमद्वितीय स्वरयोर्यवप्रमाणं मध्यमं साम्नि तिलमात्रमङ्गुष्ठतर्ज्जन्योर्मध्य-

---

1. सुमतिमिति "ख" पुस्तकपाठः ॥

मृग्विषये सुनिविष्टानिति स्वरोच्चारणसमकालमेव पर्वस्वगुङ्ष्ठनियोजनं कार्यं नादौ पश्चाद्वा ॥ ९ ॥

न चात्र कम्पयेत्किञ्चिदङ्गस्यावयवं बुधः ।
अधस्तनं मृदुन्यस्य हस्तमास्ते यथाक्रमम् ॥ १० ॥

अङ्गानां तदवयवानां च कम्पो न कार्यः अधोभवमधस्तनं अङ्गमूरुजङ्घादि मृदु न्यस्य मुखेनावस्थाप्य तत्र हस्तं दक्षिणं वामं च यथाक्रमं परिपाट्या दक्षिणं गोकर्णवद्वाममुत्तानमास्ते तिष्ठतीति ॥ १० ॥

अभ्रमध्ये यथा विद्युद्दृश्यते मणिसूत्रवत् ।
एषच्छेदो विवृत्तीनां यथा बालेषु कर्तरि ॥ क्षेपकः ॥ ११ ॥

कूर्मोऽङ्गानीव सं॰हृत्य चेष्टां दृष्टिं दिशन् मनः ।
स्वस्थः प्रशान्तो निर्भीतो वर्णानुच्चारयेद् बुधः ॥ १२ ॥

यथा कूर्मोऽङ्गानि संहरति तथाङ्गचेष्टां चक्षुरादि दिशन्दिगवलोकनं मनोव्यापारं चोपसंहृत्य सुखासनस्थश्चक्षुरादिव्याक्षेपोपसंहारात्प्रशान्तमनसो व्याकुलता निवृत्तिर्निर्भयो वर्णाद्युच्चारणं कुर्यात् दृष्टेर्विधानं कृत्वा शिक्षाशास्त्री दक्षिणहस्तसंनिवेशः कथ्यते ॥ १२ ॥

नासिकायास्तु पूर्वेण हस्तं गोकर्णवद्धरेत् ।
निवेश्यदृष्टिं॰ हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिन्तयेत्[१] ॥ १२ ॥

नासिकां नासां मुख्येन दक्षिणहस्तं गोकर्णवत् नोत्तानं नाप्यधोमुखं हरेत् कुर्यात् हस्ताग्रे दृष्टिनिधानं कृत्वा शिष्यः शिक्षाशास्त्री कमर्थं चिन्तयेत् ॥

सममुच्चारयेद्वाक्यं॰ हस्तेन च मुखेन च ।
यथैवोच्चारयेद्वर्णां॰ स्तथैवैनान् समापयेत् ॥ १४ ॥

प्रथमस्वरोच्चारणं समकालमुङ्गुष्ठयोजनं कार्यं नादौ पश्चाद्वा द्रुतादिकया वृत्त्या प्रारम्भे यथा प्रारब्धस्थतामन्त्रः समापनीयः न त्वेकस्मिन्नेव मन्त्रे वृद्धिद्वययोजना कार्या ॥ १४ ॥

नाभ्याइत्यात्र निर्हन्यात्र प्रयोगन्न कम्पयेत् ।
समं॰ सामानि गायेत व्योम्नि श्येनगतिर्यथा ॥ १५ ॥

यथाप्सु चरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते ।
आकाशे वा विहङ्गानां तद्वत्स्वरगता श्रुतिः ॥ १६ ॥

१. मनुचिन्तयन्निति "ग" पुस्तकपाठः ।

मत्स्यानां जले आकाशे च पक्षिणां मार्गे गमनं सामान्येनावगम्यते न तु पादविवरण पूर्वकालेन एवं गीतिमात्रं विना प्रयत्नेनावगम्यते न गीतिविशेषोऽत्रधार्यते। अभिवृत्तवदभियोगातीति विशेषावधारणमित्याहुः ।। १६ ।।

**यथादधनि सर्पिः स्यात्काष्ठस्थोवा यथाऽनलः।**
**प्रयत्नेनोपलम्येत तद्वत्स्वरगता श्रुतिः ।। १७ ।।**

प्रथमस्वराद द्वितीयस्वरादिगमनं न विच्छेदेन कार्यं नाप्युल्वणं स्वरस्थानवेग करणमतश्च समं भवति सूक्ष्मछायाऽऽतप उपमा यस्य स्वरसन्धेः छायाया आतपस्य च यथा प्रदेशान्तरे सूक्ष्ममविच्छिन्नं सङ्क्रमणं तद्वदित्यर्थः, कर्षणे दोषषट्कं वर्ज्जयेदित्याह ।। १७ ।।

**स्वरात्स्वरठं० सङ्क्रमस्तु स्वरसन्धिमनुल्वणम्।**
**अविच्छिन्नठं० समंकुर्यात्सूक्ष्मं छायाऽतपोपमम् ।। १८ ।।**
**अनागतमतिक्रान्तं विच्छिन्नं विषमाहतम्।**
**तन्वन्तमस्थितान्तं च वर्ज्जयेत्कर्षणं बुधः ।। १९ ।।**

प्रथमस्वरं कर्षयन् द्वितीयस्वरं यदा भवति तदा अनागतं प्रथमत एवातिक्रान्ते च कर्षणं न कर्त्तव्यं स्नरमध्ये कार्या विच्छिन्नप्रथमां मात्रां विच्छिद्य कर्षणं कार्यं विषयमाहतं कम्पयन् द्वितीयस्वरं गच्छेत् तन्वन्त्रमिति मात्रात्रयातिरेकेण विस्तारणं न कार्यम् अस्थितान्तं चेति द्वितीयस्वरे मात्रात्रययुक्ता स्थितिः कार्या नत्वेव द्वितीयमात्रा युक्तेति ।। १९ ।।

**स्वरस्थानाच्च्युतोयस्तुस्वरठं० स्थानमतिवर्त्तते।**
**विस्वरठं० सामगाः कुर्युर्विरक्तमतिवीणिनः ।। २० ।।**

स्वरस्थानानि वर्त्तन्ते न स्वरो यदा च्यवतेऽन्यथात्वं गच्छति तदा विस्वरशब्देन तं स्वरं सामगाः कथयन्ति, वीणिनो गायनका विरक्तशब्देन व्यवहरन्ति ।। २० ।।

**आभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्।**
**शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद्वृत्तिं बिलम्बिताम् ।। २१ ।।**

उपदेशार्थे पाठे विलम्बितया वृत्त्या शिष्याणां सम्यग् ग्रहणं भवति गृहीतस्य ग्रन्थस्य त्वरितया वृत्या धारणं कार्यं, स्वाध्यायादौ च प्रयोगेण मध्यमा वृत्तिरवृष्टार्थत्वेनोचिता ।। २१ ।।

**गृहीतग्रन्थ एवं तु ग्रन्थोच्चारणशिक्षकान्।**
**हस्तेनाध्यापयेच्छिष्यान् शैक्षेण विधिना द्विजः ।। २२ ।।**

एवमुक्तेन वक्ष्यमाणेन च शैक्षेण विधिना गृहीतो ग्रन्थः सामगानं येन सह्-हस्तेन कारणभूतेन शिष्यानध्यापयितुं योग्यो नान्यग्रंथोच्चारणाय शिक्षकः ॥ २२ ॥ षष्ठी कण्डिका समाप्ता ॥

पूर्वं कुष्ठादीनामुत्पत्तिस्थानान्युक्तानि इदानीमुत्पन्नानामनस्थितिस्थानान्युच्यन्ते ॥

**क्रुष्टस्यमूर्द्धनि स्थानं ललाटे प्रथमस्य तु ।**
**भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य च कर्णयोः ॥ १ ॥**

**कण्ठस्थानं चतुर्थस्य मन्द्रस्योरसि तूच्यते ।**
**अतिस्वारस्य नीचस्य हृदिस्थानं विधीयते ॥ २ ॥**

कुष्ठः सप्तमपञ्चमइत्युक्तः अतिस्वर्यते कनिष्ठामूलं नियत इति नीचस्वरः षष्ठो निषादः अङ्गुष्ठाङ्गुलियोजनं स्वराणां क्रियते उच्चनीचस्वरस्थानि संरक्षणार्थम् ॥

**अङ्गुष्ठस्योत्तमे क्रुष्टो ह्यङ्गुष्ठेप्रथमः स्वरः ।**
**प्रादेशिन्यां तु गान्धार ऋषभस्तदनन्तरम् ॥ ३ ॥**

**अनामिकायार्ठ०षड्जस्तु कनिष्ठिकायां च धैवतः ।**
**तस्याधस्ताच्च योन्यास्तु निषादं तत्र विन्यसेत् ॥ ४ ॥**

**अपर्वत्वादसञ्ज्ञत्वादव्ययत्वाच्चनित्यशः ।**
**मन्द्रो हि नहि भूतस्तु परिस्वार इति स्मृतः ॥ ९ ॥**

मन्द्रात्पृथग्भूतत्वाभावादपर्वत्वं निषादस्य च अतएव सम्यक् पृथक्त्वेन ज्ञानादसञ्ज्ञत्वं अव्ययत्वलिङ्गं विभक्तिवचनयोगात् अतो मन्द्रो हि यस्माद्धि नुतिभूतः। हन्विति प्रेरणां प्राप्तः परिस्वारो निषाद इत्युच्यते, षष्ठः हि गताविति लोपमध्यमपुरुषानुकारणेन प्रेरणं लभ्यते, तरतमशब्दावातिशये कुष्टादिगीति श्रवणेन देवादीनां परितोषो भवति यथा मन्त्रोच्चारणेन गौतमादीनां मन्त्रसञ्चेतने चाग्न्यादीनमभिधेयानामिति स्वाध्यायस्य सर्वोपकारताप्रतिपादनार्थमुच्यते ॥ ५ ॥

**क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषः ।**
**पशवस्तुद्वितीयेनगन्धर्वाः सरसस्त्वनु ॥ ६ ॥**

**आण्डजाः पितरश्चैव चतुर्थस्वरजीविनः ।**
**मन्द्रञ्चैवोपजीवन्ति पिशाचासुरराक्षसाः ॥ ७ ॥**

**अतिस्वारेण नीचेन अगत्स्थावरजङ्गमम् ।**
**सर्वाणि खलु भूतानि धार्यन्ते सामिकैः स्वरैः ॥ ८ ॥**

द्वितीयायस्यानु पश्चात्तृतीयेन स्वरेण गन्धर्वाप्सरसो जीवन्तीति स्थावरं जङ्गमं च जीवन्तीति वर्त्तते स्वरविशेषश्रुतिः प्रयोगार्थमवश्यमवधारयेत्युच्यते ॥८॥

दीप्तायता करुणानां मृदुमध्यमयोस्तथा ।
श्रुतीनां यो विशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते ॥ ९ ॥

अविशेषस्याचार्यस्याधिको दोषः, नकेवलमज्ञत्वात्स्वयं प्रत्यवेति अन्यान्यां प्रत्यवायेन योजयतीत्याचार्यग्रहणम् ॥ ९ ॥

दीप्तामन्द्रे द्वितीये च प्रचतुर्थे तथैव तु ।
अति स्वारे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः ॥ १० ॥

पञ्चानां स्वराणां दीप्ता श्रुतिः प्रथमस्य मृदुभूता सप्तमस्य करुणा ॥ १० ॥

श्रुतयोऽन्या द्वितीयस्य मृदुमध्यायताः स्मृताः ।
तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

द्वितीयस्वरस्य पूर्वं दीप्ता श्रुतिरुक्ता संप्रति श्रुतित्रयमुपाधिवशेनोच्यते ॥ ११ ॥

आयतात्त्वं भवेन्नोच्चैर्मृदुत्वं तु विपर्यये ।
स्वे स्वरे मध्यमत्वं तु तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् ॥ १२ ॥

नीचे तृतीये स्वरे परतः स्थिते द्वितीयस्वरस्यायता श्रुतिः विपर्यये चतुर्थेस्वरे परे भूते मृदुभूता स्वे स्वरे स्वरान्तरे अपरभूते मध्यमाश्रुतिः एवमवधार्य सामस्वरप्रयोगः कर्त्तव्यः स न इन्द्रः शिवःसखा, उद्द्वेदभिश्रुतामयं वर्तीहा इत्युदाहरणानि, द्वितीये दीप्ता पूर्वोक्ता कदा भवतीत्याह ॥ १२ ॥

द्वितीये विरतायां तु कुष्टश्चपरतो भवेत् ।
दीप्तां तां तु विजानीयात्प्रथमेन मृदुस्मृता ॥ १२ ॥
अत्रैव विरतायां तु चतुर्थेन प्रवर्त्तते ।
तथा मन्द्रे भवेद्दीप्ता साम्नश्चैव समापने ॥ १३ ॥

क्रुष्टे परभूते द्वितीये स्वरे या विरताऽवस्थिता श्रुतिः सा दीप्ताह ॥ ओ ऊ वा ॥ १२ ॥ ई थ इ इत्युदाहरणं प्रथमे स्वरे मृदुभूता यदि तत्रैव विपरीताऽवस्थिता चतुर्थे स्वरेऽवस्थिता मृदुभूता भवति स्वरान्तरानुगमने सति अन्यथा दीप्ता भवति उग्रा उ इति तथा मन्द्रेदीप्ता भवति स्वरान्तरगमने सति एवं सामसमाप्तौ यत्र तत्र स्वरेऽवस्थिता श्रुतिर्दीप्ता भवतीति औ हो ३२ वा ३ हो ३ वा ३ । हा ३३ इहा इ इत्यादि विरता दीप्ता या श्रुतिर्निषिध्यते ॥ १४ ॥

**नाभिरते श्रुतिं कुर्यात्स्वरयोर्नापि चान्तरे।**
**न च ह्रस्वे च दीर्घे च न चापि घुटसञ्ज्ञके ॥ १५ ॥**

स्वरिते अपरिसमाप्ताश्रुतिरत्रायतादिर्न कार्या श्रुतिरभावेऽपि तत्सदृशःस्वरः कार्य इत्याह स्वरपरिसमाप्तावस्य विछिन्ने गाने स्वरयोर्नान्तिरे मध्ये न कार्या स न इन्द्रः शिवः सखा इत्युदाहरणे हस्वे दीर्घे चाक्षरे गीयमाने न कार्या प्लुते एव कार्या घुटसञ्ज्ञितं किमित्याह ॥ १६ ॥

**द्विविधागतिः पदान्तः स्थितसन्धिः सहोष्मभिः।**
**पञ्चस्वेतेषु स्थानेषुविज्ञेयं घुटसञ्ज्ञितम् ॥ १६ ॥**

तालव्यस्य इकारस्य आ इ भावय आ उ भावयेति हे गती तयोः श्रुतिर्न कार्या तथा पदान्तोयोऽपि त्रिविधः स्थितः सन्धिर्यस्यशषसैरूष्मभिः सह अत्र दीप्तादिका श्रुतिर्नप्रवर्तते एतेषांघुट इति शब्दान्तरेण सह वर्त्तनात् घुट इत्युच्यते पञ्चानां मध्ये यस्य श्रुतिः प्राप्ता तस्य निषिध्यते न सर्वत्र ॥ १६ ॥

**स्वरान्तराविरतानि ह्रस्वदीर्घघुटानि च।**
**श्रुतिस्थानेष्वशेषाणि श्रुतिवत् स्वरतो भवेत् ॥ १७ ॥**

स्वरे स्वरान्तरे च अविरते ह्रस्वे दीर्घे घुटसञ्ज्ञिते च श्रुतिर्न कार्या स्वर एव श्रुतिसदृशः कार्य इति सामव्यतिरिक्तेषु श्रुतद्वयमेव वर्तत इत्याह ॥ १७ ॥

**दीप्तामुदात्ते जानीयाद्दीप्तां च स्वरिते विदुः।**
**आनुदात्ते मृदुर्ज्ञेया गन्धर्वा श्रुतिसम्पदः ॥ १८ ॥**

गान्धर्वे गाने श्रुतेरभावेऽपि तत्सदृशः स्वरः कार्य इत्याह ॥ **स्वरसम्पद** एतावद् गानादि विषये उदात्तादयस्त्रयः केनचिद् विशेषेण पञ्चत्वेनोच्यते ॥ १८ ॥

**उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितप्रचिते तथा।**
**निघातश्चेति विज्ञेयः स्वरभेदस्तु पञ्चधा ॥ १९ ॥**

स्वरितात्पराणि स्वरितान्येव प्रचयसञ्ज्ञानि प्रचये परतः स्थिते स्वरितस्याहननान्निघातः स्वरित एव प्रचयाभावे शुद्ध एव स्वरितो भवति ॥ सप्तमीकण्डिका समाप्ता ॥

एवं सामस्वरानुषङ्गेण किञ्चिदृग्यजुर्विषयं स्वरलक्षणमुक्तं इदानीमार्च्चिकस्वरनिरूपणं प्राधान्येन क्रियते ॥ १६ ॥

**अत ऊद्ध्वं प्रवक्ष्याम्यार्च्चिकस्य स्वरत्रयम्।**
**उदात्तश्चानुदात्तश्च तृतीयः स्वरितः स्वरः ॥ १ ॥**

मुख्यतां आर्चिके प्रचयं निघातादयः स्वरितविशेष एव स्वरितस्य सप्तप्रकारतां प्रतिपाद्यते ।। १ ।।

**य एवोदात्त इत्युक्तः स एव स्वरितात्परः ।**
**प्रचयः प्रोच्यते तज्ज्ञैर्न चात्रान्यत्स्वरान्तरम् ।। २ ।।**

**वर्णस्वारोऽतीतःस्वारः स्वरितो द्विविधः स्मृतः ।**
**मात्रिकोवर्ण एवं नु दीर्घस्तूच्चरितादनु ।। ३ ।।**

**स तु सप्तविधो ज्ञेयःस्वरः प्रत्ययदर्शनात् ।**
**पदेन तु स विज्ञेयो भवेद्यो यत्र यादृशः ।। ४ ।।**

स्वरिते उदात्तानुदात्तमध्ये उच्चार्येत इति स्वारः स्वरितविशेषो रूढ्याऽध्येतृभिरुच्यते प्रतीयते विशेषोऽवगम्यते येन स प्रत्ययस्वाररूपप्रत्ययस्यदर्शनादवगमात्सप्तप्रकारताज्ञायते स्वरस्यापि स्वररूपविशेषावधारणं कार्यं नात्र लोपः कार्यइत्युच्यते ।। ४ ।।

**सप्तस्वरान्प्रयुञ्जीत दक्षिणतं० श्रवणं प्रति ।**
**आचार्यैर्विहितं० शास्त्रं पुत्रशिष्यहितैषिभिः ।। ५ ।।**

महता प्रबन्धेन स्वारलक्षणं पुत्राद्युपदेशेनाराद्ध्यमाचार्यैरतः श्रोत्रपथं सप्तस्वराः नेतव्याः दक्षिणस्य प्राधान्यादादरार्थमुपादानं उच्चनीचव्यतिरिक्त स्वरितस्वरूपं नावधार्यते सम्यगिति तद्विशेषस्वारपरिज्ञानं कुतो भवेदिति वोच्यते ।। ५ ।।

**उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान्नीचतरं तथा ।**
**वैस्वर्ये स्वारसञ्ज्ञायाम् किं० स्थानं० स्वारउच्यते ।। ६ ।।**

वैस्वर्येविशिष्टस्वरत्वेन या स्वारसञ्ज्ञा चेद्विषये किं स्वारस्य स्थानमुदात्तानुदात्तव्यतिरिक्तस्याभावात् अत्रोत्तरम् ।। ६ ।।[१]

**उच्चनीचस्य यन्मध्ये साधारणमिति श्रुतिः ।**
**तं० स्वारं० स्वारसञ्ज्ञायाम् प्रतिजानन्ति शैक्षिकाः ।। ७ ।।**

उदात्तानुदात्तयोर्मध्यवर्ति यद्रूपम् साधारणमित्येवंरूपाश्रुतिः पातम् स्वारं स्वारसञ्ज्ञायाम् विषये शिक्षाध्यायिनः प्रतिजानन्तीति, उदात्तानुदात्तं च स्वरितेऽपि षड्जाद्यनुगमो भेदे सति स्वरितस्य भवतीत्युच्यते ।। ७ ।।

**उदात्तेनिषादगान्धारावनुदात्तः ऋषभधैवतौ ।**
**स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ।। ८ ।।**

१. त्रैस्वर्ये त्रिस्वराविशिष्टत्वेनेति "ख" पुस्तक पाठः ।

चिह्वामूलीयोपध्मानीययोरपि वर्णैकदेशयोः स्वरयोगः पृथक् पृथगवगन्तव्य- इति प्रतिपाद्योच्यते ॥ ८ ॥

**यत्र कखपरा ऊष्मा जिह्वामूलप्रयोजनाः ।**
**तामथाज्ञापयेन्मात्राम् प्रकृत्यैव तु सा कला ॥ ९ ॥**

जिह्वामूलीयस्य प्रयोजनभूता जिह्वामूलप्रयोजनाः क खौ परौ यस्यास्तां मात्राम् आज्ञापयेन्मात्रत्वेन प्रतिपादयेत् यतः प्रकृत्यैव स्वेन रूपेण सा कला न वर्णान्तरस्यैकादेशभूता उपध्मानीयस्यैव लक्षणमेतत् नमः कपर्द्दिने च पावमानीरित्याद्युदाहरणानि स्वारसप्तकम् नाम्ना निर्दिश्यते लक्षणभेदेन प्रतिपादनार्थम् ॥ ९ ॥

**जात्यः क्षैप्रोऽभिनिहितस्तैरव्यञ्जन एव च ।**
**तिरोविरामः प्रश्लिष्टः पादवृत्तश्च सप्तमः ॥ १० ॥**
**स्वराणामहमेतेषाम् पृथग्वक्ष्यामि लक्षणम् ।**
**उद्दिष्टानामयथान्यायमुदाहरणमेव च ॥ ११ ॥**

अष्टमी काण्डिका ॥

इति श्रीभट्टशुभाकर विरचिते शिक्षाविवरणे प्रथमः प्रपाठकः ॥

**सयकारर्ठ० सर्वं वाऽप्यक्षरर्ठ० स्वरितम् भवेत् ।**
**न चोदात्तं पुरस्तस्य जात्यः स्वारः स उच्यते ॥ १ ॥**

सहयकारेण वकारेण यदक्षरम् स्वरितम् वर्तते अनन्तरम् वर्तते अनन्तरं- चोदात्तम् तस्य न भवति स स्वारः स जात्यः पदमध्यस्थत्वात् स्वाभाविकः । स जात्येनेति स यकारम्, भूर्भुवः स्वरिति सवकारम् ॥ १ ॥

**इ उ वर्णौ यदोदात्तावापद्येतेयवौक्वचित् ।**
**अनुदात्ते प्रत्ययेनित्यं विद्यात्क्षैप्रस्यलक्षणम् ॥ २ ॥**

इकार उकारो वा उदात्तः पदादिना अकारेणानुदात्तेन संहितायां यकार- प्रतीत्या स्वरितो भवति स स्वारः क्षिपणात्परस्य पूर्वस्योच्चारणात् क्षिप्रस्वरिते भवतः क्षैप्रः श्रुष्टी अग्नेश्रुष्टयग्ने, वीडु अङ्गः वीडवङ्ग इति ॥ २ ॥

**ए ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो[१]निहितश्चयः ।**
**अकारं यत्र लुम्पति तमभिनिहितं विदुः ॥ ३ ॥**

---

१. रफितश्चेति द्वितीय पुस्तक पाठः ।

एकारादिरकाराद्वीदात्तादुत्तरयोः सवकारो यो निहितो निपातितः तं यत्र लुम्पति एकारे उकारे वाऽनुप्रवेशयति संहितायां तमभिनिहितं पूर्वं यत्र प्रक्षिप्तं स्वारं विदुः, ते मन्वतेत्यादि ॥ ३ ॥

**उदात्तपूर्वं यात्किञ्चिच्छन्दसि स्वरितं भवेत् ।**
**एव सर्वत्रहृस्वारस्तैरव्यं जन उच्यते ॥ ४ ॥**

एवं विधाने स्वराणां बहुत्वात् बहुस्वारः सर्वऋग्वेदे यजुर्वेदे च भावात् सर्वबहुस्वारः निरोधोगमनेन व्यञ्जत इति तैरव्यन्यनीयः स्वारः । विईतये वीतय इत्यादि ॥ ४ ॥

**अवग्रहात्परं यत्र स्वरितर्ठ० स्यादनन्तरम् ।**
**तिरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः ॥ ४ ॥**

उपसर्गा विगृह्यन्ते तिङन्तस्य कृदन्तस्य वा पदस्य यकार एव व्यञ्जनं प्रक्रियते इत्यवग्रह उदात्तः स्यात्परं स्वरितं तिरोविरामप्राप्तावग्रहस्वारः । विष्कभितेविस्कभिते इत्यदि ॥ ५ ॥

**इकारं यत्र पश्येयुरिकारेणैव संयुतम् ।**
**उदात्तमनुदात्तेन प्रश्लिष्टं तं निबोधत ॥**

इकार उदात्तो इकारेणानुदात्तेन यदा—संयुक्तो भवति तदा स्वरितः प्रश्लिष्ट-स्वार उच्यते अधिहि इन्द्र अधीहीन्द्रेत्यादि ॥ ६ ॥

**स्वरे चेत् स्वरितं यत्र विवृता यत्र संहिता ।**
**एतत्पादान्तवृत्तस्य लक्षणर्ठ० शास्त्रचोदितम् ॥ ७ ॥**

स्वरे अक्षरे अकारादौ यत्र चेत् स्वरित संहिता च पूर्वेण पदेन सह यदा विवृता विभक्ता भवति तदा पादान्त वृत्तः पादवृत्तः स्वरित अक्षरेऽतः स्वरः सप्तमः । क ईम् कई वेदेत्यादि ॥ ७ ॥

**जात्यः स्वारः साजात्येन श्रुष्टचग्रे क्षैप्र उच्यते ।**
**ते मन्वताभिनिहितस्तैरव्यञ्जन ऊतये ॥ ८ ॥**

**तिरोविरामो विष्कभितेप्राश्लिष्टोहीन्द्रगिर्वणः ।**
**पादबृत्तः कई वेद स्वाराःसप्तैवमादयः ॥ ९ ॥**

श्लोक द्वयोक्तान्युदाहरणानिपूर्वमेवोक्तानि ॥ ८ ॥ ९ ॥

**उच्चादेकाक्षरात्पूर्वात्स्वर्यते यदिहाक्षरम् ।**
**स्वाराणां जात्यवर्ज्जानामेषा प्रकृतिरुच्यते ॥ १० ॥**

जात्यस्वारवर्ज्जमुदात्तादनन्तरं उच्चार्यमाणमक्षरस्वरितः स्वारसञ्ज्ञं भवतीति सामान्येन लक्षणमुक्तम् ॥ १० ॥

**चत्वारस्त्वादितः स्वाराः कम्पं पुष्यन्ति शास्त्रतः ।**
**उदात्ते वैकनीचे वाजुह्वग्निस्तत्र दर्शनम् ॥ ११ ॥**

इकारान्त उकारान्त पर उकार द्वयपरौकारपरः सन्ध्यक्षर इति चत्वारः-स्वारा उदात्ते वा एकस्मिन्नीचे परत आदित आदिभागे कम्पं पुष्यन्ति प्रतिपाद्यन्ते कपिः चलद्रूपः स्वारः कम्प उच्यतेः रूपत्वाजुहइति, सन्ध्यक्षरोदाहरणं, श्लोकानु-रोधाद् व्यवहित उपादाने नोदाहरणमुक्तं उपत्वाजह्वोग्निस्तत्र दर्शनमिति ॥ ११ ॥

द्वितीयस्म प्रथमकण्डिका ।

चतुर्णां स्वराणां क्वचिदेह स्वकम्पनात् क्वचिद्दीर्घ कम्पनमित्याह ।

**इकारान्ते पदे पूर्व उकारे परतः स्थिते ।**
**ह्रस्वकम्पं विजानीयान्मेधाबी नात्र सर्ठ०शयः ॥ १ ॥**

**इकारान्तेपदे चैवोकारद्वयपदे परे ।**
**दीर्घं कम्पं बिजानीयाच्छ्रध्यूष्बिति निदर्शनम् ॥ २ ॥**

**त्रयोदीर्घास्तु बिज्ञेया ये च सन्ध्यक्षरेषु वै ।**
**मन्यापत्र्या न इन्द्राभ्यार्ठ० शेषा ह्रस्बाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥**

पाहृचुत द्वितीययेत्युदाहरणं ऊकारपरो ह्रस्व कम्पः शिष्टमन्यदुदाहृतं उदात्त-सर्वस्वरितं स्वार इति प्राप्तं क्वचिन्न भवति उदात्तमेव भवतीत्युच्यते ॥ १ ॥

**अनेकानामुदात्तानामनुदात्तः प्रत्ययो यदि ।**
**शिवकम्पं विजानीयादुदात्तः प्रत्ययो यदि ॥ ४ ॥**

द्वित्रादीनामुदात्तानामनुदात्तो यदा परो भवति तदा द्वितीये तृतीये चोदात्ते-परतः शिवकम्पसञ्ज्ञक आद्युदात्तो भवतीति त्र्यम्बकस्त्रिनेत्रः शिवः तर्ज्जन्यनामि-कयोः संयुक्तयोर्मध्यमाङ्गुली यदा ह पृष्ठे वर्तते द्वित्वयोगाच्छेषइवाङ्गुली तन्नि-वेशः शिवकइत्यध्येतॄ प्रसिद्धः आदित्यस्येत्यादौद्वयोरुदात्तयोः परोऽनुदात्तः गिरा मर्माजातेत्यादौ त्रयाणामुदात्तानां परोऽनुदात्तां शिवकइत्युदात्तविषयसञ्ज्ञान-स्वरित विषयमिव विशेषेणोच्यते ॥ ४ ॥

**यत्रद्विप्रभृतीनिस्युरुदात्तान्यक्षराणि तु ।**
**नीचं चोच्चं चपरस्तत्रोदात्तं विदुर्बुधाः ।। ५ ।।**

नीचमनुदात्तं नीचात्पूर्वमुदात्तं पूर्वस्य पूर्वयोर्बा परत इत्यर्थः वर्णोच्चारण-गतं लक्षणमुच्यते ।। ५ ।।

**न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित् ।**
**न च वर्गद्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन ।। ६ ।।**

रेफहकारयोः खछठथफानां घझढधभानां च केवलानां प्रयोगो भवति, न रेफद्वित्वादिरूपेणेति कथं चतुर्थादीनां प्रयोगसंयोग इत्याह ।। ६ ।।

**न चतुर्थं तृतीयेन द्वितीयं प्रथमेन तु ।**
**आद्यमन्त्यं च मध्यञ्च त्वक्षरेणैव पीडयेत् ।। ७ ।।**

ककारादियुक्ताः संयोगे खादयउच्चारणीयाः, गकारादियुक्ताश्च घादयः प्रति-वर्गमाद्य मध्यान्त्यादि ककारादीनि वर्णानि स्वाक्षरेणैव योजनीयानीति वा करोति-त्युदाहरणम् ।। ७ ।।

**अनन्त्यश्च भवेत् पूर्वोन्त्यश्च परतो यदि ।**
**तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत् स वर्णः पूर्ववर्णयोः ।। ८ ।।**

अनन्त्यो गकारादिः पूर्वोऽन्त्यश्च नकारादिः: परतः संयोगे यदा भवति तत्र मध्ये यमो निष्पाद्यो वर्णः पूर्वस्य वर्णस्य सवर्णः सदृश उच्चारणीयः पूर्ववर्णयोरिति द्विरुक्तत्वापेक्षयोक्तम् अग्न आयाहि वीतय इत्युदाहार्यम् ।। ८ ।।

**वर्गान्त्याञ्छषसैः सार्द्धमन्तस्थैर्नाऽपि सँय्युतान् ।**
**दृष्ट्वा यमा निवर्त्तन्त आदेशिकमिवाध्वगाः ।। ९ ।।**

शषसयरलवैः पूर्वैः शादिभिः सह यत्र वर्णान्त्या मकारादयो भवन्ति तत्र यमा न प्रयुज्यन्ते विषणव इत्यादि, अध्वगा आदेशिकदेशानं वाञ्छित्वं यस्य ते सम्भाव्यन्ते दृष्ट्वा चौरं यथा मार्गान्निवर्तन्ते तद्यमा इत्यर्थः ।। ९ ।।

**तृतीयश्च चतुर्थश्च चतुर्थादिपरं पदम् ।**
**द्वौ तृतीयौ हकारश्च हकारादि परं पदम् ।। १० ।।**

संहितायां वर्गतृतीयचतुर्थौ यदा संयुक्तौ वर्णौ तदा पदकाले चतुर्थाद्युत्तर-पदं भवति, न तु द्विर्वचनगते तृतीयादि एवं द्विर्वचने सति द्वौ तृतीयौ वर्णौ हकारश्च संहितायां यत्र तत्र पद काले हकारादिपरं परं पदं भवति न तृतीयादितं भवति वाग्ध ह ह ह ह इत्युदाहरणीयम् ।। १० ।।

**अनुस्वारोपधामूलानां न क्वचित् क्रमतेपरम् ।**
**रहपूर्वसंयुते चाप्युत्तरं क्रमतेऽक्षरम् ॥ ११ ॥**

अनुस्वारस्य उपध्मानीयस्य जिह्वामूलीयस्य कश्चित्पदे अक्षरं न क्रमते न द्विरुच्यते तं सवाधः । नमः पथे च नमः कपर्दिने इत्युदाहरणानि रेफेण संयुते सम्बद्धे पदे हकारेण च सम्बन्धे पदे उत्तरमक्षरं क्रमते द्विरुच्यत इति, अर्को देवानां ब्रह्मे त्युदाहरणम् ॥ ११ ॥

**संयोगे स्वरितं यत्र चोद्घातैः पतने यथा ।**
**पूर्वाङ्गमादितः कृत्वा पराङ्गादौ निवेशयेत् ॥ १२ ॥**

संयोगे यत्स्वरितमुदात्ते नीचादुपरिगमने पतनेन च उच्चादधो गमनेस्वरितस्य व्यञ्जनं पूर्वागमादौ नीचे उच्चत्वं कृत्वोपरागस्यादौ स्वरितन्निवेशयेदुच्चारयेदित्यर्थः । पूर्वपराङ्गविवेकार्थमुच्यते ॥ ॥

**संयोगे यत्रदृश्येत् व्यञ्जनं विरते पदे ।**
**पूर्वाङ्गं तद्विजानीयाद्येनारम्भस्तत्पराङ्गम् ॥ १२ ॥**

संयोगे विरते विभक्ते यद् व्यञ्जनं उत्तरपदेनासंलग्नं दृश्यते तत्पूर्वपदस्यांगमिव तस्यैकदेशः येन व्यञ्जनेन विभक्ते संयोगे उत्तरपदस्यारम्भस्तत्पराङ्गम्, भूर्भु वःस्वस्तत्सवितुरित्युदाहरणे नीचोच्चयोः ॥ १३ ॥

**संयोगात्तु परं स्वर्यं परर्ठ० संयोगनायकम् ।**
**संयुक्तस्य तु वर्णस्य स्वरितं पूर्वमक्षरम् ॥ १३ ॥**

संयोगपरो भागः स्वरयुक्तः कार्यः स्वरस्य तत्र विश्रांतिप्रधानत्वात्पूर्वं व्यञ्जनसंयुक्तस्यापूर्वव्यञ्जनमस्वरं प्रयोक्तव्यं उदाहरणद्वयमुक्तम् ॥ १४ ॥

**अनुस्वारः पदान्तश्च क्रमजः प्रत्यये स्वके ।**
**स्वरभक्तिस्तथा रेफः सर्वं पूर्वांगमुच्यते ॥ १५ ॥**

सम्भवतीत्यनुस्वारः पदान्तश्च ककारादिप्रत्यये स्वके सवर्णपदे परतः क्रमजो द्विर्वचनं जातमुद्वहतीति अथ समर्हतीति ककारे रेफरूपा स्वरभक्तिः एतत्पूर्वाङ्गम् ॥ १५ ॥

**पादादौ च पदादौ च संयोगावग्रहेषु च ।**
**यः शब्दइति विज्ञेयो योऽन्यः स य इतिस्मृतः ॥ १६ ॥**

पादपदसंयोगावग्रहेषु द्विरुक्तो यकारः प्रयोक्तव्यः, अन्यस्तु केवलः यज्ञाय-

ज्ञादौ, त्वं यविष्ठेति, पदादौ पन्यं पन्यं संयोगे अन्यः, अनूपइत्यव ग्रहे वीतय-इत्यादौ लघुयकारः ॥ १६ ॥

पदादावप्यविच्छेदे संयोगान्ते च तिष्ठताम् ।
वर्जयित्वा रहूर्णामयादेशः प्रदृश्यते ॥ १७ ॥

स्वसंयुक्तो गुरुर्ज्ञेयः सानुस्वाराग्रिमः स्फुटः ।
अणुशेबोध्रिगोर्वाऽपि युगलादिरविस्फुटः ॥ १८ ॥

अनयोर्भाष्यं त्ववक्तम् ॥ १७ ॥ १८ ॥

द्वितीयस्य द्वितीयकण्डिका ।

यदुदात्तमुदात्तं तद्यत्स्वरितं तत्पदे भवति नीचम् ।
यन्नीचन्नीचमेव तद्यत्प्रचयं तदपि नीचम् ॥ १ ॥

यदुदात्तं संहिताकालेऽनुदात्तं च भवति । तस्यकालेऽनुदात्तमेव उदात्तमेव भवति यत्तु स स्वरितविशेषो वा प्रचयः स नीचः पदे भवति अग्नआयाहि अग्न-आयाहि वीतये इत्युदाहरणम् ।

अयमग्निः सुतो मित्रमिदं वयमयावनाः ।
प्रियं दूतं घृतं चित्रमभिशब्दश्च नीचतः ॥ २ ॥

एतानि पदानि नीचादनुदात्तादारम्यन्ते अग्नि वः सुतः, मित्रं हुवेइदं वमो वयंद्या अयाते वहां । प्रियं मित्रं दूतं वः, घृतं दुहते वितमे, अभिप्रियाणि, इत्युदाहरणानि ॥ २ ॥

अर्केष्वेव यज्ञेषु कलशेषु च ।
शतेषु सपवित्रेषु नीचादुच्चार्यते श्रुतिः ॥ ३ ॥

अर्कअर्च्चतु इत्यादयोऽर्क्काः । शतेषुनः, सुते सचेति सुतादयः यज्ञाय तस्या-यज्ञाः कलशं कलशेष्वित्यादयः, शतं सेनाः शताः पवित्रंते पवित्रमर्चि इत्यादयः पवित्राः इत्यादीनां नीचादनुदात्तादुपक्रमः ॥ ३ ॥

हरिवरुणवरेण्येषु पुरुषेषु स्वरति रेफः ।
विश्वानरो नकारेषु शेषास्स्वरितानराः ॥ ४ ॥

हरिर्हिन्वन्ति वरुणोमित्रः वरेण्यं धारा सुतस्य, सहस्रशीर्षा पूरुषः, एतेषु रेफस्यैव स्वरितत्वं विश्वानरस्येति नकारस्य अन्यत्र नरशब्देषु रेफस्यैव स्वरितत्त्वम् ॥ ४ ॥

**द्वौ वरुणौवस्वरित उद्रुत्तमं त्वं वरुण ।**
**धाकारे चीरुयारायामुरुधारेव दोहने ।। ५ ।।**

उद्रुत्तमं वरुणेति वकारस्य स्वरितत्व, न रेफस्य उरुधारामरक्वतं उरुधारेव दोहन इति धाकारस्य स्वरितत्त्वम् ।। ५ ।।

**मात्रिकं वा द्विमात्रं वा स्वर्यते यदिहाक्षरम् ।**
**तस्यादितोऽर्द्धमात्रा वैशेषं तु परतो भवेत् ।। ६ ।।**

पूर्वाङ्गमिति वर्णापेक्षयोक्तं स्वरापेक्षयेदमुच्यते ह्रस्वस्य दीर्घस्य वा स्वरितस्यार्द्धं मात्रोदात्तानुदात्तानां पूर्वो भागः शिष्टं स्वरितं "तस्यादितउदात्तमर्द्धह्रस्वमिति" पाणिनिः ।।६।।

**अदीर्घं दीर्घवत्कुर्यात् द्विस्वरं यत्प्रयुज्यते ।**
**कम्पोत्स्वरिताभिगीतर्ठ० ह्रस्वकर्षणमेव च ।। ७ ।।**

कंपादि विषये ह्रस्वकर्षणमेव च कम्पादिविषये ह्रस्वानां दीर्घसादृश्यं कुर्यात्, पात्युतउदूर्जं, स्वरितं नीचादुपरिस्थिमुतवरितं भुर्भुवः उर्दूवो३३पन्यते त्यभिगीतं तत्त्यजमिति ह्रस्वकर्षणम् ।।७।।

**निमेषकाला मात्रास्याद्विद्युत्कालेति चापरे ।**
**ऋक्स्वरा तुल्ययोगा वामतिः स्यात्सोमशर्मणः ।। ८ ।।**

मात्रास्वरूपमुच्यते अक्षिपक्ष्मपातं निमेषः तत्काला मात्रा विद्युत्कालामात्रेति केचिदाचार्याः सोमशर्मण आचार्यस्य ऋकारकालः छकालः शकार तुल्योंवेति द्रुतमध्यविलम्बेन व्यवस्था कार्या ।।८।।

**समासेऽवग्रहं कुर्यात्पदं चात्रानुसर्ठ०हितम् ।**
**यतोऽक्षरादिकरणं पदान्तं तस्य तं विदुः ।। ९ ।।**

समासपदमेकविषयं तत्रावग्रहे यदि विभागं कुर्यात् समासं पदं चानुसंहितमत्र सन्धेयं यतोऽक्षरादिकरणमध्येतारं कुर्वते स्वरान्तं तं समासपदस्य विदुः हव्यदातयऽइतिहव्यदातये, विश्वदेवसमिति विश्ववेदसं इत्यादि, पूर्वाचार्यापेक्षया इति करणांतरा, कात्यायनस्तु हव्यदातय इति ।।९।।

**सर्वत्र पत्रमिव सखिशब्दा अद्रिशतक्रतोरगाह्याः ।**
**आदित्यविप्रजात वेदाश्च सत्पतिगोपतिष्ठन्नहा समुद्रश्च ।।१०।।**

एतेशब्दाः अवग्रहाः प्रवर्तन्ते इति संशयो नास्ति ।।

**स्वर्युवो देव युवश्चारति देवतातये ।**
**चिकितिश्चुक्रुधं चैवनावगृह्णन्ति पण्डिताः ।। ११ ।।**

स्वर्युवः देवयुवइति कप्रत्ययान्तो न पदद्वयम् अरतिमिति न नञ् अन्तेनूष पर्यामिवारणेस्विति धातोरूपं देवताति प्रत्ययेदेवताभिः चिकितिरितिचेन्नातः चुक्रुधमिति क्रुझे द्विर्वचनम् अतएकपदत्वादेतेषामवग्रहं कुर्वन्त्याचार्याः ।।११।।

द्वितीय तृतीय कण्डिका ।।

**विवृत्तयश्चतस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम् ।**
**अक्षराणां नियोगेन तासां नामानि मे शृणु ।। १ ।।**

**हृस्वादिवत्सानुसृता वत्सानुसारिणी चाग्रे ।**
**पाकवत्युभयोर्हृस्वा दीर्घा वृद्धा पिपीलिका ।। २ ।।**

विवेकेन पृथग्भावेन वर्तते इति विवृत्तिः पूर्वपदे ह्रस्वः उत्तरपदे दीर्घइति ह्रस्वादिवत्सा न च लघुना गौविवृद्धा अनुसृता, अग्नआयाहि इत्यादिका,—अग्नेआदौ दीर्घं यस्य परत्वे ह्रस्वाः, सा सवत्समिवानुसरतीति वत्सानुसारणी प्रेष्टवी अतिथिमित्यिादिका, उभयोः पदयोराद्यन्तयोः ह्रस्वो यस्याः सा पाकवती वपुः। द्वययोगात् अग्नइत्येतरा गिर इति यथा उभयत्र दीर्घाभ्यां विवृद्धा पिपीलिकेति च भागगुरुत्वेन दीर्घवृद्धा पिपीलिकेति निछएवाना आयुधानीवेति यथा ।।१।।२।।

**चतसृणांविवृतीनामन्तरं मात्रिकं भवेत् ।**
**अर्द्धमात्रिकमन्येषामन्येषामणुमात्रिकम् ।। ३ ।।**

शाखाभेदामिप्रायेण मध्यविकल्पः ।।३।।

**आपद्यते मकारो रेफोष्मसु प्रत्ययेष्वनुस्वारम् ।**
**यलवेषुपरसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिम् ।। ४ ।।**

मावांरातिः, तठॅ० सख्ययः, उ इ ठॅ० शमिव। एवं यवलादिषु परतो मकारोऽनुस्वारत्वम् । यविष्ठतं लोकं तंव इत्यादौ परसवर्णता, समहेम विदधद्दाणमित्यादौ स्पर्शेषु परतः स्पर्शवर्ग सदृशोत्तमापत्तिर्मकारस्य भवतीत्यर्थः ।।४।।

**नकारान्ते पदेपूर्वं स्वरे च परतः स्थिते ।**
**आकारठॅ० रक्तमित्याहुर्नकारेण तु रज्यते ।। ५ ।।**

यकार वकार हकारेषु परतोऽनुरज्यते, सापनातवयजामहे इस्वरे परेऽन्त्यो नकारेणाकारः पूर्वो रज्यते वरामहा१ँ॥ इत्युदाहरणं नकारान्तस्य पदस्यार्द्धमात्रेण नकारेणार्द्धमात्रा आकारादिकस्य वर्णस्य रज्यत इत्यर्थः तान्यथानुरज्यते ॥५॥

**नकारान्ते पदे पूर्वैर्व्यञ्जनैश्च यवो हिषु ।**
**अर्द्धमात्रा तु पूर्वस्य रज्यते त्वणुमात्रया ॥ ६ ॥**

नकारान्तस्य पदस्यार्द्धमात्रेण नकारस्यार्द्धमात्राकारविर्वणस्य रज्यतइत्यर्थः, नान्यथातत्त्वोऋच्छन्तान्ह्युश्मसीत्यादि ॥६॥

**नकारः स्वरसंयुक्तश्चतुर्युक्तो विधीयते ।**
**रेफोरङ्गश्च लोपश्चानुस्वारोऽपि वा क्वचित् ॥ ७ ॥**

पदान्तस्य नकारस्य पदे परतश्चत्वारि रूपाणि भवन्ति, भवा१ँश्चिनोतीति, नकारस्य रेफो विसर्जनीयत्त्वं पूर्वस्यानुनासिक इति रेफोदाहरणं, रङ्गमुदाहृतः महा१ँ इन्द्रः दधन्वा१ँ य इत्यादौ नकारस्य लोपः पूर्वस्यानुनासिकः अनुनासिकात्परोऽनुस्वारो वा भवतीति रङ्गस्वरूपदर्शनं क्रियते ॥७॥

**हृदयादुत्तिष्ठते रङ्गः का१ँ स्येन समनिःस्वरः ।**
**मृदुश्चैव द्विमात्रश्च दधन्वा१ँ इति दर्शनम् ॥ ८ ॥**

यथासौ राष्ट्रिका नार्यरा१ँ इत्यभिभाषते ॥
एव१ँ रङ्गः प्रयोक्तव्यो नादरस्यमतं यथार्थं सुराष्ट्रदेशे भवाः सौराष्ट्रिकाः स्पष्टार्थमन्यत्तु ।

द्वितीय चतुर्थी कण्डिका ॥

**स्वरा गडदबाश्चैव ङणनमाः सहोष्मभिः ।**
**चतुर्णां पदजातीनां पदान्ता दशकीर्तिताः ॥ १ ॥**

स्वाः अकारादयः गडदबाङणनमाश्चाष्टौ । ऊष्माणौ च षकारमकारौ इति दश पदान्ताः पादैः सह भवन्तीत्यर्थः चवर्गाज्जकारः हवर्गाद्धसकारः पदान्तः पादैः सह न सम्बन्ध्यन्ते कचटतपानां पदान्तरेण सम्बन्धेऽतिप्रसिद्धत्त्वात्तोच्यते खफछठथफा घझढधमाथ न सम्बन्ध्यते शकारहकारौ चोष्ममध्यौ सम्बध्येते इति पदान्ता दशेत्युक्तं नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चत्त्वारि पदजातानि उदाहरणानि अग्ने आयाहि इर्गट्रेत्वादि स्वाराः पदान्ताः वाग्ड्हहहह विम्बाऽबृहत् तदिन्द्र चिष्टुविह यद्दति केचित्तां त्वंकवित्वजनासी तन्नोमिथः त्वंभरामसि निष्यषीभुवः स्वरिति गादयोदश ॥१॥

स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च ।
व्यञ्जनान्यनुवर्त्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वरः ।। २ ।।

स्वरप्रधानं वै स्वयमाचार्यः प्रतिजानते ।
मक्षिवद्व्यञ्जनं विद्यात्सूत्रञ्च स्वरं विदुः ।। ३ ।।

दुर्बलस्य यथा राष्ट्रꣳ हरते बलवान्नृपः ।
दुर्बलं व्यञ्जनं तद्वद्धरते बलवान् स्वरः ।। ४ ।।

ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफएव च ।
जिह्वामूपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ।। ५ ।।

स्वरप्रत्यया विवृत्तिः संहितायां तथा भवेत् ।
विसर्गस्तत्र मन्तव्यस्तालव्यो वाऽत्र जायते ।। ६ ।।

सन्ध्यक्षरोपधे सन्ध्यौ प्राप्तलुप्तौ यवौ यदि ।
व्यञ्जनाख्या विवृत्तिस्तु स्वाराख्या प्रकृतिसꣳहिता ।।७।।

ऊष्मान्तं विरतं यश सन्धौ वो भवते च यत् ।
विवृत्तिर्या भवेत्तत्र ताꣳ स्वाराख्यान्तां विनिर्द्दिशेत् ।। ८ ।।

यद्योभावप्रसन्धानमुकारादि परं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्यादन्यदव्यक्तमूष्मणः ।। ९ ।।

ओभावः प्रसन्धानमोकारः तस्य यदा प्रसन्धानता भवति तदा उकारादि परं पदं भवति स्वरान्तं च तादृशं सन्धानं भवति वाधो ऋइति कद्वहमित्यादि ऊष्मणः संधानम् ।।९।।

प्रथमाउत्तमाश्चैव पदान्तेषु यदि स्थिताः ।
द्वितीयꣳ स्थानमापन्नाः शषसप्रत्ययो यदि ।। १० ।।

शषसादिषु परतः प्रथमास्तकारादयः उत्तमाश्च मकारादयो यदा पदान्ता-मकारादयो यदा पदान्तास्तदा द्वितीयꣳ स्थानन्तङ्कारादितपतामापक्षा भवन्ति तस्यविष्णुः सांसमन्तमित्यादि, यदा संयुक्ता द्वितीयानिव दर्शयेत् ।।१०।।

प्रथमानूष्मसंयुक्ता द्वितीयानिव दर्शयेत् ।
न चैनान्प्रतिजानीयाद्यथा मत्स्यः क्षुरोऽप्सरा इति ।।११।।

सकारादिषु परतस्तकारादयो द्वितीयथकारादिसदृशा वृउच्चारशाय । न तु द्वितियाएव स्फुटमुच्चारणीयाः गायत्र्यादिछन्दादिस्वरूपं सामान्येन प्रतिपाद्यते ॥११॥

द्वितीयस्य पञ्चमीकण्डिका ॥

**छन्दोमानं न वृत्तं च पादस्थानं त्रिकारणम् ।**
**ऋचः स्वछन्दवृत्तास्तु पादास्त्वक्षरमानशः ॥ १ ॥**

पादस्थाने पदान्तो मंत्रः श्लोकस्थत्रिकारणं पदान्तं छन्दोमानं च वृत्तं चेति चौणि कारणानि लौकिकं श्लोकादि गुरुलघुपरिज्ञानं गायत्र्यादिरूपभवधार्यते ऋचां तु स्वाभाविकं गायत्र्यादिछन्दः गुरुलघोरक्षरं छन्दोवृत्तमक्षरगणनयामानं छन्दोविभागावगमायावस्थितमिति नातीव छन्दोलक्षणेनेह प्रयोजनं स्वछन्दोवृत्तं च सामानीति स्वच्छन्दोवृत्तमक्षराणां मात्रे नाक्षरमानशः ।

**ऋवर्णऽ० स्वरभक्ति ज छन्दोमानेन निर्दिशेत् ।**
**प्रत्ययेन समाहारेफं मिमीत स्वरभक्तिषु ॥ २ ॥**

ऋकारे स्वरे स्वरे यो रेफः स्वरभक्तावसौ रेफः स्वरभक्तौ च यस्मान्नाधिक्येनाक्षरगणनाया छन्दोमाने च गणनीयमक्षराणां तरस्वात् अषेसि अर्हसीत्यादौ स्वरभक्तिविषये अरेफं अपृथ्ऽभूतरेफं वर्णमिमीत गणयेदिति ॥

**ऋवर्णे तु पृथग्रेफः प्रत्ययस्तु पृथग्भवेत् ।**
**विद्याल्लघमृकारं तु यदि तूष्माणसंयुक्तः ॥ ३ ॥**

ऋवर्णे तु एकस्मिन्नैष रेफमात्रा व्यञ्जनरूपा प्रतीयते तेनस्वरूपमक्षरमिति प्रत्ययो मात्रैकदेशाऽवधार्यते । व पृथक्कंद्वयं प्रत्ययस्तु पृथग्भावात् विद्याल्लघुमृकारं ऊष्माणऋवर्णौ यदि संयुक्तो नसम्बहस्तदा लघुस्वराख्यो वर्णो विज्ञायते ॥

**ऊष्मणैव हि संयुक्तऋकारो यत्र पीड्यते ।**
**गुरुवर्णः सविज्ञेयस्तृचं चात्रानुदर्शनम् ॥ ४ ॥**

ऋकारऊष्मणैव शकारादीनां सम्बन्ध्यमानः स्वरोऽपिगुरुर्भवति न लघुस्तृचमित्युदाहरणम् ॥

**ऋषभं च गृहीतं च बृहस्पतिं पृथिव्यां च ।**
**निर्ऋतिं पञ्चमा ह्यत्र ऋकारो नात्र संशयः ॥ ५ ॥**

निर्ऋतिः पञ्चमो येषां ते ऋषभादय ऋकारा विकाराः स्वराविज्ञेयाः ॥५॥

**शषसहरादौ रेफः स्वरभक्तिर्जायते द्विपदमन्धौ ।**
**इउवर्णाभ्यार्ठ० हीना क्वचिदेकपदा क्रमवियुक्ता ॥ ६ ॥**

शषसहानां रआदिर्यस्य तच्छषसहरादिपदं तत्र एकपदा स्वरभक्तिर्जायते किंभूताइत्याह् । इउवर्णाभ्यां हीना अषसीत्येवं प्रयोक्तव्येत्यर्थः क्वचिदेकपदा उपोह्मोयमिति एषा एकपदा भूतपूर्वापरविभाग क्रमयुक्ता ॥७॥

**स्वरभक्तिर्द्विविधा लृकारो रेफ एव च ।**
**स्वरोदाव्यञ्जनोदा च विहिताक्षरचिन्तकः ॥ ७ ॥**

स्वरादुदेतीति स्वरोदा ऋकाराख्या व्यञ्जनादुदैतीति व्यञ्जनोदा-रेफाख्या ॥

**शषसेषु स्वरोदार्याठ० हकारेव्यञ्जनोदयाम् ।**
**शषसेषु विवृतां तु हकारे संवृत्तांविदुः ॥ ८ ॥**

शषसविषये स्वरोदयां विवृतां च स्वरभक्ति विदुः अर्षसीत्यादि इकारविषये व्यञ्जनोदया संवृत्तां च जानन्ति अर्ह्सीति ।

**स्वरभक्ति प्रयुंजानस्त्रीन्दोषान् परिवर्ज्जयेत् ।**
**इकारं चाप्युकारं च ग्रस्तदोषं तथैव च ॥ ९ ॥**

इउवर्णाभ्यां हीनेति यदुक्तं तदेव सविशेषमुच्यते अर्षसि अर्ह्तीति स्थान-करणनिष्पीडनेन प्रयोक्तव्यइत्यर्थः ।

**संयोगपरं छपरं विसर्ज्जनीयं हि मात्रिकं चैव ।**
**आसानिकं च न लघुसानुस्वारं घुडंतश्च ॥ १० ॥**

संयोगः परोयस्याक्षरस्य छात्परं विसर्ज्जनीयमक्षरं द्वेमात्रे यस्याकारा-देस्तद्द्विमात्रिकमवसाने भवमावसानिकं सहानुस्वारो वर्त्ततद्दति सानुस्वारं द्विधा-गतिर्यस्य ।

षष्ठी कण्डिका ॥

वेदे श्लोकादिना वृत्तं भवतीति गुरुवर्णाः न तु प्रथ्यादिगाथावधारणं छन्दोलक्षणतः कर्त्तव्यमित्युदाहरणरूपेणोच्यते ॥ १ ॥

**पथ्यापादः प्रथमो द्वादशमात्रस्तथा तृतीयोऽपि ।**
**अष्टादशो द्वितीयः समापनत पञ्चदशमात्रः ॥ १ ॥**

पूर्वः पादः सप्ताक्षरो द्वादशमात्रो द्वादशमात्रस्तथा तृतीयोऽपीति एकादशाक्षरोऽष्टादशमात्रो द्वितीयः पादः समापनोऽन्तिमश्चतुर्थो दशाक्षरः पञ्चदशमात्रः ॥ १ ॥

पथ्यालक्षणमुक्तं या त्वन्या सा स्मृता विपुला ।

पूर्वलक्षणेन विपुलानिपादनिधानं समाप्तिरूपा दशाक्षरश्चतुर्थः पादो द्वादशमात्राः ससापनः पुनः पञ्चदशमात्रइति सकारादिकाः पञ्चेति पथ्याया यल्लक्षणविपुलायाः किन्तु । यास्त्वन्येति पञ्चदशमात्रः पादे द्वितीये इतिणदव्यत्यासामेदो यच्छेषः ।

अक्षराणां लघुह्रस्वमसंयोगपरं यदि ॥ २ ॥
तत्संयोगोत्तरं विद्याद् गुरुदीर्घाक्षराणि तु ।

गुर्वक्षराणां मध्ये यत् ह्रस्वं तक्लघु मद्दस्व तक्लघु—

**संयोगपरं दीर्घाणि चाक्षराणि गुरूणि च ।**
**विवृत्तिर्यत्र दृश्येत स्वारस्यैवाग्रतः स्थितम् ॥ ३ ॥**

गुरुः स्वारः स विज्ञेयः क्षैमस्तत्र न विद्यते ।

विवृत्तिः परभूतः स्वरो गुरुः । न क्षैप्रो न लघुरित्यर्थः । अष्टप्रकारकं विज्ञेयं पदानाꣳ स्वरलक्षणम् ॥ ४ ॥

**अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।**
**मध्योदात्तꣳ स्वरितम् द्विरुदात्तमित्येता अष्टौ पदसञ्ज्ञा ॥ ५ ॥**

अष्टावेव प्रकाराः सम्भवन्तीति तत्रोदाहरणानि प्रदृश्यन्ते ॥ ५ ॥

अग्निः सोमः प्रवोवीर्यꣳ गविषा स्ववर्नस्पतिः ।

अग्निर्वृत्राणीति अग्निरन्तोदात्तः, सोमः पवतेइति सोम आद्युदात्तः, प्रवोयह्वमिति प्रउदात्तः, वद्दत्यनुदात्तो, बलं न्युब्जं वीर्यमिति वीर्यनीचस्वरितं, हविषा विधेसेति हविषामध्योदात्तं, भूर्भूवत्स्वरिति स्वः स्वरितं, वनस्पतिरिति वकारः स्पकारश्च द्वे उदात्ते ।

अन्तर्मध्यमयोर्नाम्युदमनुदनिपाते । आद्यात्स्वरितमुपसर्गेद्विर्नीचमाख्यात इति ॥ ६ ॥

**स्वरितात्पराणि यानि स्युर्द्वार्यान्यक्षराणि तु ।**
**सर्वाणि प्रलयस्थान्युपादान्तं निहन्यत ॥ ७ ॥**

निहोता सत्सीति स्वरितात्तकारात्पराणि सत्सीति धार्याण्यक्षराणीत्यूर्द्ध्वं-महाश्वागतानि प्रचयस्थानानि स्वरितस्य परिचयतत्वात् अपोदात्तमुपोदात्तमाद्यं स्वरितं निहन्यते गान्धारगीत्योच्चर्यंतद्वाति एतदेव विशेषतउच्यते ॥ ७ ॥

**प्रचयो यत्र दृश्येत तत्र हन्यात् स्वरं बुधः ।**
**स्वरितः केवलो यत्र मृदुन्तत्र निपातयेत् ॥ ८ ॥**

प्रचये तत्र आहननं वर्हिषीति प्रचयाविर्भावः केवलस्य स्वरितस्य मृदुत्वम् ॥ ८ ॥

**पञ्चविधमाचार्यकन्नाम मुखन्याशःकरण प्रतिज्ञोच्चारणा ।**
**अत्रोच्यते श्रेयः खलु वै स प्रतिज्ञानोच्चारणा ॥ ९ ॥**

आर्यकंपञ्चमकारहस्ताग्रे दृषितनिवेशादिमुखन्यासोऽङ्गुस्ठाऽङ्गुल्याधौस्वर-निवेशः करणं शिक्षाशास्त्रं प्रतिज्ञा गुरुपरंपरागतं मन्त्ररूपास्ववधारणं लक्षणाग-मानुसारिणःप्रयोगउच्चारणं सम्यक्शास्त्रं यद्यपि न दृश्यते तथाऽप्यागमावधारण-मवश्यं कर्त्तव्यमिति श्रेयः । खलु प्रतिज्ञानोच्चारतेति एतदेव विशेषेणौच्यते ॥ ९ ॥

**यस्य कस्यचिद्वर्णस्थ कारणं नोपलभ्यते ।**
**प्रतिज्ञा तत्र बोढव्या करणं हि तदात्मकम् ॥ १० ॥**

वर्णस्वरादि विषयं करणं शिक्षादिशास्त्रं न ज्ञायते तथाऽध्वागमोऽयं ततो-ऽवधारणीयं प्रतिज्ञा तत्र वोढव्या करणस्यायमपूर्वकं लक्षणं साम्नां यत्र लक्षणं लौकिकानामपि शब्दानां व्याकरणाख्यं लक्षणं प्रयोगभूतमभ्युपगब्यते इति उच्यते करणं हि तदात्मकमिति लक्षणमनुसृत्य स्वस्ववर्णोच्चारणं यत्नतः करणीयं नारदादी-नामप्ये तद्यत्नतोऽवधारणीयमित्याह ॥ १० ॥

**तुम्बुरुनारदवसिष्ठविश्वावस्वादयश्च गन्धर्वाः ।**
**सामसुनिभृतम् करणर्ठ०स्वरसौक्ष्म्यात्तेऽपि हि न कुर्युः ॥११॥**

निभृतं परिपूर्णकरणलक्षणं तेपि हि न कुर्युः न योजयितुं शक्नुव-न्तोत्यर्थः ॥ ११ ॥

द्वितीयस्य च सप्तमी कण्डिका ।

शरीरवाङ्मनो नियमनिरूपणं सम्यक्पाठसिद्धिरधिक्रियते ।

**कौक्षेयाग्निर्ठ० सदारक्षेदश्नीयादशनर्ठ०हितम् ।**
**जीर्णाहारःप्रबुद्धः सन्नुषसि ब्रह्म चिन्तयेत् ॥ १ ॥**

कुक्षौ भवं कौक्षेयम् उदराग्नि हितपथ्याशनेन चाग्नेरक्षा, परिणते चाहारे ब्रह्मणश्चिन्तनम् । वाङ्मनोर्व्यापरेणावधारणं कार्यम् ।। १ ।।

**शरद्विषुवतोऽतीतादुषसुत्थानमिष्यते ।**
**यावद्वासन्तिकी रात्रिर्मध्यमा पर्युपस्थिता ।। २ ।।**

शरन्मध्ये यो बिषुवान् तस्मादतीतात् उषसि रात्रिशेषे पाठार्थं उत्त्थानमिष्यते यावद्वासन्तिकी वसन्तमध्ये भवा पर्युपस्थिता प्राप्ता रात्रिस्तावदुत्त्थाने रात्रेर्महत्तीत्वात् ।। २ ।।

**आम्रपालाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः ।**
**वाग्यतः प्रातरुत्त्थाय भक्षयेद् दन्तधावनम् ।। ३ ।।**

ततः संध्योपासनं कार्यम् ।। ३ ।।

**खदिरश्च कदम्बश्च करबीरकरंजयोः ।**
**सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ।। ४ ।।**

खादिराणां अवयवाः पुण्या कण्टकिनः क्षीरिणोऽकण्टका यशस्विनः ।।४।।

**तेनास्यकरणर्ठ० सौक्ष्म्यं माधुर्यं चोपजायते ।**
**वर्णार्ठ०श्च कुरुते सम्यक्प्राचीनौदब्रजिर्यथा ।। ५ ।।**

शाकादिना ताम्बूलभक्षणं प्रसिद्धम् तेन खदिरादिना अस्य पुंसःक्षारणे वाचिसौक्ष्म्यं श्मेष्मनिवृत्त्या गुरुत्वं च निवर्तते । सूक्ष्मां मधुरां च वाचं पद्यते वर्णांश्च कण्ठादिस्थानेषु सम्यग्भूतान् निष्पादयति इत्येवं प्राचीनौदब्रजिराचार्योमन्यते ।। ५ ।।

**त्रिफलां लवणाख्येन भक्षयेच्छिक्षकः सदा ।**
**अग्निमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा ।। ६ ।।**

त्रिफलां लवणाख्येन संयुक्तां भोजनोत्तरकालं सायं शिष्यो भक्षयेत्, जाठरमग्निं बुद्धित्विषा जनयति । अग्निपाटवेन स्वरवर्णसौष्ठवं भवतीति ।

**कृत्वा चावश्यकान् धर्मान् जठरं पर्युपास्य च ।**
**पीत्वा दुग्धं घृतम् चैव शुचिभूत्वा ततो वदेत् ।। ७ ।।**

अवश्यं सदा भवतीत्यावश्यकः दन्तधावनस्नानसन्ध्योपसनादयः पूर्वं जठरं पर्युपास्य मूत्रपुरोषोत्सर्गं कृत्वाऽन्यच्चाशुचित्वे—शब्दस्पर्शादौ धूमं घृतप्राशनं कृत्वा स्नानादिना शुचिर्भूत्वा ततो वदेत् मन्त्राध्ययनं कुर्यात् ।। ७ ।।

न ताठं० समीरयेद्वाचं या प्राणमुपरोधयेत् ।

**मन्त्रेणोपक्रमेत् पूर्वठं०सर्वशाखास्वयं विधिः ।**
**सप्तमन्त्राननतिक्रम्य यथेष्टां वाचमुत्सृजेत् ॥ ८ ॥**

मन्त्रसप्तकमुपांशु पठित्वा यथेष्टां वाचं मन्द्रादिस्वरेणोच्चारयेत् प्राणोपरोधकमन्यमुच्चैः शब्दोच्चारणंविशेषतः प्रातर्न कार्यमित्यर्थः ।:

प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चोपजायते ॥ ९ ॥

स्वरव्यञ्जनमाधुर्यं कुप्यते नात्र सठं०शयः ।

वर्णानां माधुर्ये यत्स्वाभाविकं तन्निवर्त्ततइति अप्रवीणस्यामयिकस्योपाध्यायस्य सकाशेनाधिगन्तव्यं, प्रतिष्ठितादध्ययनं कर्त्तव्यमित्याह ॥ ९ ॥

**कुतीर्थादागतान्दग्धमपवर्णंचभक्षितम् ।**
**न तस्य परिमोक्षोऽस्ति पापाहेरिवकिल्बिषात् ॥ १० ॥**

यथा कुतीर्थादहिषोऽभावस्थानाज्जलौघेनानीतं विषमपवर्णैर्दुर्ज्जनैः दुष्कृतिभिर्भक्षितं स्यात् पापरूपात्सन्निर्गताहिषाद्यथा मुक्तिर्न भवति एवं कुतीर्थादुपाध्यायादागतमध्ययनमपवर्णैर्मुर्खैर्भक्षितमधीतं तस्मादध्ययनात्पापिष्ठादुपाध्यायादागतांत्र परिमोक्षो भवति न कुसंस्कारो निवर्तत इत्यर्थः ॥

**सुतीर्थादागतं जग्धठं०स्वाम्नातठं० सुप्रतिष्ठितम् ।**
**सुस्वरेण सुवक्तेण प्रयुक्तम् ब्रह्म राजते ॥ ११ ॥**

उपाध्यायात्सुतीर्थात् शोभनादागतमधीतं उपाध्यायस्य सम्यगाम्नातं शिष्येषु च प्रतिष्ठितमभ्यस्तं स्थितम् । अप्रतिष्ठतेन सुस्वरेणापि प्रयुक्तं न राजतइत्यर्थः । विकृतमुखानाम् पाठो न शोभतइत्याह ॥ ११ ॥

**न करालो न लम्बोष्ठो न च सर्वानुनासिकः ।**
**गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति ॥ १२ ॥**

नासाक्षिकरणादिना विकृतः करालः नासिकायाः प्राधान्येन यश्चशब्दमुच्चारयति स सर्वाऽनुनासिकः कण्ठप्राधान्येनशब्दोच्चारणाद्गद्गदो भवति । वाक्स्तम्भेन बद्धजिह्वः प्रयुज्यतइति प्रयोगाञ्छब्दान्वक्तुमर्हतीति अदुष्टकरणः संयतचित्तः शोभनं पठतीत्याह ॥ १२ ॥

**एकचित्तो निरुन्नतिस्तानगानविवर्जितः ।**
**स तु वर्णान्प्रयुञ्जीत दन्तोष्ठं यस्य शोभनम् ।। १३ ।।**

स्वाध्यायविषयं चित्तं यस्य स एकचित्तः अप्रगल्भो-भ्रान्तिरहितः अति विलम्बितशब्दौच्चारणाभावात्तानगानविवर्ज्जितः अविकृतदन्तोष्ठत्वाद्रमणीय-शब्द उच्चरति, अहंकाररहितानां विद्या प्रवर्त्ततइत्याह ।। १३ ।।

**पञ्च विद्या न गृह्णन्ति चण्डास्तब्धाश्च ये नराः ।**
**आलसाश्चानरोगाश्च येषां च विसृतम् मनः ।। १४ ।।**

साहंकारः कोपप्रधानेनोपाध्यायादीनाप्रदृतिं भजते चण्डस्तच्चातुर्येणाध्यापने अप्रवृतः, स्तब्धउक्तमपि कदापि तावन्नो बुध्यते, अलसो मानसादिकरणानामवधा-धारणे अपाटववान्, न रोगः अरोगः सर्वकाल-रोगपरिदुष्टोऽनरोगः, विसृतं चञ्चलं मनः त्वराचाध्ययने न कर्त्तव्येत्युच्यते ।। १४ ।।

**शनैर्विद्यार्ठं० शनैरर्थानारोहेत पर्वतर्ठं० शनैः ।**
**शनैरध्वसु वर्त्तेत योजनानि परं ब्रजेत् ।। १५ ।।**

अर्थार्ज्जनमध्वगमनं पर्वत्तारोहणं वाऽत्वरस्य यथा सम्यग्भवति तथा विद्या शनैर्यथावदभिनिवर्त्तते प्रहरद्वययोजनं भवति, उच्चैरुच्चार्यमाणशब्दः पञ्चादश-वदता विच्छिद्यमानो विरम्यमानमुत्पादयति इत्याह ।। ९५ ।।

**योजनानार्ठं० सहस्राणि शनैर्याति पिपीलिका ।**
**अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ।। १६ ।।**

यन्नपरेणासामर्थ्येन व्यापारः शोभनो निर्वर्त्तते । न च बहुबालतयाऽपि कृतं शोभनं भवत्तीत्याह ।। १६ ।।

**नहि पार्ष्णिहता वाणी प्रयोगान्वक्तुमर्हति ।**
**बधिरस्येव तल्पस्था विदग्धा वामलोचना ।। १७ ।।**

अतएववेति पुरुषैरतिसमयोचितं व्यक्तं गानं कामिन्या यथाबेरत्वमापद्यते-एवमुच्चैरुचार्यमाणा पश्चाद्विच्छिन्ना वाणी सर्वस्योद्वेगं जनयति षार्णिः पादस्य पश्चिमो भागो बधिरस्य तल्पस्था एकस्मिन् शयने स्थिता विदगधा सुरते काम-शास्त्रें प्रवीणा वामलोचना रमणीयलोचना यथा रतिप्रयोगान् करोति एवं

पश्चाद्विच्छिन्ना तु प्रयोक्तव्या । उपांशु त्वरितं चैव वित्रंस्यतेऽबाधितं सहस्रकृत्वोपि न निर्मलतामासादयतीति तथा न गणयितव्यमित्याह् ।। १७ ।।

**उपांशु त्वरितं चैवं योऽधीते वित्रसन्निव ।**
**अपि रूपसहस्रेषु सन्देहेष्वेव वर्त्तते ।। १८ ।।**

रूपं शब्दोच्चारणं तद्विषये । सन्देहेष्वास्ते प्रणवेनाचार्यादध्ययनं कार्यं न पुस्तकादिना, शुद्धं मन्त्रस्वरूपं भवतीत्याह् ।। १८ ।।

**पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतङ् गुरुसन्निधौ ।**
**राजते न सभामध्ये जारगर्भा इव स्त्रियः ।। १९ ।।**

जाराद् गर्भोयासां ताः यथा न भ्राजन्ते । एवं दुष्टादागमादध्ययनं अप्राज्ञेनाऽपि यत्र परेणाध्ययनादौ भवितव्यमित्युच्यते ।। १९ ।।

**अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम् ।**
**अबन्ध्यन्दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु ।। २० ।।**

अञ्जनपर्वतस्य व्यये क्रियमाणेऽपचयो दृश्यते, वल्मीकस्य च पिपीलिकाभिरपि सञ्चयः क्रियते । एवं तत्वं क्रियमाणस्य सञ्चितचिन्तापाटवं यतो नावगम्यम् । अतोऽध्ययनादिभिः शास्त्राद्यैरवंध्यमशून्यमहः कार्यमबलोऽपि यत्नवानर्थं साधयति न तु बलवानहितयत्न इति पूर्वोक्तविद उच्यते ।। २० ।।

**यत्कीटैः पांसुभिः श्लक्ष्णैर्वल्मीकः क्रियते महान् ।**
**न तत्र बलसामर्थ्यमुद्योगस्तत्र कारणम् ।। २१ ।।**

विद्याभ्यासः सर्वदा कर्त्तव्यो यथा अधीतस्य नाशो न भवतीत्याह्—

**सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्त्तिता ।**
**आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ।। २२ ।।**

गुणिता अभ्यस्ता परिवर्तिता । शिष्याणां परिकीर्त्तिता प्रतिपादिता, प्रयत्नेन सुखेन परिवर्त्तते आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमुद्गतात् प्रदेशान्निम्नं स्थानं यथा जलं गच्छति, विद्यार्थिना प्रहरद्वयं हेमन्ते, प्रहरत्रयं च वसन्तादौ शास्त्रमनुशीलनीयमित्याह ।। २२ ।।

**हयानामिव जात्यानामर्द्धरात्रार्द्धशायिनाम् ।**
**नहि विद्यार्थिनां निद्रा चिरन्नेत्रेषु तिष्ठति ॥ २३ ॥**

अन्नपाननारीव्यसनं वर्ज्जनीयम् दूरगमने च यत्नः श्रावणीय इत्याह ॥२३॥

**न भोजनविलम्बी स्यान्न च नारीनिबन्धनः ।**
**सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद् गरुडहंसवत् ॥ २४ ॥**

न नार्यो निबन्धनमवष्टम्भभूता यस्य, गरुडइव धावेत् । जनसमूहनिवासः कृष्णसर्पवदवगन्तव्यः, अतिभोजनं विषवत्परिहर्तव्यम् । स्त्रियश्च राक्षस्य इव वर्ज्जनीया इत्याह ।

**अहेरिव गणाद्भीतः सौहृद्यं नरकादिव ।**
**राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः, स विद्यामधिगच्छति ॥ २५ ॥**

अलसो विद्याधनादि न साधयति, क्लीबो नपुंसकश्च पुत्रादिकं न लभते, मानी चातितुष्टोऽतिऽशीलो न विद्याभाजनः, नाऽयं विद्यामासादयतीति लोकप्रमादाद्भीतो न विद्यां गृह्णाति । अथ प्रातः पुनः प्रातः इति कालप्रतीक्षको न विद्यामान्यो भवतीत्याह ॥ २५ ॥

**न शठाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा न च मानिनः ।**
**न च लोकरवाद्भीता न च श्वः श्वः प्रतीक्षकाः ॥ २६ ॥**

यथा भूतलादुदकम् महता खननेन लभ्यते एवं पौनःपुन्येन गुरुसेवनादसंदिग्धौ पाठबोधौ प्राप्येते इत्याह ॥ २६ ॥

**यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ।**
**एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ २७ ॥**

स्थानकरणैरपीडयता वर्णस्फुटमुच्चारयता स्वाध्यायादिकर्त्तव्यं ब्रह्मलोकप्राप्त्यर्थमिति वर्णरूपावधारणार्थं शिक्षेति शास्त्रान्ते प्रतिपाद्यते ॥ २७ ॥

**शुश्रूषारहिता विद्या यद्यपि मेधागुणैः समुपयाति ।**
**बन्ध्येव यौवनवती न विद्या फलवती भवति ॥ २८ ॥**

**द्यूतं पुस्तकवाद्यं च नाटकेषु च सक्तिका ।**
**स्त्रियस्तन्द्रा च निद्रा च विद्याविघ्नकराणि षट् ॥ २९ ॥**

**यथा व्याघ्री हरेत्पुत्रान् दंष्ट्राभिर्न च पीडयेत् ।**
**भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥ ३० ॥**

**एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडिताः ।**
**सम्यग् वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३१ ॥**

शुनी व्याघ्री बिडाली चाचिरजातापत्यानि दन्तैरपीडयन्ती नयति । यदि न सम्यक् प्रतिगृह्णाति तदा पतन्ति । यदि वाऽतिबलेन गृह्णाति तदा भेद उपघातोऽपत्यानां भवतीत्येवं वर्णोच्चारणं कार्यम् । व्यक्ताः स्फुटाः प्रयोगास्तु जपे स्वाध्यायेऽध्यापने चेति । द्वितीयस्याष्टमी कण्डिका । इति श्रीभट्टशोभाकर-विरचिते नारदीयशिक्षाविवरणे द्वितीयः प्रपाठकः समाप्तः । इति शिक्षाभाष्यं समाप्तम् ॥

# सामवेदीया गौतमी शिक्षा ॥

ॐ नमः सामवेदाय ॥

अथ त्रयस्त्रिर्ठ॰शद्व्यञ्जनानि भवन्ति। स्पर्शान्तस्थोष्माणश्चेति। तत्र ककारादयो मकारान्ताः स्पर्शाः पञ्चविंशतिश्चत्वारोऽन्तस्थास्ते यरलवाश्च-त्वारश्चोष्माणस्ते हशषसाश्चेत्यनेकम् व्यञ्जनम् यत्रोपर्युपरि संयुक्तम् तत्संयोगसंज्ञं भवति। इत्यस्वरम् च पूर्वमक्षरम्, अथ त्रिविधः संयोगपिण्डो भवत्ययस्पिण्डो दारुपिण्डस्तथोर्णापिण्डश्चेति। यमसहितमयस्पिण्डम्, दारुपिण्डमन्तस्थैर्युक्तम्। यमान्तस्थवर्जन्तूर्णापिण्डमित्यन्तस्थयमसंयोगे विशेषो नोपलभ्यत इत्यशरीरं यमं विद्यादन्तस्थः पिण्डनायकः ॥ १ ॥

अथानन्त्या विंशतिर्भवन्ति ते कचटतपाः खछठथफा गजडदबा घझढधभाश्चेत्यथान्त्याः पञ्च ते ङञणनमाश्चेत्यथानन्त्याश्चत्वारस्ते सयमास्ते कुं खुं गुं घुं इत्यनन्त्यान्त्यसंयोगेन अन्त्यपूर्वेऽन्त्योत्तरे व्यवधानवर्जिते तत्र यमा वर्त्तन्ते न संशय इति ॥२॥

अथ सर्वेषां व्यञ्जनानां द्विर्भावो भवति द्वादशाक्षरवर्जं ते खछठथफा धझढधभा रहयोश्चेति। हकारस्यैके मन्यन्ते यदि भवति रहयोर्मध्ये। सर्वत्र स्वरात्संयोगादिः क्रामति रेफहकारवर्जम्। ताभ्यां परं क्रामति। न क्रमते परमु-पध्मानीयानुस्वारजिह्वामूलीयानां विसर्जनीयपरं च क्षः तसप्रत्यये ॥ ३ ॥

अथ द्वयक्षराणामुदाहरणं द्वौ तकारौ तस्मात्ते सत्तमाः यथा प्रैयवेत्तेव भवति। द्वौ नकारौ यन्नमस्यम्। शन्नो देवीरुन्नयाभि। द्वौ जकारौ यज्जायथाः। उज्जिहानाः। अस्थिमज्जेति। द्वौ मकारौ यम्मित्रम्। तम्मन्ये। शम्मघवन्। द्वौ चकारौ यदद्यकच्च। परमाच्चिद्यथा शुभार्गवे साम्न्युच्चाते जातमन्धसाः। द्वौ सकारौ यस्सुक्षिती। पुनानस्सोऽग्निस्समिधा। द्वौ यकारौ यथोभय्यो धानंजय्यः महरय्या निवर्त्तस्वेति। द्वौ दकारौ यद्दूरे। यद्दिद्धक्षे। मोद्दालको हारुणिः। द्वौ लकारौ स्वर्गाल्लोकादूद्धवमुल्लिखेदेभिरेवेनल्लोकैः। द्वौ ङकारावृश्यव्रते श्वाऋसइन्द्रभुङ्ङिति, मघवन्निन्द्र भुङ्ङिति प्रभुङ्ङिति इन्द्रस्तसरपूता २३४५ एवमादीनि ॥४॥

चकारछकाराविन्द्रमच्छेति। कारकारौ वेत्याहीति। दकारधकारौ शुद्ध-मिति। बकारभकारावबभक्षस्तृतीयमिति। य एव रेफषकारावर्षासोमद्युमत्तमं, एदं बर्हिरिति रहौ। विह्लुतमिति हरौ। दर्शेति रशौ। स्पर्शेति सपौ। दयौ देवस्थाने दद्यौ। रक्रान्भूमिरततनत्समुद्रर्ठ॰समचूकुपदिट्। इडा। २३४५ एवमादीनि ॥ ५ ॥

यानि चान्यानि यथा करणे सर्पसामधर्मरोचनाभीवर्तेषु संय्यमन्नव्याय-मन्वियमन्त्रममायमन्नुद्युल्लोकानरोचयोहोयितंब्वो ३ ड्रा ३ स्प्रामृतीषहो वा यलवैर्द्विभावस्तैः पूर्वः सानुनासिकस्तुल्यस्थानकरणपरे क्रमप्रतिषेधः क्रमप्रतिषेधः ॥ ६ ॥

अथ त्र्यक्षराणामुदाहरणमक्षरमिति ककषास्तमृव्स्वसम्भवाः । यच्छिक्षसि चचछास्त्वामिद्धि ददधास्त्रैणोके, शशवा विश्वोहाइ । ब्रह्मेति हनमाः । विष्णुरिति षणणाः । पृश्निरिति शशनाः । सृप्रकरस्न्नमूतय इति ससनाः । सार्वकामिके, ननका सर्वान् कामानशीमही २३४५ एवमादीनि ॥ ७ ॥

आम्म्रे ममराः । दीर्घे रगघाः । पादमध्ये यदयाः । पादोपादधीये ननताः । गौश्रृङ्गे ततसास्तरणिरित्सषासती ३ । षट्ट्सु टटसाः । खड्गे डडगाः । कुब्जे बबजाः । वज्त्रे जजराः । ददरा वरुणसन्नीन्दुः समुद्द्रमुर्विया विभातीति २३४५ एवमादीनि ॥ ८ ॥

आख्यातं कखयाः । रकखा मूर्क्खम् । ङ्ङ्खाः शङ्ङ्खम् । ञञजाः शार्गेहावाञ्जाता २३४ यि, वियञ्जते स समञ्जते । पूज्ज्यम् जजया । दूड्ढ्यम् डढयाः । तुब्भ्यं बभयाः । सन्नषडह्इति ननषाः । रकका अर्कपुष्पे साम्न्यकर्को देवानां परमे वियो वियो मा २३४५ नक्र्कस्य देवाः परमे वियो वियो मा २३४५ एवमादीनि त्र्यक्षराणामेतदुदाहरणं यथोक्तम् । इति प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

अथ चतुरक्षराणामुदाहरणꣳ० सयमायमाभ्यार्ꣳ० सवमार्ꣳ०स्तावद्यथाग्नि-रिति द्वौ गकारौ यमनकारौ । यज्ज्ञौ इति द्वौ जकारौ यमञकारौ । समन्ते दधय-ममकारा भरामेद्दध्यं क्षणवामा हवीर्ꣳ०षि तायि । गृबभ्णीत इति बभ-यमणकाराः। उन्मृद्दनीतानिति दद-यमनकाराः । सगिड्ढ्मेति डढ-यममकाराः । पाप्प्मेति पप-यममकाराः । बिलम्बसीपर्णे तत-यमनकारा इत्यस्य प्रत्नामनुद्युतमो ये इयाहा एवमादीनि ॥ १ ॥

अथ यमवर्जितानां यथोदङ्ङ्न्यञ्चेति ङङनयाः । कार्ष्मान्वाजीति रषषमाः । यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिर इति ततसथाश्चन्द्रमा अप्प्स्वन्तरेति पयसवाः । हारायणे गगधयाः शग्ग्ध्य्यौहोऽपि शचापतायि । कृत्स्नमिति ततसनाः पङ्क्तिरपि ङङकताः । स्थिरप्स्नुमिति पपसनाः । प्राङ्ङ्क्सुरिति ङङकसाः । कण्वरथन्तरे रजजया मार्ज्यमानस्सुहस्तिया एवमादीनि ॥ २ ॥

प्रेङ्खार्ꣳ०स्तर्ह्यारोहन्तीति रहयास्तथा ब्र्त इति बबराः सन्त्रस्त्रीश्वराश्-श्ब्रामिति शशरबाः । मत्स्याख्येति ततसयाः । श्रौतकक्षे ननदराः, इन्द्राय मद्वने

सुतामिन्द्राय मौ वा । अयज्ज्व्यघट इति जजवयाः । कण्ठ्य इति णणठया वर्णान्त्य- इति ननतया । सुनिक्क्त्सीति ककतसाः । रथन्तरे रशशयाः प्राप्नुवदश्श्यायितो वा एवमादीनि ।। ३ ।।

अथ पञ्चाक्षराणामुदाहरणम् । यथा ज्योतिग्गौरायुस्त्र्यह इति ससतरयाः । सङ्ङ्क्ष्णुस्वेति ङङ्कषणाः । तस्मिन्न्त्वस्वतन्त्रेति ननसतवाः । विश्वप्प्स्न्या इति पपसनयाः । ङङकषवाः पयस्यग्ने युङ्ङ्क्ष्वाही ३ येतवा । पाष्ष्ण्या इति रषषणयाः । शग्ग्ध्व्यार्ठ०ही २ इति गगधवयाः । पूर्गाञ्ञ्जोत्याविति ञञजतयाः । ह्लु वेजसि यक्रुयण्ण्टस्वतामिति णणटसवाः । तार्क्ष्यसमानीति रककषयास्तार्क्ष्यमिहा ३४३ हृ ३ वा यिमा ६५६ एवमादीनि ।। ४ ।।

अथ सयमान्यथा सबुद्ध्न्या इति दधधयमनाः । दुःष्वप्प्न्यर्ठ स्विति पपय- मनयाः । मार्परज्ञाज्जञाः इति जजयमञञाः । मट्ट्ण्या इति टटयमणयाः । शुध्ये- गधयनयाः पति वो अग्घ्न्यानां धेनुनामिषू--२३ ध्यसा उ वा । सक्थ्न्या इति ककथयमनकाराः । प्रथमबद्धिसस्नुमूतय इति ससंतयमनकाराः । प्राग्ग्ध्माखपिबा- मेति गगधयममकाराः । मूद्ध्र्नो विशश्वस्येति रदधधयमनकाराः । कावेरजजयमम- काराः । इत्यबोधाधियग्निज्ज्र्मं उदायिति सृराराया २ एवमादीनि ।। ५ ।।

अथ षडक्षराणामुदाहरणमङ्गेधक्क्म्व्यादाविति द्वौ ककारौ यममकारव- कारयकारा इति । सत्रलात्त्स्न्र्या इति सततसनयाः, साध्यग्ग्ध्र्मवाहमिति रगगधय- ममकाराः ।। ६ ।।

अथ सप्ताक्षरमेकमुदाहृतमङ्के प्रातिशाख्ये हि-नहि न घुञुघुञुक्षुङ्ङ्क्ष्क्ष्वाविति ङङकषकषवाः । गौतमेनोक्तं न सप्ताक्षरात्परः संयोगो भवत्येषा सहस्रवर्त्मात्मा नानावर्तिविभूषिता, संयोगश्शृङ्खला नाम सामवेदनिबन्धनात् ।। ७ ।।

इति द्वितीयप्रपाठकः । इति सामवेदीयगौतमीशिक्षा समाप्ता ।।

—०—

# अथ सामवेदीया लोमशी शिक्षा

लोमश्यां प्रवक्ष्यामि गर्गाचार्येण चिन्तिताम् ।
सामिधानीं यथोक्तं तु स्वाचार्यवचनं यथा ।। १ ।।

ह्रस्वं दीर्घं तथा वृद्धमभिगीतं तु सामगाः ।
मुहुर्मृदङ्गवत्कुर्युः सम्पातोत्थानसञ्ज्ञवत् ।। २ ।।

केन कम्पातितः कम्पः संयोगो येन कम्पते ।
किम् वा कम्प इति प्रोक्तो येनासौ कम्प उच्यते ।। ३ ।।

पूर्वाङ्गेण हृतं पूर्वं पराङ्गेण तु धारितम् ।
व्यञ्जनेन द्विधा भिन्नः स्वरो भीतस्तु कम्पते ।। ४ ।।

दीर्घकम्पेऽध्यर्धमात्रा तृतीये परिकीर्तिता ।
द्वितीये अर्द्धमात्रा तु प्रयोगो घण्टतालवत् ।। ५ ।।

रङ्गस्तु द्विविधो ज्ञेयः स्वरपरो व्यञ्जनः परः ।
पारावतः सवर्णाभो विहितोऽक्षरचिन्तकैः ।। ६ ।।

तस्य मात्रा तु हृदये अणुमात्रा तु मूर्द्धनि ।
नासाग्रे त्वणूनां मात्रा रङ्गस्य परिकीर्तिता ।। ७ ।।

रङ्गे चैव समुत्पन्ने न ग्रसेत् पूर्वमक्षरम् ।
स्वरे दीर्घं प्रयुञ्जीत तस्य नासिक्यमुच्चरेत् ।। ८ ।।

द्विमात्रो मात्रिको वाऽपि नसिमूलं समाश्रितः ।
अन्ते प्रयुज्यते रङ्गः पञ्चमैः सर्वनासिकः ।। ९ ।।

इति प्रथमखण्डः ।।

ककाराद्धं टकाराद्धंठं० हन्वां तिष्ठति दक्षिणे ।
जिह्वाग्रेण तु आभाष्येत्किट्किडाकार एव च ।। १ ।।

करेणुः कुर्विणी चैव हरिणी हारितेति च ।
तथा हंसपदा नाम पञ्चैताः स्वरभक्तयः ॥ २ ॥

करेणुं त्सहयोर्विद्यात्कुर्विणीं ऋद्धिकरयोः ।
हरिणीं दृशयोर्विद्याद् हारितां ऋशकारयोः ॥ ३ ॥

तथा रेफषकारे तु हंसपदां प्रकीर्त्तयेत् ।
या तु रेफषकारी स्यात्काकिनीं तां विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥

रहाभ्यां तु परं नित्यं कामयन्ति विचक्षणाः ।
हरौ तु यत्र दृश्येते न क्रमस्तु तयोर्भवेत् ॥ ५ ॥

रयोर्यदिहकारस्तु दृश्यते मध्यमः क्वचित् ।
द्विर्भावं तत्र जानीयात्प्रेङ्खांस्तद्ध्रि निदर्शनम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥

नैतत् स्वरति पूर्वाङ्गे न पराङ्गे कदाचन ।
न व्यञ्जने न मात्रायां कथं योगो विधीयते ॥ १ ॥

स्वरस्यैव तु पूर्वार्धे व्यञ्जनार्द्धार्द्धपश्चिमे ।
तयोरर्द्धार्द्धसंयोगे स्वरं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २ ॥

अन्तोदात्तं मध्योदात्तं विरतंसंशये पदे ।
अन्तोदात्तं विजानीयादुदात्तः प्रत्ययो यदि ॥ ३ ॥

अन्तोदात्तं नीचस्वरितं विरतं संशये पदे ।
अन्तोदात्तं विजानीयादुदात्तः प्रत्ययो यदि ॥ ४ ॥

अवक्षेपः प्रमाणं च रवो यश्चाप्युपद्रवः ।
यमकः स्वरितं चैव दोषाः पञ्चार्चिचके स्मृताः ॥ ५ ॥

वर्णा विंशतिरेकश्च येषां द्विर्भाव इष्यते ।
अथ मान्त्यास्तृतीयाश्च यलवाः शषसैः सह ॥ ६ ॥

अनुस्वारे विवृत्यां च विरामे चाजरद्वये ।
द्विरोष्ठ्यौ तु विनिर्गच्छ तथौकारयकारयोः ॥ ७ ॥

इति तृतीयः खण्डः ॥

बहूनामप्युकाराणामेकं करणमिष्यते ।
ह्रस्वे दीर्घे च वृद्धे च नानाद्यं करणं भवेत् ॥ १ ॥
बहूनामप्युकाराणां मध्यदीर्घं भवेद्यदि ।
आदावन्ते च करणं मध्यमः पृथगेव तु ॥ २ ॥
बहूनामप्युकाराणामन्ते दीर्घं भवेद्यदि ।
आदावन्ते च करणं मध्यमः पृथगाश्रितः ॥ ३ ॥
आदौ द्विःकरणं यत्र पश्चादुवर्णमेव च ।
आदिमध्यान्तः स विज्ञेयो वायोक्तो यो निदर्शनम् ॥ ४ ॥
आदौ सकृत्यकरणं यत्र पश्चादुवर्णमेव च ।
आदावन्तः स विज्ञेयो वायो शुक्रो निदर्शनम् ॥ ५ ॥
असंयुक्तः पूर्ववर्णः स्याद्युत्तरस्तु परतो यदि ।
उकारेण तु संयुज्यते करणाभ्यासस्तथा भवेत् ॥ ६ ॥
व्यञ्जनान्यनुवर्णानि यान्युवर्णान्त्यान् हितानि च ।
विद्यादिह करणमेतेषामथौकारडकारयोः ॥ ७ ॥
ओष्ठ्यस्वरावनन्तरौ यत्र यत्र संयोगसंयुतौ ।
तत्र सकृत्करणं० स्याद्द्विः करणमतोऽन्यथा ॥ ८ ॥
ओष्ठ्यौ वर्णौ यदि स्यातामसंयोगपरावपि ।
द्विरोष्ठ्यतामेतैः कुर्यादोजिष्ठं पुपुदर्शनम् ॥ ९ ॥

इति चतुर्थ खण्डः ॥

यः स्वरान्तात् पूर्वपदात् परः षणकारमापद्यते ।
तव पदवह्विरते सामसु सन्धिवत्प्रत्यारम्भः ॥ १ ॥

नमौ गुरू नादसञ्ज्ञौ लघुचैवानुनासिकौ ।
संयोगौ सविसर्गौ च नादावेव प्रकीर्त्तितौ ॥ २ ॥
विवृत्तौ च विरामे च सवर्णे प्रत्यये परे ।
अनुनासिकास्तु विज्ञेयाः शेषा नादाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥
मात्रिका नासिका ज्ञेया द्विमात्रा नादसंज्ञकाः ।
सविसर्गास्तु नादाः स्युः सानुस्वारास्तु पूर्वशः ॥ ४ ॥
अनुनासिकास्त ये वर्णा घोषास्तु प्रत्यया यदि ।
नादं तत्र विजानीयाद् अनुद्हेति निदर्शनम् ॥ ५ ॥
नासिकेष्वपि वर्णेषु यो यत्र भजते स्वरः ।
तन्तमेवोपजीवन्ति नासादोषाꣳश्च वर्ज्जयेत् ॥ ६ ॥
अणुमेकमङ्गुष्ठे तु प्रदेशिन्यां तथैव च ।
तृतीये चैव कर्तव्ये प्रणतैवं प्रयुज्यते ॥ ७ ॥
द्वे अण्वन्तरेङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्यां षट्स्मृताः ।
अर्धमात्रतृतीयस्यां प्रणतैवं प्रयुज्यते ॥ ८ ॥
हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तस्थैर्वाऽपि संयुतम् ।
औरसं तं विजनीयात्कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ॥ ९ ॥
हकारꣳ रेफसंयुक्तं कदाचिद्वलसयुतम् ।
उच्चारणीयं कण्ठस्थमेवमीप्सन्ति पण्डिताः ॥१०॥
हकारो यस्य पूर्वस्थो ह्यन्तस्य द्यो भवेत्परः ।
यदकाले वियुज्येत सꣳहितायां न सौरसः ॥११॥

इति पञ्चमः खण्डः ।

व्यञ्जनं शिरसि निर्विष्टो रेफ ऋवर्णतां याति ।
स तु सर्वत्र न कार्यः शषसहकारेषु कार्यः ॥ १ ॥
अक्षरꣳ शषसं चैव यत्र तिष्ठति संयुतम् ।
ऋवर्णं तत्र विद्येत व्यञ्जनं तु विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

अक्षरं यत्र दृश्येत व्यञ्जनं विरते पदे ।
पूर्वाङ्गं तद्विजानीयाद् यत्स्थितं तत्पराङ्गवत् ॥ ३ ॥
रेफस्य च ऋवर्णस्य स्वरभक्तेस्तथैव च ।
अवर्णवत् प्रयोगः स्याद्द्विवच्च व्यञ्जनस्य तु ॥ ४ ॥
मध्यमाठं० श्रुतिमासाद्य द्विविधं दर्शयेत्स्वरम् ।
अधस्येनिषिवत्कुर्याद् ब्रह्मजज्ञानमूर्ध्वगे ॥ ५ ॥
सष्टाङ्गत्वा प्रणतठं० स्यादसक्रन्नीचमुच्यते ।
आयाहि प्रणतं नीचं परिप्राणचतुर्थयोः ॥ ६ ॥
आकारान्तं यदूष्मान्तं घोषं च परतः स्थितम् ।
स घोषवति लोपस्तु विदागाधं तु दर्शनम् ॥ ७ ॥

इति षष्ठः खण्डः ।

अस्थ उस्थे च रङ्गे च गतिलोपे तथैव च ।
एकारौकारलोपे तु त्रिवृत्तिर्व्यञ्जनोदया ॥ १ ॥
अप्रत्यया उवर्णा धढतपराः पक्विववर्जम् ।
उवर्णेषु तु संवृत्ता ज्ञेयास्ते हरीतवर्जम् ॥ २ ॥
द्वितीये विरता या तु चतुर्थे न प्रवर्तते ।
दीप्तामघोगमे विद्यादुपरिष्टात्तु आयतीम् ॥ ३ ॥
ऊतःप्रहूमसा चैव त्सिवावारा तथा मही ।
नित्यायताः प्रयोक्तव्या निर्दिशन्ति विचक्षणाः ॥ ४ ॥
प्राणापाननिगारे च सठं० स्वाद ऋषभे तथा ।
प्रथमस्वरे तु कर्तव्याः किटिकडाकार एव च ॥ ५ ॥
प्राणसान्नि त्यजेत् प्राणं प्रथमं दक्षिणं भवेत् ।
सव्येन तु ग्रहणठं० स्यात्प्राणस्य उच्चयाथवा ॥ ६ ॥
दक्षिणे निसृताः प्राणाः अमानात्त्वन्यथा भवेत् ।
सव्यं पीत्वा अमानस्य तुस्वरोऽस्य मतं यथा ॥ ७ ॥

पादपूर्वा ये उकारा: पदपूर्वास्तथैव च।
ड-इति चेति विज्ञेया डढकारेऽप्ययं विधिः ॥ ८ ॥

मथ्यमाने यथा दध्नि नवनीतं विजायते।
तद्वदिष्टमधः ताभ्य पृथग्युक्तौ च भावयेत् ॥ ९ ॥

शषसहराः दृश्यन्ते तेषु चोदयवर्तिषु।
दीर्घानुस्वारं जानीयात्संयोगे ह्रस्व एव वा ॥१०॥

असंयोगादनुस्वाराल्लघूनासुपयास्यति।
संयोगात्तु परं नित्यटं० सठं॰शयो विनिवर्तते॥११॥

संयोगः परतो यच्च अनुस्वारस्तु पूर्वशः।
ह्रस्वं तं तु विजानीयात्सठं॰ स्थे इति निदर्शनम् ॥१२॥

अनुस्वारस्योपरिष्टात्संवृतो यदि दृश्यते।
स दीर्घ इति विज्ञेयः उभयठं० श्रृणु तच्च नः ॥१३॥

मात्रादिद्विमात्रोऽनुस्वारो द्विमात्रान्मात्रा एव च।
मात्रिकादपि संयोगे मात्रिकस्तु द्विरूपवत् ॥१४॥

इति सप्तमः खण्डः ॥

यवौ तु रेफसंयुक्तौ रेफ आद्यो भवेद्यदि।
पूर्वाङ्गं तद्विजानीयात्सूर्यपूर्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥

यवौ तु रेफसंयुक्तौ विरते च भवेद्यदि।
पराङ्गं तद्विजानीयात्तरो हर्येति लक्षणम् ॥ २ ॥

आसन्नाच्च महानाच्च यातुधानाच्च यो यथा।
न एते नकारपूर्वाः निर्दिशन्ति विचक्षणाः ॥ ३ ॥

हकारो यत्र दृश्येत वर्गान्तैः संयुतः क्वचित्।
उदादयस्तु विज्ञेयाः पृथग्युक्तौ च भावयेत् ॥ ४ ॥

रेफपूर्वो हकारस्तु रेफात्परमथापि वा।
अनुस्वारात्परो यत्र हकारः क्रमति त्रिषु ॥ ५ ॥

अनुस्वारपरा शषसा: न क्रमन्ति कदाचन ।
तत्र क्रमन्ति शषसा: अन्त्यस्थै: परतो यदि ।। ६ ।।

सूयरश्मिप्रतीकाश: कणिक: यत्र दृश्यते ।
अणोस्तु तत्प्रमाणं स्यान्मात्रा तु चतुराणुवत् ।। ७ ।।

हृदयस्थमणु विद्यात्कण्ठे विद्याद्विराणुवत् ।
त्रिराणवन्तु जिह्वाग्रे निसृतं मात्रिक भवेत् ।। ८ ।।

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रां वायसोऽब्रवीत् ।
शिखी त्रिमात्रो विज्ञेय: एष मात्रापरिग्रह: ।। ९ ।।

एकमात्रो भवेद्ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
प्लुतस्त्रिमात्रो विज्ञेय: व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम् ।।१०।।

सर्वमत्रचतुर्थन्न वद्र्धन्त एतानि वद्र्धन्ते ।
यथा दश्चरति रान्द्रस्विन्द्रसच्छू अतरसात्वासूगोलरात्पतन्ती च रहस्ये ।
वर्हिष्यादीनामपरिस्वारो व्यञ्जनलोपो व्यञ्जनलोप: ।। १।।

इति लोमशी शिक्षा समाप्ता ।।

ग्रहवेदाङ्गयुते इषे मास्यर्जुने दले ।
गौतमीलोमशीशिक्षे विहिते सामगे मुदे ।। १ ।।

युगलप्रास्किशोरेण पाठकेन दयालुना ।
सामगानां हितार्थाय वेदविद्यालयेऽङ्किता ।। २ ।।

# अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा ।

तिस्रो वृत्तयः सुक्रान्ता द्रुतमध्यमविलम्बिता ।
यथाऽनुपूर्वं प्रथमा द्रुता वृत्तिः प्रशस्यते ॥ १ ॥

मध्यमैकतरावृत्तिर्ह्यन्तरा हि बिलम्बिता ।
नैनां बुधः प्रयुञ्जीत यदीच्छेद्धर्मसम्पदाम् ॥ २ ॥

अभ्यासार्थे द्रुता वृत्तिरुपलब्धौ विलम्बिता ।
मध्यमा तु प्रयोगार्थे न तद्वचनमन्यथा ॥ ३ ॥

ऐन्द्री तु मध्यमा वृत्तिः प्राजापत्या विलम्बिता ।
अग्निमारुतयोर्वृत्तिः सर्वशास्त्रेषु निन्दिता ॥ ४ ॥

दोषाप्रकाशस्तु बिलम्बितायां वर्णा द्रुतायां न तु सूपलक्षाः ।
तस्माद्द्रुतां चैव बिलम्बितां च त्यक्त्वा नरो मध्यमया प्रयुञ्ज्यात् ॥५॥

सर्वा एव तु निर्दोषा वृत्तयः समुदाहृताः ।
खद्योतस्य सुवक्त्रस्य शिक्षकस्य विशेषतः ॥ ६ ॥

सप्तस्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः ।
चत्वार एव छन्दोभ्यस्त्रयस्तत्र विवर्जिताः ॥ ७ ॥

षडजऋषभगान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा ।
धैवतश्च निषादश्च स्वराः सप्तेह सामसु ॥ ८ ॥

षडजे वदति मयूरो गावो रम्भन्ति चर्षभे ।
अजा वदति गान्धारे क्रौञ्चनादस्तु मध्यमे ॥ ९ ॥

पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पञ्चमे स्वरे ।
अश्वस्तु धैवते प्राह कुञ्जरस्तु निषादवान् ॥ १० ॥

नासिकायास्तु गान्धारः उरसो मध्यमस्तथा ॥ ११ ॥
उरः शिरोभ्यां कण्ठाच्च पञ्चमः स्वर उच्यते ।
धैवतस्तु ललाटाद्यैः निषादः सवरूपवान् ॥ १२ ॥
मद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिञ्जरः ।
कनकाभस्तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसप्रभः ॥ १३ ॥
पञ्चमस्तु भवेत्कृष्णः पीतवर्णस्तु धैवतः ।
निषादः सर्ववर्णाभः इत्येते स्वरवर्णकाः ॥ १४ ॥
ब्रह्माङ्गुष्ठं तु कृष्टं स्यदङ्गुष्ठे मध्यमः स्वरः ।
प्रादेशिन्यां तु गान्धारो मध्यमायां तु पञ्चमः ॥ १५ ॥
अनामिकायां षड्जस्तु कनिष्ठायान्तु धैवतः ।
तस्याधस्तात्तु योऽन्त्यः स्यान्निषाद इति तं विदुः ॥ १६ ॥
प्रथमावन्निमौ चैव वर्तन्ते छन्दसि स्वराः ।
चयो मध्या निवर्तन्ते मण्डूकस्य मतं यथा ॥ १७ ॥
द्वितीयं स्वरितं प्राहुः षष्ठः प्रचित उच्यते ।
उच्चं विद्यान्निषादन्तु नीचं षड्जमुदाहृतम् ॥ १८ ॥
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितः प्रचितस्तथा ।
चतुर्विधःस्वरोदृष्टः स्वरचिन्ताविशारदैः ॥ १९ ॥
स्वरे ज्ञात्वा यथा स्थानम् हस्तस्य स्पन्दनं स्मृतम् ।
निष्कृष्य हस्तं विन्यस्तं पाणौ दृष्टिं निवेशयेत् ॥ २० ॥
किञ्चिद्यो नभसः स्वांसाद् बाहुंदृष्टिं निपातयेत् ।
प्रसार्य चाङ्गुलीः सर्वाश्चालयेत् करमण्डलम् ॥ २१ ॥
न चाङ्गुलीभिरङ्गुष्ठमुपेयाद्दोषवित्ततः ।
ऊर्ध्वमापुस्तमाकुञ्चमङ्गुष्ठं स्थापयेद् बुधः ॥ २२ ॥
नाधः शिरस्ताद्वामे वा नाङ्गुल्यः प्रतराः स्मृताः ।
उत्तानं सोन्नतं किञ्चित्सुव्यक्ताङ्गुलिरञ्जितम् ।

स्वरचिह्नंकरं कुर्यात्प्रादेशोद्देशगामिनम् ।
अंगुष्ठस्योत्तरे पूर्वे यस्योपरि यद्भवेत् ॥ २४ ॥

प्रादेशस्तु तद्देशस्तन्मात्रं चालयेत्करम् ।
चुलुनौ वा स्फुटी दण्डी स्वस्तिका मुष्टिकाकृतिः ॥ २५ ॥

एते वै हस्तदोषाः स्युः परशुछेदस्तु सप्तमः ।
कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य चेष्टां दृष्टिं दृढं मनः ॥ २६ ॥

न कम्पयेच्छिरः पादौ मुखदोषांश्च वर्जयेत् ।
नासिकायास्तु पूर्वेण हस्तं सञ्चालयेद् बुधः ॥ २७ ॥

सूक्ष्मान्वर्णान्नुच्चरेद्वै दक्षिणं श्रवणं प्रति ।
श्रुतिं वाचोऽनुगाङ्कृत्वा वाचं कृत्वा मनोऽनुगाम् ॥ २८ ॥

दृष्टिं हस्तानुगां कृत्वा ततः पदमिवोच्चरेत् ।
यथा पाणी तथा वाणी रिक्तं तु परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥

यत्रैव तु स्थिता पाणी पाणिस्तत्रैव धार्यते ।
स्वरश्चैव च हस्तश्च द्वावेतौ युगपद्भवेत् ॥ ३० ॥

हस्ताद्भ्रष्टः स्वराद्भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते ।
हस्तहीनतु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ॥ ३१ ॥

ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति ।
ऋग्यजुःसामगादीनि हस्तहीनानि यः पठेत् ॥ ३२ ॥

अनृतो ब्राह्मणस्तावद्यावत्स्वारं न विन्दति ।
हस्तेनाधीयमानो यः स्वरवर्णान्प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥

ऋग्युजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोकं स गच्छति ।
स्वरात्स्वरं सङ्क्रमते स्वरसन्धिमनुल्बणम् ॥ ३४ ॥

अविच्छिन्नं समं कुर्यात्सूक्ष्मांछायां तथोपमम् ।
अक्षरज्ञो विरामज्ञः प्रत्यारम्भं तथैव च ॥ ३६ ॥

स्वरमात्रा विभागस्तु स विप्रो वक्तुमर्हति ।
आम्रपालाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः ॥ ३७ ॥

खदिरस्य करञ्जस्य कदम्बस्य च क्षीरिणः ।
अर्कस्य करवीरस्य कुटजस्य विशेषतः ॥ ३८ ॥

वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ।
तेनास्यकरणं सूक्ष्मं माधुर्यं चोपजायते ॥ ३९ ॥

न चास्य वदतो दोषात्कञ्चिदप्युपलक्षयेत् ।
नात्युच्चैः नाति वा नीचैर्घोषेण सवनस्य खम् ॥ ४० ॥

प्रयुञ्ज्यान्नातितीक्ष्णेन कण्ठेन मृदुनादिना ।
प्रातर्वदेन्नित्यमुरः स्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
माध्यन्दिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥ ४१ ॥

तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिखण्डिना तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसादिमृदुस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःसुखेन ॥ ४२ ॥

यथा व्याघ्रो हरेत्पुत्रान्दंष्ट्राभिर्न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः न मुक्ता न च पीडयेत् ।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४४ ॥

शनैरध्वसु वक्रेण न परं योजनाद् व्रजेत् ।
नहि पार्ष्णिहिता वाणी प्रयोगान्वक्तुमर्हति ॥ ४५ ॥

मान्ते मुष्ट्याकृतिङ्कुर्यात् तकारान्ते विलोपयेत् ।
नखस्य दक्षिणे पार्श्वे नकारान्ते प्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥

कष्टान्तयोस्तु कर्त्तव्यमङ्गुल्यग्रप्रकुञ्चनम् ।
ङणनान्तं तथैव स्यान्मान्ते त्वङ्गुलिपीडनम् ॥ ४७ ॥

ऊर्ध्वक्षेपाच्च या मात्रा अधःक्षेपाऽपि या भवेत् ।
एकैकामुत्सृजेद्धीरः प्रचिते तूभयं तथा ॥ ४८ ॥

ह्रस्वानुस्वारकरणे त्वङ्गुल्याश्च प्रकुञ्चनम् ।
दीर्घे तु सूरयः प्राहुः देशिन्याः सुप्रसारणम् ॥ ४९ ॥

पदान्तरं न कुर्वीत संहितायां प्रयोगवित् ।
नैवमांसं विजानीयात् मांसे मांसं विनिर्दिशेत् ।। ५० ।।

यथा नौः स्रोतसां मध्ये समं गच्छति संयुता ।
तैलधारेण वा वाणी तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ।। ५१ ।।

उदात्ताच्च न कर्त्तव्यमुदात्तं स्वरितन्तथा ।
नीचान्नीचतरन्नास्ति उच्चादुच्चं न विद्यते ।। ५२ ।।

उच्चादुच्चतरन्नास्ति नीचान्नीचतरङ्कुतः ।
स्वरितात् स्वरितन्नास्ति कम्पिताच्चैव कम्पितम् ।। ५३ ।।

यदुदात्तमुदात्त तद्यत्स्वरितन्तत्पदे भवति नीचम् ।
यन्नीचं नीचमेव तद्यत्प्रचयस्थं तदपि नीचम् ।। ५४ ।।

अनुदातमनुदात्तमनह्लादमुदात्तानामताडनम् ।
अनुदात्तमनाधिष्ठम् शषसानामरोमशम् ।। ५५ ।।

षड्धातु स्वरितादेव ह्यनुदात्तश्च चतुर्विधः ।
द्विविधश्चानुदात्तश्च ह्येतच्छास्त्रेण चोदितम् ।। ५६ ।।

स्वरितप्रभवं प्रचितात्स्वरितमेव उदात्तं वा ।
अनुदात्तमेव तं विद्यादृतं च तद्विद्धि यत्प्रचितम् ।। ५७ ।।

स्वरितात्पराणि यानि स्युरनुदात्तान्युदात्तवत् ।
सर्वाणि प्रचयं यान्ति ह्युपोदात्तं न विद्यते ।। ५८ ।।

स्वरितावधृत उदात्ते परस्त्रिपूर्वो विक्रमोच्यते ।
स्वरितावधृत उदात्ते पादः स्यात्स हि विक्रमः ।। ५९ ।।

ननु धारयेत् वृत्तमुपस्पर्शमुपोदात्तं निपातयेत् ।
एकाक्षरे धारयेन्न च धृतमुच्चारयेत् स्वरे वाऽपि ।। ६० ।।

न्यासमेवादितः कुर्यात् नियतेषु बहुष्वपि ।
शेषमाद्यवदुक्ता तु तत्पदेषु समेषु च ।। ६१ ।।

स्वरः उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित उच्यते ।
व्यञ्जनान्यनु वर्त्तन्ते यत्रासौ तिष्ठति स्वरः ।। ६२ ।।

स्वरः उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव तु ।
स्वरः प्रधानं त्रैस्वर्य्यमाहुरक्षरचिन्तकाः ॥ ६३ ॥

द्वयोस्तु स्वरयोः सन्धावेको भावो यदा भवेत् ।
उदात्तोऽप्यनुदात्तस्य वशं गच्छति सन्धिषु ॥ ६४ ॥

दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान् नृपः ।
स्वरो व्यञ्जनमासाद्य हरते नात्र संशयः ॥ ६५ ॥

आख्यानानां प्रयोगेषु पूर्वस्वरमुपस्थितम् ।
षोडशाक्षरमर्यादं यद्योगे स्वरमुद्धरेत् ॥ ६६ ॥

नीचं तु स्वरपूर्वं तु नीचावग्रहमेव च ।
हन्तव्यन्तद्विजानीयाद् उच्चावग्रहवर्जितम् ॥ ६७ ॥

नाभिहन्यान्न निर्हन्यान्न प्रगायेन्न कम्पयेत् ।
एतौ द्वौ युगपत्साध्यावेतच्छास्त्रेण चोदितम् ॥ ६८ ॥

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ ६९ ॥

वर्णानां तु प्रयोगेषु करणम् स्याच्चतुर्विधम् ।
संवृतं विवृतञ्चैव स्पृष्टमस्पृष्टमेव च ॥ ७० ॥

स्पर्शानां करणं स्पृष्टमन्तस्थानामतोऽन्यथा ।
यमानां स्वरितं प्राहुर्विवृतं च विरोष्मणाम् ॥ ७१ ॥

सप्त स्वरान् प्रवक्ष्यामि तेषां चैव बलाबलम् ।
लक्षणानि च सर्वेषां युक्तास्तानि निबोध मे ॥ ७२ ॥

अभिनिहितः प्राश्लिष्टः जात्यः क्षैप्रश्च पादवृत्तश्च ।
तैरोव्यञ्जनः षष्ठस्तिरोविरामश्च सप्तमः ॥ ७२ ॥

ए ओ अभ्यासमुदात्ताभ्यामकारो रेफितश्च यः ।
अकारं यत्र लुम्पन्ति तमभिनिहितं विदुः ॥ ७४ ॥

इकारं यत्र पश्येयुः इकारेणैव संयुतम् ।
उदात्तोऽप्यनुदात्तस्य प्राश्लिष्टोऽभीन्वतामपि ॥ ७५ ॥

सयकारं सधंवाप्यक्षरं स्वरितं भवेत् ।
न चोदात्तं पुरस्तस्य जात्यः स्वर्दूत्य एव तु ॥ ७६ ॥

इउवर्णौ यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित् ।
अनुदात्ते प्रत्यये नित्यं विद्धि क्षैप्रस्थ लक्षणम् ॥ ७७ ॥

स्वरिते स्वरितं यत्र विवृत्यां यत्र संहिता ।
तं पादवृत्तं जानीयात्ते त्वस्मिन्यवमादधुः ॥ ७८ ॥

उदात्तपूर्वं साद्र्धे तु द्वितीये अक्षरे तु यः ।
तैरोव्यञ्जन इत्येष सारः स्याद्दधिमध्विति ॥ ७९ ॥

अवग्रहात्परं यत्र स्वरितम् स्यादनन्तरम् ।
तिरोविरामं जानीयात्प्रजापतिर्निदर्शनम् ॥ ८० ॥

द्वयोरुदात्तयोर्मध्ये नीचोऽस्ति यदवग्रहः ।
तथा भाव्यो भवेत्कम्पस्तनूनामान्निदर्शनम् ॥ ८१ ॥

तथा माव्यस्तु तालव्यो न कम्पः स्वरसंज्ञकः ।
स तालव्यो भवेत्कम्पः एजतीति निदर्शनम् ॥ ८२ ॥

मर्वतीक्ष्णोऽभिनिहितस्ततः प्राश्लिष्ट उच्यते ।
ततो मृदुतरौ चैव जात्यः क्षैप्रश्च तावुभौ ॥ ८३ ॥

ततो मृदुतरः स्वारस्तैरो व्यञ्जन उच्यते ।
पादवृतो मृदुतर इति स्वारबलाबलम् ॥ ८४ ॥

उपन्यासस्तु कर्त्तव्यः कण्ठे निक्षेपसंज्ञकः ।
उपन्यासात्परं हन्याद् भूमौ शङ्कुपदम् यथा ॥ ८५ ॥

प्राश्लिष्टजात्यक्षैप्राश्च यश्चाभिनिहितश्च यः ।
उदात्तोपस्थिते तेषामेकदेशः प्रकल्पयेत् ॥ ८६ ॥

हलन्तादुत्तरो यस्तु पदादवग्रहेषु च ।
यस्य स्वस्माद्य इत्येषो योन्यः स य इति स्मृतः ॥ ८७ ॥

पादादौ च पदादौ च संयोगावग्रहेषु च ।
यः शब्द इति विज्ञेयो योन्यः स य इति स्मृतः ॥ ८८ ॥

पुनरन्तश्च सवितश्च प्रातर्वा रेफिता च संहिता यत्र ।
रेफान्ति पदान्यस्य स्यादेतद्रिफितं पदम् ॥ ८९ ॥

अन्तः शब्दस्तु यः कश्चित् आद्युदात्तो भवेद्यदि ।
न तत्र रेफमिच्छन्ति संहितायां पदेषु च ॥ ९० ॥

अनुस्वारं हि दोपस्तु हकारादिषु वर्जितः ।
अंहो मुचो वातरंहा दंहश्चेति निदर्शनम् ॥ ९१ ॥

अनुस्वारश्च कर्त्तव्या ह्रस्वदीर्घप्लुतास्त्रयः ।
अयं राजा यशोर्मासं क्षत्रियाणां धनूंषि च ॥ ९२ ॥

विवृत्तयश्च विज्ञेयाश्चतस्रस्त्वनुपूर्वशः ।
नामभिस्तु पृथगक्षे यास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ९३ ॥

पिपीलिका पाकवती तथा वत्सानुसारिणी ।
अनुसृतवत्सा चैव चतस्रो हि विवृत्तयः ॥ ९४ ॥

वत्सानुसृता ह्रस्वा जघने वत्सानुसारिणी चाग्रे ।
पाकवती चोभयतः पिपीलिकमध्याऽप्युभयदीर्घा ॥ ९५ ॥

पूर्वह्रस्वपरं दीर्घमक्षरं यत्र दृश्यते ।
सा वत्सानुसृता ज्ञेया व्यत्यामेत्यनुसारिणी ॥ ९६ ॥

उभाभ्यामेव ह्रस्वाभ्यां यवमध्या विनिर्दिशेत् ।
ताभ्यामेव तु दीर्घाभ्यां विज्ञेया सा पिपीलिका ॥ ९६ ॥

अस्त्रमध्ये यथा विद्युद्दृश्यते मणिसूत्रवत् ।
एषच्छेदो विवृत्तीनां यथा बालेषु कर्त्तरी ॥ ९८ ॥

आपद्यते मकारो यखोष्मसु प्रत्ययेष्वनुस्वारम् ।
न भवति लकारे परसवर्णस्पर्शेषुचोत्तमापत्तिः ॥ ९८ ॥

उष्मस्थौ यत्र दृश्येते स्वरस्ववर्णौ ध्यौरोदयौ ।
ऋ-लृ वर्णौ तथा ज्ञेयौ स्वरभक्तीति संस्थितौ ॥ ९९ ॥

तां ह्रस्वां प्रतिजानीयाद्यथा मात्रा भवेद्यदि ।
सम्यगेनां विजानीयाद् द्वौ दोषो परिवर्जयेत् ॥ १०० ॥

सम्यगेनां यदा पश्येच्छतवलिशेति निदर्शनम् ।
अकारंचाप्युकारं च विच्छिन्नं विवृतन्तथा ॥ १०१ ॥
करिणीं कुर्विणीं चैव हारिणीं लहकारयोः ।
हरिणीं ऋषयोर्विद्याद्धारितां लशकारयोः ॥ १२० ॥
या तु हंसपदा नाम सा तु रेफसकारयोः ।
या तु रेफशकारौ स्यात् काकिनीं तां विनिर्दिशेत् ॥ १०३ ॥
ऋकारप्रत्यये रेफः संयुक्तः शषसैः सह ।
आद्यस्तत्र क्रमो ज्ञेयो न परो वोधितो बुधैः ॥ १०४ ॥
रेफोष्मणां संयोगे स्वरभक्तिरक्रमश्चैव ।
तत्रोदाहरणानां प्रदर्शनम् वर्षो बर्हिश्च ॥ १०५ ॥
रेफं स्वरोदये विद्यादृकारं व्यञ्जनोदये ।
स्वरव्यञ्जनयोर्मध्ये रेफमेव विनिर्द्दिशेत् ॥ १०६ ॥
ओभावश्च विवृतिश्च शषसा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ १०७ ॥
षत्वणत्वमुपाचारो दीर्घीभावस्तथैव च ।
यस्मिन् पदे निपद्यन्ते तत्समासाद्य लक्षणम् ॥ १०८ ॥
यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ १०९ ॥
दारुसंघातवत्श्लिष्टं संयोगवशवर्त्तिनाम् ।
वर्णानां युगसम्पन्नमेकं वर्णमिवोत्सृजेत् ॥ ११० ॥
वर्णा विशनकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च परसंस्थिते ।
रक्तं वर्णं विजानीयान्न ग्रसेत्पूर्वमक्षरम् ॥ १११ ॥
रक्तं वर्णं यदा पश्येद्विवृत्त्या सह संस्थितम् ।
व्यञ्जनान्तं विजानीयाद् गोमाँइति निदर्शनम् ॥ ११२ ॥
यथा सौराष्ट्रिका नारी अराँइत्यभिभाषते ।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याङ्कारपरिवर्जिताः ॥ ११३ ॥

नासादुत्पद्यते रङ्गः कंसेन समनिस्वनः ।
मृदुं चैव द्विमात्रं स्याद्वृष्टिमाँ इति निदर्शनम् ।। ११४ ।।
संयुक्तस्य तु यत्पूर्वं तद्ह्रस्वं लघु विजानीयात् ।
तत्संयोगोत्तरं विद्यात् कुर्वन्त्यत्र नियोगतः ।। ११५ ।।
मात्रैकं लघु विज्ञेयं तत्संयोगपरं गुरुम् ।
स परं व्यञ्जनान्तं च दीर्घस्तु प्लुत एव च ।। ११६ ।।
स्पर्शानामुत्तमैः स्पर्शैःसंयोगाच्चेदनुक्रमात् ।
आनुपूर्व्या यमांस्तत्र जानीयाच्चतुरस्तथा ।। ११७ ।।
रुक्वमेति प्रथमं विद्यान्नृचक्षेत्यपरं विदुः ।
तृतीयं पद्ममित्याहुः शङ्घ्नमिति चोत्तमम् ।। ११८ ।।
वर्गान्ता यत्र दृश्यन्ते शषसैः सह संयुताः ।
यमास्तत्र निवर्त्तन्ते श्मशानादिव बान्धवाः ।। ११९ ।।
संयोगस्य परं स्वार्थं परं संयोगनायकम् ।
संयुक्तस्य तु वर्णस्य न स्वरं पूर्वमिष्यते ।। १२० ।।
स्वरणं पतनं चैव वोत्थानेषु समेषु च ।
एकमेव पदे दृष्टं न पूर्वाङ्के क्वचिद् भवेत् ।। १२२ ।।
वर्णा विंशतिरेकश्च येषां द्विर्भाव इष्यते ।
प्रथमा मध्यमा चान्त्या यलवाः शषसास्तथा ।। १२३ ।।
न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो ज्ञायते क्वचित् ।
न च वर्गद्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन ।। १२४ ।।
चतुर्थं तु तृतीयेन द्वितीयं प्रथमेन न तु ।
आद्यमन्त्यं तृतीयं च स्वाक्षरेणैव पीडयेत् ।। १२५ ।।
दृप्सौऽप्सरायामशब्दे विश्वप्स्यनात्र विरप्शिने ।
काश्यपोऽभिनिघातानामागमं प्रतिषेधनात् ।। १२६ ।।
यत्र चोभयतः स्पर्शाः संयुक्ताः शषसैः सह ।
आद्यस्तत्र क्रमो ज्ञेयो न परो वोधितो बुधैः ।। १२७ ।।

ऋवर्णरेफसंयुक्तं स्वरितं स्यादनन्तरम् ।
ऋकाररेफसंयुक्तं यत्पूर्वं व्यञ्जनोदयेत् ॥ १२८ ॥
ऋकारे लघु तद्विद्याद्रेफे तद्गुरुसञ्ज्ञकम् ।
ऋकाररेफसंयुक्तं यत्पूर्वं व्यञ्जनोदयेत् ॥ १२९ ॥
ॠकारे लघु तद्विद्याद्रेफे तद्गुरुसञ्ज्ञककम् ।
न क्रमते स्वरयमयोर्न च वर्गसवर्णयोर्न च विरामे ॥१३०॥
न च रेफानुस्वारे विसर्जनीये तु सर्वत्र ।
ब्रुवन् भ्रुवौ कर्णललाटनासिका न कम्पयेदोष्ठचलुर्ननिर्भुजेत् ।
मुखं न विक्लिश्य न नग्नवत्क्रमो न चापि सन्दृष्टिहनुर्न वाह्यवाक् ॥१३१॥
न रूक्षवाक्स्यान्न-च उत्स्वरं वदेन्न चानिमेषो न च गर्वमाचरेत् ।
गजव्यवेषी बलवानतन्द्रितो व्यपेत रोषश्रमशोकहर्षभीः ॥ १३२ ॥
न चानुकूजत्पदमादितो ब्रुवन्न नासिका नित्यमनुष्ठितं वदेत् ।
न चापदान्ते श्रमपीडितः श्वसेन्नचोच्छ्वसेदुक्तपदोप्यभीक्ष्णशः॥१३३॥
नातिनिष्पीडयेद्वर्णान् न चाव्यक्तानुदाहरेत् ।
समान् श्लक्ष्णानसन्दिग्धान्वर्णानुच्चारयेद् बुधः ॥ १३४ ॥
प्रथमानुत्पतन्मन्त्रान्द्वितीयानिव दर्शयेत् ।
तथैतान्प्रतिजानीयाद्यथा मत्यानक्षरोऽप्पसरान् ॥ १३५ ॥
तथैव पञ्चमानाहुरागमो यत्र दृश्यते ।
द्वितीयानेव तान्कुर्याद्यस्मिन्सीतेति निदर्शनम् ॥ १३६ ॥
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण यो वर्णः समुदीर्यते ।
स एकमात्रो द्विस्तावान्दीर्घस्तु प्लुत उच्यते ॥ १३७ ॥
अवग्रहेऽर्द्धमात्रं स्मात् कालो मात्रा पदान्तरे ।
अर्द्धर्चे द्वे तथा पादे त्रिमात्रं स्यादृगन्तरम् ॥ १३८ ॥
चाषस्तु वदते मात्रं द्विमात्रं वायसोऽब्रवीत् ।
शिखी त्रिमात्रं विज्ञेय एष मात्रापरिग्रहः ॥ १३९ ॥
क्वचित्पादविभागेन क्वचिदर्द्धं क्वचित्पदे ।
क्वचिदर्थे क्वचिच्छब्दे विरामः पञ्चधा स्मृतः ॥ १४० ॥

छन्दस्येते प्रयुज्यन्ते क्रमेण क्षेपसञ्ज्ञकाः ।
सविरामं प्रयोक्तव्या येन वृत्तिर्न विद्यते ॥ १४१ ॥

सञ्ज्ञाने भूयसीं दोषान्प्रवक्ष्यामि निबोधत ।
स्वरस्य सन्दर्शनश्च ह्यनुस्वारयमावपि ॥ १४२ ॥

विच्छिन्नत्त्वं विक्षणत्त्वं सुशीमं सोममल्पक ।
ईकारेणावगृह्णीयात् प्रतिशुक्लेति पञ्चमम् ॥ १४३ ॥

बिश्वानामुपसन्देहे अर्द्धर्चं स्यान्नपुंसकम् ।
पुरस्तादुपरिष्टाद्वा सर्वे बिश्वा निरूष्मकाः ॥ १४४ ॥

नकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च परसंस्थिते ।
ह्रस्वो मात्रः प्रयोक्तव्यः शषसप्रत्ययेषु च ॥ १४५ ॥

द्वौ तकारौ थकारौ च यमो नेति च पञ्चमः ।
कृत्स्ना इति च संयोगमाहुरक्षरचिन्तकाः ॥ १४६ ॥

ककारान्ते पदे पूर्वे ङकारे प्रत्यये परे ।
ङकारस्यागमं कुर्याद्वाङक्म इति निदर्शनम् ॥ १४७ ॥

टकारान्ते पदे पूर्वे णकारे प्रत्यये परे ।
णकारस्यागमं कुर्याद्वण्महाँ इति निदर्शनम् ॥ १४८ ॥

तकारान्ते पदे पूर्वे नकारे प्रत्यये परे ।
नकारस्यागमं कुर्याद् यन्न इति निदर्शनम् ॥ १४९ ॥

मकारान्ते पदे पूर्वे मकारे प्रत्यये परे ।
मकारस्यागमं कुर्यात्तन्नष्टुम्प इति निदर्शनम् ॥ १५० ॥

अन्त्यं कटतपं दृष्ट्वा परं ङमणनमं तथा ।
आत्मपञ्चमसंयोगमाहुरक्षरचिन्तकाः ॥ १५१ ॥

आम्नायात् प्रपदो भवति प्रपदो भवति निर्भयः ।
निर्भयो मधुरो भवति माधुर्यात्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १५२ ॥

आम्नायकरणं श्रेष्ठं वर्णानां चावधारणम् ।
अप्रमत्तश्च स्वार्येत एतदाचार्यशासनम् ॥ १५३ ॥

आम्नायशास्त्रसम्पन्नं शास्त्रमाम्नायसारवित् ।
पयः शङ्खे यथा तद्विच्छिरश्छन्दसिसारथिः ॥ १५४ ॥

दन्त्योष्ठ्यकरणं सूक्ष्मम् माधुर्यं तरुणं वचः ।
स्वभावं शिक्षकस्याहुरन्यद्गुरुकृतं भवेत् ॥ १५५ ।

तरुणं शिक्षकं प्राहुर्वृद्धमक्षरचिन्तकम् ।
नैयायिकं परश्रुतं बहुधा भवन्ति याचकम् ॥ १५६ ॥

न करालो न लम्बोष्ठो न च सर्वानुनासिकः ।
गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति ॥ १५७ ॥

प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्तोष्ठौ यस्य शोभनौ ।
अधीतं येन तत्त्वेन स शिक्षां पारयिष्यति ॥ १५८ ॥

आगमैरधिकाः केचिद्विज्ञानैरपरेऽधिकाः ।
प्रयोगसौष्ठवादन्ये नाहमस्मीति विस्मयः ॥ १५९ ॥

सुतीर्थादागतं जग्धं स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम् ।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥ १६० ॥

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णैश्च भक्षितम् ।
न तस्य परिमोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्विषात् ॥ १६१ ॥

येषां तीर्थगता विद्या नित्यमभ्यासवर्जिता ।
ते भवन्ति दुराधर्षाः संसिद्धा इव पर्वताः ॥ १६२ ॥

न भोजनविलम्बी स्यान्न च स्यात् स्त्रीनिबन्धनः ।
स इरमपिविद्यार्थी व्रजेद् गरुड़हंसवत् ॥ १६३ ॥

हयानामिव ज्यात्यानामहोरात्रार्द्धशायिनाम् ।
न विशेषार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति ॥ १६४ ॥

अहेरिव जनाद्भीतः स्त्रीभ्यश्च नरकादिव ।
मिष्टाच्च विषवद्भीतः स विद्यां पारयिष्यति ॥ १६५ ॥

सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिवर्जिता ।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ॥ १६६ ॥

शतेन गुणिता भवति सहस्रेण तु धारिता ।
शतानां तु सहस्रेण प्रेत्य चेह च तिष्ठति ॥ १६७ ॥

उपांशु त्वरितं चैव योऽधीतेऽत्रसन्निव ।
अपि रूपसहस्रेषु संशयेष्वेव वर्तते ॥ १६८ ॥

येषां च न ग्रहणशक्तिरतिप्रचण्डा
लब्ध्वा च ये न शतशः परिवर्त्तयन्ति ।
निद्रां च ये प्रियसखीमिव न त्यजन्ति
ते तादृशा गुरुकुलेषु जरां व्रजन्ति ॥ १६९ ॥

पञ्च विद्यां न गृह्णन्ति लुब्धाश्चण्डाश्च ये नराः ।
अलसाश्चामरोगाश्च येषां च विकृतं मनः ॥ १७० ॥

ऊद्ध्वं सहस्रादाम्नातं सततं चान्ववेक्षणम् ।
आप्तैस्तु सह सम्पाठस्त्रिविधा धारणा स्मृता ॥ १७१ ॥

यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विन्दति ।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७२ ॥

योजनानां सहस्रं तु शनैर्याति पिपीलिका ।
अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥ १७३ ॥

पदेनैकेन मेधावी पदानां विन्दते शतम् ।
मूर्खः पदसहस्रेण पदमेकं न विन्दति ॥ १७४ ॥

पदं पादं तथाऽर्द्धर्चं सेवितव्यं प्रयत्नतः ।
अप्राज्ञः प्राज्ञतां याति सरिद्भिः सागरो यथा ॥ १७५ ॥

अनिर्वेदी श्रियोमूलं लोहबद्धं कमण्डलुम् ।
अहोरात्राणि दीर्घाणि कः समुद्रं न शोषयेत् ॥ १७६ ॥

जलमभ्यासयोगेन शैलानां कुरुते क्षयम् ।
कर्कशानां मृदुस्पर्शं किमभ्यासो न साधयेत् ॥ १७७ ॥

आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदन्तु पण्डिताः ।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥ १७८ ॥

आचार्योपासनाद्योगात् तपसा प्राज्ञसेवनात् ।
विगृह्य कथनात्कामाद् षड्भिर्विद्या प्रपद्यते ॥ १७९ ॥

आलस्यान्मूर्खसंयोगाद् भयाद्रोगनिपीडनात् ।
अत्याशक्त्या च मानाच्च षड्भिर्विद्या विनश्यति ॥ १८० ॥

मण्डूकेन कृतां शिक्षां विदुषां बुद्धिदीपिनीम् ।
यो हि तत्त्वेन जानाति ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ १८१ ॥

इत्यथर्वणवेदीया माण्डूकीशिक्षा समाप्ता ।

गगनेष्वङ्केन्दुमिले मधावर्जुनके दले ।
यजुर्वेदस्य शुक्लस्य माध्यन्दिनमतस्य तु ।। १ ।।

पञ्चविंशतिसङ्ख्याकाः शिक्षाश्चात्र सुमुद्रिताः ।
ऋग्वेदस्यैकशिक्षा पाणिनीया सटीकता ।। २ ।।

त्रितयी सामवेदस्य नारदी-गौतमी तथा ।
लोमशी चाऽथर्वणिका माण्डूकी लोकविश्रुता ।। ३ ।।

# अथर्वपरिशिष्टम्

॥ श्रीगणेशमहम्भजे ॥

अथातोऽथर्ववेदस्य शौनकस्य महात्मनः ।
स्वशास्त्रीयं श्रौतसूत्रं वैतानाख्यमुदाहृतम् ॥ १ ॥

गोपथब्राह्मणं तद्वत्कौशिकं गृह्यसूत्रकम् ।
संहिताचार्कसाहस्यपिप्पलाद्याङ्गशाखिनः ॥ २ ॥

पञ्चकल्पानि तन्मध्ये कल्पाः पञ्चशतानि वै ।
विधानकल्पो नाक्षत्रः संहिताविधिरेव च ॥ ३ ॥

अभिचारस्य कल्पस्तु शान्तिकल्पस्तथापरः ।
प्रत्यङ्गिरः प्रभृतयः कल्पाद्यानेकशस्तथा ॥ ४ ॥

शौनकीयं कल्पसूत्रं सर्वानुक्रमकस्तथा ।
प्रातिशाख्यं शौनकीयं स्वरवर्णविभागजम् ॥ ५ ॥

शिक्षा कल्पिता सम्थङ्मण्डूकेन महर्षिणा ।
शिष्याणामुपदेशार्थं सम्यगुच्चरणाय वै ॥ ६ ॥

परिशिष्टं द्विपञ्चाशन्नानाकार्यविधायकम् ।
अथर्ववेदरूपन्तद् ज्ञातव्यं विबुधैः शुभम् ॥ ७ ॥

तीक्ष्णः प्रचण्डरूपो वै कामरूपो तु विश्वकृत् ।
स्वशाखाध्यायी क्षुद्रकर्ता प्राज्ञो नीलोत्पलः समः ॥ ८ ॥

दशारत्निप्रमाणं तु वैतानो गोलकं तथा ।
ब्रह्मदैवत्यमेवं चानुष्टुभं छन्द एव च ॥ ९ ॥

तृतीयं च गणं चैव भैषज्यञ्च गणन्तथा ।
त्रिसप्तीयं गणं चैव ंपराजितगणं तथा ॥ १० ॥

आयुष्यं च गणं चैव सर्वकर्मगणं तथा ।
वाष्तोष्पत्यं गणं तद्वत्तथा स्वस्त्यगणं वदेत् ॥ ११ ॥

तथा रौद्रगणं ज्ञात्वा सर्वान्दोषान्निहन्ति च ।
वैष्णवीशान्तिरैन्द्री च ब्राह्मी रौद्री तथैव च ॥ १२ ॥

वायव्या वारुणी चैव कौवेरी भार्गवी तथा ।
प्राजापत्या तथा त्वाष्ट्री कौमारी वह्निदेवता ।। १३ ।।

मरुद्गणा च गान्धारी शान्ति नैंर्ऋतिकीं तथा ।
शान्तिराङ्गिरसी याम्या पार्थिवी सर्वकामदा ।। १४ ।।

यस्त्वां मृत्युरिति ह्येतञ्जप्तम्मृत्युविनाशनम् ।
सुप्रयुक्तहुतं हुत्वा भुजगैर्नैव बाध्यते ।। १५ ।।

इन्द्रेण दत्तामित्येतत्सर्वकामकरं भवेत् ।
इमा देवीति मन्त्रश्च सर्वशान्तिकरः परः ।। १६ ।।

देवा मरुतइत्त्येतत्सर्वकामकरं भवेत् ।
यमस्य लोकादित्येतद्दुस्वप्नशमनं परम् ।। १७ ।।

इन्द्रम्पश्च वणिजेति पुण्यलाभकरं परम् ।
व मे वाजीति हुतं स्त्रीणां सौभाग्यवर्द्धनम् ।। १८ ।।

तुभ्यमेव जवीमन्नित्ययुतं तुहुतं भवेत् ।
अग्नेगौन्नुं इत्येतन्मेधावृद्धिकरं परम् ।। १९ ।।

ये मे पाशवाप्ये तद्बन्धनान्मोक्षकारणम् ।
एतदथर्वविधानं परिशिष्टं निरूपितम् ।। २० ।।

।। इत्यथर्वपरिशिष्टम् ।।